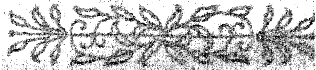
महाभारत भाषा

आदिपर्व

लेखक

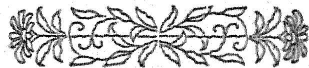
आगरा निवासी

पं० कुंजबिहारीलाल शर्मा



केसरीदास सेठ द्वारा,

नवलकिशोर प्रेस—लखनऊ में मुद्रित व प्रकाशित



चतुर्थावृत्ति]

सन् १९२२ ई० ।

महाभारत भाषा आदिपर्व का सूचीपत्र।

इति आदिपर्वसूचीपत्रम् ॥



महाभारत भाषा

आदिपर्व।

मंगलाचरण।

चौ० बन्दौं मन वच गणपतिचरणा। मंगलमूल अमंगल हरणा॥
जासु प्रभाव विदित जगमाहीं। ध्यावत विघ्नवृन्द मिटिजाहीं॥
श्रीवाणी के पद जलजाता। मोहहरण बुधि वर के दाता॥
बन्दौं बार बार मन लाई। जेहि ध्यावत अज्ञान नशाई॥
बिनवहुँ गुरुहि जोरि युगपाणी। विनययुक्तकरि निजमनवाणी॥
जो पद पंकज ध्यावै कोई। उत्तीरण भव सागर होई॥
वेदव्यास पुराण मुनीशा। बन्दौं विष्णुरूप जगदीशा॥
कलिमलहरण मोक्षफलदाता। जिन भाष्यो भारत भवत्राता॥
दोहा। अलख अगोचर सर्वमय आदि ब्रह्म जगदीश।
नन्दनँदन पद पंकजन बन्दौं धरि महि शीश॥
वैशम्पायन के चरण नौमि सविनय ललाम।
भाषा में भारत करहुँ मुक्ति ज्ञान गुण धाम॥

पहिला अध्याय।

जगत्की उत्पत्ति और महाभारत के प्रकट होनेकी कथा का वर्णन॥

द्वापरयुग के अन्त में एक समय लोमहर्षण सूतके बेटे उग्रश्रवाजी तीर्थयात्रा करते हुये नैमिषारण्य क्षेत्र में जहां शौनकादिक बड़े २ तपस्वी ऋषि बारह वर्ष में समाप्त होनेवाला यज्ञ कर रहे थे पहुँचे आपसमें दण्डवत् प्रणाम होकर कुशल पूछ ऋषियोंने सूतपुत्र को अर्घ्यपाद्यादिसे पूजन कर बड़े आदरपूर्वक आसन पर बैठाया और उनके स्वस्थचित्त होने पर उन तपस्वियोंने भारत सुनने की इच्छासे विनयपूर्वक पूछा कि आप कहां से आये और

अबतक कहां थे ७ यह सुनकर सूतपुत्र बोले कि राजर्षि जनमेजयने अपने पिता परीक्षितका वैर सर्पों से लेनेके लिये सर्पयज्ञ किया था वहां वैशम्पायन मुनिने व्यासजी की आज्ञा से राजा जनमेजय को भारतसम्बन्धी विविधभांति की सुन्दर पुण्यदायक कथायें सुनाई थीं उन्हीं अमृतरूपी कथाओं के सुनने को हमने भी वहां कुछ काल वास किया ११ उपरान्त तीर्थयात्रा करके समन्तपंचकनाम पुण्यतीर्थ जहां ब्राह्मणआदि उत्तम पुरुष रहते हैं और पहिले कौरव और पाण्डवों का युद्ध हुआ था १३ वहां होते हुये आपलोगों के दर्शनों को यहां चले आये हैं सो आपका दर्शन पाकर हम बहुत प्रसन्न हुये आप सबकी बड़ी आयु है हमारी समझ से आप सब ब्रह्मरूप हैं १४ आपके चित्त शुद्ध और तेज सूर्य के समान हैं और आप अभिषेकित होकर अग्नि में हवन कररहे हैं १५ अब पुराणोंकी संहिता अथवा धर्मार्थवाली पुण्यकथा अथवा राजऋषि और अच्छे राजाओंकी कथा जो कुछ आप कहें सो हम आपसे वर्णन करें १६ यह सुन शौनक ऋषि प्रसन्न होकर बोले कि जो व्यासजी की बनाई हुई भारतकथा चारों वेदोंके समान पुण्यकी देनेवाली और पापों की हरनेवाली है जिसमें वेद और पुराणोंका आशय भरा हुआ है और जिसे वैशम्पायन मुनिने राजा जनमेजयको सुनाया है वही कथा कृपा करके सुनाइये २१ यह सुनकर सूतजी अपने हृदयमें उस आदिपुरुषको जो ईशान अर्थात् मायासबल ब्रह्म प्रसिद्ध है जिसे यज्ञमें होता लोग बुलाते हैं और साक्षात् वेद मूर्तिमान् स्तुति करते हैं और जो सत्य है एक है अक्षर है ब्रह्म है व्यक्त है अव्यक्त है सनातन है सत् है सदसत् है विश्वरूप है परावर है अर्थात् परसूत्रात्मा और अवरविराटआदि घटपर्यंतका रचनेवाला है पुराणपुरुष है परम अव्यय अर्थात् अत्यंत नाश करके रहित है मंगलका देनेवाला है मंगलरूप है यज्ञरूप है वरेण्य अर्थात् मोक्षआदि चाहनेवालों के आदर करने योग्य है पापरहित है स्वाभाविक शुद्ध है हृषीकेश अर्थात् इन्द्रियोंका ईश है सब जड़ चैतन्यका गुरु है नमस्कार करके बोले कि मैं व्यासजी के पुण्य और पवित्र इतिहासको कहता हूं २५ इस इतिहास को कवियों ने पहिलेभी कहाथा अबभी कहते हैं और आगेभी कहेंगे २६ इसको तीनों लोक में सब ब्राह्मण मानते हैं २७ और अनेक शब्द और छन्द और अलङ्कारयुक्त पण्डितोंका प्यारा है २८ पहिले जगत्की उत्पत्ति आप सुनिये आदिमें केवल अँधेरा था उसमें एक जगत्का बीज अविनाशी ज्योतिमय बड़ा अंडा उत्पन्न

हुआ वह अंडा चिकना और सब ओर से एकसा था और ऐसा अद्भुत बना था कि न कहनेमें आसक्ता है और न चिंतवन किया जासक्ता है और उसमें ऐसी चमक थी कि दृष्टि नहीं ठहरती थी सब प्रकारके जीवोंके उत्पन्न होनेका स्थान वही है भले और बुरे दोनों तरहके जीव उसमें स्थित थे और ऐसा सुनने में आया है कि जिस ब्रह्मको संसारमें सनातन और ज्योतिस्वरूप कहते हैं वह ब्रह्म उस अण्डेको रचकर उसमें प्रवेश करगया ३१ उस अण्डे से रजोगुणप्रधान जगत् के रचनेवाले ब्रह्मा और सतोगुणप्रधान जगत्के पालन करनेवाले विष्णु और तमोगुणप्रधान जगत् के नाश करनेवाले शिव उत्पन्न हुये और मनु प्राचेतस दक्ष दक्षसुत २१ प्रजापति अर्थात् १४ मनु और मरीच्यादि ७ ऋषि यह सब सृष्टिकी उत्पन्न करनेवाली ब्रह्माकी विभूतियां ३३ और आदित्य विश्वेदेवा अश्विनीकुमार और अष्टवसु यह सब जगत्के पालनकर्त्ता नाना-अवतार धारण करनेवाले विष्णुकी विभूतियां ३४ और यक्ष साध्य पितर पिशाच और गुह्यक ये सब जगत्के नाशकर्त्ता शङ्करकी विभूतियां उत्पन्न हुईं ३५ इसके अनन्तर ब्रह्मर्षि और राजर्षि और पृथ्वी जल तेज वायु आकाश दिशा ३६ संवत्सर छओंऋतु महीने शुक्लपक्ष कृष्णपक्ष राति और दिन यह सब उसी अण्डेसे उत्पन्न हुये और जो कुछ वस्तु देखने सुनने में आती हैं सब उसी से उत्पन्न हुईं ३७ इस संसारमें जो कुछ चल अचल वस्तु हैं सब युगके अन्त में उसी अण्डे में ऐसे लीन होजाती हैं जैसे कछुवा जलमें ३८।३९ इस तरह से भूतों का संहार करनेवाला यह अविनाशी संसारचक्र बेर बेर रचाजाकर और नाश होकर सदा घूमा करता है ४० फिर उसी अण्डेसे ३३ देवता उत्पन्न हुये सो ३३ के ३३०० हुये और ३३०० के ३३००० हुये जो आदि में ३३ मुख्य देवता हुये वह यह हैं ८ वसु ११ रुद्र १२ आदित्य १ इन्द्र १ प्रजापति ४१ दिवःपुत्र बृहद्भानु रवि चक्षु ऋचीक भानु विभावसु अर्क आशावह सविता आत्मा और सह्य यह १२ सूर्य उत्पन्न हुये ४२ इन सब में सह्य जो सब से छोटे थे सबसे श्रेष्ठ हुये उनके देवभ्राट पुत्र हुआ देवभ्राट के सुभ्राटनामी पुत्र हुआ ४३ सुभ्राट्के तीन पुत्र बड़े प्रवीण हुये एकका नाम दशज्योति दूसरे का नाम शतज्योति और तीसरेका नाम सहस्रज्योति था ४४ दशज्योति के दशसहस्र शतज्योति के एकलक्ष ४५ और सहस्रज्योति के दशलक्ष पुत्र उत्पन्न हुये उन्हीं दशलाख पुत्रोंके वंश से यह कौरववंश यदुवंश ४६ भरतवंश

ययातिवंश इक्ष्वाकुवंश सर्वराजर्षियों के वंश ४७ सब भूतों के रहने के स्थान तीनप्रकारके रहस्य कर्म उपासना और ज्ञान आदि काण्ड ४८ धर्म अर्थ और कामके देनेवाले अनेकशास्त्र अर्थात् स्मृति नीति मीमांसा कोकशास्त्र लोकयात्रा-विधान अर्थात् वेदशास्त्र जिनसे लोकोंको जानेका मार्ग विदित हो जैसे आयुर्वेद धनुर्वेद और गांधर्ववेद यह सब उन्हीं से उत्पन्न हुये इन बातोंको वेदव्यासजीने अपनी योगदृष्टि से जानाथा ४६ अब इस ग्रंथमें जो जो इतिहास और श्रुति वर्णन किये हैं उन सबको क्रमसे संक्षेपमात्र इस प्रथम अध्याय में वर्णन करते हैं ५० क्योंकि पण्डित लोग उसी ग्रंथको प्रिय मानते हैं जिसमें प्रथम संक्षेप और फिर विस्तारसहित कथा का वर्णन हो ५१ इस महाभारत के प्रारंभका कोई तो आस्तीकवंशकी कथा से कोई वसुचरित्र से और कोई २ और २ जगहसे भी कहते हैं ५२ सो जब इस उत्तम महाभारतको व्यासजी अपने तप और ब्रह्मचर्यके प्रभाव से बना चुके तब उनके चित्तमें यह चिंताहुई कि विना लिखे हम अपने शिष्यों को इसे क्योंकर पढ़ावेंगे सो व्यासजी इसी विचारमेंथे कि ब्रह्माजी व्यासजी को प्रसन्न करने और संसार का हित करनेके लिये उनके चित्तकी चिंताको जानकर वहां आये ५३ । ५७ उनको देखकर व्यासजी ने आश्चर्य करके सब ऋषियों सहित ब्रह्माजीको प्रणाम किया और सुन्दर आसन पर उनको बड़े आदर से बैठाया ५८ फिर आपभी ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर उनके पास शिष्यों सहित बैठगये ५६ और विनयपूर्वक यह कहा कि हे ब्रह्माजी ! मैंने यह भारत इतिहासरूप काव्य बनाया है इसमें वेदों के सब अंग रहस्य उपनिषद् वेदोंकी क्रिया अनेक इतिहास पुराणोंका विचार भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालों के लक्षण बुढ़ापा मृत्यु भय और रोग इनके होने न होने का निश्चय और अनेकप्रकार के धर्म और आश्रमों के लक्षण सब पुराण चारों वर्णों का विधान तप ब्रह्मचर्य की क्रिया और सूर्य चन्द्रमा ग्रह नक्षत्र और तारा आदि का युगोंके अनुसार प्रमाण और ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद वेदांतविद्या न्याय वैद्यक दान और पशु जीवोंके अन्तर्यामीके माहात्म्यका वर्णन देवता और मनुष्योंका कारण सहित जन्म सब तीर्थ पवित्र देश नदी पर्वत वन और सागर इनका व्याख्यान सहित कीर्तन अनेक पुरोंके युद्धकी निपुणता धनुर्वेद की रीतिसे युद्धका करना लोकयात्रा और जो कुछ सर्वगत वस्तु हैं सबका वर्णन कियाहै परन्तु इसके लिखनेके लिये कोई लेखक योग्य नहीं

मिलता है ६०। ७० यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि हम तुमको इस रहस्य और ज्ञानके जानने से तपस्वी मुनियों में सब से बड़ा समझते हैं ७१ और तुम्हारे जन्मही से हम तुम्हारी वाणीको वेदके कहनेवाली जानते हैं परंतु तुम ने इस वेदरूपी महाभारतको अपने मुखसे काव्य कहा इससे यह काव्यही कहावेगा ७२ परंतु यह काव्य ऐसा होगा कि कविलोग भी इसकी प्रशंसा उसी प्रकार से न करसकेंगे जैसे कि गृहस्थाश्रम के धर्मको अन्य तीन आश्रमवाले मनुष्य नहीं कहसक्ते हैं ७३ अब तुम इसके लिखनेके लिये गणेशजीका ध्यान करो यह कहकर ब्रह्माजी तो अपने लोकको चलेगये ७४ व्यासजीने गणेश जीका स्मरण किया सो गणेशजी अपने भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेवाले ७५ व्यासजीके ध्यान करतेही वहां आन पहुँचे व्यासजीने उनको बैठाकर पूजा की और कहा ७६ कि महाराज मैंने भारतकाव्य रचकर मनमें कल्पना कर रक्खा है आप संसारके उपकारके लिये लिख दीजिये मैं बोलता जाऊंगा ७७ यह सुनकर गणेशजीने कहा कि जो तुम बराबर बोलते जावो और हमारी कलम लिखने में रुकने न पावे तो हम लिखसक्ते हैं ७८ व्यासजी बोले कि बहुत अच्छा परंतु आपभी विना अर्थ समझे न लिखना गणेशजीने कहा बहुत अच्छा इस तरहपर दोनों आपस में सम्मत करके व्यासजी जल्द बोलने और गणेश जी जल्द लिखने लगे ७९ इस महाभारत में व्यासजीने ८८०० श्लोक ऐसे कूट और कठिन जहां तहां लिखवाये कि उनके बारे में व्यासजीने आप यह कहाहै कि इनका अर्थ यातो मैं जानताहूं या शुकदेवजी जानते हैं संजयभी न मालूम जानताहै या नहीं सो ये श्लोक ऐसे कठिनहैं कि उनके अर्थकी गूढ़ता और व्यंगवाक्योंके मिलाप अबतक नहीं जानपड़ते हैं और गणेशजी यद्यपि सर्वज्ञ थे परंतु उनकोभी उनके अर्थों में क्षणभर विचार करना पड़ताथा और जब तक गणेशजी विचार करते तबतक व्यासजी अन्य बहुतसे श्लोक बनाकर लिखा देते इसप्रकारसे यह महाभारत लिखागया ८०। ८३ अज्ञानरूपी अँधेरे से अंधे भये संसारको यह भारत ज्ञानरूपी नेत्रोंकी खोलनेवाली सलाई है ८४ इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले कि हे ऋषियो! यह भारत अर्थ, धर्म और मोक्ष चाहनेवालों के अन्धकारको दूर करने में सूर्यरूप है ८५ इसीसे पुराणरूपी पूर्ण चन्द्रमा और कौरवों की मनुष्यरूपी बुद्धि का प्रकाश हुआ ८६ और इसके इतिहासरूपी दीपक से मोहरूपी अँधेरे से अंधे हुये सम्पूर्ण लोकरूपी गृहमें

यथावत् उजेला होगया ८७ दूसरा अध्याय इस महाभारतरूपी वृक्ष का बीज है पौलोम और आस्तीक की कथा इसकी जड़है और सृष्टि के उपजने की जो कथा हैं वह इस वृक्षके बड़े २ गुद्दे हैं और सभा और वनपर्व इस में पक्षियों के रहने के घोसले हैं ८८ और १८ पर्वोंमें जो छोटे २ पर्व हैं वे इस वृक्ष की अरणीकाष्ठके रूप हैं (अरणीकाष्ठ वह है जिसमें अग्नि मथ कर तपस्वी अग्निहोत्र करते हैं) विराट और उद्योगपर्व इस वृक्षकी सार मज्जा है भीष्मपर्व इसकी शाखा है द्रोणपर्व इसका पत्ता है ८९ कर्णपर्व इस वृक्षके सफेद फूल हैं शल्यपर्व इन फूलों की सुगन्धि है स्त्रीपर्व इस वृक्षकी छायाहै शांतिपर्व इसका फल है ९० अश्वमेध पर्व इस फलका अमृतके स-मान रसहै आश्रमपर्व इस वृक्षके नीचे बैठनेका स्थान है मौशलपर्व में जो संक्षेप श्रुतियोंका निरूपण किया है वह इस भारतरूपी वृक्षकी बड़ी बड़ी शाखा हैं और इस महाभारतरूपी वृक्ष की उत्तम कथा के सुननेवाले महात्मा लोग इस वृक्षके फलके खानेवाले पक्षी हैं ९१ यह महाभारत वृक्ष सब कवियों का उपजीवन और मनुष्यों को मेघों के समान फलका देनेवाला होगा और अक्षय बना रहैगा ९२ इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि इस भारतरूपी वृक्षके फूल और फलों का उदय मैं आगे वर्णन करूंगा इसके अति स्वादिष्ठ और पवित्र रसवाले फलों को देवताभी नहीं तोड़सकते ९३ हे ऋषियो! पहिले श्रीव्यासजीने अपनी सत्यवती माता और भीष्मपितामह के कहने से विचित्रवीर्य और चित्रांगदकी स्त्रियों के धृतराष्ट्र पांडु और वि-दुर यह तीन पुत्र कुरुवंशके चलाने वाले उत्पन्न किये और आप तपस्याको चले गये ९४। ९५ और जब ये तीनों अपने पुत्र पौत्रोंसहित अनेक सुख भोगकर परमगति को प्राप्त हुये तब श्रीव्यासजीने इस महाभारत को संसार में प्रकट किया ९६ और राजा जनमेजय के यज्ञमें किसी विघ्नके मिटाने के लिये अपने शिष्य वैशंपायन से हजारों ब्राह्मणों के बीचमें यह पवित्र महा-भारत सब को सुनवाया ९७। ९८ सो इस महाभारत में व्यासजीने कुरु-वंशका समस्त वृत्तांत गांधारी की धर्मशीलता विदुरकी बुद्धि कुन्ती का धैर्य ९९ वासुदेव का माहात्म्य पांडवों की सत्यता और धृतराष्ट्र के पुत्रों की दुष्टता वर्णन की है १०० व्यासजीने प्रथम इस भारतसंहिताको २४००० श्लोकों में बनाया था अर्थात् इसमें जो जो विशेष कथा आनपड़ती हैं वह

न थीं १०१ और फिर उसी को १५० श्लोकों में संक्षेप करके यह पहिला अनुक्रमणिकाध्याय बनाया १०२ उस २४००० संहिता को व्यासजीने पहिले अपने शुकनाम बेटेको पढ़ाया फिर और २ शिष्यों को भी पढ़ाया १०३ इसके पीछे व्यासजीने इस महाभारत संहिता को साठ लाख ६०००००० श्लोकों में कहा उसमें से पन्द्रह लाख श्लोक देवल मुनि ने पितृलोकमें सुनाये १०४ तीस लाख श्लोक नारदजीने देवताओं को सुनाये चौदह लाख श्लोक शुक्राचार्यने यक्ष गन्धर्व और राक्षसों को सुनाये और एक लाख श्लोक वैशंपायन मुनि ने मनुष्योंको सुनाये वही एकलाख महाभारत हम तुमसे कहते हैं १०५। १०७ इस महाभारतके युद्ध में अधर्मरूपी वृक्षकी जड़ धृतराष्ट्र है जिसकी मति से नाश हुआ और दुर्योधन जो क्रोध द्वेष ईर्षा और निन्दासे भराहुआ था वृक्षकी पींड़ है और कर्ण शकुनि और शल्य वृक्ष की शाखाहैं और दुश्शासनादिक वृक्षके फल फूलहैं और धृतराष्ट्रके साथी जो और बहुतसे राजाहैं सो वृक्षपर वास करनेवाले पक्षी हैं और धर्मरूपी वृक्ष की जड़ श्रीकृष्ण हैं युधिष्ठिर वृक्षकी पींड़ हैं अर्जुन गुद्देहैं भीम शाखा हैं नकुल और सहदेव उस वृक्षके फल फूलहैं १०८। १०६ इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि हे ऋषियो! कौरव और पांडवोंके युद्धका संक्षेप वृत्तान्त इस प्रकारसे है कि राजा पांडुने अपनी बुद्धिबलसे बहुतसे देश जीते एक समय राजा पांडु अपनी दोनों स्त्री माद्री और कुंतीसमेत मेध्यारण्य वन में अहेर खेलने गये वहां राजाने एक मृगरूप मुनिको अपनी स्त्रीसे भोग करते समय विना जाने मारा मरते समय मृगरूप मुनिने राजाको शाप दिया कि जब तूभी अपनी स्त्रीसे भोग करैगा तब मरजायगा राजा पाण्डु उस शापसे बहुत डरकर अपने डेरेको आये और किसी समय अपनी स्त्रियोंसे भोग करके स्वर्गवासी हुये और उसी वनमें राजा पांडु के जीतेजी धर्मोपनिषद् विधि से राजा पांडु के पांच पुत्र उत्पन्न हुये अर्थात् धर्मराज, वायु और इन्द्रके वीर्य से कुन्तीके गर्भ में युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन तथा अश्विनीकुमारके वीर्यसे नकुल और सहदेव माद्रीके गर्भ से उत्पन्न हुये और उनके जातकर्मआदि संस्कारभी वहीं हुये ११०। ११२ कुछ दिनों पीछे माद्री भी मृत्यु पागई और राजा पांडु के पांचों पुत्र उस वनमें मुनिलोगोंकी रक्षामें रहे जब बड़े हुये तब ऋषिलोग कुंतीसहित पांचों पांडवोंको राजा धृतराष्ट्रके पास लेगये और उनसे कहा ये जटिल और ब्रह्मचारी बालक

राजा पाण्डुके पुत्र हैं इनको अपने लड़कोंकी समान अपनी रक्षा में रक्खो ऐसा कहिके मुनिलोग चलेगये ११३। ११५ और उन पांचों पांडुपुत्रोंको देख कर कौरवलोग और पुरवासी आनन्दपूर्वक कहने लगे ११६ कि ये पांडुके लड़के नहीं हैं ये तो बड़े तेजधारी मालूम होते हैं राजा पांडु ऐसा कहां था कोइ बोले यह पुत्र तो राजा पांडुकेही हैं परन्तु इनकी माताओं के पातिव्रतधर्म से इनमें तेज अधिकहै बहुत से कुतर्की यह भी बोले कि राजापांडु को मरे बहुत दिन हुये ये थोड़ी २ अवस्थाके पुत्र किसने उत्पन्न किये ये पांडुके पुत्र नहीं हैं ११७ और बहुत से लोग उनसे यह कहनेलगे कि आपका आना अच्छा हुआ क्योंकि हमने अपने स्वामी राजा पांडु की संतान अपनी आंखों से देखी और पांचों पांडवभी उन लोगों से कहने लगे कि हमभी धन्य हैं जो तुम लोगोंके पास आये ११८ इसके पीछे चारों ओर से शब्द होने लगा और दिक्पालादि देवताओंने जय शब्द कहकर कहा कि ये पुत्र राजा पांडुके ही हैं तुम संदेह मत करो ११९ और आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और दुन्दुभी आदि बजने लगीं जब पांडवों के जानेके समय यह बातें हुई और आकाशवाणी हुई तब सबके मनका संदेह दूर होगया और सबने प्रसन्न होकर आनन्दपूर्वक बड़ा शब्द किया १२०। १२१ और वे पांचों पांडुपुत्र उस हस्तिनापुर में संपूर्ण वेद और शास्त्र पढ़कर निर्भय रहने लगे १२२ और युधिष्ठिरकी पवित्रता भीमसेनका धैर्य अर्जुनका पराक्रम नकुल और सहदेवकी दीनता १२३ और कुन्तीकी श्वशुर सासुआदि बड़ों की सेवा देखकर सब पुरके लोग प्रसन्न हुये १२४ इसके उपरांत जबसे अर्जुनने राजाओं के बीचमें मछलीको बेधकर द्रौपदीको जीता १२५ तबसे अर्जुन सब धनुर्धारियोंमें पूज्यहुये और उसकी तरफ़ शत्रु ऐसे नहीं देख सकता था जैसे सूर्यकी ओर मनुष्य नहीं देख सकताहै १२६ इसके पीछे अर्जुनने सब राजाओं को जीतकर युधिष्ठिरको राजसूय यज्ञ कराया १२७ जिसमें अनन्त अन्न और अनन्त दक्षिणा दीगई १२८ इस यज्ञको युधिष्ठिरने जरासंध और शिशुपाल जो बड़े बलके घमंडमें थे श्रीकृष्णकी नीति और अर्जुन और भीमसेनके बलसे मरवा कर कराया था १२९ और जिन २ राजाओंको पांडवों ने जीता था उनके यहां से युधिष्ठिरके अर्थ दुर्योधनके पास अच्छी अच्छी मणि सुवर्ण गो घोड़े हाथी रंगबिरंगे उत्तम वस्त्र और अनेक प्रकार के कपड़ों के घर जैसे डेरे तंबू इत्यादि और अच्छे २ मृगचर्म जो राजोंके बिछाने

योग्य होते हैं आये १३०।१३१ इस प्रकारसे युधिष्ठिरकी बढ़ी हुई प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य को देखकर दुर्योधन अति ईर्षा करनेलगा १३२ और मय दानवकी बनाई हुई सभा जिसमें यज्ञ हुआ था देखकर दुर्योधनके बड़ा संताप उत्पन्न हुआ १३३ और उसी यज्ञ स्थानमें दुर्योधनको रपटकर गिरते हुये देखकर धोखेसे भीमसेनने उसकी हँसी ऐसी की जैसे कोई गवांरकी हँसी करै १३४ उससे दुर्योधनको बड़ा क्रोध हुआ और वह उस क्रोध और डाहसे यद्यपि नानाभोग भोगता था और नानारत्न उसके खजाने में थे परन्तु दिन दिन दुबला और पीला पड़ने लगा राजा धृतराष्ट्र अपने पुत्र का कर्णआदिसे यह हाल सुनकर उसको राजी करने के लिये उसके कहने के अनुसार छलरूप जुआ खेलनेकी सलाह में अपना सम्मत देताभया इस बातको सुनकर श्रीकृष्णजी को बड़ा कोप हुआ १३५।१३६ परन्तु उन्होंने भी जुआआदि उपाधियों को शान्त करने के लिये कोई उपाय अपनी मायाकी प्रेरणा से समझकर नहीं किया १३७ इसके पीछे भीष्मपितामह कृपाचार्य और द्रोणाचार्य का कहना न मानकर परस्पर युद्ध में सब क्षत्री कुलों का नाश होगया १३८ और अंतमें पांडवोंकी विजय हुई जब यह अप्रिय हाल संजयसे धृतराष्ट्र ने सुना तब धृतराष्ट्र दुर्योधन कर्ण और शकुनी की सलाह को समझकर बड़ी देरतक ध्यान करके संजय से बोला कि हे संजय ! तुमको मेरी बुद्धिकी निन्दा न करनी चाहिये १३९।१४० तुम सब शास्त्रों को जानते हो और तुम्हारी सलाह सब कामों में लीजाती है तुम निश्चय जानो कि मेरी इच्छा न लड़ाई में थी और न कुल के नाश होने में १४१ मेरे लेखे मेरे पुत्र और पांडुपुत्र दोनों बराबर हैं मेरी विशेष प्रीति किसी में नहीं थी परन्तु मैं बूढ़ा और अंधा होने के कारणसे अपने लड़कों के अधीन था १४२ और मेरे पुत्र क्रोधी थे मेरी निन्दा करते थे इसलिये अपने निर्वाहके लिये दुर्योधनकी कुमार्गताको सहिलेता था और पुत्र जानकर उसके मोहमें मैं भी मोहित होजाता था १४३ हे संजय ! युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें दुर्योधनने पांडवों का ऐश्वर्य और सभामें अपना हास्य जब देखा और क्षत्रियकुल में उत्पन्न होनेपर भी जब पाण्डवों से वह ऐश्वर्य लेने की अपनी सामर्थ्य न देखी तब क्रोध और ईर्षा से दुःखित होकर शकुनीकी सलाहसे छलरूपी जुये में पाण्डवों से वह लक्ष्मी जीती १४४।१४७ और उस जुयेसे पहिले और पीछे जो जो बातें अयश शकुनरूपी जीतकी आशा दूर करनेवाली हुई थीं सो मैं सब कहताहूं

मैंने तो अपने मनमें तभीसे जान लिया था कि अब हमारे पुत्रोंकी जीत न होगी पहिले अर्जुनने मछलीको बाणसे छेदकर राजाओं के बीचमें द्रौपदी को जीता १४८ फिर सुभद्रा को द्वारका से ले आया और किसी यादव ने उस अर्जुनको न रोका फिर अर्जुनने कृष्ण बलदेव की सहायता से खांडव वनको जलाकर अग्निदेवको तृप्त किया और इन्द्र खांडव वनकी अग्निको बुझाने के लिये वर्षा करने को आया और अर्जुनने बाणों की वर्षा करके इन्द्रको मार भगाया १४९। १५० फिर पांचों पांडव कुन्ती सहित लाक्षागृह में जलने से बचगये और हमारे भाई विदुर उनकी प्राणरक्षा में तत्पर हुये १५१ प्रथम अर्जुनने बड़े २ शूरमा राजाओं में द्रौपदी को जीता और पाण्डवों से पांचाल देशके बड़े बड़े शूरमा राजाओं से मित्रता हुई १५२ फिर भीमसेन ने मगध देशके बड़े प्रतापी राजा जरासंध को विना शस्त्र के हाथों से मारडाला १५३ फिर पांडवों ने सब भूमि के राजाओंको जीतकर राजसूय यज्ञ किया १५४ फिर हमारे पुत्रों ने अपना नाश होनेवाला यह अधर्म किया कि रजस्वला धर्म में एक वस्त्र पहिरे हुये रोतीहुई द्रौपदी को उसके बाल पकड़कर सभा में लेआये और उसकी लज्जा दूर करने को हमारे ज्वारी पुत्र दुश्शासनने उसका वस्त्र पकड़कर खींचा और उसके वस्त्र का पार न पाकर खिसियाना होगया और द्रौपदी को नंगा न करसका १५५।१५६ फिर शकुनी ने जुये में युधिष्ठिर से सब राज्य जीतलिया और पांडवों के वनको जाने के समय युधिष्ठिर के छोटे भाई अपनी भुजाओं के बल को देख देखकर दांत पीसते थे परन्तु युधिष्ठिर की प्रीति से विना उसकी इच्छा के कुछ नहीं करते थे १५७। १५८ फिर जब युधिष्ठिर वनको गये और उनके साथ सहस्रों ब्राह्मण और भिक्षा भोग लगानेवाले तपस्वीजन और महात्मा लोगभी गये जिनपर इन लोगों की कृपा है उनको जीतनेवाला कौन है १५९ फिर अर्जुनने किरातरूप महादेवजी से युद्ध करके उनको प्रसन्न किया और उनसे पाशुपत नाम महाअस्त्र पाया १६० फिर अर्जुन देवलोक में गया और वहां इन्द्रसे बड़े २ दिव्य अस्त्रोंके चलाने की विद्या सीखी १६१ फिर अर्जुनने कालकेय जातिके निवातकवच और पौलोम जाति के राक्षसों को जो देवताओं से कभी वरदान पाने के कारण से न हारे उनको मारकर इन्द्रसे मित्रता कर १६२ देवलोक में राक्षसोंके मारने को गया और वहां से राक्षसों को मारकर कुशलपूर्वक लौट आया १६३ फिर

पाण्डव कुबेरके सहायक बनके उस देश में गये जहां मनुष्य नहीं जासक्ता है १६४ बस हमारा पुत्र दुर्योधन कर्ण के कहने के अनुसार वनवासी पाण्डवों को अपना ऐश्वर्य दिखाने के लिये घोषग्रामोंके बैलोंकी पैंठमें रथके लिये बैल खरीदने गया और रास्ते में उसको स्त्रियों सहित गंधर्वों ने पकड़कर कैदकर रक्खा और अर्जुनने उन गन्धर्वों से युद्ध करके उसको छुटाया १६५ फिर वन में यक्षरूपसे धर्मराज आये और युधिष्ठिर से जो कुछ पूछा उसका जवाब यथोचित पाया १६६ फिर पांडव विराटपुर में द्रौपदी सहित गुप्त रहे और उनको किसीने नहीं जाना १६७ फिर अकेले अर्जुन ने विराट राजाके देशमें जो लोग हमारी ओरवालों में श्रेष्ठ गिनेजाते थे उनको रथसे भग्न कर दिया १६८ तब अर्जुनका पराक्रम देखकर विराटदेश के राजा मत्स्य ने अपनी कन्या उसको दी और अर्जुनने वह कन्या अपने पुत्र अभिमन्युके लिये लेली १६९ फिर युधिष्ठिरके साथ लड़नेको सात अक्षौहिणी दल इकट्ठा होगया यद्यपि युधिष्ठिर वनवासी और दुःखी थे १७० फिर वासुदेव जिनकी एक पग यह पृथ्वी सुनीजाती है वह पांडवों के हितमें उद्यत हुये १७१ और हमसे नारद जी ने कहा था कि हमने ब्रह्मलोक में भी श्रीकृष्ण और अर्जुनको नरनारायणरूप से देखा है १७२ फिर इस उपद्रव को मिटाने के लिये श्रीकृष्ण कौरवोंके पास आये और कौरवों ने उनका भी कहना न माना १७३ फिर कर्ण और दुर्योधन ने श्रीकृष्णजी को पकड़कर कैद करने की सलाह की और श्रीकृष्णने उनको अपना भयंकर विराटस्वरूप दिखाया १७४ फिर जब श्रीकृष्ण भगवान् लौटके चले थे उस समय रथ के सामने कुंतीको खड़ा देखकर उसे बहुत धैर्य दिया और किसी से नहीं बोले १७५ फिर पांडवोंको युद्ध के समय श्रीकृष्ण और भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य ने आशीर्वाद जय पावनेका दिया १७६ फिर कर्णभी भीष्मपितामह से विरोध मानकर यह कहकर रणमें से चलागया कि जब तक भीष्मपितामह लड़ेंगे तबतक मैं शस्त्र न लूंगा १७७ फिर उस महायुद्ध में बड़ी महिमावाले श्रीकृष्ण बड़े पराक्रम वाला अर्जुन और बड़े गुणवाला गांडीवधनुष यह तीनों एक जगह इकट्ठे होगये १७८ फिर अर्जुन मोह से व्याकुल होकर रथके पास बैठ गया और गांडीव को रखकर अपना मन युद्धसे हटाने लगा तब श्रीकृष्णने अर्जुनको अपनी देह में सब लोक दिखलाकर उसका मोह दूर किया और युद्ध के लिये तैयार

किया १७९ फिर भीष्मपितामह युद्ध में दशसहस्र रथी नित्य मारते थे परन्तु पाण्डव कुलका नामी और मुख्य पुरुष उन दशसहस्रोंमें कभी कोई नहीं मरा १८० फिर भीष्मपितामह ने अपने मरने का उपाय आपही बतला दिया और पांडवों ने वही उपाय किया १८१ फिर अर्जुनने नपुंसक शिखण्डीको आगेकरके भीष्मपितामह से शूरवीर को मारलिया १८२ फिर भीष्मपितामह जो बहुत वृद्ध और महापराक्रमी थे अर्जुन के अनेक प्रकार के पर लगेहुये बाणों से बेधित होकर रथसे गिरपड़े और बाणों की शय्या पर शयनकिया १८३ फिर भीष्मपितामह ने अर्जुनसे जल मांगा और अर्जुनने बाणसे पृथ्वी छेदकर जल दिया १८४ वायु सूर्य और चन्द्रमा ये पांडवों के युद्धमें दहिने रहते थे और हमारे साथियों को अनेक तरहसे ठहराते थे १८५ द्रोणाचार्य यद्यपि अतिश्रेष्ठ अस्त्रविद्या से युद्ध करतेथे परन्तु पांडवों की मृत्यु नहीं होती थी १८६ फिर अर्जुन को मारने के लिये सात महारथी एक जगह खड़े होकर अर्जुनसे युद्ध करनेलगे और अर्जुन ने उन सातों को मारडाला १८७ फिर उस महासेनाकी अभेद्य व्यूहरचना में जिसकी रक्षा द्रोणाचार्य आप शस्त्र लेकर करते थे उसमें अर्जुन का अभिमन्यु नामी पुत्र घुसगया १८८ और वहां उस बालक को सब महारथी मिलकर अधर्म से मारकर प्रसन्न हुये और अर्जुन को न मार सके फिर हमारे पुत्रों को अभिमन्यु के मारे जाने की प्रसन्नता में कुहकारे मारते हुये देखकर अर्जुन ने यह प्रतिज्ञाकी कि मैं अपने पुत्रके मारनेवाले जयद्रथको न मारसकूं तो अग्निमें जल मरूंगा और वह प्रतिज्ञा अपने शत्रुओं में सच्ची कर दिखाई १८९। १९१ फिर अर्जुन के रथके घोड़े पियासे थे और अर्जुन ने उस महारण में घोड़े खोलकर रक्षापूर्वक उनको जल पिलाया और रथ में जोते १९२ फिर अर्जुन के रथके घोड़े थक गये और अर्जुन रथ को थामकर रथके पास बैठगया उससमय अवसर पाकर बहुतसे वीर अर्जुन को मारने गये परंतु अर्जुन ने सबको बैठे २ मार कर हटादिया १९३ फिर हाथियों की बड़ी सेना को जिसे लेकर द्रोणाचार्य युद्ध करते थे अकेला सात्यकी मारकर निर्विघ्न श्रीकृष्ण और अर्जुन के पास गया १९४ फिर कर्ण ने भीमसेनको धनुषकी कोर से मारा और बहुत से कटुवचन कहता हुआ चलागया परंतु उसे मारा नहीं १९५ फिर जयद्रथ को अर्जुन के हाथों से मरते हुये द्रोणाचार्य कृतवर्मा कृपाचार्य कर्ण अश्वत्थामा और मद्रदेश का राजा देखा किये परंतु अर्जुन

से उसे बचाने की किसी की सामर्थ्य नहीं हुई १९६ फिर जो शक्ति कर्ण को इन्द्रने इस प्रतिज्ञासे दीथी कि जिसपर तू इसको चलावेगा वह मरजायगा लेकिन फिर यह काम की नहीं रहेगी और कर्णने उस शक्ति को अर्जुन के मारने के लिये रक्खीथी सो श्रीकृष्णने कर्णका चित्तभ्रम कराके उस शक्ति को घटोत्कचनाम दैत्यपर चलवाकर उसे व्यर्थ कराय दिया १९७। १९८ फिर धृष्टद्युम्नने द्रोणाचार्य को रथके पास बिना शस्त्र लिये अकेले बैठे देखकर अधर्म से मारडाला १९९ फिर नकुलने मंडल बांध बांध कर अश्वत्थामा से बराबरी का युद्ध किया २०० फिर द्रोणाचार्य के मरने के पीछे अश्वत्थामा ने नारायणास्त्र पांडवों के मारने को छोड़ा परंतु पांडवों का अंत नहीं आया २०१ फिर भीमसेन ने भाई दुश्शासन को मारकर उसका लोहू पिया और उसे ऐसा करने से कोई भी न रोक सका २०२ फिर उस महायुद्ध में कर्ण सा शूर भी मारा गया और निर्भय अर्जुन का बाल भी बांका न हुआ २०३ फिर युधिष्ठिर ने युद्ध में अश्वत्थामा दुश्शासन कृतवर्मा और शल्य जो कृष्ण से लड़ने का इरादा रखता था सबको जीत लिया २०४। २०५ फिर शकुनी जो जुआ और लड़ाई की जड़ था उसको सहदेवने मारडाला २०६ फिर मेरा पुत्र दुर्योधन युद्धसे थककर अकेला कमलके तलावमें उसका पानी रोककर छुपकर सोरहा और श्रीकृष्ण आदि ने उसके पास जाकर उसे युद्ध करने के वास्ते ललकारा तब वह मेरा क्रोधी पुत्र उठकर भीमसेन से गदायुद्ध करने लगा और मंडल बांधकर लड़ने पर भी श्रीकृष्ण ने उसे अधर्मयुद्ध से मरवाया २०७। २०८ फिर मेरे दुर्योधन पुत्रने अश्वत्थामा आदि से यह भयानक और अयश का देनेवाला कर्म कराया कि उन्होंने पांचाल देश के राजाके पुत्रों और द्रौपदी के पुत्रों को सोतेहुये मारडाला २१० फिर जब भीमसेन क्रोध करके अश्वत्थामा के पीछे दौड़ा और अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र चलाया और उस अस्त्र ने भीमसेन के बदले एक सींक को वन में मारा २११ फिर अश्वत्थामा के फेंके भये ब्रह्मास्त्र को अर्जुन ने स्वस्तिजय ऐसा कहकर अपने अस्त्र से गिरादिया और अश्वत्थामा की चोटी की मणि छीनली २१२ फिर अश्वत्थामाने उत्तराका गर्भ गिराने के लिये ब्रह्मास्त्र छोड़ा तब व्यासजी और श्रीकृष्णजीने उसे शाप दिया २१३ हे संजय! जब ये सब बातें हुईं तब मैंने अपने मनमें यह निश्चय समझलियाथा कि हमारे पुत्रों की जय न होगी और मेरे लिये मेरे पुत्र और पांडव एकही हैं अर्थात्

जो पांडवों की जय हुई सो मेरीही जय है परंतु गांधारी को मरण पर्यंत बड़ा दुःख होगया क्योंकि इस युद्ध में उसके पुत्र पौत्र बाप भाई आदि सब मारेगये पांडवों ने यह महादुष्कर कर्म करके अपना राज्य अकंटक करलिया २१४ हाय बड़े दुःख की बात है कि इस युद्ध में १८ अक्षौहिणी सेना और बड़े महारथी और शूरवीर सब कटकर केवल दश आदमी बचे उन में भी हमारी ओर के केवल तीन हैं और सात पांडवोंकी ओर के हैं २१५ हे संजय! इस बात को समझकर मेरी आंखों के आगे अंधेरा और शरीर में मोह होता आता है और मेरा ज्ञान भी इस समय जाता रहा है २१६ ऐसा कहके धृतराष्ट्र बड़ा विलाप करके मूर्च्छित होगये और मूर्च्छा जागने पर बोले २१७ कि हे संजय! अब मेरेभी प्राण छूटने चाहते हैं क्योंकि संसार में अब जीना निष्फल है २१८ इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि हे ऋषियो! जब धृतराष्ट्र इस प्रकार से विलाप करके मूर्च्छित होने लगे और मोह में आकर सर्प की तरह श्वास लेने लगे २१९ तब संजय बोले कि हे राजा! आपने भी तो बड़े २ राजाओं की कथा व्यासजी और नारदजी से सुनी है २२०।२२१ कि कैसे बड़े २ प्रतापी राजा होगये हैं जिन्होंने पृथ्वी जीतकर बड़े बड़े यज्ञ किये और ब्राह्मणों को अनंत दक्षिणा दी और जिनका यश आज तक छाय रहा है परंतु सबके सब पृथ्वी पर अनेक कर्म करके कालवश हुये देखो राजा संजय शैब्य २२२।२२३ सुहोत्र रंतिदेव बाह्लीक काक्षीवान दमन शर्याति अजित नल २२४।२२५ विश्वामित्र अम्बरीष मरुत राजा मनु इक्ष्वाकु गय भरत श्रीरामचन्द्र शशिबिंदु भागीरथ कृतवीर्य जनमेजय २२६ और राजा ययाति जिससे देवताओं ने यज्ञ में बैठकर पूजन कराया और जिसके यज्ञमंडल की सीमा पर लगाये हुये वृक्ष अब तक बने हैं २२७ ये चौबीसों राजा काल के गालमें समा गये नारदजी ने भी इन चौबीसों राजाओं का इतिहास शैब्य नाम राजा से उसके पुत्र शोक दूर करने को कहा था २२८ और इन चौबीसों के पहिले भी बड़े २ बलवान् महारथी महात्मा और गुणवान् यह राजा हुये २२९ पुरु-कुरु-यदु-विश्वगश्व-अणुह-युवनाश्व-ककुत्स्थ-रघु-विजय २३० वीतिहोत्र-अग-भव-श्वेत-बृहद्गुरु-उशीनर-शतरथ-कंकदुलिद्रुह-द्रुम २३१ दम्भोद्भव-परोवेन-सगर-संकृति-निमि-अजेय-परशुपुंड्र-शम्भुदेवावृध २३२ देव-सुप्रतिम-सुप्रतीक-बृहद्रथ-नल २३३ सुमित्र-सुबल-जानुजंघ-अनरण्य-अर्कप्रियभृत्य-शुचिव्रत २३४ बलबंधु-निरामर्द-

केतुशृङ्ग-बृहद्वल-धृष्टकेतु-बृहत्केतु-दीप्तकेतु २३५ अविक्षित-चपल-धूर्त और श्रुतिआदि बड़े २ प्रतापी राजा हुये इनके सिवाय और भी सहस्रों अनगिनती राजा बड़े २ पराक्रमी और बुद्धिमान् हुये वे भी आपके पुत्रोंकी तरह नाश होगये २३६ । २३७ और जिन २ राजाओं का कवियों ने यश पराक्रम बुद्धि दातृशक्ति सत्यता शुद्धता दया ऋद्धि और अनेक गुणों की सम्पन्नता का कीर्त्तन किया है वे भी नाश होगये अर्थात् मृत्यु को कोई न जीत सका २३८ । २४० और आपके पुत्र तो बड़े क्रोधी लोभी और दुर्वृत्त थे उनका शोच करना आपको योग्य नहीं है २४१ हे धृतराष्ट्र ! आप तो बड़े बुद्धिमान् और शास्त्र के जाननेवाले हैं जिनकी बुद्धि शास्त्रके अनुगत बनी रहती है वे मोह कभी नहीं करते २४२ पांडवों को तिरस्कार और अपने पुत्रों में प्रीति यह सब आप में था और आपही इसको अच्छी तरह जानते हैं इसलिये आपको शोच करना न चाहिये २४३ यह होनहार इसी प्रकार से था पूर्व किये हुये कर्मों का फल अनेक उपाय करने से भी नहीं जाता है २४४ जगत् के कर्त्ताने इस प्राणीहो को शुभ और अशुभ कर्मों का फल भोगने को शुभ और अशुभ कर्म रच रक्खे हैं उनको उल्लंघन करने की किसीकी सामर्थ्य नहीं है और इस सब जगत्का काल मूल है २४५ क्योंकि सब प्राणियों को दुःख सुख ऐश्वर्य और दरिद्रता सब काल के अनुसार होते हैं जगत् का रचने और नाश करनेवाला कालही है उस कालको भी महाकालरूपी परमात्मा नाश करता है २४६ यह महाकालही सब शुभ अशुभ भावों का कर्त्ता है और प्रजाका नाशक और रचनेवाला भी यही है यहही सोते में जाग्रतरूप है और सब प्राणियों में समान फिरता है उसको कोई उल्लंघ नहीं कर सकता है २४७ । २४८ धृतराष्ट्र भूत भविष्यत् और वर्त्तमान तीनोंकालों की बातों को कालकी कीहुई समझकर आपको ज्ञान छोड़कर मोह करना उचित नहीं है २४९ सूतजी बोले हे ऋषियो ! संजयने इसप्रकार से राजा धृतराष्ट्र को समझाकर उनके चित्तको सावधान किया २५० व्यासजी ने इस महाभारत में शोक से दुःखित मनुष्यों के लिये शोक दूर करनेवाला उपनिषद् वर्णन किया है २५१ और बड़े २ विद्यावान् और कवि लोग भी कहते हैं कि भारत का थोड़ा भी पाठ करने से सब पाप दूर होजाते हैं २५२ क्योंकि इस महाभारत में देवता देवऋषि ब्रह्मऋषि यक्ष और नाग इनकीही कथा का

वर्णन है और श्रीवासुदेव भगवान् जो सत्य हैं पवित्र हैं पापनाशक हैं भाग्य के उदय करनेवाले हैं सर्वदेश और सब चीजों में परिव्याप्त हैं परब्रह्म हैं अचल हैं ज्योति के समान चैतन्य हैं सनातन हैं असत् हैं अर्थात् मुख से वर्णन नहीं किये जासकते हैं सदसत् हैं अर्थात् कारण कार्यरूप भी आपही हैं जन्म मृत्यु को देनेवाले हैं अध्यात्म हैं अर्थात् पांचों तत्त्वों के पांचकर्म चैतन्यता १ बोलना २ देखना ३ सुनना ४ और मनकी ५ वृत्तिरूप सुनने में आते हैं तिसे मायासे परे मायाशबल ब्रह्म हिरण्यगर्भरूप संसार में कहते हैं जिसे ध्यान करके यती लोगों ने मुक्ति पाई और जिसको ज्ञानी लोग अपने हृदय में इसप्रकार से देखते हैं जैसे दर्पण में मुख उसी सनातन भगवान् का इस महाभारत में कीर्त्तन है २५३।२५८ जो मनुष्य इस पहिले अध्याय का पाठ धर्म में तत्पर होकर करेंगे सुनेंगे और सुनावेंगे उनके किये हुये पाप दूर होजायँगे २५९ यह अध्याय अनुक्रमणिका अध्याय कहलाता है इसको जो आस्तिक पुरुष किसी महाकष्ट में भी सुनेगा या सुनावेगा उसका कष्ट दूर होजायगा २६० और जो कोई संध्या और सबेरे दोनों समय थोड़ा बहुतभी इसका पाठ करेंगे उनके रात और दिनके किये हुये पाप दूर होजायँगे २६१ यह अध्याय इस महाभारतका शरीर है और जिस प्रकार से दहीका सार माखन है चारोंवर्णों में श्रेष्ठ ब्राह्मण है २६२ चारों वेदों में आरण्यक नाम उपनिषत् श्रेष्ठ है ओषधियोंका सार अमृत है जैसे नदियों में समुद्र श्रेष्ठ है चौपायों में गौ श्रेष्ठ है २६३ तैसेही इतिहासों में यह महाभारत श्रेष्ठ है जो कोई पितरोंके श्राद्धमें ब्राह्मणोंको भोजन कराते में इसे सुनावें उसके पितरों को वह अन्न अक्षय होकर पहुँचता है २६४ जो कोई वेदोंको अच्छी तरह जानने चाहे वह पहिले इस महाभारत को पढ़े जो इसको विना पढ़े वेदों में परिश्रम करता है उसका परिश्रम व्यर्थ है २६५ हे ऋषियो ! इस व्यासजीके बनाये हुये महाभारत को सुनने और सुनानेवालों को चारों पदार्थ मिलते हैं और उनके भ्रूणहत्या आदि पाप भी दूर होजाते हैं २६६ जो कोई इसका पाठ प्रतिपर्व को करैगा उसको सब महाभारत पाठ करने का फल मिलेगा २६७ जो कोई इस भारतरूपी वेदको श्रद्धा से नित्य सुनता है उसकी आयु बढ़ती है संसार में कीर्ति होती है और स्वर्ग में जानेका रास्ता मिलता है २६८ पहले इस भारतको देवताओं ने एक ओर चारों वेद रखकर दूसरी ओर भारत को रखकर तोला था जब यह भारत चारों

वेदों से अधिक निश्चय हुआ तब से इसका नाम महाभारत हुआ २६६।२७० इस महाभारत का अर्थ यहहै कि सब ग्रंथों से यह ग्रंथ बड़ा होने से इसको महत्त्व-पदवी मिली और सब ग्रन्थों से इसका अर्थ कठिन होने से भारत्व कहलाया सो महत्त्व और भारत्व दोनों मिलकर महाभारत हुआ २७१ और यदि कोई कुतर्की यह कहे कि इस महाभारत में छल प्रपंच और निग्रहहै और जहां तहां भगवत् कथाभी है तो इसको त्यागना इस प्रकार से चाहिये जैसे विष मिला हुआ अन्न त्याग दिया जाता है ऐसे कुतर्की के लिये यह उत्तर है कि जैसे तप और व्रत आदिका करना वेदों का पढ़ना वेदविधि से स्वाभाविक कर्मों का करना और भूख प्यास आदि को सहकर धनसंचय करना केवल पुण्यही है पाप नहीं है परन्तु येही सब बातें चित्त के भाव से दूषित होने पर पापरूप होजाती हैं इसी प्रकार से भारत में भी धर्म और ब्रह्मका निरूपण होने से पुण्यका देने-वाला है और कौरवों की दुष्टता और पांडवोंकी सत्यता इसनिमित्त दिखलाई है कि संसारी जीव भी इसको पढ़कर युधिष्ठिर आदिका सा धर्म करें और कौरवों कीसी अनीति न करें और कदाचित् ऐसा करेंगे तो उनका भी कौरवों की तरह नाश होगा २७२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि प्रथमोऽध्यायः १ ॥

दूसरा अध्याय।

इसमें कुरुक्षेत्र का माहात्म्य और अक्षौहिणी और महाभारतके पर्व, उपपर्व, अध्याय और श्लोकोंकी संख्या और कथा का वर्णन है ॥

शौनक बोले कि हे सूतपुत्र ! आपने पहले अध्याय में समंतपंचक तीर्थ कहा अब हमको विस्तारपूर्वक उसकी कथा सुनाइये यह सुनकर सूतपुत्र बोले कि हे ऋषियो ! सुनो त्रेता और द्वापरयुगकी संधि में परशुरामजी ने जो शस्त्र-धारियों में सबसे उत्तम हैं बड़े क्रोध से बारंबार क्षत्रियकुल को नाश किया और नाश करके पांच कुण्ड उन क्षत्रियों के लोहूसे भरे १।४ और उन कुण्डों में क्रोधसे स्नान करके लोहूसे अपने पितरोंका तर्पण किया ५ तब परशुरामजी के दादा ऋचीक आदि पितरों ने सामने आकर उस तर्पण को लिया और प्रसन्न होकर परशुरामजी से कहा कि हम तेरे पराक्रम और पितृभक्तिसे बहुत प्रसन्न हुये तुमको जो कुछ इच्छा हो सो मांगो ६।७ यह सुनकर परशुरामजी ने कहा कि जो मैंने क्रोधसे क्षत्रियों का नाश किया है ८ इसका पाप हमें न

लगे और ये पांचों कुंड इस संसारमें तीर्थरूप होकर विख्यात हों ९ पितरों ने कहा कि अच्छा ऐसेही होगा परन्तु तुमभी क्षमावान् होकर रहो और हिंसा मत करो तबसे परशुरामजी ने क्षत्रियों का मारना छोड़ दिया १० उन पांचों कुंडों के ओर पासके जो देशहैं वेभी उन कुंडों के कारणसे समंतपंचक नाम से विख्यात हैं ११ और बड़े पवित्र देश हैं वहां पृथ्वी बराबर है और उसी देश में कलियुग और द्वापरकी संधि में अठारह अक्षौहिणीदल इकट्ठे होकर कौरव और पांडवों का बड़ा युद्ध हुआ था समंतपञ्चक का यह अर्थ है कि समेत और अन्त दोनों मिलकर समन्त हुआ जिसका यह अर्थ है कि वह जगह जहां अठारह अक्षौहिणी सेना कटी और उस जगह पांच कुण्ड होने से समंतपंचक नाम हुआ सो वह देश तीनोंलोकों में विख्यात है और बड़ा रमणीक और देखनेके योग्य है इतनी कथा सुनकर ऋषि बोले कि हे सूतपुत्र! तुमने अठारह अक्षौहिणी दल कहा सो अक्षौहिणी किसे कहते हैं १२। १८ यह सुनकर सूतपुत्र बोले कि हे ऋषियो!॥

	हाथी	रथ	घोड़ा	पैदल	
	१	१	३	५	की एक पत्ति होती है
और	३	३	९	१५	का एक सेनामुख होता है
और	९	९	२७	४५	का एक गुल्म होता है
और	२७	२७	८१	१३५	का एक गण होता है
और	८१	८१	२४३	४०५	की एक वाहिनी होती है
और	२४३	२४३	७२९	१२१५	की एक पृतना होती है
और	७२९	७२९	२१२७	३६४५	की एक चमू होती है
और	२१८७	२१८७	६५६१	१०९३५	की एक अनी होती है
और	२१८७०	२१८७०	६५६१०	१०९३५०	की एक अक्षौहिणीहोतीहै॥

हे ऋषियो! इसी प्रमाण की अठारह अक्षौहिणी कौरव और पांडवों की उस समंतपंचक पृथ्वीपर इकट्ठी हुई थीं और कौरवों को केवल कारण बनाकर अद्भुत कर्म करनेवाले काल ने उन सबका वहां नाश किया १८। २९ उस युद्धमें दुर्योधनकी ओर से १० दिन भीष्मपितामहने ५ दिन द्रोणाचार्य ने २ दिन कर्णने २ प्रहर शल्य ने युद्ध किया उसके उपरांत दुर्योधन और भीमसेनसे २ प्रहर गदायुद्ध हुआ और उसी दिन रात्रिके समय अश्वत्थामा

कृतवर्मा और कृपाचार्य ने युधिष्ठिरकी सोतीहुई सब सेना मारडाली ३०। ३२ इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले कि यह उत्तम कथा जो हमने आपके यज्ञमें कही वह राजा जनमेजयके यज्ञमें वैशंपायन मुनिसे सुनीथी इस महाभारत में राजाओंका यश पराक्रमभी वर्णन किया और आदि में मंगलाचरणरूपी पौष्य पौलोम और आस्तीकका विस्तारपूर्वक वर्णन है ३३। ३४ और इस में राजाओंकी कथा अनेक अर्थ और अनेक आख्यानोंसे युक्तहै और ज्ञानियोंको यह ऐसा प्यारा है जैसे मोक्ष चाहनेवालोंको वैराग्य प्यारा होता है ३५ और जैसे सब प्यारी चीजों में प्राण सबसे अधिक प्यारे हैं इसीतरह यह भारत सब आगम और इतिहासोंमें उत्तमहै ३६ संसारमें ऐसी कोई कथा नहीं है जो इसमें नहीं है जो कथा इसमें नहीं है वह अप्रमाणीक और झूंठी है और हे ऋषियो ! कविलोगोंके लिये कोई नई बात कहनेको न रहने के कारणसे कविलोग इस महाभारतको इसप्रकार सेवन करते हैं जैसे निर्धनी मनुष्य धनीकी सेवा तन मनसे धन पानेके लिये करते हैं अब हम इस व्यासजी के बनाये हुये वेदार्थभूषित उत्तम महाभारतके पर्वआदिकी संख्या वर्णन करते हैं इस महाभारतका यह पहला अध्याय अनुक्रमणिकापर्व और दूसरा अध्याय पर्वसंग्रहपर्व कहलाताहै ३७। ४१ श्रीवेदव्यासजी ने महाभारतमें कथारूपी सौ अनुपर्व वर्णन कियेहैं और यह सब अनुपर्व १८ महापर्वोंके अंतर्गत आतेहैं उनके नाम हम नीचे वर्णन करते हैं पौष्यपर्व-पौलोमपर्व-आस्तीकपर्व-अंशावतारण पर्व-संभावपर्व-जातुषपर्व-हिडम्बवधपर्व- बकवधपर्व-चैत्ररथपर्व-द्रौपदीस्वयंवरपर्व-वैवाहिकपर्व-विदुरागमनपर्व-राज्यालाभपर्व-अर्जुनवनवासगमनपर्व-सुभद्राहरण पर्व-हारिकपर्व-खांडववनदाहपर्व-सभापर्व-मंत्रपर्व--जरासंधवधपर्व-दिग्विजयपर्व-राजसूयिकपर्व-अर्घाभिहरणपर्व-शिशुपालवधपर्व-द्यूतपर्व-अनुद्यूतपर्व-आरिण्यककिर्मीरवधपर्व-अर्जुनतपस्यागमनपर्व-कैरातपर्व-इंद्रलोकाभिगमनपर्व-नलोपाख्यानपर्व-युधिष्ठिरतीर्थयात्रापर्व-जटासुरवधपर्व-यक्षयुद्धपर्व-निवातकवचयुद्धपर्व-अजगरपर्व-मार्कण्डेयसमागमपर्व-द्रौपदीसत्यभामासंवादपर्व-घोषयात्रापर्व- मृगस्वप्नपर्व-श्रीहिद्रोणिकआख्यानपर्व-ऐन्द्रद्युम्नपर्व-द्रौपदीहरणपर्व-जयद्रथमोचन-पर्व-पतिव्रतामाहात्म्यपर्व-सावित्रीमाहात्म्यपर्व-रामोपाख्यानपर्व-कर्णकुंडलहरण पर्व-अरणीहरणपर्व-वैराटपर्व-पांडवप्रवेशपर्व-समयपालनपर्व-कीचकवधपर्व-गोग्रहणपर्व-अभिमन्युविवाहपर्व-उद्योगपर्व-पांडवसमीप संजयआगमनपर्व-धृतराष्ट्र

चिन्तापर्व–सनत्सुजातपर्व-यानसंधिपर्व-भगवत्यानपर्व- मालतीउपाख्यानपर्व-गालवपर्व-सावित्रपर्व–वामदेवपर्व–वैन्योपाख्यानपर्व–जामदग्न्योपाख्यानपर्व-षोडशराजकपर्व–कृष्णस्यसभाप्रवेशपर्व–विदुलापुत्रशासनपर्व-उद्योगपर्व-सैन्य-निर्याणपर्व-श्वेतोपाख्यानपर्व-कर्णश्रीकृष्णविवादपर्व-रथातिरथसंख्यापर्व-उलूक दूतागमनपर्व -आमर्षविवर्धनपर्व–अंबोपाख्यानपर्व-भीष्माभिषेचनअद्भुतपर्व-जंबूखण्डपर्व-भूमिपर्व - भगवद्गीतापर्व-भीष्मवधपर्व-द्रोणाभिषेचनपर्व-संसप्तकवध-पर्व–अभिमन्युवधपर्व–प्रतिज्ञापर्व–जयद्रथवधपर्व–घटोत्कचवधपर्व–द्रोणवधपर्व-नारायणास्त्रमोक्षपर्व-कर्णपर्व-शल्यपर्व-दुर्योधनह्रदप्रवेशपर्व-गदायुद्धपर्व-सरस्व-तीपर्व-तीर्थवंशानुकीर्तनपर्व–सौप्तिकपर्व–ऐशीकपर्व–जलप्रदानिकपर्व–स्त्रीवि-लापपर्व-और्ध्वदेहिकश्राद्धपर्व-चार्वाकनिग्रहपर्व–युधिष्ठिराभिषेचनपर्व-गृहविभा-गपर्व-शांतिपर्व-राजधर्मानुशासनपर्व-आपद्धर्मपर्व–मोक्षधर्मपर्व-शुकप्रश्नानुगम-नपर्व–ब्रह्मप्रश्नानुशासनपर्व–प्रादुर्भावपर्व–मायासंवादपर्व–आनुशासनिकपर्व-भीष्मस्वर्गारोहणपर्व-अश्वमेधपर्व-अनुगीतापर्व–आश्रमवासपर्व-पुत्रदर्शनपर्व-नारदागमनपर्व–मौशलपर्व–महाप्रास्थानिकपर्व–स्वर्गारोहणपर्व–हरिवंशपर्व-विष्णुपर्व-कंसवधपर्व-भविष्यपर्व ४२। ८८॥

महाभारत का पहला पर्व आदिपर्व कहलाता है उसमें २२७ अध्याय ८८८४ श्लोक और उक्त अनुपर्वोंमेंसे प्रथम १७ अनुपर्व हैं उनके नाम और जिस जिसमें जो कथाहै वह आगे कहते हैं १२१। ३२१॥

१–पौष्यपर्व–इस पर्वमें उत्तंकका माहात्म्य वर्णन कियाहै ८६॥

२–पौलोमपर्व–इस पर्व में भृगुवंशकी कथाहै ६०॥

३–आस्तीकपर्व–इस पर्व में नागों और गरुड़की उत्पत्ति और समुद्रमथने और जनमेजय के सर्पसत्र यज्ञ और उच्चैःश्रवा घोड़े के जन्म होनेकी कथा का वर्णनहै ६१। ६२॥

४–अंशावतारणपर्व–इस पर्व में उन मनुष्योंकी कथाहै जो देवताओं के अंशसे उत्पन्न हुये ६३॥

५–सम्भवपर्व–इस पर्व में दैत्य दानव यक्ष नाग सर्प गंधर्व पक्षी और भरतजी जिनसे भरतवंश हुआ इनकी उत्पत्ति और राजा शंतनुके घरमें गंगाजी से वसुओंकी उत्पत्ति भीष्मउत्पत्ति और भीष्म करिके चित्रवीर्य और चित्रांगद रक्षा उन दोनोंका मरण और भीष्मप्रतिज्ञा और व्यासजी के वरदान से

धृतराष्ट्र पांडु और विदुर का उत्पन्न होना और पांडवों की उत्पत्ति यह सब वर्णन किया है ६४। १०१॥

६–जातुषपर्व–इस पर्व में दुर्योधन का पांडवों के मारने को वारणावत-पुरी में लाखका घर बनवाना राहमें विदुरजी का म्लेच्छ बोली में उस घरसे बचने का उपाय पांडवोंसे कहना पांडवोंका सुरंगकी राह से निकलकर बचना और उस लाखके घरमें एक निषादनी का अपने पांचों पुत्रों सहित जलकर मर जाने और पुरोचन के जलजाने की कथाहै १०२। १०५॥

७–हिडम्बवधपर्व–हिडम्ब राक्षस को भीमसेन ने जिसप्रकार से मार-कर उसकी बहिन हिडंबा से विवाह किया और उससे घटोत्कच पुत्र उत्पन्न हुआ और फिर व्यासजी का दर्शन हुआ सो सब कथा इस पर्व में कही है १०६। १०७॥

८–बकवधपर्व–भीमसेनका बक दैत्य को वध करना और द्रौपदी और धृष्टद्युम्न के जन्मकी कथा १०८। १०६॥

६–चैत्ररथपर्व–इस पर्व में पांडव द्रौपदी का स्वयंवर सुनके पांचालदेश को गये और राहमें अंगारपर्ण गंधर्वसे अर्जुनका युद्ध हुआ और फिर मित्रता हुई ११०। ११२॥

१०–द्रौपदीस्वयंवरपर्व–इस पर्वमें वशिष्ठ और और्वका आख्यान पांडवों का पांचाल नगरमें पहुँचना वहां सब राजाओंके बीच में अर्जुनका बाण से भ्रामकयंत्र पर घूमती हुई मछलीको बेधकर द्रौपदीका पाना और सब राजाओं समेत कर्ण और शल्यसे भीम और अर्जुनका युद्ध करना और उनसे पांडवों का विजय पाना वर्णन किया है ११३। ११५॥

११–वैवाहिकपर्व–इस पर्व में कृष्ण और बलरामका यह शंका करना कि इनका पराक्रम अमानुषहै ये पांडवही हैं ऐसा समझकर उनके आश्रममें जाकर उनसे मिलाप करना राजा द्रुपद का द्रौपदी का विवाह पांचों पाडवों के साथ करनेसे निषेध करना फिर द्रौपदीसे पांचों पांडवोंका अमानुष विवाहहोना वर्णन किया है और इसी में पांच इन्द्रों के उपाख्यानका भी वर्णन है ११६। ११८॥

१२–विदुरागमनपर्व–इस पर्व में विदुरजी को कौरवों ने पांडवों को लाने के लिये भेजा और विदुरजी पांडवों के पास आये और वहां श्रीकृष्ण का दर्शन किया ११६॥

१३–राज्यलाभपर्व–इस पर्व में कौरवोंका पांडवों को आधा राज्य बांटना और नारदमुनि का आकर पांचों पांडवों में एक स्त्री होने से आपसमें झगड़ा न होनेके कारण एक एक महीना द्रौपदी के पास रहनेका नियत कर देना वर्णन किया है १२० ॥

१४–अर्जुनवनवासपर्व–इस पर्व में प्रथम सुंद और उपसुंद दोनों भाइयों की कथाहै फिर एक ब्राह्मणके काम करनेके लिये अर्जुन घर के भीतर शस्त्र लेनेको चलेगये उससमय द्रौपदी के पास रहने की युधिष्ठिरकी बारी समझ कर अर्जुन अपने मनमें ग्लानि मानकर वनको चलेगये और वहां उलूपी नाम एक कौरव्य नागकी कन्यासे अर्जुनका संगम हुआ और उसमें एक बभ्रुवाहन नाम पुत्र हुआ और तीर्थोंकी यात्रा और पांच अप्सरों का शापमोचन और प्रभासतीर्थ में कृष्णसे मिलाप होनेकी कथा हैं १२१ । १२५ ॥

१५–सुभद्राहरणपर्व–इस पर्वमें अर्जुनका द्वारकामें पहुँचने और श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्राका रूप देखकर अर्जुनका मोहित होने और पीछे सुभद्रा के हरनेकी कथा वर्णन की है १२६ ॥

१६–हरणहारिकपर्व–इस पर्व में यादवोंने श्रीकृष्णजी के कहनेसे सुभद्रा का विवाह अर्जुन से करदिया और इसी में अभिमन्यु और द्रौपदीके जन्म की कथा है १२७ ॥

१७–खांडववनदाहपर्व–इस पर्व में श्रीकृष्ण और अर्जुनका यमुनातट को विहार करने जाने और अर्जुनको गांडीवधनुष और कृष्णको सुदर्शनचक्र मिलने और खांडववन जलाकर अग्निदेव के तृप्त करने औरमयदानवके मिलने और शार्ङ्गीके पुत्रोंकी उत्पत्तिकी कथाका वर्णन है १२८ । १३० ॥

महाभारतका दूसरा पर्व–सभापर्व कहलाता है उसमें ७८ अध्याय २५११ श्लोक और ६ अनुपर्व हैं उनके नाम और जिस २ में जो २ कथा है वह आगे कहते हैं १३१ । १३२ ॥

१–सभापर्व–इस पर्वमें पांडवों और लोकपालों की सभाका आख्यान और किंकरनाम राक्षसों के दर्शनकी कथाहै १३३ ॥

२–मंत्रपर्व–इस पर्वमें राजसूय यज्ञ करने को मंत्र विचारने और यज्ञके प्रारम्भ करनेकी कथा है १३४ ॥

३–जरासंधवधपर्व–इस पर्व में मगधदेश के राजा जरासंध के मारेजाने

और उसके बन्दीखाने से देश २ के कैदी राजाओं के छुड़ाने की कथा है ॥

४-दिग्विजयपर्व-इस पर्व में पांडवों करके चारों दिशाओं के राजाओं के जीतने की कथा है १३५ ॥

५-राजसूयिकपर्व-इस पर्व में देश २ के राजाओं का आना और यज्ञ होनेकी कथा है ॥

६-अर्घाभिहरणपर्व-इस पर्व में राजसूययज्ञ में श्रीकृष्णका पूजन जो पाद्य अर्घ्य आदि क्रमसे होना चाहिये उसको शिशुपाल ने रोका ॥

७-शिशुपालवधपर्व-इस पर्व में शिशुपालने श्रीकृष्णको गाली दी और श्रीकृष्णने उसका शिर काट डाला १३६ ॥

८-द्यूतपर्व-इस पर्वमें दुर्योधनने भीमसेनकी हँसीका युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञ में बुरा मानकर छलमय जुआ रचा और उस जुएमें दुर्योधन के मामा महाज्वारी शकुनी ने युधिष्ठिर से सब राज्य और धन जीतलिया १३७।१३८ ॥

९-अनुद्यूतपर्व-इस पर्व में द्रौपदी को सभामें बुलाकर दुश्शासन ने उसका पट खींचा और उस पटका पार न पाया फिर धृतराष्ट्र ने द्रौपदीको सबके समझानेसे ३ वरदान दिये और फिर दुर्योधन के कहनेसे युधिष्ठिरसे फिर दुबारा जुआ धृतराष्ट्रने कराया और उसमें पांडवोंसे सब जीतकर उन को वनवास दिया १३९ । १४१ ॥

महाभारत का तीसरा पर्व वनपर्व कहलाता है उसमें २६९ अध्याय ११६६४ श्लोक और १६ छोटे छोटे पर्व हैं उनके नाम और जिस जिसमें जो जो कथाहैं वह आगे कहतेहैं २०५ । २०६ ॥

१-आरण्यपर्व-इस पर्व में पांडवोंका वनको जाना उनके साथ ब्राह्मण और हस्तिनापुर के लोगों का जाना उनके लिये अन्नके वास्ते युधिष्ठिर को सूर्य का आराधन करना विदुरजी को दुर्योधन करके निकालना और फिर बुलाना पांडवों के मारनेकी सलाह होना उस खोटे कामके न करनेके लिये व्यासजी का निषेध करना और मैत्रेयजीका आना और दुर्योधन को समझाना और उनका कहा न माननेके कारण से मैत्रेयजीका दुर्योधनको शाप देना यह सब कथा वर्णन की है और इसी पर्व में भीमसेनने किर्मीरदैत्य को मारा और युधिष्ठिरके पास पांचालदेशके आदमी और यादवलोग और श्रीकृष्णजी आये और कृष्णके सामने द्रौपदीने विलाप किया और द्रौपदी

को कृष्ण ने समझाया और सुभद्रा को कृष्ण द्वारका लेगये और द्रौपदी के पुत्रोंको धृष्टद्युम्न लेगया और द्रौपदी युधिष्ठिर और भीमसेन का संवाद हुआ और युधिष्ठिरके पास व्यासजी आये और व्यासजी ने युधिष्ठिर को मंत्रविद्या दी और पांडव द्वैतवनको गये १४३ । १५७ ॥

२-अर्जुनका तपस्यागमनपर्व-इस पर्व में अर्जुन दिव्य अस्त्र मिलने के लिये तपस्याको गये १५८ ॥

३-कैरातपर्व-इस पर्व में महादेवजी किरात का रूप धरके अर्जुनके पास आये और उसके युद्ध से प्रसन्न होकर पाशुपतआदि अस्त्र दिया १५९ ॥

४-इंद्रलोकाभिगमनपर्व-इस पर्व में अर्जुन अस्त्रविद्या सीखने के लिये इन्द्रलोक को गये और धृतराष्ट्र को यह सुनकर बड़ी चिन्ता उत्पन्नहुई और युधिष्ठिरने जुएकी यादकरके विलाप किया इसी पर्वमें नल और दमयन्तीकी कथा है और फिर पांडवों के पास स्वर्ग से लोमश ऋषि आये और उन्हों ने अर्जुनका स्वर्गमें अस्त्रविद्या सीखनेका संदेशा कहा १६० । १६४ ॥

५-युधिष्ठिरतीर्थयात्रापर्व-इस पर्वमें अनेक तीर्थोंका माहात्म्य और यात्रा का फल कहाहै और पांडव पुलस्त्यतीर्थ को गये और गयऋषि के यज्ञ अगस्त्यऋषि शृंगीऋषि और परशुरामका वर्णन और सहस्रबाहुका वध और प्रभासतीर्थमें पांडवों और यादवों का मिलाप और च्यवनऋषिकी कथा और राजा मान्धाता और जंतूका आख्यान और राजा शिबिके धर्मकी परीक्षा और अष्टावक्रसंवाद और गंधमादन पर्वतकी यात्रा और नारायणनाम आश्रममें वास करने की कथा और भीमसेन और हनूमान्‌जी का मिलाप यह सब बातें इस पर्व में वर्णन की हैं और इसी पर्व में भीमसेनसे बड़े २ राक्षसों और मणिमत आदि महाबलवान् यक्षोंसे युद्ध हुआ १६५ । १८० ॥

६-जटासुरवधपर्व-इस पर्व में भीमसेन ने जटासुर दैत्यको मारा और भीमसेनको द्रौपदी ने उत्साह बढ़ाया इसी पर्व में राजऋषि वृषपर्वाके गमन और पांडवोंके आर्ष्टिषेणके आश्रममें जानेकी भी कथा है १८१ । १८२ ॥

७-यक्षयुद्धपर्व-इस पर्व में पांडव कैलास पर्वत पर चढ़गये और वहां मणिमतआदि यक्षों से बड़ा युद्ध हुआ और अर्जुनका मिलाप हुआ १८३ । १८४ ॥

८-निवातकवचयुद्धपर्व-इस पर्व में अर्जुन ने निवातकवच नाम दैत्यों

को मारकर गुरुदक्षिणा दी और युधिष्ठिर को स्वर्ग से लाये हुये सब अस्त्र दिखलाये १८५ । १८६ ॥

९-अजगरपर्व-इस पर्व में पांडव गंधमादन पर्वतसे उतरे और वहां भीमसेनको एक अजगरने पकड़ा और युधिष्ठिरसे उस अजगरसे प्रश्नोत्तर हुये और अजगर दिव्य देह पाकर स्वर्गको चलागया और पांडव काम्यवन में आये और वहां श्रीकृष्णसे मिलाप हुआ १८७ । १९१ ॥

१०-मार्कण्डेयसमागमपर्व-इस पर्वमें मार्कण्डेयजी का पांडवों से मिलाप हुआ और मार्कण्डेयजीने पांडवों से राजा पृथु के समेत अनेक उपाख्यान कहे जिसके कारणसे यह संवाद एक भिन्न पुराण कहलाता है-और इसी में ऐन्द्रद्युम्न और धुन्धुमार और मत्स्यका भी उपाख्यानहै १९२ । १९४ ॥

११-द्रौपदीसत्यभामासंवाद-इस पर्व में सत्यभामाने द्रौपदी से पतिव्रता माहात्म्य और आंगिरस आख्यान वर्णन किया है और पांडवोंके द्वैतवन में आनेकी भी कथा है १९५ ॥

१२-घोषयात्रापर्व-इस पर्व में दुर्योधन बछड़ा मोल लेने को पैंठ को बड़े ठाटसे जाता था राहमें उसको सब साथियों सहित गंधर्वों ने बांधिरक्खा तब उन सबको अर्जुनने छुटाया १९६ ॥

१३-मृगस्वप्नपर्व-इस पर्व में वनके मृगोंने युधिष्ठिरको स्वप्न दिया कि तुम यहां से चलेजाओ तो हमारे प्राण बचें और युधिष्ठिर उस वनसे भाइयों सहित दूसरे वनको चलेगये १९७ ॥

१४-श्रीहिद्रोणिकआख्यानपर्व-इस पर्व में श्रीहि और द्रोणकी कथा बड़े विस्तार से कही है और दुर्वासा ऋषि की भी कथा इसी में है १९८ ॥

१५-द्रौपदीहरणपर्व-इस पर्वमें जयद्रथ द्रौपदीको इकल्ला देखकर हरलेगया और भीमसेनने पकड़कर उसका शिर मूड़कर उसके पांच चोटी रखदीं और उसे छोड़दिया १९९ । २०० ॥

१६-रामोपाख्यानपर्व-इस पर्व में रामचन्द्रावतार की सब कथा विस्तारपूर्वक कही है २०१ ॥

१७-सावित्रीमाहात्म्यपर्व-इस पर्वमें सावित्रीकी महिमा कही है ॥

१८-कर्णकुंडलहरणपर्व-इस पर्वमें कर्णने इन्द्रको अपने कानोंके कुंडल देदिये और इन्द्रने कर्णको एक शक्ति दी और यह कहा कि इससे तू जिसे

मारैगा वह मरजायगा परंतु यह शक्ति फिर दूसरेके मारनेके कामकी न रहेगी॥

१९–अरणीहरणपर्व–इस पर्व में धर्मदेव ने मृगरूप धरकर ऋषियों के अरणीकाष्ठ हरलिये और युधिष्ठिर ने मृगरूपी धर्म के प्रश्नों का उत्तर देकर अरणीकाष्ठ दिलवाये और पांचों पांडवों को वरदान मिला और पांचों पांडव वहां से पछांह की ओर चलदिये २०२। २०४॥

महाभारतका चौथापर्व विराटपर्व कहलाता है उसमें ६७ अध्याय २०५० श्लोक और ६ छोटे २ पर्व हैं उनके नाम और जिस जिसमें जो जो कथाहैं वह आगे कहते हैं २०५। २०६॥

१–विराटपर्व–इस पर्वमें पांडवोंके विराटनगर जानेकी कथा है॥

२–पांडवप्रवेशपर्व–इस पर्व में पांडवों ने अपने अस्त्र चिताभूमि पर एक छोकर के वृक्षपर छिपाकर रखदिये और विराटनगर में प्रवेश किया॥

३–समयपालनपर्व–इस पर्व में पांडवोंने अनेक अनेक छल के रूप धरकर उस नगर में वास किया २०७। २०८॥

४–कीचकवधपर्व–इस पर्व में भीमसेन ने कीचक नाम दैत्यको जो द्रौपदी से मिलने की प्रार्थना करताथा मारडाला और इसी पर्व में दुर्योधन ने पांडवों को ढूंढ़ने के लिये बड़े चतुर दूत भेजे परन्तु पता नहीं पाया २०९। २१०॥

५–गोग्रहणपर्व–इस पर्वमें विराट राजा की गौयें त्रिगर्तलोग हरलेगये उसपर बड़ा युद्ध हुआ और त्रिगर्तलोग राजा विराटको पकड़लेगये तब भीमसेनने युद्ध करके राजा विराटको और गौओंको छुड़ाया २११। २१२॥

६–अभिमन्युविवाह–इस पर्व में राजा विराट का गोधन कौरवलोग लेगये और अकेले अर्जुन ने जाकर सब कौरवों को मारभगाया और अकेला गौयें भी छुड़ालाया तब राजा विराट ने अपनी बेटी उत्तरा अर्जुन को दी और अर्जुनने उसका विवाह अपने बेटे अभिमन्यु से करा दिया २१३। २१५॥

महाभारतका पांचवां पर्व उद्योगपर्व कहलाता है उसमें १८६ अध्याय ६६९८ श्लोक और १३ अनुपर्व हैं उनके नाम और जिस जिस में जो जो कथा है वह आगे कहते हैं २१६॥

१–उद्योगपर्व–इस पर्व में पांडव और दुर्योधन दोनों युद्धमें श्रीकृष्ण से सहायता मांगने गये और कृष्ण उन दोनों की रुचिके अनुसार दुर्योधनको १ अक्षौहिणी सेना देकर पांडवों के मंत्री बने और राजा शल्य वचन हारकर

दुर्योधन का साथी युद्ध में हुआ और पांडवों से कहा कि तुम जीतोगे और पांडवोंने कौरवोंके पास पुरोहित भेजा २१७। २२५॥

२–पांडवोंके समीप संजयआगमनपर्व–इस पर्वमें धृतराष्ट्र ने इस उपाधिके मिटानेके लिये संजयको पांडवोंके पास भेजा २२६। २२७॥

३–धृतराष्ट्रचिन्तापर्व–इस पर्व में धृतराष्ट्र को इस उपद्रव के उठने से बड़ी चिन्ता हुई और धृतराष्ट्र को विदुरजी ने और सनत्सुजात मुनि ने समझा कर उनके मनकी चिन्ता दूर की और संजय ने सभा में श्रीकृष्ण और अर्जुन की परम प्रीति का हाल कहा २२८। २३१॥

४–भगवत्यानपर्व–इस पर्व में श्रीकृष्ण आप इस युद्धके शांत करनेको कौरवोंके पास गये और दुर्योधन और कृष्णसे प्रश्नोत्तर हुये २३२। २३३॥

५–मातलिउपाख्यान–इस पर्व में मातलि के वर ढूंढ़ने और दंभोद्भव की कथाहै २३४॥

६–गालवपर्व–इस पर्व में गालव महात्मा का चरित्र और विदुरजी का अनुशासन वर्णन कियाहै २३५॥

७–कर्णश्रीकृष्णविवादपर्व–इस पर्व में दुर्योधन ने कर्णआदिकी सलाहसे कृष्ण के पकड़ने की सलाह की और कृष्णने अपना विराट स्वरूप सब को दिखलाया और फिर श्रीकृष्णने कर्ण को अकेले में लेजाकर समझाया परन्तु उसने वहां भी उत्तर दिया और कहना न माना २३६। २३७॥

८–कृष्णसभाप्रवेशपर्व–इस पर्व में श्रीकृष्ण हस्तिनापुरसे लौटकर पांडवों के पास आये और सभा करके कौरवों का सब वृत्तान्त कहा २३८॥

९–उद्योगपर्व–इस पर्व में पांडवों ने श्रीकृष्ण की सलाह से सब युद्ध की तैयारी की २३९॥

१०–सैन्यानिर्याणपर्व–इस पर्व में पांडव और कौरवों की सेना का कुरुक्षेत्र में युद्ध के निमित्त जाने का हाल वर्णन किया है २४०॥

११–उलूकदूतागमनपर्व–इस पर्व में दुर्योधन के उलूक नाम दूत को पांडवों के पास भेजने की कथा है २४१॥

१२–रथातिरथसंख्यापर्व–इस पर्व में रथी और महारथियोंकी संख्या कीगई है॥

१३–अंबोपाख्यानपर्व–इस पर्व में अम्बाकी कथा और शिखण्डीकी उत्पत्ति वर्णन की है २४२॥

महाभारत का छठा पर्व भीष्मपर्व कहलाता है उसमें ११७ अध्याय ५८८४ श्लोक और ५ अनुपर्व हैं उनके नाम और जिस २ में जो २ कथा है वह आगे कहते हैं २५३।२५४॥

१–भीष्माभिषेचनपर्व–इस पर्व में दुर्योधन ने भीष्मपितामह को सेनापति किया है २४५॥

२–जम्बूखण्डपर्व–इस पर्व में संजयने जम्बूखण्डका निर्माण और युधिष्ठिर की सेनाका विषाद वर्णन किया है २४६॥

३–भूमिपर्व–इस पर्व में सब द्वीपों का फैलाव कहा है॥

४–भगवद्गीतापर्व–इस पर्व में अर्जुन को मोह हुआ और उसने युद्ध करने से मनको खींचा तब श्रीकृष्ण ने गीतामें मोक्षदर्शी कारण दिखाकर अर्जुन को फिर युद्ध करने को तैयार किया २४७।२४८॥

५–भीष्मवधपर्व–इस पर्व में भीष्मपितामहने १० दिन घोर युद्ध किया फिर अर्जुनने श्रीकृष्णके वचनों के अनुसार शिखण्डी को आगे करके भीष्मपितामह को रथसे गिरादिया और भीष्मपितामहने उत्तरायण सूर्य में प्राण छोड़ने की इच्छासे बाणोंकी शय्यापर शयन किया २४९।२५२॥

महाभारत का सातवां पर्व द्रोणपर्व कहलाताहै उसमें १७० अध्याय ८९०९ श्लोक और ८ अनुपर्व हैं उनके नाम और जिस २ में जो २ कथा है वह आगे कहते हैं २६६।२६७॥

१–द्रोणाभिषेचनपर्व–इस पर्व में भीष्मजी के गिरजाने से दुर्योधनने द्रोणाचार्य को सेनापति करके अभिषेक तिलक किया २५५॥

२–संसप्तकवधपर्व–इस पर्व में द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरको पकड़कर दुर्योधन को देनेकी प्रतिज्ञा की और दुर्योधन ने संसप्तकोंको आज्ञा दी कि अर्जुन को युधिष्ठिर के पास से दूर लड़ाते हुये लेजावो क्योंकि अर्जुन जबतक युधिष्ठिरके पास रहेगा तबतक द्रोणाचार्य युधिष्ठिरको नहीं पकड़ सकेंगे और इसी पर्वमें अर्जुनके हाथसे राजा भगदत्तके मारेजानेकी भी कथाहै २५६।२५७॥

३–अभिमन्युवधपर्व–इस पर्व में अर्जुनका बेटा अभिमन्यु व्यूहमें घुसगया और वहां उसको सात महारथियों ने मिलकर मारा २५८॥

४–प्रतिज्ञापर्व–इस पर्व में अर्जुन ने अपने पुत्र अभिमन्युको मारनेवाले जयद्रथके मारनेकी प्रतिज्ञा की॥

५-जयद्रथवधपर्व-इस पर्व में अर्जुन ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सात अक्षौहिणी सेना मारकर जयद्रथको मारा और इसी पर्व में भीमसेन और सात्यकी युधिष्ठिरकी आज्ञा से अर्जुनकी सहायता करने को व्यूह तोड़कर फौज के भीतर घुसगये २५६।२६०॥

६-घटोत्कचवधपर्व-इस पर्व में संपूर्ण संसप्तक राजा अलंबुष, शुतायु, जलसंध, सोमदत्ति और अन्य बहुतसे राजा और अंतमें घटोत्कच मारेगये॥

७-द्रोणवधपर्व-इस पर्व में राजा द्रुपद और विराट नगर का राजा और अन्य भी बहुत से राजा मारेगये फिर अंतमें द्रोणाचार्य मारेगये २६१।२६२॥

८-नारायणास्त्रमोक्षपर्व-इस पर्व में द्रोणाचार्य के मारेजाने पर उनके पुत्र अश्वत्थामाने उग्र नारायण अस्त्र चलाया और इसी में रुद्रजीका माहात्म्य व्यासजीका आगमन और श्रीकृष्ण तथा अर्जुनकी महिमा भी कही है २६३।२६५॥

महाभारत का आठवां पर्व कर्णपर्व कहलाता है उसमें ६६ अध्याय और ४६६४ श्लोक हैं इसमें कोई अनुपर्व नहीं है और इस पर्व में राजा शल्य और कर्णका आपसका विवाद पांड्य और दण्डसेन और दण्डराजाओं का अश्वत्थामाके हाथ से वध और कर्णका युधिष्ठिरको सब धनुर्द्धारी राजाओं के देखते हुये अत्यंत संशयकराना और युधिष्ठिर और अर्जुन दोनों में परस्पर क्रोध करना और श्रीकृष्णका अर्जुनको नीति सिखाना और भीमसेन का अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार दुश्शासनको मारकर उसके हृदयका लोहू पीना और अन्त में कर्णका अर्जुन के हाथसे माराजाना यह कथा वर्णन की है २६८।२७५॥

महाभारत का नवां पर्व शल्यपर्व कहलाता है उसमें ५६ अध्याय ३२२० श्लोक और ५ अनुपर्व हैं उनके नाम और जिस २ में जो २ कथा है सो आगे कहते हैं २८४।२८५॥

१-शल्यपर्व-इस पर्व में सब शूरवीरोंके मारेजानेसे दुर्योधन ने राजा शल्यको सेनाका आज्ञा देनेवाला अधिपति बनाया और इसी पर्व में कुरुवंशके सबमुखिया लोग मारेगये और राजा शल्य भी युधिष्ठिरके हाथ से मारागया २७६।२७७॥

२-दुर्योधनह्रदप्रवेश-इस पर्व में दुर्योधन अपने मामा शकुनी को सहदेवके हाथ से माराहुआ और सेनाको बहुत थोड़ी रहगई देखकर एक तालाब में पानी रोककर जा सोया २७८।२७९॥

३-गदायुद्धपर्व-इस पर्व में किसी पारितोषिक चाहनेवाले मनुष्यने दुर्यो-

धन के तालावमें जा सोनेका हाल कृष्णसे कहा और कृष्ण युधिष्ठिर और भीमसेन ने वहां जाकर उसको बुराभला कहकर युद्ध करने को ललकारा और वह क्रोध से खड़ा होकर भीमसेन से गदायुद्ध करनेलगा और दो प्रहर युद्ध के बाद भीमसेनने अपनी गदा से दुर्योधन की दोनों मोटी जांघें तोड़डालीं और इसी पर्व में बलरामजी भी तीर्थयात्रा करके लौट आये ॥

४-सरस्वतीपर्व-इस पर्व में सरस्वतीतीर्थकी कथा और महिमा है ॥

५-तीर्थवंशानुकीर्तनपर्व-इस पर्व में बहुत से तीर्थों की उत्तमता और पवित्रताका हाल वर्णन किया है २८०। २८३ ॥

महाभारत का दशवां पर्व सौप्तिकपर्व कहलाता है उसमें १८ अध्याय ८७० श्लोक और २ अनुपर्व हैं उनके नाम और जिस जिस में जो २ कथा है सो आगे कहते हैं ॥

१-सौप्तिकपर्व } २-ऐषिकपर्व } इन दोनों पर्वों में दुर्योधन की जंघा टूटने के पीछे उस के पास अश्वत्थामा कृपाचार्य और कृतवर्मा आये और दुर्योधन का हाल देखकर अश्वत्थामा ने सब पांडव आदि को नाश करने की प्रतिज्ञा की उपरान्त वहां से वनमें जहां पाण्डवी सेनाथी आकर छुप रहे और वहां अश्वत्थामा ने रात्रि में अपने पिताका मरना याद किया और क्रोधित होकर सबके नाश करने के लिये विरूपाक्ष नाम रुद्रका तत्काल आराधन किया और वरदान पाकर युधिष्ठिर की सब सेना और पांचाल देश के राजा के पुत्र और द्रौपदी के पुत्र सबको रात्रि में सोते हुये मारडाला फिर द्रौपदी अपने भाई और पुत्रों के मरने के शोक में अपने पांचों पतियों के सामने बैठकर रोनेलगी और भीमसेन यह देखकर गदा लेकर अश्वत्थामा के पीछे दौड़े और अश्वत्थामाने सब पांडवों के मारने को (अपांडवाय इति अस्त्रम्) यह मन्त्र कहकर ब्रह्मास्त्र मारा और कृष्णने नैव ऐसा कहकर उस ब्रह्मास्त्रका तेज दूर करदिया और अर्जुन ने उस ब्रह्मास्त्र को अपना अस्त्र छोड़कर शांत किया और अश्वत्थामा को पकड़कर उसकी चोटी की मणि निकालकर द्रौपदी को दी २८६। ३०५ ॥

महाभारत का ग्यारहवां पर्व स्त्रीपर्व कहलाता है उसमें २७ अध्याय और ७७५ श्लोक और ५ अनुपर्व हैं उनके नाम और जिस २ में जो २ कथा है वह आगे कहते हैं ३१६। ३१७ ॥

१-स्त्रीविलापपर्व-इस पर्व में राजा धृतराष्ट्र और उनकी स्त्री गांधारी ने



विलाप और क्रोध किया और श्रीकृष्ण और विदुरजी ने मोक्षदर्शी कारण कहकर उसके क्रोध को शांत किया और इसी पर्व में सब क्षत्रियों की स्त्रियोंने रणभूमि में आ अपने पिता पुत्र आदि सब सम्बन्धियों को मराहुआ देखकर बड़ा विलाप किया और इसी पर्वमें धृतराष्ट्रने भीमसेन को मारना विचारकर उससे मिलाप चाहा और श्रीकृष्ण ने उनका वह भाव जानकर उनसे मिलने को भीमसेन की लोहेकी मूर्ति बनवाकर दी ३०६ । ३१२ ॥

२-जलप्रदान और और्ध्वदैहिक श्राद्धपर्व } इस पर्व में युधिष्ठिरने सब मरेहुओं का दाह शास्त्रविधि से कराया और सबको जलांजली दान किया और कुन्तीने कर्णको व्यासजी से कहवाकर युधिष्ठिरसे अंजली दिलवाई ३१३ । ३१५ ॥

महाभारत का बारहवां पर्व शान्तिपर्व कहलाता है उसमें ३२६ अध्याय और १४७३२ श्लोक और ३ अनुपर्व हैं उनके नाम जिस २ में जो २ कथा है सो आगे कहते हैं ३२२ । ३२३ ॥

१-शांतिपर्व-इस पर्व में राजा युधिष्ठिर को सब भाई मामा आदिके मारे जाने से बड़ा खेद हुआ और भीष्मपितामह ने उनके दुःखको अनेक २ धर्म कहकर दूर किया ये धर्म राजाओं को अवश्य जानने चाहियें ३१८ । ३१६॥

२-आपद्धर्मपर्व-इस पर्व में भीष्मपितामह ने वे धर्म युधिष्ठिर से कहे हैं जिन का विचार आपत्काल में मनुष्य को करना चाहिये मनुष्य इनको जान कर सर्वज्ञ होजाता है ३२० ॥

३-मोक्षधर्मपर्व-इस पर्व में भीष्मपितामह ने मोक्षके साधन वर्णन किये हैं ३२१ ॥

महाभारत का तेरहवां पर्व अनुशासनपर्व कहलाता है इसमें १४६ अध्याय और ८००० श्लोकहैं इस पर्व में अर्थ धर्म के व्यवहार, सब दानों के फल, सत्य बोलने की परमगति, गो, ब्राह्मणों का माहात्म्य और सब धर्मों और रहस्यों का वर्णन यह सब भीष्मपितामह ने युधिष्ठिर से कहा है और इसी पर्व में भीष्म-पितामह देहत्याग करके स्वर्गवासी हुये ३२४ । ३३० ॥

इसके आगे महाभारत का चौदहवां पर्व आश्वमेधिक है उसमें १०३ अ-ध्याय और ३३२० श्लोक हैं इस पर्व में प्रथम संवर्तमरुत्तीयका आख्यान है फिर पांडवोंको सुवर्ण के खजाने मिलने की कथा है इसी पर्व में परीक्षित का

जन्म हुआ और अश्वमेध यज्ञ करने को अर्जुन सेना लेकर दिग्विजय को गये और वहां अनेक राजाओंसे युद्ध हुआ और अर्जुन को युद्धमें उलूपी गंधर्विणी के पुत्र बभ्रुवाहन ने पराजय का सा भय दिखाया और अश्वमेध यज्ञ समाप्त हुआ इसी पर्व में नकुल का भी आख्यान है २३१। २३५॥

महाभारत का पन्द्रहवां पर्व आश्रमवासपर्व कहलाता है उसमें ४२ अध्याय १५०६ श्लोक और ३ अनुपर्व हैं उनके नाम और जिस २ में जो २ कथा है सो आगे कहते हैं ३४२। ३४३॥

१–आश्रमवासपर्व–इस पर्व में राजा धृतराष्ट्र युधिष्ठिरका राज्य छोड़कर विदुरजी के साथ गांधारी सहित वनको गये और उनकी सेवाके लिये कुन्ती भी अपने पुत्रों के राज्यका सुख छोड़कर चली गई ३३६। ३३७॥

२–पुत्रदर्शनपर्व–इस पर्वमें स्वर्ग से धृतराष्ट्र के सब पुत्र और सब राजा भी धृतराष्ट्रसे मिलनेको वनमें आये और उनसे मिलनेके उपरान्त धृतराष्ट्र का शोक दूर होगया फिर धृतराष्ट्र विदुर और संजयने अन्त में परमगति पाई ३३८। ३४०॥

३–नारदागमनपर्व–इस पर्वमें युधिष्ठिरके पास नारदजी आये नारदजीने ५६ कोटि यादवोंके नाश होनेकी भविष्यबात सुनाई ३४१॥

महाभारत का सोलहवां पर्व मौशलपर्व कहलाता है उसमें ८ अध्याय और ३२० श्लोक हैं इस पर्वमें सब यादवलोग ब्राह्मणके शापसे खारी समुद्रके किनारे मद्य पीकर आपसमें कटकर मरगये और श्रीकृष्ण बलराम यद्यपि कालको भी जीतने में समर्थ थे परन्तु नरदेह धरकर उसके धर्मको न छोड़ा और कालको अंगीकार किया फिर द्वारकाको अर्जुन गये और उनकी गति देखकर अर्जुनको बड़ा दुःख हुआ फिर अर्जुनने सबकी क्रिया कर्म करनेको अपनी सामर्थ्य न देखकर वसुदेव श्रीकृष्ण और बलराम इनकी देहका संस्कार किया और द्वारका से सब यादवकुलकी स्त्री और लड़कों को लेकर हस्तिनापुर को चले राहमें लुटेरोंने अर्जुनको लूटा उस समय अर्जुनने गांडीवधनुष और अन्य २ अस्त्र भी चलाये परन्तु किसी ने काम न दिया तब अर्जुनका मन बड़ा दुःखित हुआ परन्तु गीता का ध्यान करके संतोष किया और हस्तिनापुर पहुँचने पर सब कथा युधिष्ठिरसे कही और इसी पर्वमें युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवों ने राज्य त्यागदिया ३४४। ३५२॥

इसके आगे महाभारत का सत्रहवां पर्व प्रास्थानिकपर्व है उसमें ३ अध्याय और ३२० श्लोक हैं इस पर्वमें पाण्डवोंने द्रौपदी सहित राज्य छोड़कर लम्बीराह ली और बीचमें लाल समुद्रके पास अग्निदेव से मिलाप हुआ और अर्जुनने अग्निदेवको गांडीव धनुष देदिया और फिर पांचों पांडव हिमालयमें पहुँचे और वहां युधिष्ठिर ने अपने चारों छोटेभाइयों को द्रौपदी सहित हिमालयमें गिरकर मरजाते देखा और मोह छोड़कर युधिष्ठिर आगे को चलेगये ३५४।३५८॥

महाभारत का अठारहवां पर्व स्वर्गारोहणपर्व कहलाता है इसमें ५ अध्याय और २०६ श्लोक हैं इस पर्व में युधिष्ठिर के रथपर चढ़कर स्वर्गके जाने और धर्मराज करके युधिष्ठिर के धर्म की परीक्षा कुत्तेका रूप धरकर करने और युधिष्ठिर के मानसी गंगामें स्नान करके मनुष्य सम्बन्धी शरीर को छोड़ कर दिव्यरूप धारण करने की और स्वर्ग में देवताओं से पूजित रहने की कथा है ३५९।३६६॥

इन अठारह पर्वों के उपरान्त १२००० श्लोक हरिवंश पुराण के हैं इसमें श्रीकृष्णचरित्र और भविष्य बातें कही हैं हरिवंश पुराण तो बहुत है परन्तु महाभारत में १२००० भविष्यवृत्तान्त तक लिया जाता है और इसी को मिलाकर एक लाख भारत पूरा होता है इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले कि हे ऋषियो! मैंने यह उत्तम और पुण्य के देनेवाले महाभारत का पर्व संग्रह और संक्षेप कथा सुनाई कि जिसमें युद्ध की इच्छा से १८ अक्षौहिणी इकट्ठी हुई और १८ दिन युद्ध हुआ ३६७।३६९ यही कथा अब आगे विस्तारपूर्वक कहेंगे इस महाभारत को जो मनुष्य न जानता हो और सब वेद आदि उसने अच्छीतरह देखे हों तो इस एक के न जानने से वह अज्ञानी रहता है ३७० क्योंकि इस महाभारतमें सब वेद सब शास्त्र सब पुराण और सब धर्मोंका निचोड़ व्यासजी ने कहा है और सबका इसमें आश्रय है ज्ञानी लोग इसको पढ़कर दूसरे आख्यानों को इस तरह नहीं सुनते जैसे कोयलकी वाणी सुनकर कौवेकी बोली अच्छी नहीं लगती और कविलोग इसकी प्रशंसा इस प्रकार से नहीं करसक्के जैसे गृहस्थाश्रम के धर्मको अन्य तीन आश्रमवाले नहीं कहसक्के हैं इसके पढ़ने से मनुष्यकी बुद्धि धर्मको ग्रहण करती है और वह धर्म ही परलोक में जाता है इससे इसका जानना अवश्य है इस महाभारत के पाठ करनेवाले को पुष्कर तीर्थ का स्नान करना कुछ आवश्यक नहीं

क्योंकि इसका पढ़नेवाला पवित्र होजाताहै जो इसका पाठ रात्रि में करता है उसके दिनके किये हुये पाप दूर होजाते हैं और जो दिनमें पाठ करै उसके रात्रि के कियेहुये पाप मिटजाते हैं हे ऋषियो! यदि कोई मनुष्य सौ गौ नित्य सुवर्ण से सींग मढ़ाकर वेद और शास्त्र के जाननेवाले ब्राह्मणको दे और दूसरा मनुष्य इस पुण्यरूपी महाभारत को सुनता हो तो दोनों का पुण्य बराबर है यह पर्व संग्रह अध्याय इस निमित्त कहा गया है कि जिससे समुद्र में नावकी तरह इस समुद्ररूपी महाभारतके अठारह पर्वों की कथा इस संक्षेप वृत्तान्त को जानने से जल्दी समझमें आवै और जो फल सब भारत के पाठ करने का है वही इस एक अध्याय का है क्योंकि इसमें सब भारतकथा संक्षेप करदी है ३७१ । ३८४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तीसरा अध्याय।

इसमें जनमेजय के यज्ञ में कुतियाका शाप देना और धौम्यऋषि के तीन शिष्य और राजा पौष्यके कुंडलदान की कथा का वर्णन है ॥

इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले कि हे ऋषियो! राजा जनमेजय कुरुक्षेत्र में सर्पसत्र यज्ञ कररहा था उसके भाई श्रुतसेन उग्रसेन और भीमसेन उस यज्ञ के प्रबन्धमें थे उस समय उस यज्ञमें एक कुत्ता चला आया १ उसको राजाके तीनों उक्त भाइयोंने मारकर भगा दिया वह कुत्ता रोता हुआ अपनी माके पास पहुँचा २ और कहा कि मुझको राजा जनमेजय के भाइयों ने मारा है वह कुतिया अपने बेटे की बात सुनकर बोली कि तैंने कुछ उनका बिगाड़ा होगा ३ । ५ कुत्ता बोला कि हे माता! मैंने किसी यज्ञकी सामग्री की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा खाना तौ कहां ६ वह कुतिया यह बात सुनकर राजा जनमेजय के पास गई और कहा कि आपके भाइयोंने मेरे बेटे को विना अपराध क्यों माराहै उसने आपकी किसी यज्ञकी सामग्री की तरफ आंख उठाकर भी नहीं देखा ७ । ८ यह सुनकर उस कुतियाकी बातका किसीने जवाब नहीं दिया सब चुपके हो रहे तब वह कुतिया बोली कि तुमने मेरे लड़केको विना अपराध मारा है इससे तुमको भी अकस्मात् भय होगा ९ कुतिया का यह शाप सुनकर राजा जनमेजय को बड़ी चिन्ता रहने लगी सब इन्द्रियां शिथिल होगईं और शरीर में व्याकुलता और क्रोध रहने लगा और मन में

यह ज्ञान हुआ कि हमने यह सर्पों की हत्या निरर्थक की है सो उसका फल हम को मिला १० इसके उपरान्त राजा जनमेजय अपना यज्ञ समाप्त करके हस्तिनापुरको आये और किसी ऐसे ब्राह्मणको अपना पुरोहित बनानेके लिये ढूंढ़ने लगे जो इस शापसे छुटावे और इस हत्याको निवारण करे ११ एक दिन राजा जनमेजय अहेर खेलनेको वन में गये और वहां एक आश्रम देखा १२ उस आश्रम में श्रुतिश्रवा नामी एक ऋषि रहते थे और उनके सोमश्रवा नाम एक पुत्र था १३ राजा उस आश्रममें गये और सोमश्रवा से अपना पुरोहित बनानेकी प्रार्थना करके उनके पिता श्रुतिश्रवाजी से कहा कि मेरी आप से भी यही प्रार्थना है कि आप अपने इस पुत्र को मेरा पुरोहित बनने की आज्ञा दीजिये १४। १५ ऋषि यह सुनकर बोले कि हे राजा ! हमारा यह पुत्र सर्पिणी के गर्भ से उत्पन्न हुआहै सर्पिणी ने हमारे वीर्य को खालिया था उसके प्रभावसे इसकी उत्पत्ति है और यह बड़ा तपस्वी तेजधारी और अपने स्वाध्याय को अच्छी तरह जानता है और महादेव जी के किये हुये दुःख के सिवाय और सब दुःख और पापों को यह दूर कर सक्ता है १६। १७ परंतु इस का नियम यह है कि जो कोई ब्राह्मण इससे कुछ मांगता है यह उसको वही देता है जो तुम इस बातको अंगीकार करो और सहसको तो यहआपका पुरोहित बनसक्ता है १८ यह सुनकर राजा जनमेजय ने कहा कि बहुत अच्छा १९ और सोमश्रवाको अपने साथ लेकर घरको आये औरअपने भाइयों से कहा कि हमने इन ऋषिपुत्रको अपना उपाध्याय और पुरोहित बनाया है ये जो कुछ आज्ञा दें उसको विना विचारे करना यह आज्ञा देकर राजा जनमेजय तक्षशिला नाम देशके विजय करनेको गये और उस देशको विजय किया २० इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि हे ऋषियो ! यह कथा तो यहां समाप्त हुई अब दूसरी कथा यह है कि एक धौम्यनाम ऋषि थे वह केवल जल पीकर रहते थे और उनके तीन शिष्य थे २१ एकका नाम उपमन्यु दूसरेका आरुणि और तीसरे का नाम वेद था सो उन धौम्यऋषिने पहिले अपने शिष्य आरुणि की गुरुभक्ति की परीक्षाके लिये उसको आज्ञा दी कि अमुक खेत में जल बहुत भराजाताहै तू जाकर उसकी मेड़ों को ऐसी ऊंची करदे कि उस खेत में बहुत जल न भरने पावै जो जल बहुत भर जायगा तो बीज गल जावेगा २२ यह सुनकर वह आरुणि उस खेतपरगया और उसकी मेड़ों को ऊंची

करने लगा परन्तु ऋषिने उस जलको अपने तपोबल से ऐसा प्रबल करदिया कि आरुणि उसको न रोकसका परंतु वह शिष्य विना झुंझलाये उपाय करता रहा जब देखा कि जल किसी प्रकार से नहीं रुकता है तब वह शिष्य उस जलके जानेके रास्ते पर मेड़बनकर आप लोटगया और अपने शरीर से उस जलको रोके रहा और यह समझकर कि जो यह कार्य बिगड़जायगा तो गुरुजी महाराज मुझको अयोग्य समझेंगे वहां से न उठा २३। २४ कुछ कालके उपरान्त धौम्यऋषिने दूसरे शिष्योंसे पूछा कि वह पांचाल देश का रहनेवाला आरुणि कहां है २५ शिष्योंने कहा कि महाराज ! आपहीने उसे खेतका जल रोंकनेको भेजा है यह सुनकर वह ऋषि आप उस खेतके पास गये और आरुणि आरुणि कहके पुकारने लगे २६। २७ आरुणि गुरुकी बोली सुनकर उस जलके जानेके रास्तेसे निकलकर गुरुके पास आया २८ और प्रणाम करके कहा कि मैं उस जलको अपने शरीर से रोक रहा था और किसी प्रकार से वह नहीं रुकता है आपकी टेर सुनकर उस जलके जाने के रास्ते से निकल कर आपके पास आया हूं अब जो कुछ आप आज्ञा दें सो करूं २६। ३० धौम्यऋषि उसकी गुरुभक्ति से बहुत प्रसन्न हुये और कहा कि तेरा नाम उद्दालक प्रसिद्ध होगा दोनों लोकों में कल्याण होगा और विना परिश्रम किये तुझको गुरुसेवा के प्रभाव से सब वेद और शास्त्र कंठाग्र होंगे अब जहां तेरी इच्छा हो तहां जा इस प्रकार से वह आरुणि गुरु से वरदान पाकर पंजाब देशको चला गया ३१। ३२ उसके उपरान्त धौम्यऋषि ने अपने उपमन्यु नामी शिष्यको वनमें गाय चराने की आज्ञा दी सो वह उपमन्यु अपने गुरुकी आज्ञाके अनुसार गौओं को नित्य चरा लाता ३४। ३५ एक दिन धौम्यऋषिने पूछा कि तुम क्या भोजन करते हो जिससे ऐसे मोटे बनेहो उपमन्यु बोला कि महाराज नगर से भीख मांगलाता हूं और उसे खालेताहूं तब ऋषिने कहा कि ३६। ३७ जो भिक्षा मांगकर लाया करो सो सब हमारे पास रक्खा करो और जबतक हम आज्ञा न दें तबतक न खाया करो उपमन्यु ने कहा बहुत अच्छा उस दिनसे उपमन्यु जो कुछ भीख मांग कर लाता सो ऋषि के पास रख देता और ऋषि उसे खाने की आज्ञा नहीं देते थोड़े दिनोंके उपरांत ३८। ३९ ऋषिने उपमन्यु को वैसाही मोटा देखकर कहा कि हे उपमन्यु ! भीख तो हम लेलेते हैं तुम क्या खाकर रहते हो ४० यह सुनकर उप-

मन्यु बोला पहले भीख मांगकर आपके पास रख जाताहूं और मैं अपने लिये फिर दूसरी बार भिक्षा मांगलाता हूं ऋषि बोले ४१ कि यह तुम बड़ा अनुचित करते हो तुमको लज्जा नहीं आती कि दुबारा मांगने जाते हो ऐसा करनेसे फिर कोई किसीको भीख न डालेगा ४२ यह सुनकर उपमन्यु बोला कि बहुत अच्छा अब मैं दूसरी बार भीख मांगने न जाऊंगा फिर उपमन्यु नित्य गौ चरालाता और सायंकाल विषे गुरुको आकर दण्डवत् करता ४३ एक दिन फिर गुरुजी ने पूछा कि उपमन्यु भीख तो हम लेलेते हैं और दुबारा तुम मांगने नहीं जाते अब कहो क्योंकर निर्वाह होता है ४४ उपमन्यु बोला कि महाराज आपकी गौओं का दूध पीकर रहताहूं यह सुनकर ऋषि बोले कि हमारी गौओं का दूध विना हमारी आज्ञा तुमको पीना उचित नहीं है ४५ उपमन्यु बोला बहुत अच्छा अबसे दूधपान न करूंगा फिर जब उपमन्यु को वही काम करते२ कुछ काल बीता ४६ तब ऋषिने फिर पूछा कि अब तौ हमने तुम्हारी सब ओरसे जीविका रोंकदी अब क्या खाकर रहते हो ४७ उपमन्यु बोला कि महाराज जो बछड़े गौओं का दूध पीते हैं उस समय उनके मुखसे फेन निकलताहै उसे खाकर मैं अपनी भूख मिटा लेताहूं ४८ ऋषि बोले कि बछड़े तेरी यह चाल देखकर अपने मुखसे दूध डाल देते होंगे यह बात तुम मत करो नहीं बछड़े लटजायँगे उपमन्यु ने कहा बहुत अच्छा ४९ फिर एक दिन उपमन्यु भूख से अत्यन्त दुःखी होकर आक वृक्षके पत्ते तोड़कर खागया ५० उसके प्रभाव से उपमन्युके नेत्र अंधे होगये और वह अन्धा होने से एक कुयें में गिर पड़ा ५१ उसदिन जब रात्रि होगई और उपमन्यु नहीं आया तब धौम्यऋषिने कहा कि आज उपमन्यु अभी तक क्यों नहीं आया है हम जानते हैं कि हमने उसकी जीविका रोंकदी है इस कारण से वह क्रोधित होकर वन में रहगया है ऐसा कहके मुनि अपने और चेलों को साथ लेकर उपमन्युके ढूंढ़ने को वनमें गये और उपमन्यु २ कहकर बुलाने लगे ५२। ५३ उपमन्यु अपने गुरुकी बोली सुनकर बोला कि महाराज मैं यहां कुयेंमें गिरपड़ा हूं भूखके मारे आक के पत्ते खागयाथा सो उससे मेरे नेत्र अंधे होगये हैं यह सुनकर ऋषि बोले ५४।५५ कि हे उपमन्यु तू देवताओंके वैद्य दोनों अश्विनीकुमारों की स्तुति कर उनकी कृपासे तेरे नेत्र अच्छे होजायँगे यह सुनकर वह उपमन्यु वेदकी ऋचाओं से अश्विनीकुमार देव वैद्यों की स्तुति करने लगा ५६॥

प्रपूर्वगौ पूर्वजौ चित्रभानू गिरावाशंसामितपसा ह्यनन्तौ दिव्यौ सुपर्णौ विरजौ विमानावधिक्षिपन्तौ भुवनानि विश्वा १ हिरण्मयौ शकुनी सांपरायौ नासत्यदस्रौ सुनसौ वैजयन्तौ शुक्लं वयं तौ तरसासुवेमावधिव्ययंतावसितं विवस्वतः २ ग्रस्तासुपर्णस्यवेलनवर्तिकाममुञ्चतामश्विनौ सौभगाय तावत्सुवृत्तावनमन्तमाय यावत्सुमागाअरुणाउदावहन् ३ षष्टिश्च गावस्त्रिशताश्चधेनंवराकं वत्संसुवतेतं दुहन्ति नानागोष्ठाविहिताएकदोहनास्तावश्विनौदुहतोधर्ममुख्यम् ४ एकां नाभिं सप्तशताअराःश्रिताप्राधिष्वन्याविंशतिरर्पिता अराः अनेमिचक्रं परिवर्तते जरं मयाश्विनौ समनक्ति चर्षणी ५ एकं चक्रं वर्तते द्वादशारं षण्णाभिमेकाक्षमृतस्य धारणम् यस्मिन्देवा अधिविश्वे विषक्तास्तावश्विनौ मुञ्चतं माविषीदतम् ६ अश्विनाविंदुममृतं वृत्तभूयोतिरोधत्तामश्विनौ दासपत्नी हित्वा गिरिमश्विनौ गामुदाचरन्तौ तद्वृष्टिमह्ना प्रस्थितौ बलस्य ७ युवां दिशोजनयथो दशाग्रे समानं मूर्ध्निरथयानं वियन्ती तासां यातमृषयोऽनुप्रयान्ति देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ८ युवांवर्णान्विकुरुथो विश्वरूपांस्तेऽधिक्षिपन्ते भुवनानि विश्वा ते भानवोऽप्यनुसृताश्चरन्ति देवा मनुष्याः क्षितिमाचरन्ति ९ तौ नासत्यावश्विनौ वांमहेऽहं स्रजं च यां बिभृथः पुष्करस्य तौ नासत्यावमृतावृतावृधावृते देवास्तत्प्रपदेनसूते १० मुखेन गर्भं लभेतां युवानौ गतासुरेतत्प्रपदेनसूते सद्यो जातो मातरमत्ति गर्भस्तावश्विनौ मुञ्चथो जीवसेगाः ११ ॥

(अर्थ) यह स्तुति यद्यपि अश्विनीकुमारकी कही गई है परंतु यह परब्रह्म परमात्माकी स्तुति है और वही अश्विनीकुमार है और अश्विनीकुमार की जहां स्तुति है तहां दोकी स्तुति है सो ब्रह्मभी दो प्रकार का है और यहां संस्कृत श्लोक इसलिये लिखे गये हैं कि जो कोई इस स्तोत्रको नित्य भक्ति श्रद्धा से पाठ करैगा उसकी दृष्टि दिव्य रहैगी-अब आगे ऊपर कहे हुये स्तोत्रका अर्थ लिखते हैं। आप दोनों सृष्टिके पहिले विद्यमान थे और सब से पहिले उत्पन्न हुये और आप विचित्र प्रपंचवाले आकार करके अग्निरूप होकर प्रकाशमान हैं मैं आपकी स्तुति वाणी और श्रुतियोंसे वर पावनेकी इच्छासे करताहूं आप अनन्त हैं वृत्तिपूर्वक चैतन्यरूप से प्रकाशमानहैं पक्षी की तरह शरीररूपी वृक्षपर बैठे हैं तीनों गुणों से रहित हैं आपका प्रमाण नहीं है और पराक्रमको विक्षेप अर्थात् फैंकने की शक्ति से विश्वरूप नाना प्रकारके भुवनों को गेंदकी तरह उछालते हैं १ आप हिरण्मय शकुनिनाम

ब्रह्म हैं सबके लय होने का अधिष्ठान भूतस्थान हैं आप अश्विनीकुमार हैं आपकी नासिका अति शोभायमान है कालके भी जीतनेवाले हैं और आप सूर्य को रचकर काले सूत्ररूपी रात्रि और श्वेतसूत्ररूपी दिनके ताने बाने से संवत्सररूपी वस्त्र बुनकर लोक को सुमार्ग में करनेवाले हैं अर्थात् कालके प्रवर्तक हैं और कर्मफल के भोग देनेवाले हैं २ आप कालशक्ति से ग्रसीहुई जीवकी वृत्तिको मोक्षपदके लिये छुड़ानेवाले हैं और अज्ञानी लोग माया और इन्द्रियों के वशमें रहनेसे संसारसागरमें पड़ेरहते हैं अर्थात् सब रागोंको छोड़कर ब्रह्म को जानने से मुक्ति मिलती है और रागोंसे लिप्त होकर जानने से बंधनकी प्राप्ति होती है ३ हे अश्विनीकुमार! आप ३६० रात्रि और दिनरूपी कर्म फलरूप दुग्ध देनेवाली गौओं से वर्षरूपी बछड़ेको उत्पन्न करनेवाले हैं वह बछड़ा सबका तपानेवाला और नाश करनेवाला है और उसीसे सम्पूर्ण कर्म उत्पन्न होते हैं ४ हे अश्विनीकुमार! आप उस वर्षरूपी चक्रके उत्पन्न करनेवाले हैं जिसकी परिधि में अहोरात्रिरूप सातसौ बीस आरा लगे हैं वह चक्र एक अवस्थापर नहीं रहता है और अविनाशी और मायारूप है और इस लोक और परलोकके जीवों को स्पर्श करता है ५ हे अश्विनीकुमार! मुझ जन्म मरण से दुःखित को उस शिशुमारचक्र से मुक्त करो जिसमें मेष वृष आदि राशी बारह आराहैं और छह ऋतुरूप छह नाभि हैं उनमें कर्मोंके फलकी धारणा है और उसमें काल के अभिमानी विश्वेदेवा ईश विराजमानहैं ६ हे अश्विनीकुमार! आप इस जगत्की आत्मा हैं कर्म और कर्मफल को लोप करते हो अर्थात् आपका ब्रह्मज्ञान होने से कर्मफल इस तरह से दूर होजाताहै जैसे रस्सी सर्परूप भ्रांति से मालूम होती है और ज्ञान होने पर वह रस्सी फिर सर्परूप नहीं मालूम होती और आप जीवरूपहैं अर्थात् चारप्रकार के साधन की उच्चता को अनादि विद्याके द्वारा त्यागकरके इन्द्रियोंको उनके विषयरूप आनन्दमें लगाते हो और उस विषय से उत्पन्न हुये सुखरूपी धनको देतेहो ७ हे अश्विनीकुमार! आपने सृष्टिके आदिमें दश दिशा उत्पन्न कीं और उन दश दिशाओंके अंतरिक्षमें रथपर चढ़कर चलनेवाले सूर्य को और आकाश को उत्पन्न किया और सूर्यसे सब दिशा प्रकाशित हुईं और कालकाभी ज्ञान हुआ जिसको जानकर ऋषिलोग कर्म करते हैं देवता और मनुष्य पृथ्वीपर आचरण करते हैं ८ हे अश्विनीकुमार! आपने विश्वरूप अर्थात् राजस

सात्त्विक और तामस रक्त श्वेत और श्यामवर्णोंको उत्पन्न किया उनसे संपूर्ण भूत उत्पन्न हुये और वे वर्ण शरीर इन्द्रियां और बुद्धिरूप विकारोंके अनुसार होकर विषयोंको भोगते हैं और देवता और मनुष्य पृथ्वीपर आचरण करते हैं ६ हे अश्विनीकुमार! आप सत्य हैं मैं आपका पूजन करताहूं आप आकाश में व्याप्त होरहे हैं नित्य मुक्त हैं और कर्मों के फल को धारण करनेवाले हैं आप मायोपरहित ईश्वर हैं आपके विना अग्नि आदि इन्द्रियों के देवता विषयोंका भोग नहीं देसक्के अर्थात् सब संसार जीव ईश्वररूप ब्रह्महीं है और विना उसके संसार जड़ है १० हे अश्विनीकुमार! आप अपने मुखसे अन्न-रूप गर्भको ग्रहण करते हो और उस रक्त वीर्य रूप जड़शरीर को अपनी इन्द्रिय से उत्पन्न करते हो वह गर्भ उत्पन्न होतेही दूध पीने लगता है और जीवन के अर्थ आप उसके नेत्रोंको प्रकाशित करते हैं ११॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! जब उपमन्यु ने अश्विनीकुमारकी इसप्रकारसे स्तुति की तब अश्विनीकुमार प्रसन्न होकर प्रत्यक्ष आकर बोले कि हे उप-मन्यु! इस अपूपको तू खाले ५७ उपमन्यु बोला कि मैं विना गुरुको भेंट किये नहीं खाऊंगा ५८ तब अश्विनीकुमार बोले कि तेरे गुरुने प्रथम हमारी स्तुति की थी हमने उसको भी खानेको अपूप दियाथा उसने उस अपूप को विना गुरुको भेंट किये खालिया था तूभी खाले ५९ यह सुनकर उपमन्यु ने कहा कि महाराज आपकी तो आज्ञा है परन्तु मैं गुरुजीको भेंट दिये विना नहीं खा-सक्ता ६० अश्विनीकुमार उसकी गुरुभक्ति से प्रसन्न हुये और कहा कि तेरा कल्याण होगा और नेत्र तेरे खुल जायँगे और तेरे गुरुके दांत लोहे के समान काले और तेरे दांत सुनहरे होंगे ६१ ऐसा कहके अश्विनीकुमार तो अंतर्धान होगये और उपमन्युकी आँखों से दीखने लगा वह वहां से अपने गुरुके पास आया ६२ और दण्डवत् करके सब हाल कहा तब गुरुजी प्रसन्न होकर बोले ६३ कि अश्विनीकुमारके कहे अनुसार तेरा कल्याण हो ६४ और सबवेद समेत धर्मशास्त्र तुझे कंठाग्र हों ऐसा आशीर्वाद देकर ऋषिने उपमन्युको बिदाकिया ६५ और तीसरे वेद नाम शिष्यको आज्ञादी कि तू हमारे घरमें कुछ काल सेवाकर तब तेरा कल्याण होगा ६६ वह वेदनामी शिष्य गुरुकी आज्ञा के अनुसार जाड़ा गरमी भूख और प्यास आदि अनेक दुःख सहकर बहुत दिनों तक सेवा करता रहा उपरान्त गुरुके आशीर्वाद से सर्वज्ञ होकर अपने

घरको गया और ब्रह्मचर्यको छोड़कर गृहस्थाश्रम को अंगीकार किया उपरांत उस गृहस्थाश्रम में उसके तीन चेले हुये उसने अपने चेलों से अपने गुरु की तरह कोई काम अथवा सेवा आदि करने को कुछ न कहा ६७। ६६ थोड़े दिनों पीछे राजा जनमेजय और राजा पौष्यने वेदको अपना उपाध्याय बनाया ७० सो एक समय वह उपाध्याय यज्ञ कराने को गये और घरका सब कार्य अपने उत्तंक नाम चेले को देकर कह गये कि हमारे घरका जो कुछ काम हो सो उचित अनुचित समझ कर जब तक हम न आवें तबतक करना ऐसा कहकर उपाध्याय तो चले गये ७१। ७२ और उत्तंक अपने गुरुके घर में सब काम करने लगा एक दिन गुरुकुल की स्त्रियों ने उत्तंकको बुलाकर कहा ७३ कि तुम्हारी उपाध्यायानी ऋतुमती हुई हैं ऐसा करो कि इस ऋतुका फल व्यर्थ न जाय उत्तंक बोला कि मैं स्त्रियोंके वचन से यह अकार्य न करूंगा और ऐसा अकर्म करनेको गुरुजीनेभी मुझको आज्ञा नहीं दी है ७४। ७५ फिर थोड़े दिनों पीछे उपाध्याय यज्ञ कराके घर आये और उत्तंकका यह वृत्तान्त सुनकर बहुत प्रसन्न हुये ७६ और उसको बुलाकर कहा कि तुमने धर्मसे हमारी सेवाकी हम तुमपर प्रसन्न हुये और अब हम तुमको आशीर्वाद देते हैं कि तुम जो कुछ इच्छा करोगे सो इच्छा पूरी होगी ७७ यह सुनकर उत्तंकने कहा कि महाराज अब जो कुछ मुझको आज्ञाहो सो गुरुदक्षिणा में आपको दूं क्योंकि जो शिष्य गुरुदक्षिणा नहीं देता और गुरु गुरुदक्षिणा ग्रहण नहीं करता वे दोनों प्रेत होते हैं यह सुनकर वेद बोले कि अभी कुछ दिन और ठहरो ७८। ८० फिर थोड़े दिनों के उपरान्त उत्तंकने कहा कि महाराज जो कुछ आप गुरुदक्षिणाकी मुझको आज्ञा दें सो मैं दूं यह सुनकर उपाध्याय बोले कि अपनी गुरुपत्नी से पूछो वह जो कुछ कहै सो दो ८१। ८२ यह सुनकर उत्तङ्क उपाध्यायानीके पास गया और कहा कि मैं गुरुदक्षिणा देकर घरजाने चाहताहूं सो गुरुजी ने कहा है कि जो कुछ तुम्हारी गुरुमाता मांगे सो दो सो अब जो कुछ तुम आज्ञा करो सो मैं करूं यह सुनकर उपाध्यायानी ने कहा कि राजापौष्प की स्त्री के कानके कुण्डल आज के चौथेदिन मुझे लाकर दो उस दिन में व्रत करके उन्हीं कुण्डलों को पहिर कर ब्राह्मणों को परोसूंगी जो तुम कुण्डल उस समयतक लादोगे तो तुम्हारा कल्याण होगा नहीं तो अकल्याण होगा ८३। ८५ उपाध्यायानी की यह बात सुनकर उत्तङ्क वहां से राजा

पौष्प के पास चला राह में देखता क्याहै कि एक बड़े ऊंचे बैल पर एक बड़ा लम्बा चौड़ा आदमी बैठा चला आताहै जब पास आया उस बैल के सवारने उत्तङ्क से कहा ८६ कि तुम इस बैलके गोबरको खालो उत्तङ्क ने गोबर खाने से निषेध किया ८७ तब वह बैल का सवार बोला कि तुम्हारे गुरुने भी इसका गोबर खाया है ८८ यह सुनकर उत्तङ्क ने कहा कि बहुत अच्छा ऐसा कहके उत्तङ्क उस बैलके पीछे गया और उस बैल का मूत्र और गोबर भक्षण करके संभ्रम से खड़े खड़े आचमन करके चल दिया ८९ और राजा पौष्प के यहां पहुँचा और उसको अपने आशीर्वादोंसे प्रसन्न करके बोला ९० कि मैं आप से कुछ मांगने आयाहूं राजा पौष्पने दण्डवत् की और कहा कि क्या आज्ञा है ९१ तब उत्तङ्क ने कहा कि मुझे गुरुदक्षिणा देने के लिये आपकी रानी के कानों के कुण्डल चाहिये ९२ राजा ने कहा कि आप महल में जाकर रानी से मांगलीजिये वह आपको देदेगी यह सुनकर उत्तङ्क राजमन्दिर के भीतर गया और वहां रानी को न देखकर लौटआया ९३ और राजा पौष्प से कहा कि आपने मिथ्या कहा रानी राजमन्दिर में नहीं है राजा ने यह सुनकर क्षणभर विचार किया और फिर कहा कि मालूम होताहै कि आप अशुद्ध हैं रानी को पतिव्रता होनेसे अशुद्ध पुरुष नहीं देखसक्ता ९४। ९५ यह सुनकर उत्तङ्क बोला कि निश्चय हम अशुद्धहैं हमने चलते में खड़े से आचमन किया था पौष्प बोला कि यह आपका विपरीत धर्म है चलते में और खड़े से आचमन नहीं करना चाहिये यह सुनकर उत्तङ्क पूर्वमुख बैठ हाथ पैर धो तीन आचमन और सब इन्द्रियों से जलस्पर्श करके राजमन्दिर में गया ९६। ९७ और रानी को देखा रानी उत्तङ्कको देखकर खड़ी होगई और दण्डवत् करके बोली कि आप का आना शुभ होय मेरे लिये क्या आज्ञा है ९८ उत्तङ्क बोला कि मैं आपके कानों के कुण्डल गुरुदक्षिणा देने के लिये भिक्षा मांगताहूं रानी ने उसे गुरुभक्त और पात्र देखकर नाहीं नहीं की दोनों कुण्डल उतारकर देदिये और कहा कि इन कुण्डलों को सर्पोंका राजा तक्षक नाग बहुत चाहता है तुम सावधानी से लेजाना ९९ उत्तङ्क ने कहा कि मैं गुरुभक्त हूं तक्षक मुझे धोखा नहीं दे सक्ता १०० ऐसा कहके उत्तङ्क राजा पौष्पके पास आया और कहा कि मैं तुम पर प्रसन्नहूं राजा पौष्प बोला १०१ कि पात्र ब्राह्मण भाग्य से मिलताहै दूसरे आप अतिथिहैं थोड़ी देर ठहरो भोजन करके जाना उत्तङ्क बोला कि मुझे

जल्दी जानाहै जो कुछ भोजन तैयारहो सो लेआवो राजा पौष्प ने कहा बहुत अच्छा ऐसा कहके उत्तङ्क के आगे तैयार भोजन लाकर परोस दिया १०२। १०३ उस भोजन में बाल देखकर उत्तङ्क ने कहा कि यह अशुद्धहै और पौष्प को शाप दिया कि बाल मिलाहुआ अशुद्ध भोजन दान करने के कारण से तू अन्धा होजायगा १०४ राजा पौष्प ने कहा कि तुम निर्दोष अन्नको दोष लगाते हो इससे तुमभी अपुत्र होगे उत्तङ्क ने कहा १०५ कि तुम शाप तो देतेहो अन्न को तो देखो कि यह शुद्धहै कि अशुद्धहै यह सुनकर राजा पौष्प उत्तङ्क के पास गया और बाल मिला हुआ भोजन देखकर कहा कि निश्चय यह अन्न अशुद्धहै १०६ मैंने अज्ञानता से यह अन्न परोसा अब आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिये और ऐसा कीजिये कि मैं अन्धा न होऊं १०७।१०८ उत्तङ्कने कहा कि हमारा शाप झूठा नहीं होसक्ता परन्तु तुम अन्धे होकर जल्दी अच्छे हो जावोगे और जो तुमने हमको शाप दिया है उसको तुमभी दूर करो १०९ राजा बोला कि हमारी सामर्थ्य अपना शाप दूर करनेकी नहीं है उत्तङ्क ने कहा क्यों राजा बोला कि ब्राह्मण का मुख तो बड़े तीक्ष्ण छुरे के अनुसार है और मन मक्खन के समानहै अर्थात् जल्दी पिघल जाताहै और क्षत्रिय का हृदय तो बड़ा कठोर होताहै और मुखसे कोमल वचन बोलता है ११०।११२ यह सुनकर उत्तङ्क ने कहा कि हमने अशुद्ध अन्नको देखकर तुमको शाप दिया था और तुमने विना अन्न देखे हमारे शाप को सुनकर प्रतिशाप दिया और फिर अन्नको देखकर उसे अशुद्ध समझ कर हमसे अपराध क्षमा कराया इस कारण से आपका वह शाप हमको नहीं लगेगा ११३ ऐसा कहके उत्तंक वहां से चलदिये जब थोड़ी दूर पहुँचे तब देखते क्याहैं कि एक संन्यासी नंगा शरीर किये चला आताहै कभी दिखाई देने लगताहै और कभी छुप जाता है ११४ उसके उपरान्त उत्तङ्क उन कुण्डलोंको पृथ्वीपर रखकर थोड़ी दूरपर जल लेने को गया उस समय वह कपटरूपी संन्यासी लपककर आया और कुंडलों को लेकर भागा ११५ तब उत्तङ्क जल्दी से आचमनकर गुरु और देवता को नमस्कार करके उसके पीछेदौड़े ११६ और उसे पकड़ लियापकड़तेही वह छली सर्पका रूप धरके एक बिलमें घुसगया ११७ तब उत्तङ्क दुःखी होकर उस बिलको खोदने लगे परन्तु जब वह न खुदा तब इन्द्रने उस ब्राह्मणको दुःखी देखकर अपने वज्र को उत्तङ्ककी सहायता करने की आज्ञा दी वह वज्र उत्तङ्क की लकड़ी

में प्रवेश करगया और उस बिलको फोड़डाला ११८। १२० उत्तङ्क उस बिलमें घुसगया और अनेक प्रकारके सैकड़ों मन्दिर, हर्म्य, बलभी और निर्यूह आदि क्रीड़ाके स्थान देखता हुआ नागलोकमें पहुँचा १२१ और नागोंकी स्तुति करने लगा जिन सर्पोंका राजा ऐरावत नागहै वे सर्प बड़े शोभायमान हैं और शस्त्रोंकी वर्षा इसतरह से करते हैं जैसे बादल जल वर्षाता है १२२ उन सर्पों के सुन्दर स्वरूपहैं और अच्छे २ कुण्डल पहिरे हुये हैं और जो सर्प ऐरावतसे उत्पन्न हुयेहैं स्वर्ग में उनकी शोभा सूर्यके तुल्यहै १२३ में गंगाके उत्तरतट पर बसनेवाले सर्पोंकी स्तुति करताहूं १२४ ऐरावत नागके सिवाय दूसरा कौन है जो सूर्यके किरणरूप सेना में जासके और ऐरावत नागका बड़ा भाई धृतराष्ट्र जिसके उदय होने पर अट्ठाईस सहस्र आठसौ सर्प चलते हैं उन सब को और ऐरावतके बड़े भाईको नमस्कार करता हूं १२५। १२६ और कुरुक्षेत्रमें प्रथम रहनेवाले तक्षक नाग की स्तुति कुंडल पाने के लिये करता हूं १२७ और तक्षकका साथी अश्वसेन और दूसरे सर्प जो कुरुक्षेत्र में इक्षुमती नदीके किनारे रहतेथे उन सबको मैं नमस्कार करताहूं १२८ और जो तक्षक नाग श्रुतिसेन नामसे विख्यातहै उसको मैं नमस्कार करता हूं १२९ उत्तङ्क ने नागों की इस प्रकारसे स्तुति की परन्तु कुंडल न मिले तब उत्तङ्कको बड़ा खेद हुआ १३० उसी समय उत्तङ्क देखता क्याहै कि दो स्त्रियां बेमावाला यंत्र खड़ाकरके काले और सफ़ेद सूतसे कपड़ा बुन रही हैं और उसी के पास एक चक्र है उसमें बारह आरे लगरहे हैं और छह बालक खड़ेहुये उस चक्रको घुमा रहेहैं और उस चक्र के पास एक बहुत सुन्दर घोड़ा खड़ाहै और उस घोड़े पर एक बड़ा तेजस्वी पुरुष सवारहै १३१ उत्तङ्क ने उस पुरुषको देखकर नीचे लिखी हुई वेदस्तुति करके उसको प्रसन्न किया १३२॥

त्रीण्यर्पितान्यत्र शतानिमध्ये षष्टिश्च नित्यं चरति ध्रुवेस्मिन्॥ चक्रे चतुर्विंशतिपर्वयोगे षड् वै कुमाराः परिवर्तयन्ति १ ततं चेदं विश्वरूपे युवत्यौ वयतस्तन्तून्सततं वर्तयन्त्यौ॥ कृष्णान्सितांश्चैव विवर्तयन्त्यौ भूतान्यजस्रं भुवनानि चैव २ वज्रस्य भर्ता भुवनस्य गोप्ता वृत्रस्य हन्ता नमुचेर्निहन्ता॥ कृष्णे वसानोवसनेमहात्मा सत्यानृते यो विविनक्ति लोके ३ यो वाजिनं गर्भमपां पुराणं वैश्वानरं वाहनमभ्युपैति॥ नमोस्तु तस्मै जगदीश्वराय लोकत्रयेशाय पुरन्दराय ४॥

इस स्तुति को सुनकर वह घोड़े पर चढ़ाहुआ मनुष्य बोला कि हम तेरी स्तुति से प्रसन्न हुये तुझको जो कुछ इच्छाहो मांग १३३ यह सुनकर उत्तङ्क बोला मैं ब्राह्मण हूं और यह चाहता हूं कि ये नाग मेरे वश में होजावें यह सुनकर वह घोड़े का सवार बोला कि इस घोड़े की गुदा में फूंकमार १३४ उत्तङ्क ने ऐसाही किया और उस घोड़े के सम्पूर्ण अंगसे अग्नि और धुआं निकलना प्रारम्भ हुआ १३५ उस अग्नि और धूमसे नागलोग बहुत व्याकुलहुये और तक्षकभी दोनों कुण्डल लेकर बिनतीपूर्वक उत्तङ्क को देगया उत्तङ्कने कुंडल लेलिये परन्तु विचार करनेलगा १३६। १३७ कि आज कुंडल उपाध्यायानी के पास न पहुँचे तो सब परिश्रम वृथाहै उस पुरुष ने उत्तङ्क को शंकामग्न देखकर कहा १३८ कि तू इस घोड़े पर सवार होजा एक क्षणभर में पहुँच जायगा १३९ उत्तङ्क अच्छा कहकर उस घोड़े पर सवार होगया और क्षणभरमें उपाध्याय के घरके निकट आपहुँचा उससमय उपाध्यायानी स्नानकर अपने बालों को कंघी से सुधार रहीथीं और उत्तङ्क को न आयाहुआ जानकर शाप देने कोथीं १४० कि उत्तङ्क ने पहुँचकर प्रणाम किया और उपाध्यायानी को दोनों कुंडल देदिये उसने कुंडल लेकर १४१ उत्तङ्क को आशीर्वाद दिया और कहा कि तेरा आना अच्छा हुआ तू पापी नहीं है इससे मैं तुझे शाप न देसकी अब तेरा कल्याण होगा और तू सिद्धि पावैगा १४२ फिर उत्तङ्क गुरुके पास गया और दण्डवत् की गुरुजी ने उसको आशीर्वाद देकर पूछा कि तेरा आना अच्छा हुआ इतनी देर कहां लगी १४३ यह सुनकर उत्तङ्कने गुरुजीको आदि से सब कथा सुनाई और फिर पूछा कि महाराज वे दोनों स्त्रियां जो पट बुनती थीं वे कौनहैं १४४ वह चक्र क्याहै और उसमें बारह आरे कैसे लगे हैं और वे छः फिरानेवाले बालक कौन हैं और वह घोड़ा और उसपर का सवार कौनहै १४५ और जानेके समय जो बैल और उसपर एक आदमी सवार मिलाथा वह कौनहै और उसने मुझे गोबर खिलाया इसका क्या कारण है यह सुन कर उपाध्याय बोले १४६।१४८ कि हे उत्तङ्क ! वे दोनों स्त्रियां धाता विधाता थीं धाता चैतन्य ब्रह्मकी शक्तिहै जो तीनों लोकोंको चैतन्य कर रही है और विधाता विकारवान् मायाहै श्वेत और काले सूत्र रात और दिनहैं अर्थात् माया मोह रात्रि और आत्मज्ञान दिन वह चक्र प्रजापतिरूप वर्ष है उस में जो १२ आरे हैं वे बारह महीने हैं और छः बालक घुमाने वाले छः ऋतु

हैं १४६ और जो पुरुष तुम ने देखा था वह आचार्यरूप ईश्वर है और घोड़ा अग्निदेव था और जो यहां से जाते समय तुमको बैल मिला था वह ऐरावत हाथी है १५० और उस पर का सवार इन्द्र है और जो तुमने उस बैल के गोबर को खाया वह अमृत था उसीके प्रभावसे तुम नागलोकमें पहुँचनेपर जीते रहे १५१ इन्द्रदेव मेरा निश्चय मित्र है उसने तेरे ऊपर यह दया की कि अमृत पान कराया जिसके प्रभाव से तू कुंडल लेकर आया १५२ अब तू अपने घर को जा तेरा कल्याण होगा उत्तङ्क गुरुको नमस्कार करके तक्षक पर क्रोध भरा हुआ हस्तिनापुरको आया १५३ और राजा जनमेजयकी सभामें पहुँचा १५४ उस समय जनमेजय तक्षशिला देश को जीत कर मंत्रियों सहित बैठे थे १५५ उत्तंकने सभा में जाकर राजाको जयका आशीर्वाद दिया और समय पाकर कहा १५६ कि जो काम तुमको करना उचित है वह नहीं करते १५७ इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले कि हे ऋषियो! राजा जनमेजय ने उत्तंकका यथाविधि पूजन करके कहा १५८ कि मैं प्रजापालन करके अपना धर्म करताहूं आप अब क्या और करवाने के लिये यहां उपस्थित हुये हैं १५९ यह सुनकर वह ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ उत्तङ्क बोला कि महाराज! जिस तक्षक दुरात्मा ने आपके पिता को माराहै उससे बदला लेनेके लिये कुछ कर्म कीजिये इस दुष्ट तक्षकने आपके पिताको विना अपराध काटा है आपके पिता इस योग्य न थे बड़े मूर्तिमान् और राजऋषियों के वंशरक्षक थे उस दुष्टने उनको निरपराध काटकर पंचत्व को प्राप्त करदिया और कश्यपजी उसका विष दूर करने को आतेथे उनको राह से लौटा दिया १६०। १६५ हे महाराज! आप सर्पसत्र यज्ञ कीजिये और उस पापी तक्षकको जलती हुई अग्निमें भस्म करके पितासे उऋण हूजिये १६६ और मैं भी इसमें प्रसन्न होऊंगा १६७ उस दुरात्मा तक्षक ने मेरे भी गुरुके काम में विघ्न डाला था सो अब आप उस यज्ञकी शीघ्र तयारी कीजिये १६८ सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! इस बातको सुनकर राजा जनमेजय ने तक्षक पर बड़ा कोप किया और अपने पिता का मरना मंत्रियों और उत्तङ्कसे सुनकर बड़े शोक में डूबकर दुःखित हुआ १६९। १७१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि तृतीयोऽध्यायः ३॥

चौथा अध्याय।

सूतपुत्र और नैमिषारण्यवासी ऋषियों की वार्ता नैमिषारण्य क्षेत्र में

शौनक ऋषिने बारह वर्षमें समाप्त होनेवाला सत्र (यज्ञ) किया था उसयज्ञ में चारों ओरसे बड़े बड़े ऋषिलोग आये थे उनसे लोमहर्षण सूतके बेटे उग्रश्रवाजी जो सकल पौराणिक इतिहासोंमें अत्यन्त कुशल थे और पुराणोंको बड़े परिश्रम से पढ़ा था हाथ जोड़कर बोले कि अब आपलोग क्या सुना चाहते हैं १ । २ ऋषिलोग बोले कि हम सब जानते हैं कि आप सब पौराणिकों में निपुण हैं और जो कुछ हम कहेंगे उसको आप अच्छी तरह से वर्णन करेंगे ३ परन्तु शौनकऋषि की बाट देखना चाहिये क्योंकि वे देवता राक्षस नाग गंधर्व और अन्य समस्त दिव्य कथाओं को जानतेहैं और चतुर व्रत धारण करने और विधि निषेधरूप कर्मकांड शास्त्र और उपनिषद् ज्ञानकाण्ड आदि में परमगुरु हैं ४ । ६ और सत्य बोलनेवाले शांतरूप तपस्वी नियतव्रत और हम सबके मान्य हैं इस समय वे अग्निहोत्रशाला में हैं आने ही चाहते हैं जिस समय वे आकर आसन पर बैठें और आप से जो कुछ कथा पूछें वही आप वर्णन कीजियेगा ७ । ८ सूतपुत्र बोले बहुत अच्छा जब वे आवेंगे तब जो कुछ वे आज्ञा देंगे वही मैं आपलोगों को सुनाऊंगा ६ इसके उपरान्त शौनक ऋषि ब्रह्मयज्ञ और जलतर्पण करिके उन महान्ऋषियों में आनकर बैठे और सूतपुत्र से बोले १० । १२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुर्थोऽध्यायः ४ ॥

पांचवां अध्याय ।

इसमें भृगुवंश की कथाका वर्णन और पौलमपर्व है ॥

शौनकऋषि बोले हे लोमहर्षण सूतके बेटे ! हमने तुम्हारे पितासे सम्पूर्ण पुराणों की कथा सुनीहै हम जानतेहैं कि वे सब पुराणें तुम्हारी भी अच्छीतरहसे पठित होंगी १ । २ अब हम भृगुवंशकी कथा सुना चाहते हैं ३ यह सुनकर सूतपुत्र बोले कि पहिले वैशम्पायन मुनि जो ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ और वेदपाठियों में उत्तम थे उन्हों ने पुराणोंको अच्छी तरह पढ़ा और सुनाया उसके उपरान्त मेरे पितानेभी उन्हीं पुराणों को पढ़ाथा और उन्हीं पुराणों को मैंनेभी पढ़ाहै अब आप भृगुवंश जो बड़ा उत्तमहै और देवता और ऋषियों में पूजितहै उसकी कथा सुनिये मैं पुराणोंके अनुसार कहताहूं ४ । ७ ऐसा सुनने में आयाहै कि महाऋषि भृगु जी महाराज वरुणके यज्ञमें स्वयंभुव ब्रह्माजी से अग्नि में उत्पन्न हुये थे उनके पुत्र च्यवन हुये ८ और च्यवनके प्रमति नाम पुत्र हुये और धर्मारूढ़ प्रमति

के घृताची स्त्री से रुरु नाम पुत्र हुये ६ और महाराज रुरुके प्रमद्वारा स्त्री से शुनक नाम पुत्र हुये १० शुनकजी तपस्वी यशस्वी वेदके जाननेवाले ब्रह्मज्ञानियों में उत्तम धर्मात्मा सत्यवादी समाधि नियम से युक्त और उचित आहार करनेवाले थे और आपके परदादा थे ११ यह सुनकर शौनक ऋषि बोले कि भृगुजी से च्यवन के उत्पन्न होने की कथा कहिये १२ सूतपुत्र बोले कि भृगुजी के पुलोमा नाम स्त्री थी उसके भृगुजी से गर्भ रहा १३ एक समय भृगुजी महाराज पुलोमा को अकेली स्थानपर छोड़ कर चले गयेथे कि सूना घर पाकर वहां पुलामनाम राक्षस आया १४। १५ उस राक्षस से पुलोमा के पिता ने पुलोमा की बाल्यअवस्थामें डराने के लिये यह कहा था कि अरे राक्षस! इसे लेजा और उसके समर्थ होनेपर उसके पिताने विधिपूर्वक भृगुजी के साथ विवाह करदिया था सो वह राक्षस पुलोमा को देखकर कामासक्त होगया और अपने मनमें उसका हरना विचारा पुलोमाने उस राक्षस को अतिथि समझ कर कन्द मूल फल भोजन करने को दिये वह राक्षस उनको खाकर प्रसन्न हुआ और पुलोमा को हरलेजाने के विचार से अग्निहोत्रशाला में गया और वहां जलती हुई अग्नि देखकर अग्नि से कहने लगा १६। २१ कि तुम सब देवताओं का मुख हो और सब जीवों के भीतर पुण्य और पापके साक्षी हो सत्य सत्य कहो कि यह कौनकी स्त्री है यह वही पुलोमा है या नहीं जो इसके पिता ने पहले मुझे दी थी और फिर भृगुजी को ब्याहदी और जिसे भृगुजी अधर्म से विवाहि लाये क्योंकि इसके पिताने पहले इसे मुझको दिया था आप कृपा करि के सत्य सत्य कहिये मैं आपके सम्मुख आज इसको हरकर लेजाऊंगा २२।२६ यह सुनकर अग्निदेव भृगुजी के शाप और झूठ बोलने के अधर्म से डरते हुये ३० कि हे दानवनन्दन! यह पुलोमा पहले तुमनेही वरी थी परन्तु तुमने इसे मन्त्र विधिसे नहीं पाया था ३१ और इसके पिताने वरके लोभ से इसे तुमको नहीं दी और हमको साक्षी करके मन्त्रविधि से भृगुजी को विवाह दी ३२। ३३ मैं झूंठ नहीं बोलताहूं क्योंकि झूंठ बोलना अच्छा नहीं है यह पुलोमा वही है जो पहिले तुमने वरी थी ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पञ्चमोऽध्यायः ५॥

छठा अध्याय।

पुलोमाके हरेजाने और भृगुजीका अग्निको शाप देनेकी कथा का वर्णन॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! वह राक्षस अग्निकी बात सुनकर अपना रूप धारण करके मनवायुके वेगसे पुलोमा को हरकर ले चला १ और पुलोमा का गर्भ जो सूर्य के तुल्य तेजवान् था अपनी माताकी यह गति देखकर गिरा और अपने तेजसे उस राक्षस को भस्म करदिया इसीसे उसका नाम च्यवन हुआ २। ३ उपरान्त पुलोमा उस भृगुनन्दन च्यवन को गोदी में उठाकर रोती हुई चली ४ उसको विकल देखकर ब्रह्माजी वहां आये और अपनी वधू को पुचकारा और उसके दुःखको दूर किया हे ऋषियो! पुलोमाके आंशुओं से वहां एक नदी बह निकली ब्रह्माजीने उसका नाम वधूसरा रक्खा वह नदी च्यवन ऋषिके आश्रमके समान है ५। ८ इसके उपरान्त भृगुजी स्नान करके अपने आश्रमको आये और सब वृत्तान्त सुनकर पुत्रका नाम च्यवन रक्खा और बड़े क्रोधसे पुलोमासे पूंछा कि उस दैत्यको तुझे किसने बताया जल्दी बता मैं उसको शाप दूंगा वह कौन है जो मेरे शापसे न डरा ६। ११ पुलोमा बोली कि महाराज! मुझको अग्निने बताया और वह दैत्य मुझ रोती हुई को लेकर भागा १२ तब आपके इस पुत्रने उसे भस्म करके मुझे बचाया १३ सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! भृगुजी यह बात सुनकर बड़े क्रोधयुक्त हुये और अग्नि को शाप दिया कि तू सर्वभक्षी हो १४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षष्ठोऽध्यायः ६॥

सातवां अध्याय।

भृगुजी के शाप से अग्नि के लोप होने और फिर प्रकट होने की कथा॥

सूतजी बोले हे शौनकऋषिजी! अग्निदेव भृगुजीका शाप सुनके बड़े क्रोधसे बोले कि विना विचारे इस प्रकार से एकाएकी साहस करना आपको उचित न था धर्मवाले और कहनेवाले दोनों को सत्य बोलना उचित है इसमें जो मैंने उसके पूंछने से सत्यवार्ता कही तो मेरा इसमें क्या दोष है जो मनुष्य साक्षी होकर किसी बात में झूंठ बोलता है उसकी सात नीचे और सात ऊपरकी पीढ़ियां नरक में पड़ती हैं और जो कोई किसी कार्य में जानकर सच या झूंठ जैसा हो नहीं कहता है उसको भी यही पाप लगता है १। ४ मैंभी शाप देसक्ता हूं परंतु ब्राह्मण मेरे मान्य हैं इससे मैं तुमको शाप नहीं देताहूं आप जानते

हैं कि मैं मूर्तियों में अग्निहोत्र और उन यज्ञों में जिनमें बहुत से कर्म करनेवालों से यज्ञ की क्रियाका साधन होता है गर्भाधान कर्म और ज्योतिष्टोम आदि यज्ञों में योगके द्वारा अनेक प्रकारसे वास करताहूं और घी दूध आदि जो कुछ हवि वेदोक्त विधिसे मुझ में होमा जाता है उससे देवता और पितर तृप्त होते हैं ५।७ पौर्णमासी को देवता और अमावस्या को पितर लोग जो कुछ मुझमें होमा जाता है उसे भोगते हैं तात्पर्य यह है कि मैं वेदकी रीति से देवता और पितर दोनोंका मुखहूं उक्त दोनों तिथियों में होमे हुये पदार्थ को देवता और पितर मेरेही मुखसे खाते हैं फिर इन मुख होने से मैं सर्वभक्षी क्योंकर होसक्ताहूं ८।११ सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! ऐसा कहिके अग्निदेव ने कुछ काल ध्यान किया उपरान्त अपना आत्मसंहार करडाला अर्थात् लोप होगये अग्निदेव के लोप होजाने से सब संसार में अग्निहोत्र यज्ञ सत्र की क्रिया में वषट्कार स्वाहा और स्वधा ये सब बन्द होगये और इनके बन्द होने से संसार में बड़ा दुःख हुआ १२।१३ ऋषिलोग इस बात को देखकर देवताओं के पास गये और उनसे कहा कि अग्निके नाश होने से तीनों लोक भ्रांतहैं इससे आप सब लोग जो कुछ उचित समझें सो इसमें बहुत जल्दी करें यह सुनकर सब देवता ऋषियों सहित ब्रह्माजी के पास गये १४।१५ और कहा कि महाराज ! भृगुजीने किसी कारण से अग्निदेव को सर्वभक्षी होने का शाप दिया था उसके कारणसे अग्निदेव यह अनुमान करके कि हम देवमुख और यज्ञकी हवि के भोगनेवाले होकर सर्वभक्षी क्योंकर होंगे लोप होगये और उनके लोप होजाने से सब क्रिया संसार में बन्द होगई १६।१७ ब्रह्माजीने उन सबके यह वचन सुन करके अग्निका आवाहन किया और कहा १८ कि हे अग्निदेव ! तुम सब लोकों के आदि अन्तकर्ता हौ सब लोकों के धारण करनेवाले हौ और सब क्रियाओं के करानेवाले हौ १९ तुम हवि के भोगनेवाले हौ समर्थ हौ तुम ऐसे विमूढ़ क्यों हौ ऐसा करो जिसमें क्रियाका लोप न हो २० तुम सदैव पवित्रहौ और सब प्राणियों की गतिहौ तुम्हारे सबरूप सर्वभक्षी न होंगे जो तुम्हारी ज्वाला अपनी वायु में रहती है वह और तुम्हारा क्रव्यादि नाम शरीर येही सर्वभक्षी होंगे क्रव्यादि नाम शरीर वह है जिसमें मुर्दे भस्म किये जातेहैं और हे अग्निदेव ! जैसे सूर्यकी किरणोंसे छुआ हुआ सब पदार्थ पवित्र माना जाता है इसी प्रकारसे तुम्हारी ज्वालासे जली हुई भी सब चीजें

पवित्र मानी जायँगी तुम सबतरह से समर्थ हो अपने तेज से ऋषिके शापको सत्य करो और देवताओं के लिये यज्ञमें होमी हुई हवि को अपने मुखमें ग्रहण करो २१। २४ यह सुनके अग्निदेव बोले कि बहुत अच्छा २५ हे ऋषियो! इस प्रकार से अग्निदेव और सब देवता प्रसन्न होकर चलेगये और ऋषिलोग पूर्व के समान सब कर्म करने लगे नरलोक में सब मनुष्य प्रसन्न हुये और अग्निदेवभी निष्कलंक होजाने से प्रसन्न हुये २६। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तमोऽध्यायः ७॥

आठवां अध्याय।

प्रमद्वरा का उत्पन्न होना और प्रमद्वरा और रुरुके विवाह का वर्णन॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! च्यवनजी के सुकन्यानाम स्त्री से प्रमतिनाम बड़ा तेजस्वी पुत्र हुआ और प्रमतिके घृताची स्त्रीसे रुरुनाम पुत्र उत्पन्न हुआ १ और रुरुके प्रमद्वरा स्त्री से शुनक नाम पुत्र हुआ यह सब भार्गवों में पराक्रमी तीव्र व्रत का करनेवाला और यशस्वी हुआ २ इससे अब हम रुरु महाराजकी कथा विस्तारपूर्वक थी उसको कहते हैं ३ स्थूलकेश नाम एक ऋषि जो तपस्वी और विद्यावान् थे ४ एकदिन वे नदी के किनारे पर गये वहां एक मेनका नाम अप्सराके विश्वावसु नाम गंधर्वराजके गर्भ से एक कन्या उत्पन्न हुई उस कन्याको वह निर्दया और निर्लज्ज मेनका नदीके किनारे पर छोड़कर आप स्नान करके चली गई ५। ७ स्थूलकेश ऋषि उस अत्यन्त सुन्दर कन्या को उस निर्जन देश में पड़ी हुई देखकर अपने आश्रम में उठा लाये थोड़े दिनों में वह कन्या बड़ी हुई ८। १० और स्थूलकेश ऋषिने उसके जातकर्म आदि सब क्रियाओंको विधिपूर्वक किया ११ जब वह कन्या और बड़ी हुई तब वह सब स्त्रियों से सुंदर लगने लगी ऋषिने इस कारण से उसका नाम प्रमद्वरा रक्खा १२ एक दिन उस प्रमद्वरा को स्थूलकेश ऋषिके आश्रम में रुरुने देखा और कामासक्त होगये १३ और अपने मित्रों द्वारा अपने पिता प्रमति से सब हाल कहवाया प्रमतिने स्थूलकेश ऋषि से वह कन्या अपने पुत्र रुरुके लिये मांगी १४ स्थूलकेश ऋषिने कन्या देना अंगीकार करके कहा कि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें विवाह होगा १५ विवाहके पक्के होने उपरांत एक दिन वह कन्या सखियों के साथ खेल रहीथी खेलते खेलते दैवयोगसे उसका पैर विना जाने एक सर्प पर जापड़ा जो रास्ते में सो रहा था १६। १७ उस सर्प ने पैर पड़तेही काटा और वह कन्या उस सर्पके विषसे

मूर्च्छित होकर गिरपड़ी वर्ण और का और होगया कहा वह कन्या दर्शन योग्य थी कहां ऐसी होगई कि उसकी ओर देखा नहीं जाता था १८। २० उस कन्याके पिता स्थूलकेश और उसके श्वशुर प्रमति और स्वस्ति, आत्रेय, महाजानु, कुशिक, शंखमेखल, उद्दालककठ, श्वेत,भरद्वाज, कौण, कुत्स्य, आर्ष्टिषेण, गौतम आदि और अन्य वनवासी ऋषि और ब्राह्मण लोग उस कन्या के देखनेको आये और सर्प के विष से उसे मरा हुआ देखकर सब रोने लगे रुरु वहांसे बाहर को चले गये और अन्य सब ऋषि वहीं बैठ गये २१। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि अष्टमोऽध्यायः ८॥

नवां अध्याय।

रुरुका प्रमद्वराको आधी आयु देने और रुरुके विवाहकी कथा॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! जब सब महात्मा ब्राह्मणलोग वहां बैठगये तब रुरु ऋषि वहांसे उठकर वनमें चलेगये और बड़ा विलाप करके कहनेलगे कि अब इससे भी अधिक और क्या दुःख होगा कि मेरी प्यारी स्त्री पतली कमरवाली पृथ्वी पर मुरदा पड़ी है १। ३ मैंने आजतक जो कुछ दान तप जप गुरुआदि की सेवा की है उसके प्रभावसे मेरी प्यारी स्त्री जी जावै ४ जब रुरुऋषि इस प्रकार से अपनी स्त्रीके लिये वनमें विलाप कररहे थे उसी समय उनसे एक देवदूतने आनकर कहा हे रुरु! तुम यहां वृथा रो रहे हो पुण्य देदेनेसे मृतक नहीं जीता है हां एक और उपायहै उसको देवताओं ने पहिले भी कियाथा तुम भी वही करो तो प्रमद्वरा जी जावै यह सुनकर रुरुऋषि बोले कि वह कौनसा उपायहै कृपा करके कहो मैं भी वही करूंगा देवदूत बोला कि तुम अपनी आधी आयु उसको दो तो वह जीजावै ५। १० यह सुनकर रुरुऋषिने कहा कि अच्छा मैं अपनी आधी आयु देताहूं ११ मेरी प्यारी प्रमद्वरा शृङ्गारसहित जी उठे इसके उपरांत सूतपुत्र बोले कि हे ऋषियो! वह देवदूत और सत्तम गंधर्वराज दोनों रुरुकी यह बात सुनकर धर्मराज के पास गये और बोले कि आप आज्ञा दें तो रुरुऋषि की स्त्री प्रमद्वरा जो मरगई है रुरुऋषि की आधी आयु पाने से जी उठे धर्मराजने कहा कि जो तुम यह चाहते हो तो रुरुऋषि की आधी आयु से प्रमद्वरा जीवै सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! धर्मराज के कहने से वह प्रमद्वरा रुरुकी आधी आयु पाकर सोवतीसी तुरंत उठ बैठी १२। १६ रुरुके भविष्य में यह लिखा था कि इसकी आधी आयु भार्या के अर्थ लोप होजायगी इसके उपरांत उन दोनोंका

विवाह उनके पिताओंने करदिया १७ और वे दोनों परस्पर बड़ी प्रीतिसे रमण करने लगे और रुरुने सर्पोंके मारने का प्रण किया जो सर्प जहां पावें वहीं मारडालें एक दिन रुरु बड़े वनको गये १८। २० वहां एक बूढ़े डुंडुभनामी सर्पको देखकर बड़ाभारी सोंटा लेकर मारने को चले तब वह सर्प बोला कि महाराज मैंने आपका कुछ अपराध नहीं किया है आप मुझे क्यों मारते हैं २१। २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि नवमोऽध्यायः ९ ॥

दशवां अध्याय।

रुरुको सर्पों के मारने की कथा ॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! रुरु उस सर्प की यह बात सुनकर बोले कि हमारी प्राणप्यारी स्त्रीको सर्प ने डसा था उस समय हमने यह प्रतिज्ञा की थी कि मैं सर्पों को सदैव मारूंगा इस कारण से मैं तुझको भी मारना चाहताहूं तू किसी तरह नहीं बचैगा १। २ तब वह सर्प बोला कि काटनेवाले सर्पोंकी दूसरी जाति है हम डुंडुभ जातिके सर्पहैं हम काटना तो दूरहै किसीको गंधसेभी दुःख नहीं देते आप धर्मके जाननेवाले हो हम विषहीन सर्पों को मारना आपको उचित नहीं है ३। ४ सर्पकी यह बात सुनकर रुरुने उसे ऋषि जानकर भय किया और नहीं मारा ५ उपरांत चित्तको शांत करके बोले कि तुम पूर्वजन्म में कौन थे और यह देह तुमको क्योंकर मिली ६ वह सर्प बोला कि पूर्वजन्म में मैं सहस्रपाद नाम ऋषि था ब्राह्मण के शापसे यह देह पाई है ७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि दशमोऽध्यायः १० ॥

ग्यारहवां अध्याय।

डुंडुभसर्पका ब्राह्मण के शाप से छूटकर दिव्य देह पाना ॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! उस सर्पकी यह बात सुनकर रुरुने पूंछा कि ब्राह्मणने तुमको क्यों शाप दिया और यह शरीर तुम्हारा कबतक रहेगा वह सर्प बोला कि खगमनाम एक ब्राह्मण का पुत्र मेरा मित्र था वह बड़ा तपोबल रखता था और वाणी उसकी बड़ी तीक्ष्ण थी १। २ एक दिन वह अग्निहोत्र कररहा था मैंने हँसीसे तिनके का सांप बनाकर उसको डराया वह मोहित होगया ३ जब उसको ज्ञान हुआ तब वह मुझपर बड़ा कुपित हुआ और मुझको शाप दिया कि जैसा बलवान् सर्प तैंने हमारे डरानेको बनायाहै वैसाही हमारे शापसे तू होजा ४। ५ मैं उसके तपोबल को जानता था उसका शाप सुनतेही

दुःखित होकर बड़ी दीनता से उसके सम्मुख गया और हाथ जोड़कर कहा कि मित्र मैंने हँसी से आपका यह अपमान किया था ६। ७ मेरा अपराध क्षमा करो और अपने शापको लौटा लो यह सुनकर वह ब्राह्मणभी दुःखित हुआ और बोला कि हमारा कहा तो किसी प्रकारसे झूंठ नहीं होसक्ता ८। ९ परन्तु अब तुम अपने मनमें ध्यान रक्खो कि थोड़े दिनोंमें प्रमतिऋषि के रुरुनाम पुत्र होगा उसको देखकर तेरी शाप से मोक्ष होगी १०। ११ सो तुम प्रमति-ऋषि के पुत्र रुरु हो तुम्हारा दर्शन हमको मिला अब मैं अपने स्वरूप को पाकर तुम्हारे हितकी बात कहूंगा १२ ऐसा कहिके उस ऋषिने सर्पदेह छोड़-कर सुन्दर प्रकाशमान स्वरूप धारण किया १३ और रुरुसे कहा कि अहिंसा परम धर्म है १४ ब्राह्मण को किसी जीवका मारना उचित नहीं है ब्राह्मणोंका परम धर्म यहहै कि वेदोंकी धारणा अहिंसा सत्यवचन और क्षमा और जो धर्म क्षत्रियोंका है वह तुमको न करना चाहिये दण्ड धारण उग्रत्व और प्रजाको पालना यह क्षत्रियों का धर्म है १५। १८ पहिले राजा जनमेजय ने सर्पसत्र यज्ञ किया था उसमें सर्पोंकी हिंसा बहुत हुई और जो सर्प डरेहुये थे उनकी आस्तीक ब्राह्मणने जो बड़े तपोबल के रखनेवाले थे और वेदवेदांग के जानने-वाले थे रक्षा की १९। २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकादशोऽध्यायः ११ ॥

बारहवां अध्याय।

रुरुका वनमें मूर्च्छित होना और फिर घर आनेका वृत्तान्त ॥

रुरुने उस ऋषिसे पूछा कि राजा जनमेजय ने क्यों सर्पोंकी हिंसा की थी और सर्पोंकी वहां इसप्रकार से क्यों मृत्यु हुई और आस्तीकने सर्पोंको क्यों ब-चाया कृपा करके यह सब वर्णन कीजिये वह ऋषि बोले कि यह सब कथा तुमको एक ब्राह्मण मिलेगा वह सुनावेगा ऐसा कहिके वह ऋषि अन्तर्धान होगये और रुरु उनको उस वन में इधर उधर दौड़ दौड़कर ढूंढ़ने लगा जब कहीं पता न मिला तब मूर्च्छित होकर गिरपड़ा और मूर्च्छा जागनेपर अपने घर आया और सब वृत्तान्त अपने पिता प्रमतिसे कहा और प्रमतिने रुरुको वह सब कथा सुनाई १। ६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्वादशोऽध्यायः १२ ॥

तेरहवां अध्याय।

आस्तीकवंशके वर्णनमें जरत्कारकी कथा॥

इतनी कथा सुनकर शौनकऋषि बोले कि राजा जनमेजय किसका बेटा था और उसने यह सर्पों का संहार किसलिये किया था और आस्तीक किसके पुत्रथे और उन्होंने सर्पोंको जलतीहुई अग्निसे क्यों बचाया १। ३ यह प्रश्न सुनकर सूतपुत्र ने कहा कि हम आपलोगों को आस्तीक की कथा सुनाते हैं मैंने यह इतिहास अपने पितासे सुना था और हमारे पिता लोमहर्षण जो व्यासजी के शिष्य हैं उन्होंने इस इतिहास को नैमिषारण्यवासी ब्राह्मणों को सुनाया था यह कथा बड़ी पवित्र है और पापों की हरनेवाली है ४। ८ आस्तीक का पिता ब्रह्मचारी यताहार उग्रतप का करनेवाला बड़ा तपस्वी था उसका नाम जरत्कार था (यायावर उसे कहते हैं जो एक राति के सिवाय किसी ग्राम में वास नहीं करते और पन्द्रहवें दिन होम करते हैं) यायावरों में वह सब से श्रेष्ठ हुआ वह पृथ्वीपर तीर्थयात्रा करता हुआ फिरता था और एक रात्रि से अधिक कहीं नहीं ठहरता था जहां सायंकाल होजाता वहीं उसका घर था ६। १२ और उस तीर्थयात्रा की अवस्था में ऐसे २ दीक्षित कर्म करता था कि उनका अशुद्ध अंतःकरणवाले पुरुषसे होना बड़ा कठिनहै अर्थात् वायु भक्षण करके निराहार रहता था रात्रि दिन जागता था और अपने शरीरको सुखाताथा १३ एक दिन उस जरत्कार ने एक जगह एक गड़हले में नीचे को मुख और ऊपर को पैर करके अपने दादा परदादाको लटकते हुये देखा और देखकर उनसे बोला कि आप कौनहैं जो इस गड़हले में नीचे को मुख करके लटके हुये हो १४। १६ पितर बोले कि हम शंसितव्रत यायावर नाम ऋषिहैं हमारी संतान क्षय होनेवाली है इसकारण से हम पृथ्वीपर अधोगति पावेंगे १७ हमारे अब जरत्कार नाम से एक संतान रह गई है वह मूढ़ है केवल तप करता है १८ और विवाह की इच्छाभी नहीं करता है जिससे सन्तान का आगे होना संभव हो इसकारण से हम सब मंदभागी जरत्कार ऐसे अल्पभाग्य संतान के होने से संतानके क्षय होनेपर पृथ्वीपर अधोमुख होकर गिरेंगे और तुम कौन हो जो हमलोगों को देखकर भाइयोंकीसी तरह हमारी विपत्ति पर शोचकर ऐसा पूंछतेहो १९। २१ जरत्कारने कहा मैं आपही जरत्कारहूं और मुझे निश्चय मालूम हुआ कि आप मेरे पिता और पितामह हैं अब मेरे लिये जो कुछ

आज्ञाहो सो मैं करूं २२ पितर बोले कि पुत्र ! तुम अब अपना विवाह करो और हमारे और अपने लिये संतान उत्पन्न करो २३ संसार का यही धर्म है बहुतसे तप और धर्मोंके करने से वह गति नहीं मिलती है जो एक पुत्रके होनेसे मिलती है २४ इससे तुम अब संतानके निमित्त अपना विवाह करो हमारा इसमें परमहित है २५ जरत्कारने कहा कि मैं अपनी देही के सुखके लिये धनका संचय और स्त्री से विवाह नहीं करूंगा परन्तु आपलोगों के हितके लिये जो कोई मुझे मेरेही नामकी कन्याको विना मांगे भिक्षामें देदेगा उससे मैं विवाह करलूंगा २६।२८ मुझ दरिद्री को रूप गुणवती कन्या कौन देगा और जो कोई देगा तो आपके हितके लिये अवश्य लेलूंगा और उसके निश्चय ऐसा पुत्र होगा जिसके कारणसे हमारे पितर तरकर आनन्दपूर्वक स्वर्गवास पावेंगे २९।३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रयोदशोऽध्यायः १३॥

चौदहवां अध्याय।

जरत्कारसे वासुकि नागकी बहिनसे विवाह होना॥

सूतजी बोले हे ऋषियो ! इसके पीछे जरत्कार विवाहके अर्थ पृथ्वीपर घूमतेरहे परन्तु किसीने उनको अपनी कन्या न दी १ एक दिन जरत्कार अपने पितरों के वाक्य याद करके वनमें गये और तीनबेर धीरे २ विवाहके अर्थ कन्या की भिक्षा मांगी २ तब वासुकिनाग अपनी बहिन को उठालाया और जरत्कार से कहा कि हम यह कन्या आपको देते हैं आप कृपा करके ग्रहण कीजिये यह सुन कर जरत्कार ने विचार किया कि हमको अपने नाम की स्त्री की इच्छाहै इसका नाम न जाने क्या है ३।४ इसलिये वासुकि से पूंछा कि तेरी बहिन का क्या नाम है ५ वासुकि बोला कि इसका नाम जरत्कारहै और पहिले से इसकी रक्षा आपके लिये कीगई थी आप इसको ग्रहण कीजिये इसके उपरान्त जरत्कारने उस कन्या का पाणिग्रहण वेदोक्तविधिसे किया ६।७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुर्दशोऽध्यायः १४॥

पन्द्रहवां अध्याय।

आस्तीकके उत्पन्नहोने और सर्पोंको आगमें जलने से बचानेकी कथा॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! पहिले किसीसमय सर्पोंकी माताने सर्पोंको यह शाप दिया था कि राजा जनमेजय के यज्ञमें तुमको अग्निदेव जलावेंगे १ सो वासुकि नागने अपनी बहिन उस महात्मा ऋषि जरत्कारको उस शापके शान्ति करने

के निमित्त दीथी २ और जरत्कारने जब उसको वेदोक्त विधिसे ग्रहण किया तब उसके उस स्त्री से आस्तीक नाम पुत्र उत्पन्नहुआ ३ आस्तीक बड़ा तपस्वी महात्मा वेद वेदाङ्गोंका जाननेवाला सबपर समान दृष्टि रखनेवाला और माता पिताके भयका दूर करनेवाला था४ ऐसा सुनाहै कि इसके पीछे राजा जनमेजयने सर्पों को नाश करनेवाला सर्पसत्र यज्ञ किया ५ उस यज्ञ में आस्तीकने अपने तपके प्रभावसे अपने मामाभाई और अन्य सर्पोंको भी जलनेसे बचाया और अपने पितरों को तारा और अनेक व्रत करने और वेदके पढ़ने से सबसे अनृण हुआ बड़ी २ दक्षिणा जिनमें दीजाती हैं ऐसे यज्ञोंको करके देवताओंको ब्रह्मचर्य रहकर ऋषियों को और संतान से पितरों को तृप्त किया इसके उपरांत जरत्कार भी आस्तीक नाम पुत्रके होने से पितरों के बड़े भारको दूरकर अपने पितामहाओं के साथ स्वर्गवासी हुए ६। १० जरत्कार ने स्वर्गवास बहुत दिनोंमें पाया इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले कि आस्तीक की कथा हम आपको सुना चुके अब आप जो कुछ और कहें सो सुनावें ११ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पंचदशोऽध्यायः १५ ॥

सोलहवां अध्याय।

कश्यपजीसे कद्रूविनताका विवाह और कद्रूसे सर्प और विनतासे गरुड़जीकी उत्पत्तिकी कथा ॥

शौनकऋषि बोले हे सूतपुत्र ! तुम कथा बहुत अच्छी तरह जैसे तुम्हारे पिता कहतेथे कहते हो तुम्हारे मुख से अक्षर और सब पद बहुत मधुर निकलते हैं हमने इस कथा को तुम्हारे पिता से जो हमारी सेवामें सदैव लगे रहते थे सुनी थी अब तुमभी इस आस्तीक की कथा को विस्तारसहित जैसे तुम्हारे पिताने सुनाई थी सुनाओ सूतपुत्र बोले बहुत अच्छा मैंने जिस प्रकार से इस कथा को अपने पितासे सुना है उसी प्रकार आपसे विस्तारसहित कहताहूं १।४ पहिले देवयुग में प्रजापति के दो बेटीथीं एकका नाम कद्रू और दूसरी का नाम विनता था प्रजापतिने उन दोनोंका विवाह कश्यपजी से करदियाथा वे दोनों ब्रह्माके समान पति पाकर आपस में प्रीति से रहने लगीं और पतिकी सेवा करने लगीं एक समय कश्यपजीने उन दोनों से वरदान मांगने को कहा तब प्रथम प्रसन्न होकर कद्रूने कहा कि महाराज ! मेरे बराबर पराक्रमवाले सहस्र सर्पपुत्र होवें ५।८ और विनताने कहा कि मेरे दो पुत्र होवें परंतु कद्रू के पुत्रोंसे बल पराक्रम में अधिकहों ६ कश्यपजीने कहा ऐसाही

होगा १० इसके उपरांत दोनों को गर्भ रहा और कश्यपजी यह कहके कि गर्भका अच्छी तरह से यत्न करना वनमें तपस्या करने को चलेगये इसके बहुत दिन पीछे कद्रूने सहस्र और विनता ने दो अंडे दिये ११। १३ दासियोंने उन अंडों को गरम बरतनों में रखकर पांचसौ वर्षतक रक्खा रहने दिया १४ उपरांत कद्रूके सहस्रपुत्र उन अंडों के बाहर निकले और विनता के पुत्र न निकले १५ तब विनताने पुत्रके देखने की इच्छा से एक अंडे को छेदकर देखा १६ उसमें जो पुत्रथा उसका उस समय तक आधा शरीर बनाथा वह पुत्र अपनी माता से क्रोध करके बोला कि तैंने मुझको आधे शरीर की अवस्था में बाहर निकाला इससे तू अपनी सौति की पांचसौ वर्षतक दासी रहैगी और जो इस दूसरे अंडेको अभी न फोड़ेगी तो पांचसौ वर्ष पीछे इसमें से बड़ा बलवान् पुत्र होगा और वह तुझको दासीपने से छुटावेगा १७। २१ ऐसा कहके वह विनता का पुत्र आकाश को उड़गया और सूर्यका सारथी हुआ वही प्रभातके समय अरुणरूप दीखता है इसके उपरांत सर्पों को खानेवाले गरुड़जी उत्पन्न हुये २२। २३ वे उत्पन्न होतेही अपनी माता विनता को छोड़कर अपने भोज्य को खाने के लिये जो उनके लिये ब्रह्माजीने पहिले से रच रक्खाथा आकाश में चलेगये २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षोडशोऽध्यायः १६॥

सत्रहवां अध्याय।

कद्रू और विनताका उच्चैःश्रवा सूर्यके घोड़ों को देखने और समुद्र मथने की कथा॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! एक समय कद्रू और विनता साथ जारही थीं उस समय उन दोनों ने सूर्य के उच्चैःश्रवा घोड़े जो क्षीरसमुद्र से मथकर अमृत निकालने के समय उत्पन्न हुये थे देखे उत्तम जगत् में श्रेष्ठ श्रीमान् अजर दिव्य सब लक्षणों से पूजित घोड़ों की सब देवताओंने मिलकर पूजा की १।३ यह सुनकर शौनक ऋषि बोले कि देवताओंने अमृत किस प्रकार से कहां मथकर निकालाथा जहां उच्चैःश्रवा बड़े पराक्रमी घोड़े उत्पन्न हुये ४ सूतपुत्र बोले कि सुमेरु पर्वत जो अत्यंत प्रकाशमान अचल उत्तम सोने के सदृश उजली चोटियोंसे सूर्यके तेजको निरादर करनेवाला देवता और गंधर्वों के रहनेका स्थान है उसे अधर्मी मनुष्य नहीं देखसक्के जिसमें बड़े बड़े सर्पों के रहनेका स्थान है और बड़ी बड़ी उत्तम ओषधियां उत्पन्न होती हैं और इतना

ऊंचा है कि आकाश को छूताहुआ विदित होता है जिसपर अनेक नदी और वृक्ष लगे हैं और बहुत से पक्षी जहां तहां अनेक २ मीठी २ बोलियां बोलते रहते हैं उसकी रत्नजटित एक बड़ी ऊंची चोटीपर एक समय सब देवता बैठकर अमृत निकालनेका उपाय सोचरहे थे ५। १० उस समय नारायण बोले कि सब देवता और दैत्य मिलकर समुद्र को मथें तो उसमें से अनेक रत्न निकलेंगे और पीछे से अमृतभी निकलेगा ११। १२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तदशोऽध्यायः १७ ॥

अठारहवां अध्याय।

समुद्र मथकर चौदह रत्न निकलने और भगवान् के मोहनी रूप धारण करने की कथा ॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! इसके उपरांत समुद्र मथनेके लिये सब देवता मंदराचलपर्वत को लेने के लिये गये वह पर्वत अतिउत्तम अपनी उँचाई से आकाश को छूताहुआ अनेक वृक्षों की लताओं से शोभित पक्षियों की अनेक प्रकार की मधुर बोलियों से घोषित मृग हाथी व्याघ्र वाराहआदि अनेक डाढ़वाले जीवों से व्याप्त किन्नर अप्सरा और देवताओं से अत्यन्त शोभित दश सहस्र योजन पृथ्वी से ऊंचा और सहस्र योजन पृथ्वी में दबाहुआथा १। २ उसको देखकर देवताओं की सामर्थ्य उसे उखाड़ने को न हुई तब सब लौटकर ब्रह्माजी और विष्णु भगवान् से बोले कि महाराज! वह पर्वत बड़ा भारी है हमारी सामर्थ्य उसे लानेकी नहीं है आपही उसे मँगाने का यत्न कीजिये ४। ५ उस समय ब्रह्माजी और विष्णु भगवान्ने शेषजीसे पहाड़को उखाड़ कर लाने को कहा उनके कहने से पराक्रमी शेषजीने अपने बलसे उस पर्वत को मृग पक्षी आदिसहित उखाड़लिया और उठाकर समुद्र के किनारे रखदिया ६। ८ तब सब देवताओं ने समुद्र से कहा कि हम जल मथकर अमृत निकालेंगे ९ यह सुनकर समुद्र बोला कि आप लोग अमृत मंदराचल पर्वत से बिलोकर निकालेंगे इसलिये इसका भ्रमण सहने के लिये आप कूर्मराज से कहें कि वे इसको अपनी पीठपर धरें तब सब देवता और दैत्यों ने कूर्मराज से मंदराचल पर्वतका बोझ उठाने को कहा कूर्मराज बोले कि बहुत अच्छा तब सब देवताओं और दैत्योंने उस पर्वत को समुद्र में कूर्मराज की पीठपर रखकर उससे समुद्र को बिलोने के लिये उस पहाड़ में वासुकि सर्प को लपेटा जिधर वासुकि का मुखथा उधर दैत्योंने और जिधर पूंछथी उस ओर देवताओं ने पकड़ा और

बड़े वेग से बिलोने लगे शेषजी वासुकि नागके मुखके पास खड़े हुये और उसके मुखसे निकले हुये भागों को पृथ्वी से पोंछतेथे और उसके श्वासकी गरमी को सहते थे १० । १५ इसके उपरांत बिलोने के श्रम से उस वासुकि नाग के मुखसे वायु और धुआं निकला वह बिजली और मेह होकर देवताओं पर वर्षनेलगा १६ । १७ इसके पीछे उस पहाड़के फूल टूट टूटकर देवताओं के ऊपर गिरने लगे और सब देवता और दैत्य उन फूलों से ढकगये १८ उससमय समुद्र के बिलोने का ऐसा शब्द होताथा जैसे बादल गरजता है १९ और उस पहाड़ की धूमसे जल के और वरुणलोक पाताललोक में रहनेवाले सब जीव जन्तु पिसकर मर गये २० । २१ पहाड़ के ऊपर के सब वृक्ष आपस में टक्कर खा खाकर टूटकर गिरपड़े २२ और उन वृक्षों की टक्कर से ऐसी अग्नि उत्पन्न हुई कि सब पहाड़ चारों ओरसे जलने लगा २३ और मृग व्याघ्र सिंह वाराह आदि सब जीव उसमें जलकर भस्म होगये २४ उस अग्नि को इन्द्रने जल वर्षा करके बुझाया २५ और समुद्र का जल पहाड़ पर से अनेकवृक्षों के गोंद नानाप्रकार की ओषधियों और रसों के गिरने से मीठा होकर दूधके अनुसार होगया तब उसमें से घृत निकला २६ । २८ इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले कि हे ऋषियो ! देवता और दैत्योंने बड़ी देरतक समुद्र मथा जब थकगये तब ब्रह्माजी से कहा कि महाराज ! हमलोगोंने सिवाय विष्णु भगवान्के इस समुद्रको बड़ी देरतक मथा परंतु इसमें से अभी अमृत नहीं निकला और हम सब थकगये २९ । ३० यह सुनकर ब्रह्माजी विष्णु भगवान् से बोले कि आप इनको अपना बल दें नहीं तो इनकी सामर्थ्य मथने की नहीं है ३१ तब विष्णु भगवान् ने कहा कि हम बल देते हैं इन सबको चाहिये कि मंदराचलको अच्छेप्रकार से घुमाघुमाकर समुद्र को बिलोवें ३२ विष्णुके यह वचन सुनकर सब देवता और दैत्योंने बड़े वेग से उस पहाड़को समुद्रके जलमें घुमाया ३३ उसके घुमाने से उस समुद्र में से पहिले लाख किरणधारी प्रसन्नात्मा और उज्ज्वल चन्द्रमा उत्पन्नहुआ ३४ इसके अनन्तर श्वेतवस्त्र धारण किये हुये लक्ष्मी सुरादेवी श्वेतघोड़ा ३५ कौस्तुभमणि जिसको नारायण ने गलेमें धारण किया ३६ धन्वन्तरि एक हाथमें श्वेतकमण्डलुमें अमृत लिये हुये चार दांत वाला ऐरावत हाथी और कालकूटविष यह सब क्रमसे उत्पन्न हुये लक्ष्मी सुरा चन्द्रमा और घोड़ा सूर्यके पास निकलकर खड़ेहुये और अमृतको देखकर सब दैत्य

कहने लगे कि यह हमारा है और ऐरावत हाथी को इन्द्रने अपनी सवारी में रक्खा ३७ । ४० और जब कालकूटविष उत्पन्न हुआ उसकी गन्धसे तीनों लोक मोहित होगये फिर उसको शिवजीने ब्रह्माजी के कहने से पी लिया और अपने कण्ठमें रक्खा उस विषसे शिवजी का कण्ठ नीला होगया तब से भगवान् शिवजी का नाम नीलकण्ठ विख्यात हुआ ४१ । ४३ इसके अनन्तर सब दानव लक्ष्मी और अमृत को लेनेके लिये देवताओं से बड़ा झगड़ा करने को उद्यतहुये ४४ नारायण ने उन दोनों का झगड़ा देखकर बड़ा अद्भुत मोहनीरूप स्त्रीका धारण किया और दैत्योंके पास खड़े होकर उनके मनको मोहिलिया और उन मूढ़ दैत्य दानवों ने वह अमृत उस मोहनीरूप स्त्री को दे दिया ४५ । ४६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि अष्टादशोऽध्यायः १८ ॥

उन्नीसवां अध्याय ।

भगवान्का देवताओं को अमृतपान कराने और देवता और दैत्यों के युद्धकी कथा ॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! इसके उपरान्त सब दैत्य और दानव नाना अस्त्र-शस्त्र लेकर देवताओं से घोर युद्ध करने को तय्यार हुये १ और मोहनी रूप भगवान् ने वह अमृत देवताओं को पिलाया पिलाते समय एक राहुनाम दानव देवताओं का स्वरूप धारण करके उनके बीचमें आबैठा और अमृत पीने लगा २ । ४ तब सूर्य और चन्द्रमाने नारायण से कहा कि वह दैत्य देवरूप धरके अमृत पीता है अमृत उसके कंठतक पहुँचा था कि नारायण ने यह बात सुनकर सुदर्शनचक्र से उसका शिर काट लिया ५ । ६ वह शिर आकाश में जाकर बड़ा घोर शब्द करनेलगा और शरीर पृथ्वी पर गिरपड़ा परन्तु अमृत के प्रभाव से मरा नहीं वह दोनों राहु और केतुके नाम से प्रकट हुये और सूर्य चन्द्रमा से वैर मानकर अबतक ग्रसते हैं ७ । ६ इसके उपरान्त खारी समुद्रके किनारे देवता और दैत्यों का बड़ा घोर तुमुल युद्ध होने लगा और श्रीनारायणने भी अपना मोहनीरूप छोड़कर उन दैत्यों को अनेक शस्त्रों से भयभीत किया १० । ११ इसके पीछे देवता और दैत्यों के परस्पर युद्ध करने से दैत्योंका नाश होनेलगा बहुत से दैत्य तलवार बरछी और गदासे टुकड़े टुकड़े होकर रुधिर उगलते हुये पृथ्वीपर गिरतेथे १२ । १३ बहुत से दैत्य मारो छेदडालो हटाओ गिराओ दौड़ो ऐसे कह कहकर युद्ध करतेथे उसी

समय उस युद्धमें नर नारायण भी आपहुँचे १४।१६ और बाणों से दैत्यों को मारने लगे विष्णु भगवान् ने नरके धनुषबाणों को देखकर अपने सुदर्शन चक्र को याद किया २० और वह यादकरतेही आपहुँचा भगवान्ने उस शत्रुके नाश करनेवाले बड़े बलवान् तेजयुक्त भयंकर सुदर्शन चक्र को दैत्योंकी सेना में बारबार फिराकर मारा और वह दैत्यों को अग्निकी समान जलाने और नाश करने लगा २१।२३ दैत्य यह देखकर आकाश से बड़े बड़े पहाड़ों को वृक्षों सहित देवताओंपर फेंकनेलगे उन पहाड़ों के पृथ्वीपर गिरने से पृथ्वी हिलनेलगी उस समय श्रीभगवान्ने सुवर्ण लगेहुये बाणों से उन पहाड़ों को काट डाला २४।२८ और दैत्यों के वध के लिये आकाश में सुदर्शनचक्र को छोड़ा सुदर्शनचक्रने उन दैत्यों को काट काटकर पृथ्वीपर गिरादिया यह दशा देखकर बहुत से दैत्य खारी समुद्रमें गिरपड़े बहुत से पृथ्वीपर जाबैठे और बहुत से इधर उधर भागगये २६ इसप्रकार से हे ऋषियो! देवताओं की जय हुई इसके पीछे देवता मन्दराचल पर्वत को जहांका तहां रखआये और जय पाकर प्रसन्न होकर स्वर्ग को गये और अमृत के घड़े को रक्षासहित रखने के लिये इन्द्रआदि सब देवताओंने भगवान् नरको दिया ३०।३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि ऊनविंशोऽध्यायः १६॥

बीसवां अध्याय।

कद्रूका विनतासे दासी होनेका प्रण रोपकर सूर्य के घोड़ेका रंग पूछने की कथा॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! उस महापराक्रमी घोड़े के उत्पन्न होने का हाल सुनकर एक दिन कद्रूने विनता से पूंछा कि सूर्य के घोड़ेका क्या रंगहै १।२ विनता बोली कि श्वेत रंगहै और जो तुम जानती हो सो तुमभी कहो ३ कद्रू बोली सूर्य के रथके घोड़ेकी पूंछ काली है विनता बोली अच्छा कल चलकर देखेंगी जो हारजाय सो दासी बनै ४ इस प्रकार से आपस में प्रण करके कद्रू ने अपने पुत्रों को बुलाकर कहा कि तुम जाकर सूर्य के घोड़े की पूंछसे लिपट जाओ जिससे उसका काला रंग दीखने लगे और मैं दासी होने से बचजाऊं उनमेंसे बहुत से सर्पोंने माताका कहना न माना और उनको कद्रूने शाप दिया कि पांडवों के वंशमें आगे राजा जनमेजय सर्पसत्र यज्ञ करेंगे उसमें तुम सब अग्निमें जलोगे ५।८ ब्रह्माजी कद्रूका यह शाप सुनकर जगतका हित समझकर सब देवताओं सहित कद्रूके पास आये और उसकी बड़ाई करके कहा

कि तेरा दियाहुआ शाप सच्चाहो क्योंकि ये सब सर्प बड़े विषधारी हैं और संसारी जीव इनसे अत्यन्त दुःखी हैं सैकड़ों जीवोंको ये नित्य मारते हैं यह काम तेंने बड़ा योग्य किया नहीं तो ये जगत्का नाश करदेते ऐसा कहके ब्रह्माजी कश्यपजी के पास गये और उनसे कहा कि ये तुम्हारे पुत्र बड़े विषधरहैं दिन-रात संसारी जीवोंको दुःख देते हैं इनकी माता कद्रूने किसी कारणसे जनमेजय के यज्ञमें नाश होनेका इनको शाप दियाहै सो आपको क्रोध करना उचित नहीं है यह होतव्य ऐसीही है और दुःखदाइयोंका नाश होना उचितहै इसप्रकार से ब्रह्मा जी कश्यपजीको समझाकर उनको विष हरनेवाली विद्या देकर चलेगये ६।१६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि विंशोऽध्यायः २०॥

इक्कीसवां अध्याय।

कद्रू और विनताका सूर्यके घोड़ेका रंग देखने को जानेकी कथा॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! जब सवेरा हुआ तब कद्रू और विनता दोनों सूर्य के घोड़ोंको देखने चलीं और आकाशमार्गसे समुद्रको देखा जो वायुसे उठी हुई लहरों से शोभायमान मगर आदि सहस्रों जीवों से भराहुआ बड़ा गहरा भयानक सब तरहके रत्नोंकी खान वरुण और नागों के रहनेका स्थान-महारमणीक, नदियोंका मालिक, पातालकी अग्नि असुर और भयंकर जीवोंके रहनेका आलय, अव्यय, शुभ, देवताओं के अमृत निकलनेका स्थान, शुद्ध जलयुक्त, अतिगंभीर, अप्रमेय, अचिन्त्य आकाश के तुल्य प्रकाशमान सहस्रों नदियों से मिलाहुआ अव्यय, योगनिद्रा से सेवित विष्णुके सोनेका स्थान वज्रसे डरेहुये मैनाक पर्वत को अभय करनेवाला युद्धसे भागे हुये दैत्योंका परायण कल्याण-रूप अगाध अपार चारों ओर से अत्यंत पूर्ण और अनन्तथा १।१८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकविंशोऽध्यायः २१॥

बाईसवां व तेईसवां अध्याय।

विनताका कद्रूसे हारने और गरुड़जी की उत्पत्ति की कथा॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! इसके उपरांत सर्पोंने यह विचारा कि माताका काम न होगा तो माता क्रोधसे हमको भस्म करदेगी और काम होजानेपर माता हमसे प्रसन्न होकर हमको अपने दिये हुये शापसे छुटादेगी ऐसा सोचकर सर्प सूर्यके घोड़े की पूंछसे जालिपटे इस अन्तरमें कद्रू और विनता दोनों उत्तम विशेषणवाले समुद्र को नांघकर १।१२ आकाशमार्ग से सूर्य के घोड़े के पास

पहुँचीं और उसकी पूंछ काली देखकर विनता चकितसी रहगई और वचन हारने के कारण से कद्रूकी दासी होकर रहने लगी १३।१६ इसके उपरांत समय बीतनेपर दूसरे अंडेको फोड़कर गरुड़जी उत्पन्न हुये १७ उनका पराक्रम अतुल और तेज सब दिशाओं में उजेला करनेवाला था जहां चाहें तहां जावें और जो चाहें सो रूपधारण करनेमें समर्थ थे रूप उनका अतिडरावना और तेज अग्नि की राशिके समान था नेत्र पीत तड़ितके समान थे थोड़े दिनोंमें वे गरुड़नाम महा-पक्षी बड़े होकर आकाश में गये उनके अत्यन्त घोर शब्द करनेवाले भयानक और अग्नि के समान प्रकाशित स्वरूप को देखकर सब देवता भयभीत हुये और अग्नि के पास जाकर विनयपूर्वक बोले १८।२१ कि आपने हमलोगोंको कभी नहीं जलाया था अब यह आपका तेजपुंज प्रलयकाल के समान सबको जलाया चाहता है इस अपने स्वरूप को आप अन्तर्द्धान कीजिये २२ यह सुनकर अग्नि-देव बोले कि तुम डरो मत यह हमारे समान तेज का रखनेवाला कश्यपजीका पुत्र देवताओं का हित दैत्यों का अहित और सर्पोंका नाश करनेवाला गरुड़ है चलो हमारे साथ चलकर देखो यह सुनकर सब देवता अग्नि के साथ गरुड़जी के पास गये और वेदविधिसे उनकी स्तुति करने लगे २३।२६ आप ऋषि हौ सब मंत्रों के जाननेवाले महाभागहौ देव हौ पक्षियों के ईश्वर हौ प्रभु हौ नाश करने वाले हौ सूर्य हौ परमेष्ठी हिरण्यगर्भ हौ प्रजापति हौ इन्द्र हौ हयग्रीव अवतार हौ बाण हौ जगत्पति हौ मुख हौ ब्रह्मा हौ विज्ञानी हौ अग्नि हौ पवन हौ धाता विधाता हौ विष्णु हौ महातत्त्व हौ अहंकार हौ सनातन हौ अमृत हौ यशवान् हौ सूर्य आदि का तेज हौ बुद्धिवृत्ति हौ रक्षणरूप हौ अनुत्तम हौ बलकी ऊर्मि हौ साधु हौ ऐश्वर्यवान् हौ युद्धमें अजित हौ मोक्ष और बंधनरूप हौ उत्तम हौ तेज हौ मृत्यु हौ प्रधान पुरुष हौ कुपित सूर्य के समान अपने तेजसे जलाते हौ भयंकर हौ प्रलय की आगि के समान उठे हौ काल के भी काल हौ बड़े पराक्रमी हौ अग्नि के समान तेजस्वी हौ बिजली कीसी चमक रखनेवाले हौ आकाशगामी हौ कार्यकारणरूप हौ वरके दाता हौ अजित पराक्रमी हौ हम सब देवता आपकी शरण आये हैं आप अपने इस तेजस्वरूप से हमारी रक्षा करो आपसे सब देवता डरकर भागनेवाले हैं इसकारण से आप अब क्रोध को त्याग करके जगत् की रक्षा करो २७।३५ आपके वज्रके समान शब्द से सब दिशा आकाश स्वर्ग और यह पृथ्वी कांपरहे हैं और हम सबका हृदय धड़कता

है और आपके काल के समान कुपित तेज को देखकर हमें व्याकुलता होती है अब आप कृपा करो और इस स्वरूप को गुप्त करो ३६। ३७ इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! देवताओं की यह स्तुति सुनकर गरुड़जी ने अपने तेज का संहार किया ३८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्वाविंशत्रिविंशावध्यायौ २२। २३॥

चौबीसवां अध्याय।

कश्यपजी के पुत्र अरुण की सूर्य के सारथी होनेकी कथा॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! गरुड़जीने देवताओंकी स्तुति सुनकर और अपने तेज को आप देखकर अपने उस तेज को घटादिया और कहा १ कि प्राणियों के चित्तका डर दूर करने के लिये मैंने अपने तेजको घटादिया २ और उपरांत पिताके घरसे अपने अरुणनाम भाई को अपनी पीठपर बैठाकर इच्छानुसार बल करनेवाले आकाशगामी गरुड़जी समुद्र के उस पार अपनी माता के पास लेगये और जब सूर्यने अपने तेजसे सब लोकों को जलाना चाहा तब उस अरुण को पूर्वदिशा में बैठादिया ३। ४ इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! यह सब इतिहास जो मैंने तुमको सुनाया है सो सब प्रमित भार्गवने अपने पुत्र रुरुभार्गव को सुनाया था जब रुरु इतना वृत्तान्त सुन चुके तब अपने पितासे बोले कि देवताओं ने क्या अपराध किया था जिससे सूर्यने इतना क्रोध करके लोकोंको जलाना चाहा ५ प्रमति बोले जब देवताओं ने अमृत पिया था उस समय उनके बीच में राहु दैत्यभी देवताका स्वरूप बनाकर आबैठा और अमृत पीने लगा उसको देखकर सूर्य और चन्द्रमाने विष्णुभगवान् को बता दिया कि यह राक्षस है इस कारण से राहु, सूर्य और चन्द्रमा से वैर मानकर उन को ग्रसने लगा तब सूर्यने विचार किया कि हमने देवताओं के उपकार के लिये राहु को बताया था वह अब हमको वैरभाव से ग्रसता है और देवता सब देखते हैं परन्तु सहाय कोई नहीं करता है हमभी अपने तेज से सबलोकों को कल भस्म कर देंगे ऐसा विचारकर सूर्य अस्त होगये ६। १० और ऋषिलोग इस बातको जानकर देवताओं के पास गये और उन सबको लेकर ब्रह्माजी के पास जाकर बोले कि महाराज ! सूर्य कल उदय होतेही अपने तेजसे सबलोकों को भस्म करदेंगे ब्रह्माजी बोले कि तुम सत्य कहते हो सूर्यका ऐसाही विचार है परंतु हमने उसका प्रबंध पहिलेही से करदिया है अर्थात् कश्यपजी के अरुण

नाम बड़े तेजस्वी पुत्र को पूर्व में बैठादिया है वह सूर्यका सारथी बनकर अपने तेज से सूर्य के तेज को हरेगा ११।१६ यह कहकर प्रमति बोले कि इस ब्रह्माजी की आज्ञा से अरुण सूर्य का सारथी होगया और उदय होनेपर सूर्य अरुण से ढकगये १७।१८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुर्विंशोऽध्यायः २४॥

पचीसवां अध्याय।

नागों के स्थानको जाते समय नागों के मूर्च्छित होने और कद्रू करके इन्द्रकी स्तुति करने की कथा॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! गरुड़जी अपनी माता के पास जो प्रण हारकर कद्रूकी दासी होकर रहतीथी गये और वहां रहने लगे १।२ एक समय कद्रू विनतासे बोली कि हे कल्याणी! मुझे समुद्रमें जहां नागोंका बड़ा रमणीक स्थान है लेचल विनताने यह सुनकर कद्रूको अपने कंधेपर चढ़ालिया और अपनी माताकी आज्ञा से गरुड़जीने सर्पोंको कंधेपर रखलिया ३।५ और वहांसे सूर्यके सन्मुख होकर चले सूर्यके तेजसे सब सर्प मूर्च्छित होगये ६ कद्रू यह देखकर इन्द्रकी स्तुति करनेलगी हे इन्द्र! मैं तुमको नमस्कार करती हूं तुम सब देवताओं के ईश्वरहौ बलके मारनेवाले हौ ७ सहस्राक्ष हौ शचीपति हौ हमारे बड़े रक्षक हौ बहुत जलको उत्पन्न करने की सामर्थ्य रखनेवाले हौ मेघ हौ वायु हौ अग्नि हौ बिजली हौ बादलों के समूह को फैलानेवाले हौ महाघन हौ घोर वज्र हौ गरजनेवाले मेघ हौ लोकों के रचने और संहार करनेवाले हौ अपराजित हौ सब प्राणियोंकी चैतन्य आत्मा हौ सूर्य और अग्नि हौ महत्तत्त्व हौ आश्चर्यरूप हौ राजा हौ पालनेवाले हौ प्रकाशवान् हौ परायण हौ सर्व हौ अमृत हौ चंद्रमा हौ ८।१३ मुहूर्त्त और तिथि हौ लव हौ क्षण हौ शुक्ल और कृष्णपक्ष हौ कलाकाष्ठारूप हौ वर्ष ऋतु महीना दिन और रात हौ १४ पृथ्वी हौ आकाश हौ महासमुद्र हौ १५ यशस्वी हौ प्रसन्न मन और बुद्धिमान् हौ बड़े २ ऋषियोंसे पूजित हौ यज्ञमें स्तुति कियेजाते हौ अपनी ईश्वरतासे वषट्कार और हव्यों को ग्रहण करनेवाले हौ १६ ब्राह्मणों से पूजित हौ वेदों में गायेगये हौ और आपकी प्राप्ति के लिये अग्निहोत्री ब्राह्मण वेदके अंगों को पढ़ते हैं आप कृपा करके जल वर्षाकर मेरे पुत्रोंके दुःखको हरो १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पंचविंशोऽध्यायः २५॥

छब्बीसवां अध्याय।

इन्द्रका जल वर्षाना और सर्पोंको मूर्च्छा से जागना ॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! इन्द्रने कद्रूकी विनय सुनकर आकाश को नीली घटाओं से ढकदिया १ और अमृतरूपी जल वर्षाने की आज्ञा दी इन्द्रकी आज्ञा से मेघ परस्पर गर्जने लगे बिजली चमकने लगी और मेघ असंडधारा होकर वर्षने लगा २।४ उस जलके गिरनेसे सूर्य चंद्रमाका प्रकाश मंद होगया और सर्प सब प्रसन्न हुये वह जल रसातल तक पहुँचा सब पृथ्वी जल से ढकगई और सर्प माताके साथ सुखपूर्वक रमणीकनाम द्वीपमें जाय पहुँचे ५।८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षड्विंशोऽध्यायः २६॥

सत्ताईसवां अध्याय।

सर्पों का मकरावासनाम द्वीप में विहार करना और गरुड़जी का सर्पों से अपनी माता का दासीभाव छुटाने का उपाय पूछना ॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! इसके अनन्तर सर्प गरुड़पर सवार हुये मकरावास द्वीप में पहुँचे और घोर लवणासुर और मनोरम कानन को देखा उस वन को समुद्र अपनी लहरोंसे सींच रहाथा अनेक पक्षी चित्र विचित्र बोली बोल रहे थे अनेक प्रकारके फल फूलों के वृक्षों की पंक्ति लग रही थीं तालाबों में सुंदर कमल फूल रहे थे शीतल मंद सुगंध वायु चल रहीथी बहुतसे सुगंधित फूल हवा से उड़कर जहां तहां छिटके हुये थे हवा के झोंकेसे जहां तहां फूलों की वर्षा होरही थी अनेक मस्त भौंरे जहां तहां गूंज रहेथे उस पवित्र मनोहर रमणीक कल्याणरूप क्रीड़ायोग्य वनको गरुड़के साथ कद्रू के पुत्र सर्प देखकर बड़े प्रसन्न हुये और उसमें विहार करने लगे फिर अन्य द्वीप में विहार करने की इच्छासे सर्प गरुड़जी से बोले १।१० हे आकाशमें चलनेवाले गरुड़! तुमने बहुत से द्वीप देखे हैं अब हमको उस द्वीपमें ले चलो जो इस द्वीप से भी रमणीक हो ११ यह सुनकर गरुड़जी अपनी माता विनता से बोले कि माता क्या कारण है जो हमको सर्पोंकी आज्ञा दासों के अनुसार पालन करनी पड़ती है १२ यह सुनकर विनता बोली कि मैं अपनी सौति कद्रू से सर्पों के छल करने के कारणसे प्रण हारकर उसकी दासी होगई हूं यह सुनकर गरुड़जी दुःखी होकर सर्पोंके पास गये और उनसे कहा १३।१४ कि ऐसी कौनसी वस्तु है जिसको लाने अथवा जानने या उसमें अपना बल दिखलाने से

हमारी माता दासीभावसे छूट जावै १५ यह सुनकर सर्प बोले कि तुम अमृत लाओ उसके लानेपर तुम दासभावसे छूट जाओगे १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तविंशोऽध्यायः २७॥

अट्ठाईसवां अध्याय।

क्षुधा मिटानेके लिये गरुड़जीका निषादोंको भक्षण करना ॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! गरुड़जी सर्पोंकी यह बात सुनकर अपनी माता के पास आये और कहा कि माता ! मैं अमृत लेनेको जाना चाहता हूं मुझे कुछ भोजन बता १ यह सुनकर विनता बोली कि इस समुद्रमें आगे एकांतमें सहस्रों निषाद रहते हैं उनको भक्षण करके अमृत लेने चला जा २ परन्तु देखियो ब्राह्मण को न मारियो ब्राह्मण सब प्राणियोंका गुरु और अवध्य है ३ क्रोध होनेपर ब्राह्मण अग्नि सूर्य विष और शस्त्र के तुल्य होजाता है और जिस प्रकार शंसितव्रत ब्राह्मण क्रोधके वशमें भस्म करसक्ता है उस प्रकार अग्नि सूर्यादि नहीं कर सक्ते वह ब्राह्मण वेदपाठी वर्णों में श्रेष्ठ प्राणियों में प्रथम उत्पन्न पिता और गुरु है यद्यपि ब्राह्मण तुझे नहीं मारसक्ते हैं परन्तु तुझे ब्राह्मणों से किसी प्रकार द्रोह न करना चाहिये ४।७ गरुड़जी बोले हे माता ! ब्राह्मण के जानने की क्या पहिचान है उसका रूप, शील और पराक्रम कैसा है और वह कभी सौम्यदर्शन और कभी अग्नि सदृश प्रकाश क्योंकर करता है ८।९ विनता बोली हे पुत्र ! भक्षण करते समय जो पुरुष तेरे गलेको अग्निके समान जलावै और कंठमें ऐसी पीड़ा करै जैसे मछली का कांटा गले में छिद जानेसे होती है और जो पेटमें जाने पीछे पचे नहीं उसे श्रेष्ठ ब्राह्मण जानियो १०।१२ ऐसे कहके विनता अपने पुत्रके पराक्रमको समझकर आशीर्वाद देने लगी हे पुत्र ! तेरे परोंकी वायु, पीठकी सूर्य और चन्द्रमा, शिरकी अग्नि और सब शरीरकी अष्टवसु रक्षा करें १३।१४ मैं यहां बैठीहुई तेरा कल्याण मनाऊंगी तू अब निर्विघ्न जा १५ इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! गरुड़जीने माताकी बात सुनकर अपने परोंको झहराया और पवन के समान आकाश मार्ग से निषादालय को चले जब उसके पास पहुँचे तब उसे देखकर प्रसन्न हुये और निषादों को खानेकी इच्छा से अपने परोंकी वायु से वृक्षों को हिलाया और बहुतसी धूल उड़ाकर अँधेरासा करदिया और अपना मुख फैलाकर राह रोककर बैठगये उस समय निषाद अपने घरको जातेथे धूल के अँधेरे में

किसी को गरुड़जीका मुख मालूम नहीं हुआ सबके सब उनके मुख में चले गये तब गरुड़जीने अपना मुख बंद करलिया १९ । २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि अष्टाविंशोऽध्यायः २८ ॥

उन्तीसवां अध्याय ।

निषादों को खाते में गरुड़जी के मुख में एक ब्राह्मण का चलाजाना गरुड़जीका उसको बाहर निकालना और एक बड़े हाथी और कछुवे को लेकर सुमेरु पर्वतपर जाकर एक वृक्षपर बैठना और उस वृक्षकी शाखा का टूटना ॥

सूत बोले हे ऋषियो ! जब गरुड़जी ने अपना मुख बन्द करलिया तब उनके गले में एक ब्राह्मण अपनी स्त्री सहित अंगारे के समान जलाता हुआ पहुँचा गरुड़जी उसे ब्राह्मण जानकर बोले १ कि हे ब्राह्मण ! तू मेरे मुख में से जल्दी बाहिर निकल आ यदि ब्राह्मण पापी भी हो तो भी मेरा अवध्य है २ ब्राह्मण बोला महाराज ! मेरी निषादिनी स्त्री भी है विना उसके क्योंकर निकलूं गरुड़जी बोले तू उसेभी लेकर जल्दी निकल ३ । ४ यह सुनकर वह ब्राह्मण अपनी स्त्री सहित गरुड़जी के मुखसे निकल आया और गरुड़जी को आशीर्वाद देकर किसी देशको चला गया ५ तब गरुड़जी अपने परों को फहरायकर आकाशमार्गी हुये ६ राहमें कश्यपजी मिले उनको देखकर गरुड़जीने प्रणाम किया और कुशल सुनाई उपरांत कश्यपजीने आशीर्वाद देकर पूछा कि पहले भोजन की कुशलता कहो मनुष्यलोकमें बहुत अन्न होता है ७ । ८ गरुड़जी बोले कि माता और भाई सब अच्छीतरह हैं परन्तु भोजन अच्छी तरह नहीं मिलता ९ आज तो माताकी आज्ञा से सहस्रों निषादों को भक्षण किया है परन्तु तृप्ति न हुई अब मैं अपनी माता को दासीभाव से छुटाने के लिये सर्पों का भेजा हुआ अमृत लेने जाताहूं १० । ११ आप कोई ऐसा पदार्थ भोजन के लिये बतलाइये जिसे खाकर मैं तृप्त होजाऊं और अमृत लासकूं १२ यह सुनके कश्यपजी ने कहा कि यह सरोवर बड़ा पवित्र है और देवलोक में भी विख्यात है इसमें एक कछुवा जो तीन योजन ऊंचा और दश योजनका मंडल रखता है वह रहता है और एक हाथी छः योजन ऊंचा और बारह योजन लम्बा इस तड़ाग के किनारे पर आता है पूर्वजन्म के वैरसे कछुवा हाथी को देखकर पानी के ऊपर आजाताहै और हाथीभी उसे देखकर पानीमें चलाजाता है और फिर क्रोध करके दोनों महायुद्ध करते हैं पूर्व जन्म

में कछुवा विभावसु नाम बड़ाक्रोधी ऋषि और हाथी सुप्रतीक नामी उस ऋषि का छोटा भाईथा धनके विभागके झगड़े में परस्पर क्रोधकर शाप देने के कारण से बड़ाभाई छोटेके शापसे कछुवा और छोटाभाई बड़े के शापसे हाथी होगया है हे पुत्र! ये दोनों आपस में एक दूसरेको मारना विचारते हैं तू इन दोनों को भक्षण करके अपनी क्षुधाको मिटा और अमृत लेने को चला जा ऐसा कहके कश्यपजी ने गरुड़जी को आशीर्वाद दिया १३। ३२ कि देवताओं से युद्ध करने में तुझे जल से भराहुआ घड़ा ब्राह्मण गौ आदि जो मंगलकारी वस्तु हैं उनके मिलने का फल हो और यजुर्वेद सामवेद की ऋचा पवित्र हविष् सब रहस्य और सब वेद तुझे देवताओं से युद्ध करने में बल दें और तेरा शुभ कल्याण हो ३३।३५ ऐसा आशीर्वाद देकर कश्यपजी तो चले गये और गरुड़जी उस सरोवर के किनारे पहुँचे जिसके निर्मल जलमें अनेक प्रकार के पक्षी क्रीड़ा कर रहेथे ३६ गरुड़जी अपने पिताका वचन स्मरण करके एक नख से हाथी को और दूसरे से कछुवे को उठाकर आकाशमार्गी हुये और सुमेरु पर्वत पर अलंवती तीर्थ के देववृक्षों के पास पहुँचे ३७। ३८ उन वृक्षों की सुनहली शाखा गरुड़जीके परोंकी वायु के वेगसे हिलने लगीं और वृक्ष इस भय से कि गरुड़जी हमको तोड़ न डालें भयभीत हुये उपरांत गरुड़जी अन्य बड़े २ लम्बे चौड़े वृक्षों के पास गये जिनकी शाखा वैडूर्यमणि की थीं और उनमें रुपहले सुनहले फल लगे हुये थे और अत्यन्त चमकदार थे अर्थात् जैसे देवताओं के सूक्ष्म प्रकाशवान् शरीर होते हैं इसी प्रकारसे वहां के वृक्षभी सूक्ष्म शरीरवाले और ज्योतिमय होते हैं ३६। ४१ उनको देखकर एक वट वृक्ष बोला कि मेरी यह शाखा सौ योजन लम्बी है इसपर बैठकर तुम इस हाथी और कछुवे को खाओ ४२। ४३ यह सुनकर गरुड़जी उस वृक्ष की शाखापर सहस्रों पक्षी बैठेहुये थे पत्तोंसे बड़ी सघन होरही थी बैठगये और वह शाखा गरुड़जी के बैठतेही टूटगई ४४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि ऊनत्रिंशोऽध्यायः २९॥

तीसवां अध्याय।

गरुड़जीका एक कछुवे और एक हाथीको भक्षण करना और देवताओं का अमृतकी रक्षा करने के निमित्त युद्धमें तय्यार होना॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! जब वह शाखा गरुड़जी के बैठतेही टूटगई

तब गरुड़जी ने उसको अपने मुखसे पकड़ लिया और उस शाखा में नीचे को मुख कियेहुये बालखिल्य नाम ऋषियों को लटकते हुये देखकर उनके नाश होने के भयसे उस शाखा को न छोड़ा मुखसे शाखा को और नखों से हाथी और कछुवेको पकड़े हुये वहां से चले १।५ उनके इस कर्मको जो देवताओं से भी होना कठिनहै देखकर उन ऋषियों ने उस आकाश में बड़ेभारी बोझको लेकर उड़नेवाले पक्षीका नाम गरुड़ रक्खा ६।७ वहांसे गरुड़जी कछुवा आदिको लियेहुये पहाड़ों को हिलाते अनेक देशोंमें फिरे परन्तु कहीं उस शाखा के रखनेका स्थान गरुड़जी को नहीं मिला उपरान्त घूमते हुये गन्धमादन पर्वतपर जहां कश्यपजी तपस्या कररहे थे पहुँचे कश्यपजी उस दिव्यरूप ८।१० आकाश में मनके वेगके समान चलनेवाले बल वीर्य से भरेहुये पहाड़के तुल्य अति भयानक स्वरूपवाले रौद्र अग्निके समान प्रकाशवान् देवआदि से अजय पहाड़ों को फोड़ने और समुद्रका जल सुखानेवाले मृत्युके समान दर्शनवाले अपने पुत्रको देखकर बोले ११।१४ कि पुत्र! साहस और जल्दी मत करियो सूर्यकी किरणोंके भोजन करनेवाले बालखिल्य ऋषि तुझे क्रोधसे भस्म करदेंगे और फिर पुत्र जानकर कश्यपजी उन ऋषियों से बोले कि हे तपोधन! गरुड़जीका यह आरंभ प्रजाके अर्थ है बड़ा कर्म करना चाहते हैं आप कृपा करके इनको आज्ञा दें १५।१७ यह सुनकर बालखिल्य ऋषि उस शाखा को छोड़कर तपस्या के लिये हिमालय को चले गये १८ तब गरुड़जी ने कश्यपजी से पूंछा कि महाराज! अब ऐसा स्थान बताइये जहां मैं इस शाखा को छोड़ूं १६।२० कश्यपजी बोले कि बरफके पहाड़ पर जहां मनुष्य नहींहैं छोड़ दो २१ यह सुनकर गरुड़जी उस पर्वतकी ओर चले और थोड़ेही काल में उस मोटी शाखा को जिसका पेटा सौ गायके चमड़े की रस्सी में भी नहीं आसक्ताथा अपने मुख में लिये हुये एक लक्ष योजन चलकर उस पहाड़ पर पहुँचे और पिताके कहने के अनुसार उस शाखाको वहां छोड़ दिया २२।२५ उस शाखाके गिरने से उस पर्वतकी चोटियां जो मणि और कांचनके सदृश थीं फटगईं और बहुत से सोने की प्रभावाले वृक्ष जिन में अनेक प्रकार के सुनहले रुपहले फल लगरहे थे उस शाखा से टूटकर पृथ्वी पर गिरपड़े और पहाड़ के हिलने से उसके ऊपर के वृक्षों के फूल गिरने से फूलों की वर्षा हुई २६।२६ सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! इसके पीछे गरुड़जी ने उसी

पहाड़के शिखरपर बैठकर उस हाथी और कछुवे को खाया ३० और खाकर वहां से देवलोक को उड़कर चले ३१ और देवताओं को भय करनेवाले अपशकुन दिखाई देने लगे इन्द्रका वज्र डरसे प्रज्वलित हुआ ३२ दिन में धूम्र ज्वाला सहित उल्का गिरने लगे आठ वसु ग्यारह रुद्र बारह सूर्य साध्यगण और मरुद्गण आदिक देवताओं के शस्त्र आपस में भिड़ने लगे ३३। ३४ निर्घात शब्दके साथ हवा चलने लगी विना बादल आकाश में गर्जना होने लगी भयानक मेघ रक्त वर्षाने लगे ३५।३६ देवताओं की माला मलीन और तेज नष्ट होगया और रज ने उड़ २ कर देवताओं के मुकुट मलीन करदिये ऐसी ऐसी भयसूचक बातें देख कर इन्द्र बहुत उद्विग्नचित्त होकर बृहस्पतिजी से बोले कि महाराज ! हमको कोई ऐसा शत्रु दिखाई नहीं देता है जो हमारा सामना कर सके यह क्या कारण है जो ऐसे घोर उत्पात दिखाई देतेहैं ३७।३८ बृहस्पतिजी बोले तेरे अपराध और प्रमाद और बालखिल्य ऋषियों के तपके कारण से कश्यपजी का बड़ा पराक्रमी आकाश में चलनेवाला पुत्र तुमसे अमृत छीनने को आता है ४०। ४१ वह अमृत हरले जासक्ता है और संसार में जो कुछ असाध्य कार्य हैं उनको भी करसक्ता है ४२ बृहस्पतिजी की यह बात सुनकर इन्द्र आदि सब देवता जिनके शरीर जलते हुये अग्नि के समान प्रकाशमान थे अपने अपने सुनहली वैडूर्यमणि से जटित कवच पहिन लिये और ढाल चक्र परिघ त्रिशूल परश्वध बरछी करवाल और उग्र दर्शन गदा आदि अनेक प्रकाशमान तीक्ष्ण अग्रधारवाले ज्वालायुक्त अस्त्र शस्त्र लेकर अमृत को घेरकर उसकी रक्षा करने को खड़े हुये ४३। ५२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रिंशोऽध्यायः ३०॥

इकतीसवां अध्याय।

अरुण और गरुड़जी के बालखिल्य ऋषियों की तपस्याके फल और कश्यपजी के संकल्प से उत्पन्न होने की कथा॥

शौनक ऋषि बोले हे सूतपुत्र ! इन्द्रका क्या अपराध और क्या प्रमाद था और गरुड़जी बालखिल्य ऋषियों के तपसे कैसे उत्पन्न हुये १ सब प्राणियों के कैसे अधृष्य अवध्य और इच्छानुसार बल करनेवाले हुये २। ३ यह सुनकर सूतपुत्र बोले कि यह पुराणों का विषय है इसकी विस्तारपूर्वक कथा कहताहूं आप सुनिये ४ एक समय कश्यपजी महाराज ने पुत्र उत्पन्न

करने के लिये यज्ञ किया था उसमें सब देवता गन्धर्व और ऋषिलोग जुड़े थे कश्यपजी ने इन्द्रादि सब देवताओं और ऋषियों को समिध लाने के लिये आज्ञा दी इन्द्र अपने पराक्रम से पहाड़ के समान बोझ लकड़ियों का थोड़ेही कष्टसे लेआये ५। ७ फिर अंगूठेके समान अतिकृश शरीर तपोधनी बालखिल्य ऋषियोंको जो एक साथ एक बड़ी लम्बी लकड़ीको लिये चले आते थे उसको एक गौ के चरणजल से भरे तड़ाग में तरते देखकर आश्चर्य करके अपने पराक्रम के अभिमान से उन ऋषियों की अपमानसहित हँसी करके लांघगये ८। १० इस अपमान को देखकर बालखिल्य ऋषियोंने बड़ा क्रोध किया और अपने तपके बलसे इच्छानुसार पराक्रम करनेवाला इच्छानुसार चलनेवाला इन्द्रको भय दिखानेवाला और मनके समान वेगवाला दूसरा इन्द्र उत्पन्न करने के लिये बड़े बड़े मन्त्रों से हवन प्रारंभ किया ११। १४ इस बात को इन्द्र जानकर अत्यन्त दुःखी होकर उन कश्यपजी महाराजके पास गया जिनकी तपस्या बड़ी तीक्ष्णथी १५ और उनसे सब हाल कहा कश्यपजी इन्द्र की बात सुनकर बालखिल्य ऋषियों के पास गये और कहा कि आपका कार्य सिद्ध हो १६ बालखिल्य ऋषि बोले आपका कहा सत्य होवे १७ उपरांत कश्यपजीने शांतिपूर्वक कहा कि यह इन्द्र ब्रह्माजी की आज्ञा से तीनों लोकों पर शासन करने को नियत कियागया है १८ और आपभी इन्द्रही के लिये यत्न कर रहे हैं परन्तु आपको ब्रह्माजी का वाक्य मिथ्या करना उचित नहीं है १९ और आपका संकल्पभी मिथ्या नहीं होसक्ता इससे आप इस देवराज पर कृपा करें और आपके तपरूप फल से उत्पन्न हुआ इन्द्र पक्षियोंका इन्द्र हो २० ऋषि यह सुनकर कश्यपजी का पूजन करके बोले कि हमारा संकल्प इन्द्र के अर्थ था और आपका पुत्र की उत्पत्ति के लिये इस कारण से हमारे इस तप के फल को आपही लेवें २१। २३ इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! उसीसमय में कश्यपजी की विनतानाम स्त्री तप करके पुत्रकी कामना से ऋतुस्नान करके अपने पति के पास आई कश्यपजीने कहा कि बालखिल्य ऋषियों के तप और हमारे संकल्प के प्रभाव से तेरे दो पुत्र एक गरुड़ पक्षियों का इन्द्र और दूसरा अरुण सूर्य का सारथी आकाश में चलनेवाले और बड़े पराक्रमी होंगे इस गर्भ को तुम बड़ी सावधानी से रखना इसके उपरान्त कश्यपजी ने इन्द्र से कहा २४।३० कि ये दोनों तेरे भाई बड़े पराक्रमी होंगे और सदैव तेरे

सहायक रहेंगे और इन्द्र तूही रहेगा परन्तु तुझको ब्रह्मऋषि महात्माओं का अपमान करना उचित नहीं है २१।२२ इन्द्र यह बात सुनकर प्रसन्न हो स्वर्ग को गये और विनता के थोड़े काल में दो पुत्र अरुण और गरुड़ नामी उत्पन्न हुये अरुण सूर्य का सारथी हुआ और गरुड़ पक्षियों के इन्द्र हुये ३३। ३५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकत्रिंशोऽध्यायः ३१॥

बत्तीसवां अध्याय।

देवताओं और गरुड़जी के युद्ध की कथा॥

सूत बोले हे ऋषियो! गरुड़जी उस हाथी और कछुवेको भक्षण करके अमृत लेने के लिये स्वर्ग को गये और वहां सब देवताओं को अमृत की रक्षा के लिये युद्ध करने को तय्यार देखकर उनसे युद्ध करने लगे १ देवताभी गरुड़ जी को देखकर कांपउठे और चारों ओर से अस्त्र शस्त्र मारने लगे २ गरुड़जी ने पहिले अमेयात्मा नाम विश्वकर्मा को जो बिजली और अग्नि के समान तेज रखता था अपने नख और चोंच से घायल करके गिरादिया ३। ४ उपरान्त अपने परों से धूल उड़ाकर अंधकार करादिया जिसके कारणसे एक दूसरे को कोई नहीं देखसक्ता था ५ और देवताओं को पर और चोंच मारकर घायल और व्याकुल करादिया ६। ७ इन्द्रने यह देखकर वायुको आज्ञा दी कि तुम जल्दी इस धूल को हटाकर अंधकार दूर करो ८ वायुने ऐसाही किया और उजेला होने पर इन्द्रादि देवताओं ने गरुड़जी को पट्टिश परिघ शूल गदा प्रज्वलित क्षुरप्र आदित्यरूप चक्र और नानाप्रकार के अनेक अस्त्र शस्त्रों से ढक दिया गरुड़जी उनके अस्त्र शस्त्रों से व्याकुल न होकर तुमुल युद्ध करते हुये आकाशमें मेघ के समान गर्जे और देवताओंको अपने पर और चोंचसे मारकर व्याकुल किया देवता बड़े घायल होकर डरकर भागने लगे ६। १५ साध्यगण और गन्धर्व पूर्व दिशा को अष्टवसु और रुद्र दक्षिण दिशा को बारह सूर्य पश्चिमको और बड़े पराक्रमी अश्विनीकुमार उत्तर दिशाको भागगये १६।१७ इसके उपरांत अश्वक्रंद, रेणुक, क्रथन, शूर, तपन, उलूक, सनाभ, निमेष, प्ररुज, पुलिन आदि यक्षोंसे युद्ध करके शिवजी के तुल्य पराक्रमवाले गरुड़ने अपने पर नख और चोंचसे सब देवताओं को घायल करडाला १८। २० और वे देवता रुधिर वर्षानेवाले बादलों के सदृश दिखाई देनेलगे २१ इसके उपरांत अग्निने अपना उग्ररूप धरकर चारों ओरसे ज्वाला प्रकट की और वह

ज्वाला वायुसे प्रेरित चारों ओर उछलने लगी २२।२३ गरुड़जीने उसे देख-कर अपने शरीर में एक सहस्र एक सौ मुख करके पहिले नदियों को पिया पीछे उन नदियों को छोड़कर अग्नि को शांत किया और फिर अपना स्वरूप छोटा करलिया २४ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्वात्रिंशोऽध्यायः ३२ ॥

तेंतीसवां अध्याय ।

सब देवताओं को जीतकर गरुड़जीका अमृतका घड़ा लेकर जाना और राहमें विष्णु-भगवान् के मिलने और परस्पर वरदान देनेकी कथा ॥

सूत बोले हे ऋषियो ! इसके उपरान्त गरुड़जी जिनके देह की चमक सूर्यकी किरणों के समान थी अमृत लेने को ऐसे वेगसे चले जैसे नदियां समुद्र में गिरती हैं और वहां पहुँचकर देखा कि अमृत के चारों ओर एक लोहे का बड़ा तीक्ष्ण चक्र घूमरहा है उसकी सूर्य के समान प्रभा देखकर गरुड़जी उसके चारों ओर घूमनेलगे और अत्यन्त छोटासा रूप धरके उस चक्रके आरोंकी संधि में होकर भीतर चलेगये १ । ४ वहां जाकर देखते क्या हैं कि दो सर्प जिनकी प्रभा अग्नि के समान जीभ बिजलीसी आंखें और मुख दीप्त बड़े क्रोधी पराक्रमी और ऐसे विषधारीथे कि जिसकी ओर एकदफे दृष्टि करें वह तत्काल भस्म होजावे अमृतको रखारहे हैं ५ । ७ गरुड़जी धूलसे उनकी आंखों को ढक दवाकर मार उस चक्रको हटाकर बड़े वेगसे उस अमृतके घड़ेको उठाकर ८ । १० और वहां से उड़े सूर्यकी किरणों को कुछ न मानकर सन्मुख होकर चले ११ थोड़ी दूरपर आकाशमें विष्णुभगवान् मिले और गरुड़के कामसे प्रसन्न होकर बोले कि वर मांग गरुड़जी बोले कि मैं आपकी ध्वजा में रहूं १२ । १३ और विना अमृत पिये अजर अमर होजाऊं १४ विष्णुभगवान्ने कहा कि ऐसाही होगा तब गरुड़जी बोले कि महाराज ! मुझसे भी आप वर मांगें विष्णुभगवान् बोले कि तुम हमारे वाहन हो १५ । १६ गरुड़जीने कहा ऐसाही होगा उपरान्त नारायणने गरुड़जी को अपनी ध्वजामें रक्खा और गरुड़जी नारायणके वाहन हुये इसके उपरान्त गरुड़जी उस अमृतके घड़े को लियेहुये आगे बड़े वेग से चले इन्द्रने उनको अ-मृत लिये हुये जाता देखकर अपना वज्र मारा उसके प्रहारको सहकर गरुड़जी हँसतेहुये बोले कि मुझे इस वज्रपात से जराभी कष्ट नहीं हुआहै परन्तु हे इन्द्र! तेरे वज्रका और उस ऋषिकी हड्डियोंका जिससे यह वज्र बनाहै मान रखने के लिये

अपना एक पर छोड़ताहूं १७।२१ ऐसा कहके गरुड़जीने अपना एक पर छोड़ दिया उस पर की सुन्दरताको देखकर प्राणियोंने उनका नाम सुपर्ण रक्खा और इन्द्र उसके अतुल पराक्रमको देखकर बोला कि मैं तेरे बलको जानना चाहताहूं और तेरे साथ मित्रता किया चाहताहूं २२।२५॥

इति श्रीभाषमहाभारते आदिपर्वणि त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ३३॥

चौंतीसवां अध्याय।

गरुड़जीका अमृत लेकर सर्पोंको देना व अपनी माताको दासीभावसे छुटाना और इन्द्रको अमृत के हरनेकी कथा॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! गरुड़जी इन्द्रकी यह बात सुनकर बोले कि हमने तुमको अपना सखा बनाया और जो तुमने हमारा बल पूंछा यद्यपि साधु लोग अपने बल और पराक्रम की स्तुति आप नहीं करते हैं परन्तु तुम्हारी मित्रताके कारणसे हम कहते हैं हमारा बल अप्रमाण और न सहने के योग्य है मैं इस पृथ्वी को जल वन पर्वत और समुद्रों सहित और तुमको भी एक परमें लटकाकर ले चल सक्काहूं १।४ और जड़ चैतन्य जीवों सहित चौदहों लोकों को पिंडी कर विना थके लेजासक्काहूं ५ यह सुनकर श्रीमान् इन्द्र बोले कि आपका कहना यथार्थ है आप जो चाहें सो करसक्के हैं अब आप कृपा करके हमारी मित्रता को ग्रहण कीजिये ६।७ और इस अमृतसे आपको कुछ कार्य न हो तो इसे हमें देदीजिये क्योंकि जिस किसी को आप अमृत देंगे वहही हमको बाधा करेगा ८ गरुड़जी बोले कि मैं अमृत किसी को न दूंगा एक कारण से इसे लिये जाताहूं ९ आज जहां इसको मैं रखदूं वहां से तुम हरलाना १० गरुड़जीकी यह बात सुनकर इन्द्र प्रसन्न होकर बोले बहुत अच्छा हम अमृत हरलावेंगे आप हमसे अब वर मांगिये ११ यह सुनकर गरुड़जी ने कद्रू के पुत्रोंकी दुष्टता वा छल और अपनी माता के दासी होनेका वृत्तान्त याद करके कहा कि १२ ये सर्प मेरे भक्ष्य होवें १३ इन्द्रने कहा ऐसाही होगा और मैं अब आपके साथ चलताहूं सो जहां आप अमृत धरैंगे वहीं से मैं अमृत हर कर लेआऊंगा ऐसा कहके इन्द्र गरुड़जी के साथ हुये और गरुड़जी शीघ्र अपनी माताके पास १४।१६ पहुँचकर सर्पोंसे बोले लो यह अमृत हम तुम्हारे कहने के अनुसार लेआये यहां कुशोंपर यह रक्खाहै १७ तुम सब स्नान करके इसको ग्रहण करना और अब आज के दिनसे मेरी माता अदासी होवे यह सुन

कर सर्प बोले तथास्तु ऐसाहीहो और अमृत लेनेकी लालसा से स्नान करने को गये इस अवसर में इन्द्र उस अमृतके घड़ेको उठाकर लेगये १८। २० जब सर्प स्नान करके अमृत के पास गये और उसे वहां न पाकर और यह जान कर कि इन्द्र हर लेगया है और यह हमारे छलका बदला है उन कुशाओं को जिनपर अमृत रक्खाथा चाटने लगे उस कर्म के करने से सर्पों के दो जीभ होगईं २१। २३ और तभी से अमृतका स्पर्श होनेसे कुशा पवित्र मानीगई और गरुड़जी प्रसन्नतापूर्वक अपनी माता सहित उस वन में बहुत काल तक विहार करतेरहे २४। २५ इतनी कथा सुनाकर सूत बोले हे ऋषियो! जो कोई मनुष्य इस गरुड़जी महाराज के माहात्म्य को सदैव सुनैगा और अच्छे ब्राह्मणों की सभा में पढ़ैगा वह निश्चय गरुड़जी के प्रसाद से स्वर्गवास पावैगा २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुस्त्रिंशतितमोऽध्यायः ३४॥

पैंतीसवां अध्याय।

प्रधान प्रधान नागों के नामोंकी कथा॥

शौनक ऋषि बोले हे सूत! तुमने कद्रू विनताके वर पाकर उनके पुत्र उत्पन्न होनेकी कथा तो सब विस्तारसहित कही अब कृपा करिके उन नागों के नाम जो प्रधान प्रधान हैं क्रम से वर्णन कीजिये १। ३ यह सुनकर सूत बोले हे ऋषियो! सर्पोंके बहुत होनेसे सब नाम नहीं कहसक्ताहूं जो मुख्य और प्रधान प्रधान हैं उनके नाम कहताहूं सुनो ४ पहिले तो शेषजी उत्पन्न हुये उनके पीछे वासुकि, ऐरावत, तक्षक, कर्कोटक, धनञ्जय ५ कालिय, मणिनाग, अपूरणनाग, पिंजरकनाग, एलापत्र, वामन ६ नील, अनील, कल्माष, शवल, आर्यकउग्रक, कलशपोतक ७ सुरामुख, दधिमुख, विमलपिंडक, आप्त, कर्कोटक, शंख, वालिशिख ८ निष्ठानक, हेमगुह, नहुष, पिंगल, बाह्यकर्ण, हस्तिपद, मुद्गरपिंडक ९ कंबल, अश्वतर कालीयक नाग, वृत्त दोनों संवर्त्तक जिनको पद्मनाग भी कहते हैं १० शंखमुख नाग, दूसरा कूष्मांडक, क्षेमक नाग, पिंडारक नाग ११ करवीर, पुष्पदंष्ट्र, बिल्वक, बिल्वपाण्डुर, मूषकाद, शंखशिरा, पूर्णभद्र, हर्यांद्रक १२ अपराजित, ज्योतिक, श्रीवह, कौरव्य, धृतराष्ट्र, शंखपिण्ड १३ विरजा, सुबाहु, शालिपिंड, हस्तिपिंड, पिठारक, सुमुख, कौणपाशन १४ कुठरकुंजर, प्रभाकर, कुमुद, कुमुदाक्ष, तितिरि, हलिक १५ कर्दममहानाग, बहुमूलकनाग, कर्कर, अकर्कर, कुंडोदर, महोदर १६ आदि

क्रमसे उत्पन्न हुये हे ऋषियो ! इन नागोंकी संतान और उस संतान की संतान की संख्या सहस्रलक्ष अर्बुद होने के कारण से कही नहीं जायसक्ती १७।१६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पंचत्रिंशतितमोऽध्यायः ३५ ॥

छत्तीसवां अध्याय।

शेषजीका तपस्या करना ब्रह्माजीका उनको वर देना शेषजीका पृथ्वीको अपने मस्तकपर धारण करना॥

शौनक बोले हे सूतपुत्र ! आपने नागों के नाम तो कहे अब कृपाकरके यह कहिये कि उन सर्पोंने अपनी माता कद्रूके दियेहुये शापको जानकर फिर क्या किया १ सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! शेषजी अपनी कद्रू माताको छोड़कर बड़ा उग्र तप करने लगे केवल वायु खाकर रहते थे और जितेन्द्रिय होकर निरंतर सावधानी से व्रत करते थे प्रथम तो शेषजी ने गंधमादन पर्वत पर तप किया फिर बदरिकाश्रम में किया उपरांत गोकर्ण और पुष्करवन और हिमालय में किया २।३ उनके उग्र तपको देखकर ब्रह्माजी वहां आये शेषजीको तपमें बैठे हुये जिनकी देहीका मांस और चमड़ा सूखगया था देखकर बोले हे शेष ! तेरे उग्र तप से सब संसार तपरहा है हम तेरे ऊपर प्रसन्न हैं जो तेरी इच्छा हो सो हमसे मांग ४।६ यह सुनकर शेषजी बोले हे पितामह ! मेरे सबभाई मंदबुद्धिहैं आपस में परस्पर द्वेष और ईर्षा रखते हैं विनता माता से भी वे शत्रुता रखते हैं और हमारा आकाश में चलनेवाला भाई बड़ा बलवान् गरुड़ है उसे भी नहीं देखसक्ते इस कारण से चाहताहूं कि मैं उनकी सूरत न देखूं और मैं अब तपके बीच में अपने इस शरीरको छोडूंगा यह मैं चाहताहूं कि इस शरीरको छोड़ने पर मेरा उनसे किसीतरह समागम न हो ७।११ यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि हम तेरे भाइयों की कुरीति को जानते हैं और जो कद्रू ने सर्पोंके नाश होनेका शाप दिया है उसे भी हम जानते हैं उसके दूर होने का भी यत्न हमने पहिले से कर रक्खाहै तुम इसकी कुछ चिंता मत करो जो कुछ अब तेरी इच्छा हो सो हमसे मांगले १२।१४ तू बुद्धिमान् है और तेरी बुद्धि धर्ममें है शेषजी बोले हे ब्रह्माजी ! मेरी बुद्धि धर्म अन्तःकरणके निरोध और तपमें रहै यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि मैं तेरे इस वर मांगने से बहुत प्रसन्न हुआ अब तू मेरी आज्ञा से प्रजाके हितके लिये इस डामाडोल पृथ्वी को समुद्र पर्वत और वनों सहित अपने शिरपर रखकर अचल कर १५।१८ शेषजी बोले कि आप वर-

दाता प्रजापति महीपति और जगतपति हैं आपकी आज्ञाका में पालन करूंगा आप इस पृथ्वी को मेरे शिरपर रख दीजिये १९ ब्रह्माजी बोले कि तुम इस पृथ्वी के नीचे चले जाओ यह तुमको जाने को आप राह देगी २० यह सुनकर शेषजी पृथ्वी में बिलके राह घुसकर पृथ्वी के नीचे पहुँचे और पृथ्वी को समुद्र आदि सहित अपने शिरपर रख लिया २१ सूतजी बोले हे ऋषियो! इस बातको देखकर ब्रह्माजी बोले में तेरे ऊपर बहुत प्रसन्नहूं तुम आजके दिन से नागों में उत्तम धर्मदेव शेष कहाओगे और जो तुमने इस पृथ्वी को अपने शिरपर रखकर इसको अचल किया है इस कारण से तुमभी जैसा में हूं और इन्द्र है वैसेही तुमभी होगे २२ इतनी कथा सुनाकर सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! तब से शेषजी इस पृथ्वी के नीचे बसते हैं ब्रह्माजी ने इसके उपरांत गरुड़जी से और शेषजी से मित्रता करादी २३। २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षट्त्रिंशोऽध्यायः ३६॥

सैंतीसवां अध्याय।

सर्पोंकी माताके शापसे बचने के लिये मंत्र विचारने की कथा॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! वासुकि नाग ने अपनी माता का शाप सुनकर सब सर्पों को बुलाकर बैठाया और कहा कि अब कोई ऐसा मन्त्र विचारो जिससे यह शाप हम लोगों को बाधा न करे १। २ क्योंकि सब शापों के दूर करने को तो बहुत से यत्न हैं परन्तु माता का शाप किसी तरह दूर नहीं होसक्ता ३। ४ सिवाय इसके माता ने यह शाप हमको जरामरण से रहित श्रीब्रह्माजी के सन्मुख दिया है ब्रह्माजी ने भी माता को ऐसा शाप देने से मना नहीं किया इससे हम निश्चय जानते हैं कि यह शाप हम लोगों का नाश करेगा इस हेतुसे जबतक राजा जनमेजय यज्ञ न करने पावें तबतक ऐसा यत्न विचारना चाहिये जिससे हम सब अग्नि में जलने से बच जावें ५। ६ सूतजी बोले हे ऋषियो! वासुकि के ऐसा कहने पर सर्पों के मुखिया मुखिया सब सर्प सलाह करने लगे एक बोला कि हम उत्तम ब्राह्मण बनके जनमेजय के पास जायँ और उससे यह भिक्षा मांगें तेरा यज्ञ न होवे १०। ११ दूसरे ने कहा हमारी समझ से मनुष्यरूप धरकर राजा के पास चलें और उसके हित के मन्त्री बनकर उसको ऐसी सलाह दें जिसमें वह यज्ञ न करे १२। १३ और उसको इस लोक और परलोक के बहुत से भयानक दोषों को दिखलाकर उस

की यज्ञ करनेकी बुद्धिको दूर करें १४। १५ अथवा जो सर्पसत्रका जाननेवाला राजयज्ञ में उपाध्यायहो उसको कोई सर्प काटखाय उसके मरजाने से यज्ञ न होगा १६। १७ और जो कोई और भी सर्पसत्र यज्ञका विधान जाननेवाला यज्ञ कराने आवै उसको भी इसी तरह काटें १८ तीसरा बोला यह बात अज्ञानताकी है ब्रह्महत्या अच्छी नहीं होती १६ आपत्तिकालमें ऐसा काम करना चाहिये जिसका फल धर्म हो अधर्म न हो २० चौथा बोला कि हमलोग बिजली और बादल बनकर ऐसी वर्षा करें कि यज्ञकी जलतीहुई अग्नि बुझ जावै २१ और रात्रिमें कुछ सर्प जाकर स्रुवाआदि यज्ञके पात्रों को चुरालावें ऐसा विघ्न होने से यज्ञ न होगा २२ अथवा उस यज्ञ में सैकड़ों सर्प चलकर सब मनुष्यों को काटें २३ अथवा सर्पसंस्कार कीहुई यज्ञकी हविको अपने मूत्र और विष्ठासे अपवित्र करदें २४ पांचवां बोला कि राजा के यहां ऋत्विज् बनकर चलो और यज्ञको उलटा करायकर राजा से दक्षिणा मांगो २५ छठा बोला कि जब राजा जल में स्नान करने जावे उस समय उसको पकड़कर इस लोक में बांधकर लेआवें सातवां बोला २६। २७ कि राजा को पकड़कर काटखाओ उसके मरने पर यह सब अनर्थ मिटजायगा २८ सूतजी बोले हे ऋषियो! इस प्रकार से सब सर्प अपनी अपनी सलाह देकर वासुकि नागसे बोले कि अब आगे जो कुछ आपका विचारहो सो कीजिये २६ वासुकिनाग बहुत देर तक अपने मन में विचार करके बोला ३० कि तुम्हारी एककी भी सलाह हमारी रुचिकारी नहीं हमें इनमें से किसी सलाह में कल्याण नहीं दीखता है ३१ हमारी समझ से कश्यपजी के पास चलो और वह जो कुछ आज्ञा दें वह करो तुम्हारी सलाह के अनुसार हम नहीं किया चाहते हैं हम तो उस बात के करने में हैं जिससे तुम लोगों का भलाहो और मुझे बड़ी चिन्ता इस कारण से है कि अन्त में बुराई भलाई हमारे शिरपर आवेगी ३२। ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तत्रिंशोऽध्यायः ३७॥

अड़तीसवां अध्याय।

शापसे बचनेके लिये एलापत्रनागका वासुकिनागको अपनी बहिन जरत्कारु ऋषिसे विवाह करने के लिये सलाह देना॥

सूतजी बोले कि हे ऋषियो! एलापत्र नाम नाग उन सब नागोंकी सलाह और वासुकि नाग का उत्तर सुनकर बोला १ कि यज्ञ अवश्य होगा और वह

राजा जनमेजय पाण्डववंशका है जैसा तुम विचाररहेहो तैसा करिके उसके यज्ञ को विध्वंस नहीं करसक्ते हो २ दैवहत प्राणी को चाहिये कि दैवही का आश्रय ले दूसरा यत्न करने से कुछ नहीं होसकता ३ हमलोग सब दैवहत हैं इससे हमको भी दैवकाही आश्रय करना चाहिये सुनो जिस समय माताने शाप दिया था उस समय में माताकी गोद में था उसके शापको सुनकर सब देवता माता को यह नाम धरते कि कद्रू बड़ी तीक्ष्ण है ब्रह्माजी के पास गये और कहा महाराज! कद्रू के सिवाय इस संसारमें ऐसा कौन क्रूर होगा जो अपने प्यारे पुत्रों को ऐसा शाप देगा परन्तु आपने भी पास होनेपर उसको ऐसा शाप देने से निषेध न किया और यह कहा कि ऐसाही होगा यह बड़े आश्चर्यकी बातहै इसका क्या कारणहै ४ । ८ ब्रह्माजी बोले कि सर्प अब बहुत होगयेहैं और बड़े विषधारी हैं सब संसारको दुःख देरहे हैं इससे हमने उनके नाश होने के शाप देने को निषेध नहीं किया परन्तु उन्हीं सर्पों का नाश होगा जो काटने का स्वभाव रखनेवाले नीच और पापी हैं और जो धर्मात्मा सर्प हैं उनको यायावर ऋषिके कुलका जरत्कार नाम ऋषिका पुत्र आस्तीक उस भयसे छुटावैगा ६ । १३ यह सुनकर देवता बोले कि वह जरत्कार ऐसा महात्मा पुत्र किस स्त्री से उत्पन्न करैगा ब्रह्माजी बोले जरत्कारऋषि अपनासा नाम रखनेवाली वासुकि नागकी बहिन के गर्भ से ऐसा पुत्र उत्पन्न करैगा एलापत्र नाग बोला कि ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर देवता बोले कि ऐसाही होय और ब्रह्माजी स्वर्गको चलेगये इससे हे वासुके! सर्पोंकी आपत्ति दूर करने के लिये आप अपनी जरत्कार नाम बहिन को भिक्षा मांगते हुये जरत्कार नाम सुव्रतऋषिको देदीजिये १४ । १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि अष्टत्रिंशोऽध्यायः ३८ ॥

उन्तालीसवां अध्याय।

वासुकि नागका जहां तहां सर्प भेजकर जरत्कार ऋषिको ढुँढवाना ॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! एलापत्र नागके यह वचन सुनकर सब सर्प बहुत अच्छा बहुत अच्छा कहने लगे १ और वासुकिनाग भी प्रसन्न होकर उस जरत्कार नाम कन्या को अपनी रक्षामें रखने लगा २ इसके उपरान्त थोड़े दिनों पीछे देवता और दैत्योंने वासुकिनाग को रस्सी बनाकर समुद्र को मथा जब यह कर्म समाप्त होगया तब सब देवता वासुकिनाग को ब्रह्माजी के पास

लेगये और कहा कि महाराज! यह वासुकिनाग हमारा बड़ा मित्र और हितकारी है परन्तु इसको अपनी माताके शापका भयरूपी ज्वर दिनरात चढ़ा रहताहै और आप भी इस जाति के सर्पोंका हित चाहते हैं इससे कृपा करके आप इसके मनका दुःख दूर करें ३। ७ यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि जो एलापत्र नागने वासुकि से पहिले कहाथा वह मेरेही मुखके कहे हुये वचन थे ८ समय आनेपर पापी सर्पोंका नाश होगा और धर्मचारियों का नाश न होगा ९ जरत्कार नाम ब्राह्मण संसार में उत्पन्न होकर उग्र तप कररहा है समय आनेपर वासुकि अपनी जरत्कार नाम बहिन उसको देदे १० और जो कुछ बातें एलापत्रने सर्पों के हितकी कही हैं वे सब सच हैं और वैसाही होगा ११ सूत बोले हे ऋषियो! वासुकिनाग ब्रह्माजी की यह बात सुनकर अपने घरको आया और सब सर्पोंसे उक्त वृत्तांत कहकर बहुत से सर्पोंको जरत्कार ऋषिके ढूंढ़ने को नियत किया और कहा कि जब उस ब्राह्मण को विवाह करने की इच्छा होय तभी हमको खबर देना १२। १४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ३९॥

चालीसवां अध्याय।

परीक्षितका वनमें अहेर खेलने जाना और अज्ञानता से मरा हुआ सर्प एक ऋषिके गले में डालना॥

इतनी कथा सुनकर शौनक ऋषि बोले हे सूतपुत्र! तुमने जरत्कार नाम वर्णन किया है अब कृपा करिकै जरत्कार शब्दका अर्थ कहिये १। २ यह सुनके सूत बोले हे ऋषियो! जरत्शब्द का अर्थ शरीर और इन्द्रियों की शक्तिका क्षय होना है और कारशब्द का अर्थ दारुण है अर्थात् उसका शरीर जो कामबल से दारुण होरहा था उसको उसने धीरेधीरे तीव्र व्रत करके दुर्बल कर दिया और वासुकि की बहिन भी ऐसीही थी ३। ४ यह सुनकर शौनक ऋषिने हँसकर कहा बहुत श्रेष्ठ अब आप आस्तीक की उत्पत्तिका वृत्तांत कहें ५। ६ सूत बोले हे ऋषियो! वासुकिने अपनी बहिन को जरत्कार को देना विचारकर बहुत से सर्पोंको बुला कर कहा कि तुम लोग जहां जरत्कार हो वहां रहो जब वह विवाह की इच्छा करै तभी हमसे आकर कहो और जरत्कार भी उसी समय में उग्र तपस्या करते थे यद्यपि सब पृथ्वीपर भ्रमण करते थे परंतु स्त्री की इच्छा कभी नहीं करते थे उनका अंतःकरण बड़ा शुद्धथा ७। ८ इसी अवसर

में पांडवों के वंशमें एक परीक्षित नाम बड़ाप्रतापी राजा हुआ १० उसको भी अपने पिता दादाकेही तुल्य अहेर खेलनेका अत्यंत व्यसन था ११ नित्य मृग वाराह भैंसा आदिको अहेर मारकर लाता था १२ एक दिन राजा परीक्षितने एक मृगको बाणसे मारा वह मृग उसको न मिलने के कारण से राजा उसको ढूंढ़ता हुआ बड़े घने वनमें चलागया यद्यपि राजा परीक्षितका बेधाहुआ मृग जीताजी कभी भीतर वनमें नहीं जासक्ता था परंतु जैसे रुद्र भगवान् यज्ञ मृगको भेदकर स्वर्ग को गये उसीतरह इस मृगको बेधकर राजा भी अपने स्वर्ग जाने के कारण को प्राप्त करने के लिये हाथमें धनुष लियेहुये उस मृगको देखता देखता वनमें दूर निकलगया और भूंख प्यास आदि से व्याकुल हुआ थोड़ी दूरपर उसने एक आश्रम देखा उसमें एक बड़े तपस्वी ऋषि जो बछड़ों के दूध पीते में मुखसे निकले हुये भागों को चाटकर रहतेथे वास करतेथे राजा भूंखा प्यासा जल्दी से उन मुनिके आश्रम में चलागया और अपना धनुष उठाकर बोला कि महाराज मैं अभिमन्युका पुत्र परीक्षितहूं १३। १६ मेरे बाणसे बिधा हुआ मृग मिलता नहीं है आपने तो इधर आते नहीं देखा मुनिने मौनव्रत रखने के कारण से कुछ उत्तर नहीं दिया २० राजाने क्रोध करके एक मरेहुये सर्प को अपनी धनुषकी कोटसे उठाकर ऋषिके गले में डालदिया २१ ऋषि इस पर भी कुछ न बोले परीक्षित कुछ देर तक उनको उसी अवस्था में देखता रहा उपरांत क्रोध छोड़कर उन मुनिको उसी अवस्था में छोड़कर अपने नगर को आया २२ उन महामुनि ने अपना अपमान भी देखकर राजाको शाप नहीं दिया २३ और राजा उस धर्मपरायण ऋषि को जानता नहीं था इस कारण से ऐसा अपमान किया २४ सूत बोले हे ऋषियो! उन मुनिका एक शृङ्गी नाम पुत्र था वह अति तीक्ष्ण, तेजधारी, महातपस्वी, बड़े व्रतवाला, महाक्रोधी और दुःखसे प्रसन्न होनेवाला था २५ राजा के जाने के पीछे वह ब्रह्मलोक से ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर घरको आता था मार्ग में उसके कृशनाम मित्र ने हँसते खेलते किसी बातपर क्रोध करके ताना देकर कहा तुम क्या गर्व करते हो तुम्हारा पिता कैसा तेजस्वी और तपस्वी है जो उस के कंधेपर मराहुआ सर्प धराहुआ है २६। २६ तुम हमसे सिद्ध और ब्रह्मज्ञानी ऋषिपुत्रों के बीच में कुछ मत कहो तुम्हारा वह पराक्रम और गर्वके वचन अब कहां गये जो अपने पिता को इस अवस्था में देखरहे हो और मुझको बड़ा दुःख इस बातसे

और मालूम होताहै कि तुम्हारे पिता ने उसको शाप नहीं दिया ३०।३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चत्वारिंशोऽध्यायः ४०॥

इकतालीसवां अध्याय।

राजा परीक्षितको शृङ्गीऋषिके शाप देने की कथा॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! शृङ्गीऋषि कृशसे अपने पिताके कंधेपर मराहुआ सर्प धरे जाने का हाल सुनकर बड़ा क्रोधित हुआ और पूछने लगा कि अब मेरा पिता कैसे है कृश बोला कि उसके कंधेपर मराहुआ सर्प अभीतक रक्खाहै १।३ शृङ्गी बोला मेरे पिताने उस अधर्मी राजा का क्या बिगाड़ा था जो उसने ऐसा किया मुझसे तुम सत्य२कहो और मेरे तपका बल देखो ४ यह सुनकर कृश बोला कि अभिमन्युका बेटा राजा परीक्षित अहेर खेलने को आयाथा उसने एक मृगके बाण मारा वह मृग उस तीर को खाकर वनकी ओर भागा और राजा भी उसके पीछे २ भागा जब यहां पहुँचा तब तेरे आश्रममें तेरे पिताको बैठेहुये देखकर राजा ने उस मृगका हाल कईबार पूछा परन्तु तेरे पिता ने मौनव्रत रखनेके कारण से कुछ जवाब नहीं दिया तब राजा ने भूख प्यास और श्रम से दुःखी होने से क्रोध के आवेशमें एक मरा हुआ सर्प अपनी धनुष की नोक से उठाकर तेरे पिता के कंधेपर रख दिया ५।८ राजा हस्तिनापुर को चला गया और तेरे पिता उसी तरह बैठे हैं ९ शृंगी यह हाल सुनकर बड़ा दुःखित हुआ और क्रोध से लाल आंखें करके आचमन कर राजा परीक्षित को शाप देता भया १०।११ कि जिस पापी और ब्राह्मणों का निरादर करनेवाले राजा ने मेरे पिताके कंधे पर मरा हुआ सर्प धराहै उस को सर्पों का राजा तक्षक जो बड़ा क्रोधी और विषधारी है आज की सातवीं रात को मेरे वाक्यबल से प्रेरित होकर काटकर यमलोक में पहुँचावेगा १२।१४ ऐसा शाप देकर शृंगी ऋषि अपने आश्रम को गया और वहां गोशाला में बैठेहुये अपने पिता के कंधे पर उस मरे सर्पको देखकर दुःखित होकर रोने लगा और बोला कि आप के इस अपमान को सुनकर मैंने राजा को यह शाप दियाहै कि आज की सातवीं रात को उसे तक्षक काटकर यमलोक को पहुँचावेगा शृंगी के यह वचन सुनकर १५।१९ शमीकऋषि बोले हे पुत्र! तैंने यह काम हमारी इच्छा के अनुसार नहीं किया तपस्वियों का यह धर्म नहीं है हम उसके देश में बसते हैं २० और वह हमारी रक्षा करता है हमारी ओर से राजापर हमेशा क्षमा

होनी चाहिये जो राजा धर्मसे रक्षा न करे तो हम लोग सुखपूर्वक कोई धर्म नहीं करसक्के और धर्मात्मा राजा की रक्षा में रहकर बड़े २ धर्म करतेहैं और उस धर्म में से कुछ भाग राजा को भी मिलताहै इस कारण से राजा तो सदैव क्षमा योग्य है २१। २४ और यह परीक्षित तो विशेष करके क्षमाके योग्य इस कारण से है कि वह अपने दादा की तरह प्रजाका पालन और धर्म की रक्षा करताहै २५ उसने हमारा यह अपमान केवल भूंख प्याससे दुःखी होने और मेरे मौनव्रतको न जानने के कारण से कियाथा २६ हे पुत्र! जिस देशमें राजा नहीं होता वहां चोरी आदि बड़े २ दोष निरन्तर हुआ करते हैं राजा ही केवल दण्ड देकर इन उपाधियों को दूर करताहै जब राजा के दण्ड देने से स्वस्थता होजाती है तब सब लोग निर्विघ्न धर्म करते हैं इस से धर्मका होना राजा ही के होने से होता है और धर्मसे स्वर्ग वास मिलता है धर्मात्मा राजा होने ही से यज्ञ होते हैं यज्ञों से देवता प्रसन्न होते हैं २७। २६ देवताओं के प्रसन्न होने से वर्षा होती है वर्षा के होने से अन्नादि उत्पन्न होते हैं और अन्नादि के होने से सब जीवों का पालन होता है मनुजी ने कहा है कि जो राजा मनुष्योंका पालन करे और धर्म से राज्य करे वह दश वेदपाठियों के बराबर है तैंने यह बुरा किया जो ऐसे राजाको शाप दिया ३०। ३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकचत्वारिंशत्तितमोऽध्यायः ४१॥

बयालीसवां अध्याय।

शमीकऋषिका अपने शिष्यको राजा परीक्षितके पास भेजकर शृङ्गीऋषिके शापका हाल कहवाना और राजाका शोक करके उसका यत्न करना॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! शृंगीऋषि अपने पिताकी उक्त बातें सुनकर बोले महाराज मुझ से जो यह कर्म साहस का या बुरा आपका प्रिय अथवा अप्रिय बनपड़ाहै वह अब झूंठ नहीं होसक्ता क्योंकि मैं हँसी मेंभी कभी झूंठ नहीं बोलता हूं यह तो शापथा १। २ यह सुनकर शमीक ऋषि बोले कि मैं जानता हूं कि तू सत्यवादी और उग्र प्रभाव वाला है तेरा कहा झूंठ न होगा ३ परन्तु पिता को जो पुत्र जवान भी होगया हो तो भी समझाना उचित है इससे मैंने तेरे बालकपन और तेरे साहस को देखकर तुझको समझाया है ४। ६ अब तू शमरूप होकर वनमें रह और वनफल खाकर अपने क्रोध को मार क्रोध करने से तप और धर्म क्षीण होजाता है और परगति नाश होजाती है और

क्षमारूप रहनेवाले को दोनों लोकों में कल्याण होता है जो मनुष्य जितेन्द्रिय होकर क्षमापूर्वक रहते हैं उनको ब्रह्माजी के पास के लोकों में वास मिलता है ७। १० इसके पीछे शमीक मुनि ने अपने सौम्य स्वभाववाले गौरमुख नाम शिष्य को बुलाकर कहा कि तू जल्दी से राजा परीक्षित के पास जाकर यह सब वृत्तान्त सुनाकर कहियो कि मुनिने तो शांत किया था परन्तु उनके क्रोधी पुत्र ने बालस्वभाव से तुमको शाप दिया है सो अब जो कुछ तुम योग्य समझो सो करो ११। १४ वह शिष्य मुनि की आज्ञा पाकर वहां से तुरन्त राजा परीक्षित के राजमन्दिर में पहुँचा और द्वारपालकों से अपनी खबर कराई १५ राजाने सुनते ही उसे भीतर बुलालिया और उसको यथाविधि पूजन करके जब आने का हेतु पूंछा तब वह शिष्य सब मंत्रियों के सामने बोला कि महाराज आपके देश में एक जितेन्द्रिय शांत और बड़े तपस्वी शमीक नाम ऋषि रहते हैं १६। १७ जिनके कंधेपर आप मराहुआ सर्प रख आये थे उन्होंने मुझे यह कहनेको आपके पास भेजा है कि हम ने तेरे अपराधको क्षमा किया था परन्तु हमारे पुत्रने क्षमा न करके १८। १६ आप को यह शाप दियाहै कि राजा को सात रात्रि में तक्षक सर्प काटैगा और राजा मरजायगा २० सो आपका मरण निश्चय होगा आप रक्षाका यत्न कीजिये २१ और मुनीश्वर ने आपके पास मुझे इसी कारण से भेजा है कि यह शाप अन्यथा न होगा आप यत्नकरें २२ राजा इस बातको सुनकर और उस मौन-व्रतधारी मुनि की कथा और अपने अपराध को जानकर अत्यन्त दुःखी हुआ और अपने मरने का इतना शोच नहीं किया जितना उस अपराध के करने का शोच किया २३। २६ इसके पीछे राजाने गौरमुख को बिदा किया और मुनीश्वर से कहला भेजा कि आप इसी प्रकार कृपा किया करें २७ इसके पीछे राजा ने मंत्रियों को बुलाकर सलाह की और सलाह करके एक मंदिर एक खंभका ऐसा बनवाया कि और जीव की तो क्या गति है वायु भी वहां नहीं जासक्की थी राजा उस में स्थित हुआ और चारों ओर से रक्षा के लिये बड़े २ रक्षक नियत कर दिये और बड़े २ वैद्य और नाना प्रकारकी विष दूर करनेवाली औषधि और बड़े २ मंत्र सिद्ध ब्राह्मणों को रक्षाके लिये इकट्ठा किया राजा जो कुछ राजकाज होता वहीं बैठाहुआ करता २८। ३२ जब सातवां दिन आया तब काश्यप ऋषि इस हाल को सुनकर यह विचार करते

हुये चले कि आज राजा को तक्षक के विष से अच्छा करके धन आदि जो कुछ मुझे इच्छा होगी सो लूंगा ३३।३५ राह में तक्षक ने वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके उन से पूछा कि आप ऐसी जल्दी २ कहां को जाते हैं ३६।३७ काश्यपजी बोले कि आज सर्पों का राजा तक्षक परीक्षित को काटेगा और मैं उसको उसके विषसे अच्छा करूंगा यह सुनकर तक्षक बोला कि तक्षक मैंही हूं तू अपने घरको लौटजा मेरे काटे की चिकित्सा नहीं है ३८।४० यह सुनकर काश्यपजी बोले कि मेरे विद्याबलको देखियो तेरे काटेकोही तत्काल अच्छा करूंगा ४१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विचत्वारिंशतितमोऽध्यायः ४२॥

तेंतालीसवां अध्याय।

तक्षक सर्प का राजा परीक्षित को काटना॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! काश्यपजी की बात सुनकर तक्षक बोला कि ऐसाही पराक्रमी तेरा मंत्रहै और तू मेरे काटे हुये की चिकित्सा कर सक्ताहै तो ले मैं इस बड़के पेड़ को काटता हूं तू अपने मंत्रका बल दिखा १।२ काश्यपजीने कहा अच्छा फिर तक्षक ने उस बड़के पेड़को काटा और वह वृक्ष विषकी अग्नि से जलने लगा जब जलकर राख होगया तब तक्षक बोला कि लो अब इस वृक्षको जिवाओ ३।६ यह सुनकर काश्यपजी ने उस जले हुये वृक्ष की राख को इकट्ठा किया और फिर अपनी विद्या से जिला दिया पहले उस राख में अंकुर उत्पन्न हुये फिर दोपत्ते का वृक्ष हुआ उपरांत क्रम से जैसा वृक्ष था वैसा ही होगया तक्षक काश्यपजी का यह काम देखकर बोला कि आप सामर्थ्यवान् हैं यह काम आप का कुछ अद्भुत नहीं है आप मेरे अथवा दूसरे सर्प के विष को निश्चय अच्छा करसक्ते हैं परन्तु उस राजा की आयु क्षीण है इस कारण से जो आप की विद्या ने वहां काम न दिया तो आप का सूर्य रूपी यश राहुग्रसित के समान अस्त हो जायगा इससे आपको जो कुछ राजा से मांगना हो वह मुझ से ही लेकर लौट जाइये मैं आप को दुर्लभ पदार्थ भी दूंगा ७।१५ यह सुनकर काश्यपजी बोले कि मैं धन के लिये वहां जाता था जो तुम मुझ को दो तो मैं लौट जाऊं १६ तक्षक बोला कि जितना तुम धन चाहते हो उस से अधिक मैं दूंगा १७ सूतजी बोले हे ऋषियो! काश्यपजी ध्यान से राजा परीक्षित को क्षीणायुष जानकर तक्षक से धन लेन

कर लौटगये १८। २० और तक्षक वहाँ से हस्तिनापुर को गया और राजा को बड़े २ मंत्र और विष हरनेवाली ओषधि से रक्षित सुनकर उपाय सोचने लगा थोड़ी देरमें उपाय सोचकर उसने नागों को बुलाकर कहा कि तुम लोग तपस्वियों का रूप धरके राजा को आशीर्वाद देकर जलकुश और फल दो नागों ने वैसाही किया २१। २५ और राजा ने दण्डवत् करके वह जलकुश और फल लेकर अपने पास रखलिये २६ और उन तपस्वीरूप नागों को धन देकर बिदा किया उपरान्त राजा ने अपने भाई बन्धु और मन्त्रियों को बुलाकर कहा देखो ये तपस्वियों के लाये हुये फल कैसे सुन्दर हैं आप लोग इनको भोजन करें हम भी एकदो खायँगे यह सुनकर सब लोग उन फलों के खाने को बैठे २७। २९ दैवयोग और मुनि के शाप से राजा ने वही फल लिया जिसमें बैठकर तक्षक आया था ३० जब उस फल को तोड़ा तब उस में से एक लाल रंगका कीड़ा जिसकी आंखें काली २ थीं निकला उस को हाथ में लेकर परीक्षित बोला कि अब सूर्य अस्त होने का समय है अब विषका तो भय हमको हैही नहीं यही कीड़ा हम को काटकर मुनि के वचन को सत्य करै ३१। ३२ मंत्रियों ने भी काल से प्रेरित होकर अपना यही सम्मत दिया उपरांत राजा ने भी उस कीड़ेको अपनी गरदन पर रखकर उस को देखकर हँसने लगा उसी समय तक्षक ने भी अपना स्वरूप धरकर राजा को लपेट लिया और बड़ा शब्दकरके काट खाया ३४। ३६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रिचत्वारिंशत्तितमोऽध्यायः ४३॥

चवालीसवां अध्याय।

राजा परीक्षितके मरनेपर उसका कर्म होने और उसके पुत्र जनमेजय के राज्याभिषेक होने की कथा॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! राजा के सब मंत्री उस विष से उठी अग्नि और उस तक्षक के नादको सुनकर भयभीत होकर भागे और अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगे और वह तक्षक जिसके काटने से राजा ऐसे गिरपड़ा जैसे कोई बिजुली गिरने से गिरपड़े राजा को काटकर चमकताहुआ आकाशमार्ग होकर चला उसको जाते हुये सब मंत्रियों ने देखा १। ४ इस के उपरान्त सब ब्राह्मण राजपुरोहित और मंत्रियों ने मिलकर उस राजाका परलोकसम्बन्धी कर्म किया ५ और अच्छा शुभ मुहूर्त्त देखकर उस के पुत्र का राजतिलक किया

और उसका नाम जनमेजय रक्खा ६ वह राजा यद्यपि बालक था परन्तु अपने प्रपितामह राजा युधिष्ठिर के समान राज्यशासन करने लगा ७ मंत्रियों ने उसके तेजको देखकर काशी के सुवर्णवर्मा नाम राजा से उसकी वपुष्टमा नाम कन्या जनमेजय से विवाह करने को मांगी ८ और सुवर्णवर्माने भी धर्मपरीक्षा करके उस कन्याका विवाह जनमेजय से कर दिया जनमेजयने उसको पाकर फिर दूसरी स्त्री की तरफ दृष्टि न की ९ और उसके साथ इसप्रकार से विहार किया जैसे पहिले राजा पुरूरवा ने उर्वशी के साथ किया था १० और वह पतिव्रता वपुष्टमा भी राजा जनमेजय को पाकर विहार के समय प्रीति से रमण करने लगी ११ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुश्चत्वारिंशतितमोऽध्यायः ४४ ॥

पैंतालीसवां अध्याय।

जरत्कारका पृथ्वीपर भ्रमण करना और एक गढ़हेले में नीचेको मुँह कियेहुये अपने पितरों को लटकते हुये देखना ॥

सूतजी बोले हे ऋषियो ! इसी अवसर में जरत्कार ऋषि भी उग्र तप करने लगे केवल वायु खाते थे दिन रात पृथ्वीपर तीर्थादिकों में घूमा करते थे जहां सांझ होजाती वहीं टिकरहते थे और ऐसे २ आचरण करते थे जो अशुद्ध अंतःकरणवाले मनुष्य कभी नहीं करसक्ते हैं और निराहार रह २ कर जरत्कार ने अपनी देहीको बिल्कुल सुखादिया था एक समय वह जरत्कार घूमते हुये एक स्थान में पहुँचे वहां देखते क्या हैं कि कुछ मनुष्य एक गढ़हेले में नीचे को मुख किये एक खस के खम्भेके आश्रय लटकरहे हैं १। ३ उनको देखकर उनकी दीनतापर दया करके जरत्कार उनके पास गये और कहा कि आपलोग कौन हैं जो इस गढ़हेलेमें इस प्रकार से लटके हुये हैं इस खसके खम्भे में अब केवल एक जड़ बाकी रही है उसे भी चूहा बिलसे निकल २ कर काटेडालता है ४। ७ उसके कटजानेपर आपलोग सब नीचे गिरपड़ोगे ८ आप अपनी आपत्ति का हाल कहिये जो मेरी तपस्या के चौथाई तीसरे अथवा आधे हिस्से से या पूर्ण तपस्या से आपका दुःख दूर होसके तो मैं देने को तैयारहूँ ९। ११ यह सुनकर वे लोग बोले कि आप ब्रह्मचारी हैं और हमारी आपत्ति पर तरस खाकर हमारी रक्षा करना चाहते हैं परन्तु तपके फल से कुछ नहीं होसक्ता १२ हमारे पास भी तपका फलहै परन्तु हमारी तो यह गति संतान के नष्ट होने से

हुई है १३ हम लोग यायवर ऋषि हैं हमारे अब संसारमें केवल एक पुत्र रहगया है नाम उसका जरत्कार है वह बड़ा तपस्वी और वेदों का जाननेवालाहै परन्तु उसके स्त्री नहीं और न कोई पुत्र या भाई है यह जो खस के खम्भे में जिसके आश्रय हम लटके हुये हैं एक जड़ रहगई है वह केवल हमारे कुलमें वही एक पुत्र रहा है और उसको भी चूहारूपी महाकाल दिनरात्रि भक्षण करता चला जाता है इससे हे महाराज! आपने जो हमपर दया की है तो कृपा करके अगर आपको जरत्कार मिले तो उससे हमारा सब दीन वृत्तान्त कहकर उसे ऐसा उपदेश कीजियेगा जिसमें वह अपना विवाह करै और ऐसा न करने से वह भी कुछ कालमें मरकर नरकमें पड़ैगा विना संतानके तरना दुर्लभहै और आपने हमपर ऐसी दया करके जैसे कोई अपना भाईबंधु करताहै हमारा दुःख पूछा इस कारण से हम भी जानना चाहते हैं कि आप कौन हैं १४। ३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पंचचत्वारिंशोऽध्यायः ४५॥

छियालीसवां अध्याय।

जरत्कारका पितरों के कहने से विवाह का स्वीकार करना॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! उन लोगोंकी यह बात सुनकर जरत्कार बोले कि महाराज आपका पापी और दण्ड देने के योग्य पुत्र मैंही हूं मेराही नाम जरत्कार है आपलोग निश्चय मेरे पितर हैं मेरी इच्छा परलोकके मिलने की तौ थी परन्तु विवाह करने की न थी परन्तु अब आपके इस दुःखको देखकर मैं ऐसी स्त्री से विवाह करूंगा जिसका नाम मेरासा हो और उसका भरण पोषण मुझे न करनापड़े ऐसी स्त्री को पाकर मैं अवश्य अपने ब्रह्मचर्यको छोड़दूंगा और आपकी इच्छा पूरी करने के लिये उस स्त्री से पुत्र उत्पन्न करूंगा १। १० ऐसा कहिके जरत्कार वहां से चलदिये और भ्रमण करने लगे परन्तु कोई कन्या नहीं पाई तब दुःखी होकर वनमें चलेगये और धीरे २ कहा कि मैं अपने पितरोंका दुःख दूर करनेको अपना विवाह पितरों के कहने से करना चाहता हूं मुझ दरिद्री को कोई अपनी कन्या जिसका भरणपोषण मुझे न करनापड़े और जिसका नाम मेरासा हो भिक्षामें दे ११। १८ सूतपुत्र बोले हे ऋषियो! जरत्कार के ऐसा कहने पर वासुकि नागके भेजे हुये सर्प वासुकि के पास आये और कहनेलगे कि महाराज जरत्कार विवाहके लिये अब कन्या ढूंढ़ते फिरते हैं १९ यह सुनकर वासुकि अपनी बहिन को वस्त्रादिक

पहराकर जरत्कारके पास लेगया और कहा कि इस कन्याको आप लीजिये जरत्कारने उसको नहीं लिया और कहा कि मैं ऐसी स्त्री चाहताहूं जिसका नाम मेरासा होवे और मुझे उसके खाने पहिरनेका उपाय न करनापड़े २०।२३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ४६ ॥

सैंतालीसवां अध्याय।

वासुकिकी बहिनका जरत्कार से विवाह होना उसका गर्भ धारण करना और जरत्कार का तपस्याको चलाजाना ॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! जरत्कार की यह बात सुनकर वासुकि नाग बोला कि मैं अपनी बहिनका पालन पोषण करूंगा आप इस बातकी चिन्ता न करें जरत्कार बोले अच्छा परन्तु जो यह तेरी बहिन हमारी कोई किसी तरह की अवज्ञा करेगी तो फिर मैं इसको छोड़दूंगा वासुकिने कहा बहुत अच्छा आप इसके साथ विवाह कीजिये यह सुनकर जरत्कार वासुकि के साथ उसके घर चलेगये १।४ और वेदविधिसे उसका पाणिग्रहण किया ५ और वासुकिने उनके रहने के लिये एक बहुत सुंदर रमणीक घर जिसमें सब सम्पत्ति और विहार की चीजें रक्खी थीं और एक बहुत सुन्दर मनको लुभानेवाली सेज बिछ रही थी बतादिया जरत्कार अपनी स्त्री सहित उस स्थान में गये ६।७ और अपनी स्त्रीसे कहा कि मेरी इच्छा के विपरीत न करना जो ऐसा करोगी तो मैं तुमको छोड़कर चलाजाऊंगा ८।९ यह सुनकर वासुकि की बहिन बोली कि बहुत अच्छा मैं सदैव आपकी इच्छा के अनुसार करूंगी १० इसके उपरांत वे दोनों आनन्दपूर्वक वहां रहने लगे वासुकि की बहिन बहुत भयभीत रहकर मुनिकी सेवा करती थी और कभी उनकी आज्ञा के विपरीत नहीं करतीथी ११ ऋतुस्नान के आनेपर वासुकि की बहिन के गर्भ रहा वह गर्भ अग्नि के समान चमकताथा और दिन २ ऐसे बढ़ताथा जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ताहै १२।१४ एकदिन जरत्कार अपनी स्त्री की जांघपर शिर रखकर सो गये जब सायंकाल हुआ और सूर्य अस्त होने लगे १५ उस समय संध्या करनेका समय जानकर वह भयभीत होकर विचारने लगी १६ कि जो मुनिको जगातीहूं तो मुनीश्वर मुझपर क्रोध करेंगे और जो नहीं जगातीहूं तो संध्या छूट जानेसे धर्मका लोप होगा और इस प्रकारसे कुछ देर संकल्प विकल्प करके अंतको धर्मका लोप होना बड़ा दोष समझकर अत्यन्त मधुर बोली से अपने प्राणपति को जगाने

लगी हे महाराज ! अब सायंकाल होगयाहै सूर्य अस्त होनेवाले हैं उठ करके सूर्यको अंजली दीजिये १७। २१ यह सुनकरके जरत्कार क्रोधयुक्त होकर उठे और अपनी स्त्रीसे बोले कि तैंने मेरा बड़ा अपमान किया २२। २४ स्त्री बोली महाराज मैंने आपका अपमान नहीं कियाहै आपके धर्मका लोप समझ कर आपको जगायाहै जरत्कार बोले कि सूर्य मेरी अंजली लिये विना अस्त नहीं होसक्के हैं जहां हमारे ऐसे मनुष्योंका अपमान होता है वहां हम नहीं रहते हैं हमारा कहना झूंठ नहीं है अब हम तुझे छोड़ते हैं तू अपने भाई के घरमें रह और कुछ शोच मत कर २५। ३२ यह कहकर जरत्कार चलने लगे उनकी स्त्री यह देखकर रोनेलगी कंठ सूखगया और फिर गद्गद वाणी करके विनयपूर्वक बोली महाराज आपको मुझे छोड़ना उचित नहीं है मैं निरपराध और धर्मरत हूं और जिसलिये वासुकि ने मुझे आपको दिया है वह भी नहीं हुआ अब वासुकि मुझसे क्या कहैगा उसने मुझे आपको आपसे एक पुत्र उत्पन्न होने के लिये दिया था जो महाराज आपसे मेरे एक पुत्र होजाता तो मेरे कुल के लोग सुखपूर्वक रहते गर्भ न होने के कारण से वे लोग अब अत्यन्तही दुःखी होंगे सो हे महाराज ! मुझ निरपराध को छोड़ना आपको उचित नहीं है ३३। ४० यह सुनकर जरत्कार बोले कि तू इस बात की चिन्ता मत करै तेरे एक पुत्र बड़ा तपस्वी सुन्दर और सूर्यके समान तेज रखनेवाला उत्पन्न होगा मेरा कहा झूंठ नहीं होता ऐसा कहके जरत्कार वहां से तपस्या करने को चलेगये ४१। ४३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ४७॥

अड़तालीसवां अध्याय।

आस्तीक के उत्पन्न होने की कथा॥

सूतपुत्र बोले हे ऋषियो ! जरत्कार के चलेजाने पर उनकी स्त्री अपने भाई वासुकि के पास गई और वासुकि से सब हाल रोरोकर कहा १ वह सुनकर बड़ा दुःखी हुआ और बोला कि तू जानती है कि किसलिये तुझे मैंने जरत्कार को दियाथा जो उस महात्मा से तेरे एक पुत्र उत्पन्न हो तो वह हम सबकी सर्पोंके यज्ञ में रक्षा करै २। ४ यद्यपि यह बात तुझसे पूंछनी अयोग्य है परन्तु बड़ा काम होने से मुझे यह बात तुझसे पूंछनी पड़ी कि तुझे उस महात्मा से गर्भ भी है या नहीं मैं तेरे पतिके पीछे पीछे उसे लानेको नहीं जासक्काहूं क्योंकि

उनका स्वभाव उग्र है ऐसा न हो कि मुझसे अप्रसन्न होकर मुझे शाप दे दें ५। ७ अब जो कुछ उन्होंने तुझसे चलते समय कहाहै वह कहकर मेरे संदेह को दूर कर ८ यह सुन कर वासुकि की बहिन बोली कि मैंने पुत्रके हेतु उनसे चलते समय पूंछा था सो वह (अस्ति) कहके चलेगये उनका कहा हुआ सहजमें भी झूंठ नहीं होता है पूंछीहुई बात वह झूंठ क्योंकर कहेंगे इस से तुम अपने मनका संदेह दूर करो तुम्हारा मनोरथ निश्चय सिद्ध होगा ६। १३ यह सुनकर वासुकि और सब नाग बहुत प्रसन्न हुये और नानाप्रकार की मणि लेकर अपनी बहिनका पूजन किया १४। १५ सूतजी बोले हे ऋषियो ! थोड़े दिनों में उस वासुकि की बहिनका गर्भ शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी तरह बढ़कर सुन्दर लग्न में उस गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम आस्तीक रक्खा क्योंकि उसका पिता जरत्कार उसकी माता से अस्ति ऐसा कहकर वनको चलागया था थोड़े दिनों में जब आस्तीक अपने मामा के घर में बड़ा हुआ तब उसने च्यवन ऋषि से सब वेद और वेदांग पढ़लिये १६।१८ और नागोंकी रक्षामें रहकर आनन्दपूर्वक नागलोकमें विचरनेलगा और सब सर्पोंको शिवजीके समान बढ़कर सुख दिया और सर्प उसके कारण से सर्पसत्र यज्ञसे निर्भय होकर रहनेलगे १६। २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ४८॥

उञ्चासवां व पचासवां अध्याय।

राजा जनमेजयका अपने मंत्रियों से अपने पिताके मरनेका हाल पूंछना॥

शौनक ऋषि बोले हे सूतपुत्र ! अब यह कृपा करके राजा जनमेजय का अपने मंत्रियों से अपने पिता के मरने का हाल पूंछने की कथा कहिये सूत बोले १। २ हे ऋषियो ! एक समय राजा जनमेजय ने अपने मंत्रियों से कहा कि आप लोग हमारे पिता के मरने के सब हाल को अच्छी तरह जानते हो मैं भी सुनाचाहता हूं आप उसको कहिये मैं सुनकर अपने कल्याण का काम करूंगा विपरीत नहीं करूंगा ३। ४ यह सुनके धर्म के जाननेवाले मंत्री बोले कि महाराज आपके पिता प्रजाका पालन अच्छी तरह करते थे चारों वर्णों की धर्म से रक्षा करते थे बड़े पराक्रमी थे पृथ्वी की रक्षा करते थे, उनके न बहुत वैरी थे और न वे किसी से वैरभाव मानते थे, प्रजापति के समान थे और सब से एकसा भाव रखते थे उनके राज्य में ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और

शूद्र अपना अपना कर्म सावधान होकर करते थे विधवा स्त्री दीन अनाथ अंगहीन पुरुषों का पालन पोषण करते थे उनको देखकर मनुष्य ऐसे प्रसन्न होतेथे जैसे चन्द्रमाको देखकर चकोर प्रसन्न होती है उन्होंने महाराज कृपाचार्य से धनुर्विद्या पढ़ी आपके पिता गोविन्दभक्त शास्त्रनीतिके जाननेवाले जितेन्द्रिय और बुद्धिमान् थे साठ वर्ष उन्होंने इस पृथ्वीका राज्य किया उपरांत परम धामको चले गये ५। १७ उनके पीछे आप राजा हुये अब आप इस पृथ्वीपर हजार वर्ष राज्य कीजिये १८ यह सुनकर जनमेजय बोला कि इस कुलमें कभी ऐसा कोईभी राजा नहीं हुआ जिसने प्रजाका पालन आदि राज्य कर्म धर्म से न किये हों जैसा कि हमने अपने दादे परदादोंका हाल सुनाहै अब आप यह कहिये कि हमारे पिता कैसे मरे १९। २० यह सुनकर मंत्रियों ने राजा परीक्षितके अहेर खेलने जाने एक मृगके बाण मारने उसके वहांसे वन में भागने राजाका उसका पीछा करने वहां मृगका हाल मौनव्रत ऋषिसे पूंछने उनके कुछ न बोलनेपर राजाका उनके गले में मरा सर्प डालने उस हालको सुनकर ऋषिके पुत्र शृंगीका राजाको शाप देने मुनिका राजाके पास अपना शिष्य भेजकर शापका हाल कहने राजाका शापकी निवृत्तिका उपाय करने तक्षकका राजाको काटने आने राहमें कश्यपमुनिको जो राजाको अच्छा करने को आते थे तक्षक से धन पाकर लौटजाने और तक्षकके काटने से राजाके मर जाने का सब हाल जो हम तुमसे पहले वर्णन करचुके हैं क्रमसे कहा २१।६२ यह सुनकर राजा जनमेजय बोला कि कश्यपजी और तक्षकका संवाद तो वन में हुआथा यहां कैसे मालूम हुआ ६३। ६४ हम जानते हैं कि तक्षकने कश्यपजीका मंत्रबल देखकर यह विचारा कि मेरे काटेहुये को यह जियादेंगे तो मेरी हँसी होगी इससे उसने कश्यपजी को राहमें धन देकर लौटा दिया हम अब उपाय करके तक्षक को दण्ड देंगे यह कहिये कि यह हाल यहां किसने आकर कहा ६५। ६६ यह सुनकर मंत्री बोले कि यहां का एक लकड़िहारा उसी वृक्षपर लकड़ी तोड़ने चढ़ाथा उसको न तक्षकने देखा और न कश्यपजीने तक्षकके काटनेपर उस वृक्षके साथ वहभी भस्म होगयाथा और जब कश्यपजीने उस वृक्षको सजीवित किया तब वह मनुष्य भी उसके साथ जी उठा उसने यहां आकर यह सब वृत्तान्त कहा था अब जो कुछ आपकी इच्छा हो सो आप करें ७०। ७१ सूतजी बोले हे ऋषियो ! यह बात सुनकर राजा जनमेजय शोक

में डूबगये आंखोंसे आंसू बहनेलगे और क्रोधसे दोनों हाथोंको मल मलकर बोले ७५ कि आप लोगों से मैंने अपने पिताके मरनेका हाल सब सुना अब मेरी इच्छा उस दुष्ट तक्षकको दण्ड देनेकी है क्योंकि उसने छल करके शृंगीऋषि के शापको केवल हेतु बनाकर हमारे पिताको डसा ७६। ८० उस तक्षकका कुछ बिगड़ न जाता जो कश्यपजी हमारे पिताको अपनी औषधके बलसे जियादेते परन्तु उस दुष्ट तक्षक ने उनको धन देकर राह से लौटादिया इस कारण से मैं उत्तंक और आप लोगोंकी प्रसन्नता और अपने पिताके वैर लेने के लिये तक्षकको दण्ड दूंगा ८१। ८५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकोनपञ्चाशत्तथापञ्चाशत्तमोऽध्यायः ४९। ५०॥

इक्यावनवां अध्याय।

राजा जनमेजयके सर्पसत्र यज्ञ रचनेकी कथा॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! राजा जनमेजयने मंत्रियोंसे प्रसन्न होकर सर्पसत्र यज्ञ करने की प्रतिज्ञा की १ और अपने पुरोहित और ऋत्विजों को बुलाकर कहा कि तक्षकने अपनी दुष्टता से हमारे पिताको विना अपराध अपनी विषकी अग्नि से काटकर जलादिया इससे मैं भी चाहताहूं कि अपने पिताका बदला लेने के लिये उस तक्षक को भाई बन्धुओं सहित जलती हुई अग्नि में जलाऊं आपलोगों को ऐसा कर्म कराने की विधि मालूम है या नहीं यह सुनकर ऋत्विज् बोले कि इस काम के करने के लिये सर्पसत्र यज्ञ पुराणों में विख्यात है २। ६ हमलोग उस यज्ञ को करासक्ते हैं और आप ऐसे राजा के सिवाय उस यज्ञ को और कोई नहीं करसक्ता है यह सुनकर जनमेजय प्रसन्न हुये और उसी समय से तक्षक को भस्म हुआ मानकर ७। ८ ऋत्विजों से बोले कि मैं उस यज्ञ को करूंगा आप उसकी सामग्री इकट्ठी कीजिये ९ सूतजी बोले हे ऋषियो! ऋत्विजों ने यह सुनकर उस सब देश को नापकर यज्ञ करने के योग्य पृथ्वी शोधी १० और उस पृथ्वी पर यज्ञशाला बनवाई इसके पीछे वहां वस्त्र धन धान्य आदि सब यज्ञ की सामग्री इकट्ठी कीगई और बहुत से वेदके जाननेवाले तपस्वी ऋषिलोग इकट्ठे हुये ११। १२ ऋत्विजोंने राजा के सर्पसत्र यज्ञ का फल पाने के लिये राजा को दीक्षा दी १३ और राजाने सब यज्ञ करनेवालों का वरण किया और यज्ञ प्रारम्भ होने के पहिले शिल्पशास्त्र के जाननेवाले यज्ञशाला के बनानेवाले कारीगरों ने एक शकुन देखकर कहा

कि एक ब्राह्मण के कारण से यह यज्ञ समाप्त न होगा १४। १६ यह सुनकर राजा जनमेजय ने दीक्षा लेने के पहिले द्वारपालकों को आज्ञा दी कि हमारी विना आज्ञा यज्ञ में कोई न आने पावै १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५१॥

बावनवां अध्याय।

राजा जनमेजय के सर्पसत्र यज्ञ करने की कथा॥

सूत बोले हे ऋषियो! इसके पीछे यज्ञ होनेलगा सब ब्राह्मण अपने अपने कर्मों को करने लगे १ और ऋत्विजों ने जिनके धूम्रसे कपड़े काले और आंखें लाल होगई थीं मन्त्र से अग्नि में होम किया २ और अग्नि के मुख में सर्पोंका आवाहन किया ३ और सर्प मंत्र के बलसे निर्बल होकर आ आकर अग्निकुण्ड में गिरने लगे ४ बालक तरुण और बूढ़े श्वेत काले और नीले अनेक प्रकार के सर्प कोई एक कोस कोई एक योजन और कोई गौके कान की बराबर लंबे जिनका आकार किसीका घोड़े किसीका हाथी किसीका हाथी की सूंड़के समानथा एक दूसरे को बुलाते फड़कते श्वास लेते परस्पर लिपटते चिल्लाते पुकारते लाखों प्रयुतों अर्बुदों असंख्य सर्प अवश होकर कोई पूंछ की ओर से और कोई मुखकी ओर से उस अग्निकुण्ड में मन्त्रबल से गिर गिरकर भस्म होगये ५।१०॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५२॥

तिरपनवां अध्याय।

जनमेजय के यज्ञके ऋत्विज् और सदस्यों के नाम॥

इतनी कथा सुनकर शौनक बोले हे सूतपुत्र! उस भयानक सर्पयज्ञमें ऋत्विज् और सदस्य कौन कौनथे १।२ सूत बोले सुनो भृगुवंश में एक चण्ड नाम ब्राह्मण वड़े वेद के जाननेवाले और तपस्वीथे वे उस यज्ञमें होता अर्थात् होम करनेवालेथे ३।५ जैमिनिजी जो बड़े विद्वान् और वृद्ध थे वह सामवेदी ऋत्विज् थे सांगरजी ब्रह्मा और पंगलऋषि यजुर्वेदी ऋत्विज् थे ६ और अपने शिष्यों सहित व्यासजी महाराज, उद्दालक, प्रमतक, श्वेतकेतु, पिंगल, असित, देवल, नारद, पर्वत, आत्रेय, कुंड, जठर, कालघट, वात्स्य, श्रुतश्रवा, कोहल, देवशर्मा, मौद्गल्य, समसौरभ और २ बहुत से वेदके जानने वाले ब्राह्मण उस यज्ञके सदस्य थे ७।१० हे ऋषियो! उस यज्ञ में सहस्रों सर्प

चिल्लाते हुये आकाश से अग्नि में गिरते थे उनकी चर्बी की नदी उस अग्नि-कुंड से बह निकली और सर्पों के जलने की बड़ी कड़ी गंध चौतरफ फैल गई ११। १२ और तक्षक जनमेजयके यज्ञका हाल सुनकर इन्द्र के पास गया और अपनी रक्षाके लिये इन्द्रकी शरण चाही इन्द्रने उसे शरण देकर उससे कहा कि तू भय मत कर यहां तुझको यज्ञ बाधा नहीं करसक्ता १३। १६ हम तेरे बारे में ब्रह्माजी से पहिलेही कहिचुके हैं यह सुनकर तक्षक सुखपूर्वक इन्द्रके स्थान में रहने लगा १७। १८ इसके उपरान्त सर्पों के बहुत से जलने पर वासुकि नाग को जिसका परिवार थोड़ासा रहि गयाथा मोह हुआ १९ और उस मोह में अत्यन्त दुःखी होकर अपनी बहिन से बोला कि राजा जनमेजय यज्ञ कर रहा है उससे मेरे सब देहमें जलन उठी है मुझे दिशा नहीं सूझती चक्कर आते हैं और हृदय फटाजाता है मैं जानता हूं कि मैं भी अब उस यज्ञकी घोर अग्नि में गिरकर मरूंगा २०। २२ अब यह वही समय आया है जिसके लिये मैंने तुझे जरत्कार को दियाथा इसलिये अब तू अपने पुत्रको जो वेद वेदांग के पार होगया है बुलाकर उससे हमारी सकुटुम्ब रक्षा कर तेरा आस्तीक पुत्र निश्चय उस यज्ञ को बन्द करसक्ता है क्योंकि ब्रह्माजीने मुझसे पहले इस बातको कहाथा २३। २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५३॥

चौवनवां अध्याय।

वासुकि की बहिनका अपने पुत्रसे सर्पोंकी यज्ञसे रक्षा करने को कहना और आस्तीकका जनमेजय के पास जाना॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! वासुकि की बहिनने अपने भाई की बात सुनकर अपने पुत्र आस्तीक को बुलाया और उससे कहा हे पुत्र! तेरे मामाने मुझे तेरे पिताको एक कारण पाकर दियाथा उस कारणका समय अब आन पहुँचा है इस समय में तुझको भी उचित कर्म करना चाहिये १। २ यह सुनकर आस्तीक बोला मेरे मामाने तुमको क्यों मेरे पिताको दियाथा और वह क्या काम हैं जो मुझे अब करना चाहिये माता बोली ३। ४ हे पुत्र! सर्पों की माता कद्रूने अपने पुत्रों को आज्ञा न मानने के कारण से यह शाप दियाथा कि तुम सब यज्ञकी जलतीहुई अग्नि में भस्म होगे और ब्रह्माजीने कद्रू माता से उस समय यह कहाथा कि तेरा शाप सच्चा होगा ५। ८ उपरान्त मेरे मामा वासुकि ने

देवताओं की शरण ली देवता तेरे मामा को ब्रह्माजी के पास लेगये ९। १० और उनसे तेरे मामा की ओरसे बहुत कुछ कह सुनकर तेरे मामा को शाप से छूटने की प्रार्थना की ११।१२ तब ब्रह्माजीने कहा कि वासुकि की बहिन जरत्कार नाम जरत्कारऋषि को विवाही जावेगी उसका पुत्र सुकर्मी सर्पों को शापसे छुटावेगा १३ हे पुत्र! इस कारण से तेरे मामाने मुझे तेरे बड़े तपस्वी पिता जरत्कार को दियाथा १४ अब वही समय आगया है राजा जनमेजय सर्पसत्र यज्ञ कररहा है तुझे चाहिये कि अपने मामा आदि के कुटुम्ब को उस यज्ञकी अग्नि से बचा और उस निमित्तको पूराकर जिस निमित्त मेरा दान तेरे पिता को हुआ था १५। १६ यह सुनकर आस्तीक अपनी माता से बोला कि बहुत अच्छा में ऐसाही करूंगा और फिर अपने मामा वासुकि से कहा १७ कि मैं आपको शापसे छुटाऊंगा आप अब स्वस्थ होकर बैठें और भयको छोड़दें मैं कभी हँसी में भी झूठ नहीं कहताहूं मेरे कहे को आप सत्य मानें मैं अभी जनमेजय के पास जाताहूं और उसे अपनी वाणी से प्रसन्न करके उसका यज्ञ बंद कराताहूं १८। २२ वासुकि यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुये मानो किसीने जीवदान दिया और यह बोले कि मेरा शरीर घूमरहा है हृदय फटा जाता है मुझे ब्रह्मदण्डकी पीड़ा से दिशा दिखाई नहीं देती हैं २३ यह सुन कर आस्तीकने कहा कि आप किसी तरहका भय और संताप न करें मैं आप की अग्निके भय को दूरकरके अग्निकी समान तेज रखनेवाले ब्रह्मदण्ड के तापको नाश करूंगा २४। २५ सूतजी बोले हे ऋषियो! ऐसा कहिके आस्तीकने वासुकि के दुःखको उसकी देहसे उतारकर अपने शरीर पर रख-लिया और सर्पों की रक्षाके लिये वहां से राजा जनमेजय के पास चले २६। २७ जब यज्ञशालाके पास पहुँचे तब द्वारपालने कहा कि विना महाराज की आज्ञा भीतर जानेकी आज्ञा नहीं है आप ठहरें मैं खबर किये देताहूं ऐसा कहिके द्वारपालने राजासे खबर की राजा ने कहा अच्छा आनेदो आस्तीक राजा की आज्ञा पाकर भीतर यज्ञशाला में जहां बड़े बड़े तपस्वी सदस्य और ऋत्विज् बैठे थे यज्ञकी प्रशंसा करते हुये पहुँचे २८। ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५४ ॥

पचपनवां अध्याय।

आस्तीक का यज्ञमें पहुँचकर सदस्य ऋत्विज् यज्ञ और राजाकी स्तुति करना ॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! आस्तीक यज्ञमें पहुँचकर यज्ञ सदस्य ऋत्विज् और राजाकी स्तुति करनेलगे हे राजन्! तेरा यह यज्ञ ऐसा हुआ है जैसे पूर्वकाल में चन्द्रमा वरुण प्रजापति इन्द्र यमराज हरिमेध रंतिदेव गय शशिबिन्दु कुबेर नृग अजमीढ़ रामचन्द्र यज्ञश्रुति युधिष्ठिर अजमीढ़वंशी और व्यासजी आदि यज्ञ हुये हैं हम तुमसे अपने प्यारों का कल्याण चाहते हैं ये १।७ आपके यज्ञ करानेवाले ऋत्विज्लोग सूर्यके समान तेज रखनेवाले हैं पृथ्वीपर कोई विधि ऐसी नहीं है जिसे ये न जानते हों इनको दान दिया हुआ कभी नाश नहीं होता ८ और व्यासजी महाराज सबके शिरमौर हैं जिनकी दीक्षा पाकर ब्राह्मण ऋत्विज् होजाते हैं और पृथ्वीपर अनेक शुभ कर्म कराते हैं ९ और अग्निदेव जिनके नाम विभावसु, चित्रभानु, हिरण्यरेता, हुतभुक्, कृष्णवर्त्मा, प्रदक्षिणावर्त्त शिखा हैं तेरी होमी हुई हव्यको देवताओं को देते हैं १० प्रजाके पालन में बराबर इस नरलोक में कोई राजा नहीं है हम तुम्हें देखकर प्रसन्न हुये तू धर्मराज और वरुण के समान उदार है ११ इन्द्र और लोकपाल के समान प्रजापालक है तू बड़ा वीर है तेरी बराबर धैर्यधारी कोई नहीं है १२ तेरा तेज खट्वांग, नाभाग, दिलीप, ययाति और मान्धाताके तुल्य है तू भीष्मके समान तेजस्वी वाल्मीक के समान पराक्रमी वशिष्ठ के समान क्रोध को वशमें करनेवाला इन्द्र के समान प्रभुताका रखनेवाला नारायण के समान कांतिधारी यमराज के तुल्य धर्मचारी कृष्ण के समान गुणनिधान लक्ष्मी और यज्ञोंका वासस्थान परशुराम के समान अस्त्र शस्त्र जाननेवाला तेजस्वी अत्रि और और्वऋषियों के तुल्य तपस्वी और भागीरथ के समान दुर्धर्ष है १३।१६ सूतजी बोले हे ऋषियो! आस्तीक की यह स्तुति सुनकर सब सदस्य ऋत्विज् राजा और अग्नि प्रसन्न हुये और जनमेजय उन सब ब्राह्मणों के मानसी संकल्प को जान कर बोला १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५५ ॥

छप्पनवां अध्याय।

आस्तीकका राजा जनमेजय से वर मांगकर सर्पसत्र यज्ञको बंद करना ॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! राजा जनमेजय सब ऋत्विजों से बोला कि यह

बालक वृद्धों की तरह बात कहता है इससे मैं इसे वृद्धही मानकर वर देना चाहताहूं आपकी क्या आज्ञा है १ सदस्य और ऋत्विज् बोले कि राजाओं को ब्राह्मणका बालक भी मान्य है और जो विद्वान् है वह तो सर्वथा पूजन योग्य है आप बुद्धिमान् हैं आपसे और क्या कहा जाय तक्षक भी आयाही चाहता है यह सुनकर राजा आस्तीक को वर देने को ही था कि इतने में होता व्यग्रचित्त होकर बोला कि महाराज तक्षक नहीं आता है २। ३ यह सुनकर जनमेजय बोला कि हे ब्राह्मणो ! अब ऐसा करो जिसमें तक्षक आकर अग्नि में गिरै यह यज्ञ समाप्तहो ४ ऋत्विज् बोले महाराज हम लोग बहुत प्रकार से मंत्र पढ़ते हैं परन्तु तक्षक नहीं आता है वह भय से पीड़ित होकर इन्द्र की शरण गया है इन्द्र ने उसे यह वर दिया है कि तुम यहां निर्भय बसो यहां मंत्रबल नहीं चलैगा इससे जानपड़ता है कि जो यज्ञकुण्डके बनाने के समय पुराण के जाननेवाले सूतने और ब्राह्मणों ने कहा था वही होनहार है ५।७ यह सुनकर राजा जनमेजय ने क्रोध किया और होतासे कहा कि अब ऐसा उपाय करो जिसमें वह सर्प इन्द्र सहित चलाआवै यह कहकर राजा ने मंत्रके जाननेवाले ब्राह्मणों से फिर क्रोध करके कहा महाराज ! तक्षक तो इन्द्रके घर गयाही है अब आप ऐसा करें कि तक्षक सहित इन्द्र का आवाहन करिके दोनों को अग्नि में होमदो ८। ११ राजा की यह बात सुनकर होता ने इन्द्रका आवाहन किया और इन्द्र तक्षक सहित जिनके अंग महामंत्र से किलगये थे स्वर्ग से चले कुछदेर तक देवेन्द्र आकाश में दुःखित रहे उपरान्त उस यज्ञको देखकर भयभीत हो तक्षक को छोड़ चले गये इन्द्रके चलेजाने पर तक्षक मंत्रवश से सब घमंड भूलगया और व्याकुल अंग होता हुआ अग्नि के पास पहुँचा १२।१५ उसको देखकर ऋत्विजों ने कहा हे राजा ! तेरा कार्य्य तो सिद्ध हुआ अब तुम इस ब्राह्मण को वर दो १६ जनमेजय ने कहा महाराज ! आप वर मांगिये मैं आपको जो मांगोगे सो वही दूंगा १७ राजा यह कहने ही पाये थे कि इतने में ऋत्विज़ फिर बोले देखो राजा तक्षक स्वर्ग से चिल्लाता चला आता है और इन्द्र के छोड़जाने से विकल मूर्च्छित और घुमेर खा खाकर ऊंचे श्वास लेता है १८। १९ सूत बोले हे ऋषियो ! जब आस्तीकने देखा कि तक्षक अग्नि के समीप आपहुँचा है थोड़ाही अंतर है तब वह जनमेजयसे बोला २० कि आपने जो वर हमको देने कहा था सो दीजिये हम

यह वर मांगते हैं कि तुम्हारा यह सर्पसत्र यज्ञ अब बंद होवै और इस समय से पीछे इसमें सर्प न गिरे २१ यह सुनकर जनमेजय बोला कि आप सोना चांदी गाय और जो कुछ इच्छा हो सो लेलीजिये परन्तु हमारे यज्ञ को न बंद कीजिये २२। २३ आस्तीक बोले कि हमको यह कुछ नहीं चाहिये हम तौ केवल आपका यज्ञ बंद करना चाहते हैं २४ राजा ने वारवार यही कहा कि और जो वर इच्छा हो सो मांगलो परन्तु हमारा यज्ञ बन्द न करो परन्तु आस्तीकने यही उत्तर दिया कि मुझे और वर नहीं चाहिये २५। २६ इसके उपरान्त सब सदस्य और ऋत्विज् बोले कि हे राजा! अब कुछ चिंता न करो वरदो और सर्पसत्र यज्ञको बंद करो उनकी बात सुनकर राजा ने ब्राह्मण को वर दिया और सर्पयज्ञको समाप्त किया २७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षट्पंचाशत्तमोऽध्यायः ५६॥

सत्तावनवां अध्याय।

उन मुख्य २ सर्पों के नाम जो यज्ञाग्नि में भस्म हुये॥

इतनी कथा सुनकर शौनकऋषि बोले कि मैं उन सब सर्पों के नाम सुना चाहताहूं जो उस यज्ञकी अग्नि में गिरकर भस्म हुये १ सूत बोले उस यज्ञ में तौ अर्ब खर्ब से भी अधिक असंख्य सर्प गिरकर भस्म हुये उन सबके नामोंको नहीं कहसक्ताहूं २ परन्तु उनमें मुख्य मुख्य सर्प थे उनके नाम ये हैं ३ पहले वासुकिनाग के कुलके सर्पों के नाम कहताहूं जो नीले काले और श्वेतआदि अनेक रंगों के बड़े विषधारी और कायाधारी थे प्रधान प्रधान उनके नाम ये हैं कोटिश, मानस, पूर्ण, शल, पाल, हलीमक ४। ५ पिच्छल, कौणेय, चक्रकालवेग, प्रकालन, हिरण्यबाहु, शरण, कक्षक और कालदंतक ६ और तक्षककुल के सर्पों के मुख्य सर्पों के नाम ये हैं पुच्छांडक, मंडलक, पिंडसेक्त, आरभेणक ७। ८ उच्छिक, शरभ, भंग, बिल्वतेजा, विरोहण, शिली, शलकर, मूक, सुकुमार, प्रवेपन, मुद्गर, शिशुरोमा, सुरोमा और महाहनु ९। १० और ऐरावत सर्प के वंश के नागों के प्रधान नाम ये हैं पारावत, पांडर, हरिण, कृश, विहंग, शरभ, मेद, प्रमोद और संहतापन और कौरव्यकुलके मुख्य मुख्य ये नाम हैं ११। १२ एरक, कुंडल, वेणी, वेणीस्कन्द, कुमारक, बाहुक, शृङ्गवेर, धूर्तक, प्रात, आतक, धृतराष्ट्र और नागवंश के मुख्य सर्पों के नाम ये हैं १३। १४ शंकुकर्ण, पिठरक, कुठार, सुखसेचक, पूर्णांगद, पूर्ण-

मुख, प्रहास, शकुनिदरि, प्रमाहठ, कामठक, सुषेण, मानस, अव्यय, भैरव, मुंडवेदांग, पिंशग, उद्रपारक, ऋषभ, वेगवान्नाग, पिंडारक, महाहनु, रक्तांग, सर्वसारंग, समृद्ध, पटवासक, वराहक, वीरणक, सुचित्र, चित्रवेगिक, पराशर, तरुणकमणि, स्कंध और अरुणि १५। १६ सूत बोले हे ऋषियो! मुख्य मुख्य नागों के नाम मैंने कहे इन सबके पुत्र पौत्रादिक असंख्य थे किसी के तीन किसी के सात और किसी के दश शिर थे और उनका विष कालाग्नि के समान था कोई पहाड़ की शिखरके समान था कोई एक योजन और कोई दो योजन लम्बे थे ऐसे ऐसे कोटिन सर्प जिनकी संख्या कोई नहीं कहसक्ता है माता के शाप से जनमेजय के यज्ञ में आये और भस्म होगये २०। २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः ५७॥

अट्ठावनवां अध्याय।

आस्तीकका जनमेजय से सर्पयज्ञ बंद करनेका वर मांगना और जनमेजय का वरदान देकर यज्ञ समाप्त करना॥

सूत बोले हे ऋषियो! आस्तीकने एक और बड़ी अद्भुत बात की वह भी सुनो इन्द्र आस्तीक को वर मिलने में देरी देखकर भय से तक्षक को छोड़कर चले गये और बड़ी देर हो गई परन्तु तक्षक अग्नि में नहीं गिरा तब राजा के मन में बड़ी चिन्ता यह हुई कि मंत्र से आवाहन करने पर भी तक्षक स्वर्ग से अग्नि में क्यों नहीं गिरता है १। २ यह सुनकर शौनकऋषि ने पूंछा कि हे सूतपुत्रजी! क्या ब्राह्मण मंत्रविधि भूल गये थे जिससे ऐसा हुआ ४ सूत बोले नहीं जब आस्तीक ने देखा कि तक्षक अग्नि में गिरने चाहता है तब तीन बेर तिष्ठतिष्ठ अर्थात् ठैरठैर कहा ५ उसके वचन से वह तक्षक आकाशमें ठैर गया ६ इसके पीछे राजा सब सदस्य ऋत्विजोंके कहने से बोला कि आस्तीकका कहना सत्य होय ७ हमारा यह कर्म पूरा हो और सर्प निर्भय होय आस्तीक प्रसन्न होय और वह सूतकी पहली कहीहुई बातभी सच्ची होवै ८ यह वरदान देने पर वह यज्ञ पूर्ण हुआ राजा प्रसन्न हुआ और बड़ा आनन्ददायक कोलाहल शब्द हुआ ९।१० सूत बोले हे ऋषियो! राजा जनमेजयने सब ऋत्विज् और सदस्यों को बहुतसा धन देकर उनका सन्मान किया और उस सूत पत्थर बनानेकी विद्या जाननेवालेको जिसने यज्ञकुण्ड बनाते समय यह कहा था कि यह यज्ञ एक ब्राह्मण के कारण से निवृत्त होगा वस्त्र भोजन और धन देकर बिदा किया

इसके पीछे राजाने यज्ञ पूरा होने का वेदविधि से स्नान किया ११।१४ और उस बुद्धिमान् प्रसन्नचित्त आस्तीक को बहुतसा सन्मान करके बिदा किया और कहा कि आप फिरभी कृपा कीजियेगा मैं बड़ा अश्वमेध यज्ञ करूंगा उस यज्ञ में आप मेरे सदस्य होवें १५।१६ आस्तीक अपना काम साध राजा को प्रसन्नकर बहुत अच्छा ऐसा कहि वहांसे चल दिया १७ और अपनी माता और मामाके पास पहुँचकर उनके चरणछू जो कुछ धन राजा के यहांसे मिला था सब उनके सामने रखदिया १८ इस बातको देखकर जितने सर्प वहां मौजूद थे सब बहुत प्रसन्न हुये और आस्तीक से बोले कि जो वर मांगोगे सो हम देंगे १९।२० यह सुनकर आस्तीक बोला कि जो ब्राह्मण अथवा और मनुष्य इस चरित्रको सवेरे और सांझको पढ़ें उनको सर्प का कुछ भय न होवे २१ सर्पों ने तथास्तु कहकर यह भी कहा कि जो मनुष्य तेरा नाम लेंगे सर्प उनके घर न जायँगे २२ और सर्पोंके दूर करने का यह मंत्र है (मंत्र) असितश्चार्तिमन्तश्च सुनीथश्चापि यः स्मरेत्। दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्य सर्पभयं भवेत्॥ यो जरत्कारुणा जातो जरत्कारौ महायशाः। आस्तीकसर्पसत्रेव पन्नगान्योभ्यरक्षत। तं स्मरन्तं महाभाग! न मां हिंसितुमर्हथ २४ सर्पाय सर्पभद्रन्ते दूरं गच्छ महाविष। जनमेजयस्य यज्ञान्ते आस्तीकवचनं स्मर २५ आस्तीकस्य वचः श्रुत्वा यः सर्पो न निवर्तते। शतधा भिद्यते मूर्ध्नि शिंशवृक्षफलं यथा २६॥

इतनी कथा सुनाकर सूत बोले हे ऋषियो! सर्पोंसे यह वरदान पाकर आस्तीकऋषि वहां से चलेगये और पुत्र पौत्र युक्त होकर कुछ काल में स्वर्गवासी हुये २७।२८ इस आस्तीक के चरित्र सुननेवालेको सर्पों का भय कभी न होगा २९ इस कथा को प्रमितिनाम भार्गवने जैसे अपने पुत्र रुरुको सुनाया था वही मैंने तुमसे भी कही है ३०।३१ यह वही आस्तीककी कथा है जो डुंडुभ सर्प ने कही थी और उसके सुनाने को आपने मुझसे कहा था ३२।३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ५८॥

उनसठवां अध्याय।

शौनकऋषिका सूतपुत्रसे महाभारतकथामें कुरुपांडववृत्तांत सुननेकी इच्छा करना॥

शौनकऋषि बोले कि हे सूतजी! भृगुवंशकी सब कथा सुनकर हम तुम से बहुत प्रसन्न हुये अब तुम कृपा करके महाभारतसम्बन्धी कुरुपाण्डववृत्तान्त जिसे राजा जनमेजय ने अपने सर्पसत्र यज्ञ में व्यासजी से पूछा था और

व्यासजी महाराज ने अपने शिष्य वैशम्पायन को उसे सुनाने की आज्ञा दी वर्णन कीजिये सूतजी बोले बहुत श्रेष्ठ मैं आदिसे सब कथा कहता हूं आप सुनिये मुझेभी इस कथा के कहने में आनन्द होता है १। १० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकोनषष्टितमोऽध्यायः ५९ ॥

साठवां अध्याय।

व्यासजीका राजा जनमेजयके यज्ञमें जाना और जनमेजय का कुरुपांडवीय वृत्तान्त पूंछना ॥

सूतजी बोले हे ऋषियो! राजा जनमेजय को सर्पसत्र यज्ञ करने के लिये दीक्षित सुनकर श्रीव्यासजी महाराज जो पराशर मुनि से यमुनाके द्वीप में सत्यवती माताके कुमार अवस्था में उत्पन्न हुये थे अपने शिष्यों सहित वहां आये व्यासजी अपनी माताके उत्पन्न होतेही बड़े होगये और विना वेद पढ़े अथवा तपस्या किये सब वेदांगों में पार होगये व्यासजी सगुण निर्गुण ब्रह्मके जाननेवाले ब्रह्मऋषि कवि सत्यव्रत और पवित्र थे उन्होंनेही वेदके चार भाग किये और राजा शांतनुके कुलको बढ़ानेके लिये पाण्डु धृतराष्ट्र और विदुरको उत्पन्न किया सो व्यासजी अपने वेद वेदांगों के जाननेवाले शिष्यों सहित उस यज्ञ में जहां राजा जनमेजय बड़े २ ब्रह्मकल्प सदस्यों के बीच में ऐसे बैठा था जैसे देवताओं में इन्द्र १। ९ राजा उनको देखकर ऋषियोंसहित उनके पास आया और बड़े आदरसे उनको लेजाकर सुनहले विष्टरवाले आसनपर बैठाया और विधिपूर्वक जैसे इन्द्र बृहस्पति का पूजन करता है पाद्य अर्घ्य आचमन और मधुपर्क आदि विधिसे राजाने उनका पूजन किया १०। १३ व्यासजी उस पूजाको ग्रहण करके प्रसन्न हुये १४ राजा पूजन करके उनके पास बैठ गया और उनसे कुशल पूंछी व्यासजीने भी राजासे कुशल पूंछी १५ उपरान्त सब सदस्योंने आकर व्यासजीका पूजन किया और व्यासजीने भी उनका शिष्टाचार किया इसके पीछे राजा जनमेजय ने हाथ जोड़कर व्यासजी से विनय की १६ कि महाराज! आपने कुरु और पाण्डवों को आंख से देखा है कृपा करके उनकी कथा कहिये १७ कि वे लोग बड़े बुद्धिमान् थे फिर किसलिये आपस में ऐसा विरुद्ध हुआ कि उनके युद्ध में सब राजाओं का नाश हो गया १८ यह सुनकर व्यासजीने अपने वैशम्पायन शिष्यको पास बुलाकर कहा कि जो कुरु पाण्डवों के भेद होने की कथा तुमने हमसे सुनी है उसको राजा जनमेजय को सुनाओ १९। २१ यह सुनकर वैशम्पायनजी गुरुकी

आज्ञा शिर पर रखकर कुरु पांडव इतिहास वर्णन करने लगे २२ । २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षष्टितमोऽध्यायः ६० ॥

इकसठवां अध्याय।

वैशंपायनका जनमेजयसे कुरुपाण्डवयुद्धका संक्षेप कारण वर्णन करना ॥

सूतजी बोले हे ऋषियो ! वैशम्पायनजीने गुरु और ब्राह्मणों को नमस्कार की और जनमेजय से कहा कि में महात्मा व्यासजी के बनाये हुये इतिहास को प्रसन्नतापूर्वक कहताहूं तुम सुनो हम तुमको सुनने के योग्य समझते हैं १ । २ कुरुपांडवों में भेद होने और पृथ्वी की क्षय करनेवाले युद्धकी प्राप्तिका संक्षेप कारण इस तरह पर है ४ । ५ कि राजा पांडु के वन में मरजाने के पीछे उनके पुत्र हस्तिनापुर में गये और थोड़ेही काल में सब वेद और धनुर्विद्या पढ़कर बड़े प्रवीण होगये ६ उनकी लक्ष्मी यश देह बल उत्साह जितेन्द्रियता और बल देखकर पुरवासी बड़े प्रसन्न हुये परन्तु धृतराष्ट्रके दुर्योधनादिक पुत्र उनको न देखसके ७ और दुर्योधन कर्ण और शकुनीकी सलाह से कुलंग पक्षीके समान जो सिंहकी दाढ़का भी मांस निकालने के लिये यत्न करता है अनेक उपाय करके पांडवों को दुःख देने लगे ८ । ९ पहिले दुर्योधन ने भीमसेन को मारनेके लिये विष दिया भीमसेन उसको पचायगये १० और गंगाके तटपर प्रमाणकोटि घाट पर सोगये दुर्योधनने उस सोते हुये वीरको बँधवाकर गंगाजी में डालदिया ११ वह वीर जागने पर बंधन तोड़कर चला आया और फिर सोरहा तब दुर्योधनने उसको विषधारी सर्पों से कटवाया परन्तु वह न मरा १२ । १३ विदुरजी पांडवों की रक्षा इस प्रकार से करते थे जैसे इन्द्र मनुष्यों की करता है १४ । १५ उनकी रक्षाके कारण से दुर्योधनादिक सब प्रकार के गुप्त और प्रकट उपाय करके थकगये परन्तु पांडवों को न मारसके १६ इसके पीछे दुर्योधनने शकुनी और कर्णकी सलाहसे धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर पांडवों को वारणावत नगरको भिजवाया १७ । १८ और वहां उनको लाक्षागृह में रहने को आज्ञा दी पांडव वहां गये और एक वर्षतक उस गृह में रहे उपरांत विदुरजी के कहने के अनुसार जो पांडवों से हस्तिनापुर से चलते समय उस गृह से बचनेका उपाय बता आयेथे उस घर में आग लगाकर पुरोचनको जलाय आप सुरंगकी राह माता सहित निकलगये और दुर्योधन के डरसे अपने को प्रकट न करने के लिये रात्रि में चलदिये राहमें हिडंब नाम

राक्षस को मारा १६। २४ और उसकी बहिन हिडंबाको भीमसेन ने ग्रहण किया जिससे घटोत्कच उत्पन्न हुआ वहां से पाण्डव चलकर एक चक्रापुरी नगरमें २५ एक ब्राह्मणके यहां ब्रह्मचारी होकर बसे और भीमसेन ने उस नगर के मनुष्यों के खानेवाले बकनाम राक्षसको मारा और पुरवासियों को सुख दिया इसके पीछे पाण्डव पाञ्चालदेश के राजाकी कृष्णा नाम कन्या का स्वयंवर सुनकर २६। २६ वहां गये और द्रौपदी को पाकर एक वर्षतक वहां रहे ३० उपरान्त जब वे प्रकट होगये तब वहां से हस्तिनापुरको गये हस्तिनापुर जाने पर भीष्मपितामह और धृतराष्ट्र ने उनसे कहा कि तुम खाण्डवप्रस्थ नगर में जाकर बसो और मत्सरता छोड़कर रहो ३१। ३३ पाण्डव उनके कहे अनुसार सब प्रकार के रत्न लेकर अपने सुहृदजनों के साथ खाण्डवप्रस्थ नगर में जाबसे ३४ और अपने शस्त्रके प्रतापसे बहुत राजाओं को वशमें करके रहने लगे ३५। ३६ भीमसेन ने पूर्व अर्जुन ने उत्तर नकुल ने पश्चिम और सहदेव ने दक्षिण दिशाओं के सब राजाओं को जीतकर विजय की ३७।३८ पांचोंपाण्डव सूर्यके समान तेजधारी होने से यह पृथ्वी उस समय में छः सूर्य रखनेवाली हुई ३६ इसके पीछे युधिष्ठिर ने अर्जुन को जो प्राण से भी अधिक प्यारा था किसी कारण से वनको भेजा ४०। ४१ वहां अर्जुन ने बारह वर्षतक वास किया उपरान्त वहां से अर्जुन द्वारका चलेगये ४२ और वहां श्रीकृष्णजी की छोटी बहिन सुभद्राको हरा उसको लेकर ऐसे शोभायमान हुये जैसे लक्ष्मी सहित विष्णुकी शोभा होवे ४३। ४४ इसके अनन्तर अर्जुन ने श्रीकृष्ण के साथ खाण्डव वनको जलाकर अग्निदेवको तृप्त किया ४५ और वासुदेव की सहायता से इन्द्रके वनको भस्म कर दिया ४६ अग्निदेवने प्रसन्न होकर अर्जुन को गाण्डीवधनुष दो तरकश जिसमें बाण कभी खाली न हों और एक रथ जिसकी ध्वजापर हनुमान्‌जी की मूर्त्तिथी दिया ४७ और अर्जुन ने मयनाम दैत्यको अग्नि में जलने से बचालिया था उसने पाण्डवों को एक बहुत सुंदर रत्नजटित सभा बना दी ४८ उस सभा में दुर्योधन ने लोभ किया और पीछे शकुनी के साथ जुआ खेलकर युधिष्ठिर से छलकर सर्वस्व हरलिया और बारह वर्ष का वनवास दिया ४६ पाण्डव बारह वर्ष तक तो वन में रहे तेरहवें वर्ष में विराट् नगर में गुप्त होकर रहे और चौदहवें वर्ष में युधिष्ठिर ने वनसे लौटकर अपना सब धन और राज्य मांगा और वह न मिलने के

कारण से युद्ध हुआ उस युद्ध में पाण्डवोंने क्षत्रीकुल को मारकर राजा दुर्यो-
धन को मारा ५० । ५१ और सम्पूर्ण राज्य लेलिया हे जनमेजय ! इसप्रकार
से कुरुपाण्डवों में भेद होकर युद्ध हुआ ५२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकषष्टितमोऽध्यायः ६१ ॥

बासठवां अध्याय ।

जनमेजयका वैशंपायन से महाभारतकथा विस्तारसहित पूंछना और
वैशंपायन का महाभारतमाहात्म्य कहना ॥

सूतजी बोले हे ऋषियो ! इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय वैशंपायन
जी से बोले कि महाराज ! आपने कुरु और पाण्डवों का वृत्तान्त संक्षेप करके
सुनाया परन्तु मैं सम्पूर्ण महाभारतकथा जो व्यासजीने कही है सुनना चाहता
हूं १ । २ कोई बड़ा कारण मालूम होताहै जिससे पाण्डवों ने भीष्मादिक बड़े २
अवध्य योद्धाओं को मारा और समर्थ होने पर भी बड़े २ क्लेश सहे ३ । ५
परन्तु क्रोध न किया भीमसेन को दशहजार हाथी का बलथा तिसपर भी उन्हों
ने क्रोध को रोंका ६ और द्रौपदी सब प्रकार से समर्थ थी परन्तु उसने महा-
क्लेश सहे और उन दुरात्मा कौरवों को अपने तेज से न जलाया ७ युधिष्ठिर
जुयेमें चारों भाइयों को हारगये वे चारों महापराक्रमी होनेपर भी चलेगये और
कौरवों को न मारा युधिष्ठिर धर्मावतार थे और क्लेश सहने के योग्य न थे परन्तु
उन्होंने भी क्लेश सहा इन सब चरित्रों को कारणसहित कहिये और यह भी
वर्णन कीजिये कि अर्जुन ने जिनके सारथी श्रीकृष्ण थे किसप्रकार से बहुतसी
सेना को यमपुर पहुँचाया और उन सब महारथियोंने किसप्रकार से युद्ध किया
और कब कब क्या २ चरित्र किया ८ । ११ यह सुनकर वैशंपायनजी बोले
कि हे राजा ! मैं एक लाख व्यासजी के बनाये हुये महाभारत को जो सब लोकों
में पूजितहै कहता हूं आप एकाग्रमन करके सुनिये १२ । १४ इस कथा के
सुनने और सुनानेवाले दोनों ब्रह्मलोक पाकर देवतों के तुल्य होजाते हैं १५
यह महाभारत वेदोंकी तरह पवित्र और उत्तमहै और सबके मनने के योग्यहै
क्योंकि सब ऋषियों ने इसकी प्रशंसा की है १६ और इसके पढ़ने से मनुष्य
को अर्थ काम मोक्षसम्बन्धी बुद्धि और ज्ञान प्राप्त होताहै १७ विद्वान् लोग
इस महाभारत को दानशील सत्यशील अनास्तिक और अक्षुद्र मनुष्यों को
सुनाकर धन पाते हैं १८ इसके सुनने से भ्रूणहत्या का पाप दूर हो जाता है

और सब पापों से ऐसे छूटजाता है जैसे राहु से छूटकर चन्द्रमा निर्मल होजाता है इसके सुनने से जय चाहनेवाले की जय होती है १६। २० वह पृथ्वी को जीतकर शत्रुओं को मारता है और सन्तान चाहनेवालों के सन्तान होती है २१ जो राजा और रानी इसको सुनै तो उनके बड़ा वीर पुत्र अथवा बड़ी भाग्यवान् कन्या होती है २२ यह व्यासकृत महाभारत धर्मशास्त्र अर्थशास्त्र और मोक्ष-शास्त्र है २३ इसके सुनने और सुनानेवालों के मन वाचा और कर्म के किये हुये पाप जल्दी दूर होजाते हैं और उनके आज्ञाकारी और सेवा करनेवाले पुत्र होते हैं २४। २५ उनके पास व्याधि नहीं आती है २६ व्यासजीने इस इतिहास को मनुष्यों के पुण्य आयु यश और धन देने को बनाया है यह पांडव आदिक बड़े २ क्षत्रियोंका कीर्त्तन करनेवाला है और सब विद्याओं का देनेवाला है जो कोई इस पुण्य कथाको ब्राह्मणों को सुनाता है उसको परम गति मिलती है जो कुरुवंशकी कथा को पढ़ता है उसको बड़ा उत्तम वंश मिलता है और जो चातुर्मास्यमें इसको सुनता सुनाता है उसके सब पाप दूर होजाते हैं २७। ३१ इस महाभारतके पढ़नेवाले को वेदपारग जानना चाहिये क्योंकि इसमें देव ब्राह्मण ऋषि विष्णु देवी और गौका माहात्म्य वर्णन किया है ३२। ३५ जो कोई इस इतिहास को श्राद्ध में ब्राह्मणों को सुनाता है उसके पितर अक्षय तृप्त होजाते हैं ३६ और जो मनुष्य ज्ञान या अज्ञान से इन्द्रियों के वश होकर पाप करते हैं उनके पाप तुरन्त छूटजाते हैं ३७ इसमें भरतवंशियों के महाजन्म की कथा होने से इसका नाम महाभारत हुआहै इस अर्थ को जानने से मनुष्य के पाप इसप्रकार से भागते हैं जैसे सूर्य के तेजके लगने से शीत चला जाता है ३८। ३९ श्रीव्यासजी ने इस इतिहास को नियम करके तप में स्थित हो तीन वर्ष में बनाया है इससे ब्राह्मणों को भी नियम धरिके कहना और सुनाना चाहिये ४०।४१ ऐसा करने से सब पाप दूर होजाते हैं धर्म की इच्छा रखनेवालों को इसे अवश्य सुनना चाहिये क्योंकि इसके सुनने से सिद्धि मिलती है मनुष्य स्वर्गगति से ऐसे भोग नहीं भोगता है जैसे भोग इस महाभारत के पढ़ने से मिलते हैं ४२। ४४ इसके सुनने सुनाने से अश्वमेध और राजसूय यज्ञोंका फल मिलता है यह पवित्र और वेदों के तुल्य महाभारत ऐसे पुण्यकी खानिहै जैसे समुद्र और सुमेरु पर्वत रत्नोंका है ४५। ४७ जो कोई महाभारत की पुस्तक पढ़ने को दान देता है उसे सब पृथ्वीदान करने का फल मिलता है हे राजा!

यह कथा अद्भुत और पावन है और पुण्य विजय और चारों फलों को देने-वाली है और जो धर्म अर्थ काम और मोक्षका सिद्धान्त इसमें है वही और जगह भी है और जो इसमें नहीं है वह कहीं नहीं है ४८। ५१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विषष्टितमोऽध्यायः ६२॥

तिरसठवां अध्याय।

व्यासजीकी उत्पत्ति और कुरु पांडवों के युद्धके मुख्य मुख्य राजाओं के जन्मकी संक्षेप कथा॥

वैशंपायन बोले हे राजा! पूर्व कालमें वसुनाम एक पुरुवंशका बड़ा धर्मात्मा राजाथा उसको अहेर खेलनेका बड़ा व्रतथा समय पाकर वह राज्य छोड़कर उग्र तप करने लगा उसके तपको देखकर इन्द्रको शंका हुई और इसी कारणसे इन्द्र सब देवताओं सहित राजाके पास आये और सामवचन कहके उसको तप से हटाया १। ४ पहिले देवता बोले कि राजा! आपका यह धर्म नहीं है आपका तो पूर्वही क्षत्रीधर्म है जिससे सब जगत् की रक्षा होती है ५ फिर इन्द्र बोले हां राजा! आपको राजनीतिके अनुसार चलना और लोकका पालन करना चाहिये ऐसा करनेसे तुमको पुण्य और सनातन लोक मिलेंगे ६ हम स्वर्ग-वासी हैं और आप पृथ्वी के रहनेवाले हैं अब आप मेरे मित्र होकर इस पृथ्वीपर जो चंदेरी नाम सुन्दरदेश है वहां वसिये यह देश पशुओं का हितकारी पुण्यसारी और धनधान्यकारी है यहांकी पृथ्वी धन रत्न और अनेक गुणों से युक्त है ७। ९ और उसमें धर्म और शीलवान् मनुष्य और बड़े संतोषी साधुलोग रहते हैं झूठ कोई नहीं बोलता है सब गुरुभक्त होते हैं पुत्र पितासे जुदे नहीं रहते बैलको धुरीमें नहीं जोतते सब वर्णोंके लोग अपना अपना धर्म करते हैं और मैं तुम को अपना विमान जो देवताओंके योग्य है और स्फटिककी तरह उजला है देता हूं इसपर चढ़कर तुम नररूपधारी देवता की तरह विचरो १०। १४ और यह वैजयन्तीमाला जिसके कमल कभी नहीं मुरझाते लो इसको पहिरकर जब लड़ाई में जाओगे तब यह शस्त्रोंसे तुम्हारी रक्षा करैगी १५ इसे पहिरेहुये जो कोई तुमको देखेगा वह तुमको धन्य कहैगा १६ इन्द्रके ऐसा कहनेसे राजाने चंदेरीदेशमें वास किया और इन्द्र ने उससमय राजाको एक बांसकी लठिया दी १७ और कहा कि यह लठिया साधारण नहीं है हर संवत् के बीतने पर इस लाठीको तुम पृथ्वी में गाड़कर मेरा आवाहन इसमें करना और मणि भूषण और वसनसहित षोड़श उपचार से मेरा पूजन करना दूसरे दिन राजा

चंदेरीने बड़े उत्सवसे उक्तरीतिसे इन्द्रका पूजन किया उसको देखकर इन्द्रने प्रीतिसे कहा कि राजा चंदेरी की समान जो राजा मेरा पूजन करेगा उसके लक्ष्मी और विजय होगी और उसके देशमें सदा आनन्द रहेगा तब से उत्तम राजाओं के यहां अबतक इन्द्रका पूजन उसी प्रकार से होता है राजा चंदेरी इन्द्र से ऐसा सत्कार पाकर बड़े प्रसन्न हुये और हर संवत् में इन्द्रका पूजन और प्रजा का धर्म से पालन करनेलगे १८। २८ इसके पीछे राजाके पांच पुत्र बड़े पराक्रमी और तेजस्वी हुये एक का नाम बृहद्रथ जो मगध देश में विख्यात है दूसरे का नाम प्रत्यग्रह तीसरे का नाम कुशांब जिसको मणिवाहन भी कहते हैं चौथे का नाम मावेल्ल और पांचवें का नाम यदु था इन पांचोंको राजाने अलग अलग राज्य देकर राजा किया और वे पांचों अपने अपने राज्यमें अपने अपने नामके नगर बसाकर राज्य करने लगे उन पांचोंके पांच अलग अलग वंश हुये २६। ३२ राजा वसु इन्द्रके दिये हुये विमानपर आकाश में बैठे रहते और विचरा करते थे और उनके पास गन्धर्व और अप्सरा आती थीं ३३ इसके पीछे राजा का नाम उपरिचर विख्यात हुआ उस राजाके चंदेरी नगरके समीप एक शुक्तिमतीनाम नदी बहती थी उस नदीको कामके वश होकर कोलाहलनाम पर्वतने रोका ३४ राजाने कोप करके उस पर्वत को लात से मारा और उसमें एक विवर होगया कि उसकी राह वह नदी बह निकली ३५ कोलाहलके संगम करनेसे उस नदी के गर्भ रहा और उसके एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न हुई नदीने उन दोनों को राजाकी प्रीतिके कारण से राजाको निवेदन किया ३६ राजाने लड़के का नाम वसुप्रद रखकर उसको अपना सेनापति किया ३७ और उस गिरिका कन्याको अपनी पत्नी बनाया थोड़े दिनोंमें वह गिरिका ऋतुमती हुई ३८ परन्तु जिस दिन वह गिरिका ऋतुस्नान करने को थी उस दिन पितरों ने राजा से आकर कहा कि आज मृग मारकर श्राद्ध करो राजा उनकी आज्ञा के अनुसार वनको चलागया और गिरिका के रूपको याद करके राजा कामवश हुआ ३६। ४० जब वनमें पहुँचा तब देखता क्या है कि वसंतऋतुने उस वनको अत्यन्त शोभायमान कर रक्खा है अनेक तरह के मीठे फल देनेवाले वृक्ष जैसे अशोक, चम्पक, आम, अतिमुक्त, पुन्नाग, बकुल, दिव्यपाटल, पाटल, नारिकेल, चन्दन, अर्जुन आदि लगेहुये हैं चारों ओर भौंरे गूंजरहे हैं और कोकिलाओं के झुण्ड के

झुण्ड जहां तहां मधुर घोष कररहे हैं ४१ । ४३ राजा कामाग्नि से आविष्ट उस आनन्द को देखता हुआ दैवयोग से एक अशोक वृक्ष के पास पहुंचा वह अत्यन्त सुगन्धित फूलों के गुच्छों से फूला हुआ था राजा उसके नीचे बैठगया और मैथुन के आनन्द को पानेलगा उपरांत उस वनमें घूमते हुये राजाका वीर्य गिरा ४४ । ४७ राजाने इस बातको जानकर वीर्य को वृक्षके पत्ते में लेलिया ४८ और इस विचारसे कि मेरा वीर्य और मेरी सुकुमार स्त्रीका ऋतुकाल व्यर्थ न हो ४९ अपने विमानपर बैठे हुये श्येननाम पक्षी से कहा कि यह मेरा वीर्य है इसको तू जल्दी लेजाकर मेरी गिरिका नाम स्त्री को दे ५० । ५२ श्येन पक्षी यह सुनकर वहां से वह वीर्य लेकर जल्दी से उड़ा ५३ राह में उसको जाते हुये एक दूसरे श्येनपक्षी ने देखा और उस वीर्ययुक्त पत्ते को मांस समझकर उसके सामने आया ५४ पास पहुँचने पर वे दोनों चोंच से लड़नेलगे और वह वीर्य यमुना में गिरपड़ा ५५ दैवयोग से उस जगह जहां वीर्य गिरा था एक आद्रका नाम अप्सरा जो एक ब्राह्मण के शाप से मछली होगई थी यमुना में फिरती हुई वहां आपहुँची ५६ और उस वीर्य को निगल गई ५७ जब दश महीने हुये तब उस मछली को दैवयोग से धीमरों ने पकड़ा और उसका पेट चीरने पर उसके पेट में से एक कन्या और एक पुत्र उत्पन्न हुये उनको देखकर धीमरों ने आश्चर्य किया और उन दोनों को लेजाकर राजा के अर्पण किया ५८ । ५९ राजा ने उस लड़के को लेलिया वही लड़का धर्मात्मा और सत्यसंकल्प मत्स्यनाम राजा हुआ और वह अप्सरा जो शाप से मछली होगई थी और भगवान् ने उससे यह कहा था कि तू दो मनुष्यों को उत्पन्न करेगी उस समय तू इस शाप से छूटजायगी धीमरों के पेट काटनेपर दिव्यरूप धारण करके आकाश को चलीगई ६० । ६३ और उस कन्या को जो बड़ी गुणवान् और रूपवती थी राजाने धीमरों को देकर कहा कि यह तुम्हारी कन्या हो ६४ । ६५ धीमरों ने उसको लेलिया और अपनी कन्या के समान पाला और उसका नाम सत्यवती रक्खा परंतु उसका जन्म मछली से होनेके कारण उसका थोड़े दिनों तक मत्स्यगंधिनी नाम रहा ६६ थोड़े दिनों में वह कन्या सयानी हुई और पिताकी आज्ञासे पिताकी नावको महात्माओं की सेवाके लिये यमुना में चलाया करती थी एक समय वहां पराशरऋषि तीर्थयात्रा करते हुये आये और उस कन्याके सुंदर स्वरूप और मृदु मुसक्यान को देखकर मोहित हो

गये ६७। ६८ और जब नाव में बैठकर बीचधारा में पहुँचे तब कामवश होकर बोले कि हे कल्याणी ! तू मेरे साथ रमण कर वह कन्या यह सुनकर बोली कि महाराज ! वार पार दोनों ओर ऋषिगण खड़ेहुये हैं उनके देखते हुये मेरा आपका समागम क्योंकर होवे यह सुनकर पराशरजी ने ऐसा निहार प्रकट किया कि चारोंओर महाअन्धकार छागया ६९। ७१ सत्यवती उस अन्धकार को देखकर चकित हुई और उनको बड़ा तपस्वी समझकर लज्जित होकर ७२ बोली कि महाराज मैं अभी कन्याहूं और पिताकी आज्ञा के अनुसार चलती हूं आपके साथ संगम करने से मेरा कन्याभाव मिटिजायगा और कन्याभाव मिटने पर क्योंकर घर जाऊँगी और जीतीरहूंगी ७३। ७४ इस बातको आप विचार करलीजिये फिर जो चाहे सो कीजिये यह सुनकर मुनीश्वर प्रीतिपूर्वक बोले कि तू जो मैं कहूं सो कर तेरा कन्याभाव न जायगा और जो कुछ तुझे वर मांगना है सो मांग ७५। ७६ मेरा कहा कभी झूंठ नहीं होता सत्यवती ने कहा कि महाराज मेरी देह सुगन्धित होजाय ७७ मुनीश्वर ने उसको मनोवांछित वर दिया और वर पाकर उसकी देही अत्यन्त सुगन्धित होगई और उसका नाम गंधवती पृथ्वी पर विख्यात हुआ उपरांत जब मनुष्यों ने उसकी देहकी गंधको एक योजन की दूरीसे सूंघा तबसे उसका नाम योजनगंधा विख्यात हुआ ७८। ८० इसके उपरान्त पराशरऋषिने उस कन्यासे उसी जगह यमुना के द्वीप में भोग किया और उस कन्याने तुरन्त गर्भको धारण करके उसी यमुना के द्वीपमें व्यासजी को उत्पन्न किया व्यासजी उत्पन्न होते ही वहां से तप करने को चलेगये और मातासे यह कहगये कि जिससमय तू याद करैगी मैं आजाऊँगा ८१। ८२ व्यासजी का नाम द्वैपायन मुनि होने का यह कारण है कि वह यमुना के द्वीप अर्थात् टापू में उत्पन्न हुये और इसके पीछे जब उन्होंने ब्राह्मणों पर अनुग्रह करके मनुष्यों की आयु और शक्ति को और युगों के अन्त में धर्म की हानि देखकर वेदका विस्तार और विभाग किया तबसे उनका नाम व्यास विख्यात हुआ ८४। ८५ उन चारों वेदोंको और इस पांचवें महाभारत वेदको व्यासजी ने सुमंतु, जैमिन, पैल और वैशम्पायन आदि शिष्यों को और अपने पुत्र शुकदेव को पढ़ाया और वैशम्पायन के द्वारा यह पांचवां महाभारत वेद संसार में प्रकट हुआ ८६। ८७ इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले हे ऋषियो ! इसके उपरान्त बड़े यशस्वी तेजस्वी और

पराक्रमी भीष्मजी गङ्गाके गर्भ से अष्टवसुओंके अंशसे राजा शांतनुके पुत्र उत्पन्न हुये ८८ और धर्मराज शूद्रयोनि में अवतार लेकर विदुरके नामसे प्रकट हुये शूद्रयोनिमें जन्म लेने का कारण यह था कि एक अणीमाण्डव्य नाम बड़े यशस्वी ब्रह्मवेत्ता और वेदपाठी ऋषि थे उनको चोरी का झूठा पाप लगाकर शूली दीगई जब यमराज के पास पहुँचे तब ऋषिने कहा कि हमने कोई पाप संसारमें नहीं किया था हां बालापन में एक समय एक टीड़ी को तिनके से छेदाथा सो वह थोड़ासा पाप क्या हमारी महाउग्र तपस्या से भी नाश नहीं हुआ ब्राह्मणका वध करना पीड़ा देना और अपमान करना सब संसारी प्राणियों के वध से अधिक है इस कारण से हम तुमको शाप देते हैं कि तुम पृथ्वीपर जाकर शूद्रयोनि में जन्म लो ८९। ९३ इसके पीछे गवल्गणसे मुनियों के समान सञ्जय सूत उत्पन्न हुये ९४ और कुंतीके गर्भ से कुमारअवस्था में सूर्य के वीर्य से कुण्डल और कवच धारण किये हुये कर्ण प्रकट हुआ ९५ इसके उपरान्त श्रीविष्णुभगवान् जो अनादि, नाशरहित, जगत्‌का कर्ता, प्रभु, अप्रकट, अविनाशी, ब्रह्म, प्रधान, त्रिगुणात्मक, आत्मा, अव्यय, प्रकृति, उत्पत्ति का निमित्त, प्रभु, पुरुष, विश्वकर्मा, तत्त्वयोग, ध्रुवाक्षर अर्थात् प्रणवनाम ब्रह्माक्षरके अक्षर, अनन्त, अचल, देव, हंस अर्थात् संन्यास आश्रमरूप, नारायणप्रभु, धातार, अज, अव्यक्त, अव्यय, कैवल्य, निर्गुण, विश्वरूप, अनादि, अज, अव्यय, पुरुष, समर्थ, कर्ता और सब प्राणियों के पितामह हैं उन्होंने धर्म की रक्षा और संसारी जीवोंका कल्याण करने के लिये वृष्णिवंश के क्षत्रियों में देवकी और वसुदेव के यहां अवतार लिया ९६। १०० फिर सत्यक के वंश में सात्यकी और हृदिकके वंश में कृतवर्मा बड़े पराक्रमी और अस्त्र और शस्त्रविद्यामें अतिनिपुण उत्पन्न हुये और भरद्वाजऋषिका वीर्य पहाड़की खोह में गिरने से द्रोणाचार्य और गौतमऋषिका वीर्य शरस्तंबपर गिरने से अश्वत्थामा की माता और कृपाचार्य प्रकट हुये और द्रोणाचार्य के अश्वत्थामा बड़ा वीर पुत्र उत्पन्न हुआ १०१।१०४ इनके पीछे होमकी अग्निसे अग्निका सा तेज रखनेवाला द्रोणाचार्यके मारने के लिये धनुषबाण लिये हुये धृष्टद्युम्न और अत्यन्त सुन्दरी कृष्णा प्रकट हुई १०५। १०६ फिर प्रह्लादके शिष्य नग्नजित् और सुबल उत्पन्न हुये १०७ इनकी संतान देवके कोप से धर्मनाशक हुई और गांधार देशके राजा सुबलके शकुनिनाम पुत्र और एक गंधारीनाम

कन्या उत्पन्न हुई उसका विवाह धृतराष्ट्र से हुआ और उसके दुर्योधनादिक पुत्र हुये और फिर व्यासजी से विचित्रवीर्य की स्त्रीके गर्भ से धृतराष्ट्र और पाण्डु और शूद्रयोनि से विदुरजी उत्पन्न हुए विदुरजी धर्मवान् और निष्पापथे १०८।११० इसके उपरान्त राजा पाण्डुके दो स्त्रियों से पांचपुत्र देवताओं के तुल्य पराक्रमी उत्पन्न हुए एकका नाम युधिष्ठिर उससे छोटे दूसरे का नाम भीमसेन तीसरे का अर्जुन चौथे का नकुल और पांचवें का नाम सहदेव था इनमें से पहिले तीनों क्रम से धर्मराज वायु और इन्द्र से और पिछले दोनों अश्विनीकुमार से उत्पन्न हुए १११।११३ और धृतराष्ट्र के भी सौ पुत्र दुर्योधनादिक और युयुत्सु और कर्ण उत्पन्न हुए ११४ इनमें से ११ पुत्र जो महारथी थे उनके नाम ये हैं कर्ण, दुश्शासन, दुःसह, दुर्मर्षण, विकर्ण, चित्रसेन, विविंशति, जय, सत्यव्रत, कुरुमित्र और वेश्यापुत्र युयुत्सु ११५। ११६ इनके पीछे श्रीकृष्ण का भानजा और पाण्डवों का पोता अभिमन्यु सुभद्रा के गर्भ से उत्पन्न हुआ ११७ और द्रौपदीकेभी पांचों पांडवोंसे पांचपुत्र अत्यन्त स्वरूपवान् उत्पन्न हुये ११८ इनमें से युधिष्ठिर के पुत्रका नाम प्रतिविन्ध्य भीमसेनके पुत्रका नाम सुतसोम अर्जुन के पुत्र का नाम श्रुतकीर्ति नकुलके पुत्र का नाम शतानीक और सहदेवके पुत्रका नाम श्रुतसेनथा और उसी समयमें हिडम्बा राक्षसी के भीमसेन से घटोत्कचनामी पुत्र उत्पन्न हुआ ११९। १२० और राजा द्रुपदके शिखण्डी कन्या उत्पन्न हुई और उसको स्थूणनाम यक्षने अपना पुरुषत्व देकर पुरुष किया १२१ इतनी कथा सुनाकर सूतजी बोले हे ऋषियो! कुरु और पांडवों के युद्धमें कई लाख राजा इकट्ठे हुयेथे उनके नाम वर्षोंमेंभी मैं नहीं कहसक्ता हूं परन्तु जो जो उनमें मुख्यमुख्यथे उनको मैंने ऊपर वर्णन किया १२२।१२३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रिषष्टितमोऽध्यायः ६३॥

चौंसठवां अध्याय।

असुरोंका पृथ्वीपर जन्म लेना व पृथ्वीका उनके अधर्म से दुःख पाकर ब्रह्माजीके पास जाना और ब्रह्माजीका सब देवताओं को पृथ्वीका भार दूर करनेको पृथ्वीपर जन्म लेनेकी आज्ञादेना॥

सूतजीने कहा हे ऋषियो! राजा जनमेजय ऊपर वर्णन कीहुई कथा सुनकर वैशम्पायनजी से बोला कि महाराज मैंने इनलोगोंका वृत्तान्त तो सुना परन्तु और बहुतसे महारथी राजालोग जिन्होंने देवताओंके सदृश पृथ्वीपर जन्म लिया उनकी कथा भी सुनना चाहता हूं कृपा करके उनकी कथा भी समुझाय

कर कहिये १।२ यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले कि हे राजन्! यह देवताओं की गुप्त बात है मैं ब्रह्माजीको नमस्कार करके तुम्हारे सामने वर्णन करताहूं ३ जब जमदग्निके पुत्र परशुरामजी महाराज इक्कीस बेर पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित करके महेन्द्रपर्वतपर सौम्य स्वभाव धारण करके तपस्या करनेको चले गये ४ तब सब क्षत्रियोंकी स्त्रियां ऋषियों के पास गई ५ और कहा कि महाराज ऐसा कीजिये कि जिसमें क्षत्रियोंका वंश पृथ्वीपर स्थिर रहे उन महातपस्वी ऋषियों ने उनकी यह बात सुनकर ऋतुस्नान करनेपर उनके साथ भोग कर करके वीर्य दान दिया परन्तु किसी ने उनके साथ कामवश होकर भोग नहीं किया उन क्षत्रियों की हजारों स्त्रियों ने गर्भ धारण किया और उनसे हजारों बड़े २ पराक्रमी क्षत्रीपुत्र और कन्या उत्पन्न हुई और थोड़ेही कालमें धर्म करने से वह क्षत्रीलोग ऐसे बढ़े कि सम्पूर्ण पृथ्वी वन और पहाड़ोंमें समुद्रतक भरगये और उनके शरीर नीरोगी और आयु लाखवर्ष की होती थी क्योंकि वह लोग धर्म पर चलते थे और स्त्रीके साथ संगम ऋतुस्नान करने पर करतेथे कामवश होकर कभी कोई स्त्रीके साथ भोग नहीं करता था ६।१३ राजालोग पृथ्वीका पालन धर्मसे करते थे दण्डयोग्य मनुष्यों को धर्मसे दण्ड देते थे ऐसा करनेसे ब्राह्मण आदि चारों वर्ण उनके राज्य में आनन्दपूर्वक रहते थे १४।१५ राजालोगोंके इसप्रकार धर्मके साथ राज्य करने से इन्द्र सब देशोंमें अच्छीतरह वर्षा करते थे और उससे प्रजाका पालन होताथा १६ उस समय में कोई मनुष्य बालअवस्था में नहीं मरताथा और न कोई स्त्री छोटी उमरमें बच्चा जनती थी पुरुषलोग स्त्रियों के साथ संगम युवावस्था के प्राप्त होने पर करते थे १७ क्षत्रीलोग बड़े २ यज्ञ जिनमें बड़ी २ दक्षिणा दीजाती हैं करते थे ब्राह्मण लोग विना धन लिये वेद पढ़ाते थे और वेदों का उच्चारण शूद्रों के सामने नहीं करते थे १८।२० बनिये खेती बैलों से करते थे परन्तु आप बैलोंको धुरीमें नहीं जोतते थे जो बैल दुबले होते थे उनसे काम नहीं लेते थे और उनका पालन करते थे और गायों का दूध तबतक नहीं दुहते थे जबतक बछड़े का आधार केवल दूध रहता था और वणिक् लोग कभी कपट के बांटों से सौदा नहीं तौलते थे २१।२२ सब काल में अपनी २ ऋतुके फल और फूल अच्छीतरह होतेथे गौ और स्त्री अपने २ कालपर बच्चा जनती थीं इसप्रकार से सब पृथ्वीमें सुख और आनन्द रहता था चारों वर्ण अपने २ धर्मों को अच्छीतरह करते थे २३।२५

इसप्रकारसे जब पृथ्वीमें सत्ययुग व्यापरहाथा उस समय पृथ्वी में उन दैत्योंने आकर जन्म लिया जो देवताओंसे युद्धमें हारने के कारणसे स्वर्ग से निकाल दियेगयेथे उन दैत्यों ने आकर मनुष्य घोड़ा हाथी गाय भैंस ऊंट गधा और मृग आदि सब योनियों में जन्म लिया और उनके पीछे दिति और दनु के पुत्र दैत्योंने राजा लोगों में जन्म लिया थोड़े दिनोंमें ये दैत्य पृथ्वीपर जन्म लेलेकर समुद्रतक पृथ्वीपर फैलगये और अधर्मका आचरण करनेलगे उन पराक्रमी घमण्डी मदमत्त और विवेकहीन असुरों से ब्राह्मण आदि चारों वर्णों को बड़ा दुःख हुआ वहलोग जीवों को मारने और ऋषियों को दुःख देनेलगे जब ऐसे २ अनेक अधर्म पृथ्वीपर होनेलगे तब पृथ्वी उन दैत्योंके बोझको न सह सकी और सब देवताओंके पितामह ब्रह्माजी के पास गई २६। ३६ और उनकी सभा में जहां उत्तम ब्राह्मण बड़े २ ऋषि संपूर्ण देवता गंधर्व और अप्सरा बैठीथीं जाकर ब्रह्माजी की वंदना की और लोकपालों सहित शरणागत हो-कर अपनी व्यवस्था सुनानेलगीं ४०। ४२ परन्तु ब्रह्माजी जो संपूर्ण जगत् के रचनेवाले स्वयम्भू प्रधानात्मा, ईश अर्थात् विष्णु, शम्भु और प्रजापति हैं पृथ्वीकी सब व्यवस्था को पहिलेही जानगये और उससे बोले ४३। ४५ कि हे पृथ्वी ! मैं जानता हूं जिस कारण से तू यहां आई है अब तू जा और मैं तेरे कामके करने के उपाय में देवताओं को नियुक्त करता हूं ४६ ऐसा कहकर ब्रह्माजी ने पृथ्वी को बिदा किया और सब देवताओं को आज्ञा दी ४७ कि तुमलोग पृथ्वीका भार दूर करने को अपने अपने अंश से मृत्युलोक में जन्म लो ४८ और गंधर्व अप्सराओं कोभी बुलाकर यही आज्ञा दी ४६ देवताआदि सबोंने ब्रह्माजीकी आज्ञा को शिरपर रखलिया और ५० वहां से सब के सब देवता श्रीविष्णुभगवान्के पास जो शंख चक्र गदा पद्म और पीतांबर के धारण करनेवाले, तीक्ष्ण प्रभावाले, पद्मनाथ, असुरनाशक, बड़ी चौड़ी छातीपर दृष्टि रखनेवाले, प्रजापतिके पति, देव, सुरनाथ, महाबली, श्रीवत्सांक, हृषीकेश और सब देवताओं से पूजित हैं वैकुंठधाम में जाकर विनय की कि आप भी पृथ्वी का भार दूर करने को जन्म लीजिये विष्णुभगवान् ने कहा अच्छा ऐसा ही करेंगे ५१। ५४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुःषष्टितमोऽध्यायः ६४॥

पैंसठवां अध्याय।

सब सुर असुर दैत्य दानव गंधर्व और अप्सराओं के अंशावतारणकी कथा ॥

वैशंपायन बोले हे राजा जनमेजय! इन्द्रआदि सब देवताओं का विष्णुभगवान् के साथ मंत्र होने के पीछे इन्द्रने सब देवता और गंधर्वआदिको मृत्युलोक में जन्म लेनेकी आज्ञा दी और आज्ञा देकर वहांसे चलेगये १। २ इसके पीछे सब देवताओंने अपनी अपनी रुचिके अनुसार स्वर्ग से पृथ्वी में जाकर ब्रह्मऋषि और राजऋषियोंके वंश में अवतार लिया और सब दैत्य दानव और राक्षसोंको मारडाला और दैत्यलोग उन प्रबल देवोंको बाल अवस्थामें भी न मारसके ३। ६ यह सुनकर राजा जनमेजयने कहा कि महाराज में सब सुर असुर दैत्य दानव गंधर्व अप्सरा और मनुष्योंके अवतारकी कथा विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं आप कृपाकरके उनके संभवकी कथा वर्णन कीजिये ७। ८ यह सुनकर वैशम्पायन बोले हे राजन्! मैं ब्रह्माजी को नमस्कार करके सब देवताओं के सम्भव की कथा कहता हूं सुनो ९ पहले ब्रह्माजी के ६ मानसी पुत्र उत्पन्न हुये एक का नाम मरीच दूसरा अत्रि तीसरा अंगिरस चौथा पुलस्त्य पांचवां पुलह और छठा क्रतु था फिर मरीचके कश्यपजी पुत्र हुये और कश्यपजीसे यह सब सृष्टि हुई और दक्षके १३ कन्या उत्पन्न हुईं उनके नाम ये हैं १०। ११ अदिति १, दिति २, दनु ३, काला ४, दनायु ५, सिंहिका ६, क्रोधा ७, प्राधा ८, विश्वा ९, विनता १०, कपिला ११, मुनि १२, कद्रू १३ इन सबका विवाह कश्यपजीसे हुआ और उनके पुत्र और पौत्र अनगिनती हुये १२। १३ अदिति के बारह सूर्य जो भुवनेश्वर कहलाते हैं उत्पन्न हुये उनके नाम येहैं १४ धाता १, मित्र २, अर्यमा ३, शक्र ४, वरुण ५, अंश ६, भग ७, विवस्वान ८, पूषा ९, सविता १०, । १५ त्वष्टा ११, विष्णु १२ इन सबमें छोटे आदित्य गुणमें सबसे अधिक हैं १६ और दिति के एक पुत्र हिरण्यकशिपु नामी बड़ा प्रतापी हुआ और उसके पांच पुत्र हुये पहला प्रह्लाद दूसरा संह्लाद तीसरा अनुह्लाद चौथा शिवि और पांचवां वाष्कल था १७। १८ प्रह्लादके तीन पुत्र हुये एकका नाम विरोचन दूसरेका नाम कुंभ और तीसरेका नाम निकुम्भ था १९ विरोचन के बड़ा प्रतापी बलिनाम पुत्र हुआ और बलिके सुरबाण नाम पुत्र हुआ वह शिवजीका बड़ा भक्त था जिसका नाम महाकाल भी विख्यातहै और दनुके ४० पुत्र हुये उनमें से जो विख्यात २ हैं उनके नाम

ये हैं विप्रचित्त, शंवर, नमुचि, पुलोमा, असिलोमा, केशी, दुर्जय, दानव, अयःशिरा, अश्वशिरा, अश्वशंकु, क्रतुमान, स्वर्भानु, अश्व, अश्वपति, वृषपर्वा, अजक, अश्वग्रीव, सूक्ष्म, तुहुण्ड, एकपाद, एकचक्र, विरूपाक्ष, महोदर, निचंद्र, कुपट, कपट, शरभ, शलभ, सूर्य और चन्द्रमा २०। २६ जिन सूर्य और चन्द्रमाकी गिनती देवताओं में है वे सूर्य और चन्द्रमा दूसरे हैं २७ दनु के पुत्रों में जो पुत्र वंशकर्ता हुये उनके नाम ये हैं एकाक्ष, मृतपवीर, प्रलम्ब, नरक, वातापी, शत्रुतपन, महाअसुर, शठनाम, गविष्ठ, वनायु, दीर्घजिह्वा, दानव और इन दशोंके पुत्र पौत्र असंख्य हुये २८। ३० और सिंहिका के ४ पुत्र हुये पहला सूर्य और चन्द्रमा को मर्दन करनेवाला राहु, दूसरा सुचन्द्र, तीसरा चन्द्रहन्तार और चौथा चन्द्रप्रमर्दन था ३१ और क्रोधा के क्रूर स्वभाव रखनेवाले अनगिनती पुत्र पौत्र उत्पन्न हुये ३२ और इनके पीछे दनायु के चार पुत्र विक्षर, वलवीर और वृत्रनामी सब दानवों में उत्तम हुये ३३ इनके पीछे कालाके चार पुत्र विनाशन, क्रोध, क्रोधहंता और क्रोधशत्रुनामी बड़े बलवान् विख्यात और काल के तुल्य प्रहार के करनेवाले प्रकट हुये ३४। ३५ इन असुरों के ऋषिपुत्र शुक्रजी उपाध्याय हुये और शुक्रके चार पुत्र त्वष्टा, अधर, अत्रिनामी और दो और जो सूर्यके समान तेजस्वी और ब्रह्मलोकमें रहते थे असुरों को यज्ञ करानेवाले हुये ३६। ३७ इतनी कथा सुनाकर वैशम्पायनजी बोले हे राजन्! यह असुरोंके वंशकी कथा जो हमने पुराणोंमें सुनी थी आपके सामने कही परन्तु इन सबकी संतान का हाल नहीं कहसक्ताहूं क्योंकि उनकी गिनती नहीं होसक्ती ३८। ३९ विनता के पुत्रों के नाम ये हैं तार्क्ष्य, अरिष्टनेमि, गरुड़, अरुण, अरुणि और वरुणि ४० और शेष, वासुकि, तक्षक, कूर्म और कुलिक कद्रूके पुत्रहैं ४१ इनके पीछे मुनि देवी के १६ देव गंधर्व उत्पन्न हुये उनके नाम ये हैं भीमसेन, उग्रसेन, सुपर्ण, वरुण, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, सत्यवाक्, अर्कपर्ण, प्रयुत, भीम, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्यन्य, कलि और नारद ४२। ४४ इसके उपरान्त प्राधाके ७ पुत्री और १० पुत्र उत्पन्न हुये उनके नाम ये हैं पुत्रीनामानि ॥ अनवद्या, मनुवंशा, असुरा, मार्गणप्रिया, अरूपा, सुभगा और भासी पुत्रनामानि ॥ सिद्ध, पूर्ण, वर्हि, पूर्णायु, ब्रह्मचारी, रतिगुण, सुपर्ण, विश्वावसु, भानु और सुचन्द्र ४५। ४७ प्राधा के ये पुत्र देवगंधर्व कहलाते हैं और इनके उत्पन्न होने के पीछे प्राधाके देवऋषियों से अप्स-

राओंके वंश उत्पन्नहुये उनके नाम हम आगे वर्णन करते हैं ४८। ४९ अलंबुषा, मिश्रकेशी, विद्युतपर्णा, तिलोत्तमा, अरुणा, रक्षिता, रम्भा, मनोरमा, केशिनी, सुबाहु, सुरता, सुरजा और सुप्रिया और गंधर्वों में अतिबाहु, हाहा, हूहू और सुंबरु बड़े नामी हुये ५०। ५१ इतनी कथा सुनाकर वैशंपायनजी बोले हे जनमेजय! मैंने तुमको अमृत ब्राह्मण गो गंधर्व अप्सरा और कपिला की संतान की कथा पुराणों के अनुसार सुनाई और सम्पूर्ण प्राणी, गंधर्व, अप्सरा, सर्प, सुपर्ण, रुद्र, मरुद्गण, गो ब्राह्मण और पवित्र पुरुषों के उत्पन्न होने का हाल भी वर्णन किया यह सब कथा आयु के बढ़ानेवाली और धन और सुख के देनेवाली और सदा सुनने के योग्य है जो मनुष्य इस कथा को ब्राह्मण और देवता के समीप पढ़ैगा उसको लक्ष्मी यश संतान और शुभ गति प्राप्त होगी ५२। ५६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ६५॥

छाछठवां अध्याय।

देवता असुर धर्म अधर्म और पशु पक्षियों के उत्पन्न होनेकी कथा॥

वैशंपायन बोले हे राजा जनमेजय! मरीच, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु ये ६ पुत्र ब्रह्माजी के और मृगव्याध, सर्पनिर्ऋति, अजैकपाद, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कपाली, स्थाणु और भग यह ११ पुत्र शिवजी के उत्पन्न हुये १। ४ इसके पीछे बृहस्पति, उतथ्य और संवर्त ये तीन पुत्र बड़े व्रतधारी अङ्गिरा के और मनुज, व्याघ्र, वानर, राक्षस, किन्नर और यक्ष पुलस्त्यजी के और शलभसिंह, किंपुरुष, व्याघ्र, ईहा और मृग पुलहजी के और सत्यव्रतधारी बालखिल्य ऋषि जो सूर्य के साथ फिरा करते हैं क्रतुजी के और वेदके जाननेवाले बड़े २ महाऋषि अत्रिजी के उत्पन्न हुये ५। ६ और उसीसमय में ब्रह्माजी के दाहिने अंगूठे से दक्षऋषि और बायें अंगूठेसे दक्ष की भार्या उत्पन्न हुये और उन दोनों के ५० कन्या हुई १०। ११ दक्ष उन सब सुन्दरी कन्याओं को पुत्रभाव से रखते थे और सयानी होने पर दक्षने १० कन्याओं का विवाह धर्मराज से २७ का चन्द्रमा से और १३ का कश्यपजी से वेदविधि से करदिया १२। १३ जो कन्या दक्ष ने धर्मराज को दी उनके नाम ये हैं कीर्ति, लक्ष्मी, धृति, मेधा, पुष्टि, श्रद्धा, क्रिया १४ बुद्धि, लज्जा और मति ब्रह्माजी ने दशों धर्म के द्वार इनहीं को कहा है १५ और जो २७ कन्या

चन्द्रमा को दीथीं वे लोकयात्रा में समय के क्रमसे नक्षत्रों में फिरा करती हैं अर्थात् अश्विनी भरणी रोहिणी आदि जो २७ नक्षत्र कहलाते हैं वह दक्ष की वही सत्ताईसों कन्या हैं जो चन्द्रमा को दीथीं १६ और पुत्र दक्षप्रजापति के जो आठ पुत्र हुये वेही अष्टवसु कहलाते हैं और उनके नाम ये हैं १७ धर, ध्रुव, सोम, आप, अनिल, अनल, प्रत्यूष और प्रभास १८ इनमें से धर और ध्रुव धूमा से चन्द्रमा मनस्वी से श्वसन श्वासा से अहरता से हुताशन शांडिली से और प्रत्यूष और प्रभास प्रभाता से उत्पन्न हुये १९। २० इसके पीछे धर के द्रवण और हुतहव्य और ध्रुव के काल और चन्द्रमा के वर्चा और मनोहरा के शिरस प्राण और रमण और अह के ज्योति, शम, शांत और मुनि और अग्नि के मानकुमारजी जो ६ कृत्तिकाओं से उत्पन्न होने के कारण से कार्त्तिकेयनाम से विख्यात हुये और अनिल के शिवा स्त्री से मनोजव और अविज्ञात गति और प्रत्यूष के देवल और प्रभास के बृहस्पति की बहिन से जो ब्रह्मवादिनी और योगयुक्त थी विश्वकर्माजी पुत्र उत्पन्न हुये इनके अनन्तर चन्द्रमा के पुत्र वर्चा के वर्चस्वी पुत्र और कार्त्तिकेयजी के शाख विशाख और नैगमेयनामी पुत्र और प्रत्यूष के पुत्र देवल के क्षमावान् और मनीषीनाम पुत्र उत्पन्न हुये और प्रभास के विश्वकर्माजी जो पत्थर बनाने की विद्या में बड़े निपुण हुये और हजारों ऐसे ऐसे पत्थर बनाये जिनको जानकर मनुष्य अपनी जीविका करते हैं और विश्वकर्मा का आराधन करते हैं उन्होंने देवताओंके लिये उत्तम उत्तम विमान बनाये २१। ३० इसके अनन्तर ब्रह्माजी के दहिने स्तन को फोड़कर नररूपधारी धर्म उत्पन्न हुये ३१ उनके शम, काम और हर्षनामी तीन पुत्र बड़े मनोहर और तेजस्वी हुये ३२ और इन तीनों का विवाह प्राप्ति और रति और नन्दानाम स्त्रियों से हुआ ३३ और मरीच के पुत्र कश्यपजी कश्यप के सुर और असुर उत्पन्न हुये जो कि सृष्टि के कारण कहलाते हैं ३४ इसके पीछे सूर्य के तुष्ट्री नाम स्त्री से दोनों अश्विनीकुमार आकाश में उत्पन्न हुये ३५ और अदिति के इन्द्रादिक बारह पुत्र हैं उनमें सबसे छोटे विष्णु हैं ३६ इतनी कथा सुनाकर वैशम्पायन बोले हे राजन्! अब मैं तुमसे देवताओं के गण और पक्षों के नाम कहता हूं वह ये हैं रुद्रगण, मरुद्गण, साध्यगण, भार्गवपक्ष, वसुपक्ष, विश्वेदेवा विनता के पुत्र गरुड़ और अरुण बृहस्पति जो आदित्यों में गिने जाते हैं दोनों अश्विनीकुमार गुह्यक

और सब ओषधी और पशु ३७। ४० मनुष्य इनका कीर्त्तन करने से सब पापों से छूटजाता है और भृगुजी ब्रह्माके हृदय को फोरकर निकले ४१ उनके कविनामी पुत्र और कविके शुक्रनामी पुत्र उत्पन्न हुआ यह शुक्र वर्षा अवर्षा भय और अभयसूचक कार्यों के लिये ब्रह्माजी से नियुक्त होने के कारण से चौदहों भुवनों में घूमते हैं और यही शुक्र योगसिद्धि से दो रूप धरकर सुर और असुरों के गुरु हैं ४२। ४३ इसके पीछे भृगुजी के च्यवन नाम बड़ा तपस्वी और धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ जिन्होंने बड़े क्रोधित होके गर्भसे गिरकर अपनी माता को असुर से छुड़ाया ४४। ४५ इसके अनन्तर भृगुजीका विवाह मनुकी कन्यासे हुआ और उससे भृगुजीके औवर्ऋषि बड़े तेजस्वी और पराक्रमी ऊरुको तोड़कर उत्पन्न हुये ४६। ४७ उनके पुत्र ऋचीक हुये और ऋचीक के जमदग्नि और जमदग्नि के चार पुत्र उत्पन्न हुये उन चारों पुत्रों में सबसे छोटे परशुरामजी बड़े गुणवान् सब शास्त्रों में निपुण और सब पृथ्वी के क्षत्रियों को नाश करनेवाले और वशमें रखनेवाले हुये और औवर्ऋषि के सौ पुत्र थे उनमें जमदग्नि सबसे बड़ेथे और उन पुत्रों की अनगिनती सन्तान पृथ्वी पर फैली ४८। ४९ इसके पीछे ब्रह्माजी के दो पुत्र धाता और विधाता नाम से उत्पन्न हुये ये दोनों मनुजी के संग रहते हैं ५० उनकी बहिन कमलमें रहनेवाली लक्ष्मी थी उसके आकाशमें चलनेवाले मानसी पुत्र उत्पन्नहुये ५१ इसके उपरांत वरुण के बड़ी स्त्री से एक बल नामी पुत्र और सुरानामी पुत्री जिसे देखकर देवता परमानन्द पाते हैं उत्पन्न हुये ५२ और अन्न न होने के कारण से जब प्रजा क्षुधित हुई और प्रबल निबल को भक्षण करने लगी तब सब जीवों का नाश करनेवाला अधर्म उत्पन्न हुआ ५३ उसका विवाह निर्ऋति नाम स्त्री से हुआ और उसके तीन पुत्र भय, महाभय और मृत्युनामी राक्षस सदैव पापकर्म में रत रहनेवाले उत्पन्न हुये मृत्यु के कोई स्त्री अथवा पुत्र नहीं हुआ वह आपही अन्तकरूप रहा ५४। ५५ इसके पीछे ताम्रादेवी के पांच पुत्री काकी, श्येनी, भासी, धृतराष्ट्री और शुकीनाम से उत्पन्न हुईं ५६ काकी के उल्लूनाम के पक्षी श्येनी के श्येननाम के पक्षी भासी के भास और गृध्रनाम के पक्षी धृतराष्ट्री के सब तरह के हंस और चक्रवाकनाम पक्षी और शुकी के शुक अर्थात् तोता नाम के पक्षी उत्पन्न हुये ५७। ५८ इसके अनन्तर दक्षकी क्रोधा नाम पुत्री के मृगी, मृगमन्दा, हरी, भद्रमना, मातंगी, शार्दूली, श्वेता, सुरभि और

सुरसानाम नव कन्या उत्पन्न हुईं ६० । ६१ मृगीसे सब मृग और मृगमन्दा से रीछ और सुमरभद्रमना से देवनाग ऐरावत हाथी हरीसे वानर और लंगूर शार्दूली से सिंह व्याघ्र और द्वीपी मातंगी से हाथी श्वेतासे दिग्गज उत्पन्न हुये और सुरभि के चार पुत्री रोहिणी, गंधर्वी, विमला और अनला उत्पन्न हुईं और रोहिणी के गौ बैल गंधर्वी के घोड़े विमलाके खजूर नारिकेल आदि सात प्रकार के पिंडवृक्ष और अनला के शुकीनाम पुत्री हुई ६२ । ६८ और सुरसा के कंकनामी पुत्र हुआ ६६ और अरुण की स्त्री श्येनीके महाबली संपाति और जटायू उत्पन्न हुये इसके पीछे सुरसा से नाग कद्रूसे सर्प और विनता से गरुड़ और अरुण उत्पन्न हुये हे राजन्! यह सब सृष्टिका वृत्तांत हमने वर्णन किया जो कोई पापी मनुष्य इसको सुनैगा वह पापोंसे मुक्त होकर उत्तमगति पावैगा ७० । ७२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षट्षष्टितमोऽध्यायः ६६ ॥

सरसठवां अध्याय।

दैत्य दानव देवता गन्धर्व और अप्सराओं के पृथ्वीपर अपने अपने अंश से अवतार लेने की कथा॥

राजा जनमेजय बोले हे वैशम्पायनजी! अब आप कृपा करके देवता दानव गंधर्व उरग राक्षस सिंह व्याघ्र मृग पन्नग पक्षी और सब महात्मा प्राणियों के मनुष्यलोक में जन्म लेनेकी कथा वर्णन कीजिये १ । २ यह सुनकर वैशम्पायन बोले कि मैं देवता और दानवों के पृथ्वीपर जन्म लेने की कथा वर्णन करता हूं आप चित्त देकर सुनिये ३ देवताओं से दैत्योंने पहिले पृथ्वी पर जन्म लिया उनके नाम और जिस जिसने जहां २ जन्म लिया वह हम आगे वर्णन करते हैं॥

दैत्यों के नाम और पृथ्वीपर जन्मलेने का संक्षेप वृत्तांत॥

विप्रचित्त—यह दैत्य इस लोक में जरासंध के नाम से विख्यात हुआ ४॥

हिरण्यकशिपु—यह शिशुपालनामी राजा हुआ ५॥

प्रह्लादका छोटा भाई संह्लाद—यह वाह्लीक के वंश में शैल्य नाम से उत्पन्न हुआ ६॥

अनुह्लाद—यह धृष्टकेतु के नाम से विख्यात हुआ ७॥

शिवि—यह राजा द्रुम के नाम से विख्यात हुआ ८॥

वाष्कल—यह राजा भगदत्त के नामसे विख्यात हुआ ९ ॥

अपशिरा-अश्वशिरा अयःशंकु-गगनमूर्च्छा वेगवान्—	यह पांचों दैत्य केकय देशमें उत्पन्न होकर बड़े योद्धा राजा हुये १० । ११ ॥

केतुमान—यह अमितौजा नामसे विख्यात बड़े उग्र कर्म का करनेवाला राजा हुआ ॥

स्वर्भानु—यह राजा उग्रसेन नाम से विख्यात हुआ १२ ॥

अश्व—यह अशोक नामसे विख्यात बड़ा पराक्रमी राजा हुआ १३ ॥

अश्वपति—यह हार्दिक्यनामी बड़ा राजा हुआ १४ ॥

वृषपर्वा—यह दैत्य राजा दीर्घप्रज्ञ के नाम से विख्यात हुआ १५ ॥

अजक वृषपर्वा का भाई—यह राजा शाल्व हुआ १६ ॥

अश्वग्रीव—यह दैत्य रोचमान नामी बड़ा बुद्धिमान् और कीर्तिमान् राजा हुआ १७ ॥

सूक्ष्म—यह राजा बृहद्रथ हुआ १८ ॥

तुहुंड—यह राजा सेनाबिंदु हुआ १९ ॥

इषिपु—यह राजा नग्नजित हुआ २० ॥

एकचक्र—यह राजा प्रतिविन्ध्य हुआ २१ ॥

विरूपाक्ष—यह राजा चित्रधर्म नाम से विख्यात हुआ २२ ॥

वीरहर—यह दैत्य सुवाहु नाम राजा हुआ २३ ॥

सुहर—यह दैत्य वाह्लीक नाम राजा हुआ २४ ॥

निचन्द्र—यह दैत्य मुंजकेश नाम राजा हुआ २५ ॥

निकुंभ—यह दैत्य देवाधिप नाम राजा हुआ २६ ॥

शरभ—यह दैत्य पौरव नाम राजऋषि हुआ २७ ॥

कुपथ—यह दैत्य सुपार्श्व नाम राजा हुआ २८ ॥

क्रथन—यह दैत्य पार्वतीय नाम बड़ा तेजस्वी राजऋषि हुआ २९ ॥

शलभ—यह दैत्य प्रह्लादनामी राजा वाह्लीक के वंश में उत्पन्न हुआ ३० ॥

चन्द्र—यह दैत्य चन्द्रवर्मा नाम कांबोजदेशों का राजा हुआ ३१ ॥

अर्क—यह दैत्य ऋषिक नाम राजऋषि हुआ ३२ ॥

मृतपा—यह दैत्य पश्चिमानूपक नाम राजा हुआ ३३ ॥
योगविष्ट—यह दैत्य द्रुमत्सेन नाम राजा हुआ ३४ ॥
मयूर—यह दैत्य विश्व नाम राजा हुआ ३५ ॥
सुपर्ण—यह दैत्य कालकीर्त्ति नाम राजा हुआ ३६ ॥
चन्द्रहन्ता—यह दैत्य शुनक नाम राजा हुआ ३७ ॥
चन्द्रविनाशन—यह दैत्य जानकि नाम राजा हुआ ३८ ॥
दीर्घजिह्व—यह दैत्य काशिराज नाम राजा हुआ ३९ ॥
सिंहिका का बेटा राहु—यह ग्रह क्राथ नाम राजा हुआ ४० ॥
अनायुका पुत्र विक्षर—यह दैत्य वसुमित्र नाम राजा हुआ ४१ ॥
दूसरा विक्षर—यह दैत्य पाण्ड्यराष्ट्राधिप नाम राजा हुआ ४२ ॥
बलीनर—यह दैत्य पौंड्रमात्स्यक नाम राजा हुआ ४३ ॥
वृत्त—यह दैत्य मणिमान नाम राजऋषि हुआ ४४ ॥
क्रोधहंता—यह दैत्य दण्ड नाम राजा हुआ ४५ ॥
क्रोधवर्द्धन—यह दैत्य दंडधार नाम राजा हुआ ४६ ॥

कालेयनाम आठदैत्य—यह आठों दैत्य आठ बड़े बड़े पराक्रमी राजा हुये उनके नाम ये हैं पहला मगधदेश में जयत्सेन नाम राजा दूसरा अपराजित नाम राजा तीसरा भीम नाम निषादों का राजा चौथा श्रेणिमान नाम राजा राजऋषि पांचवां महौजा नाम राजा छठा भीरुनाम राजऋषि सातवां समुद्रसेन नाम धर्म और अर्थ के तत्त्व को जाननेवाला राजा और आठवां बृहन्नाम बड़ा धर्मात्मा राजा उत्पन्न हुआ ४७ । ५५ ॥

कुक्षि—यह दैत्य पार्वती नाम राजा हुआ ५६ ॥
क्रथन—यह दैत्य सूर्याक्ष नाम राजा हुआ ५७ ॥
सूर्य—यह दैत्य दरद नाम वाह्लीक राजा हुआ ५८ ॥

क्रोधवश नाम दैत्यगण—इस गण के दैत्योंने पृथ्वीपर बहुतसे राजाओं में जन्म लिया उनके नाम ये हैं ५९ मद्रक, कर्णवेष्ट, सिद्धार्थ, कीटक, सुवीर, सुबाहु, महावीर, वाह्लिक ६० क्रथविचित्र, सुरथनील, चीरवास, कौरव्य ६१ दन्तवक्र जो दुर्जयदानव का अवतार था, रुक्मी, जनमेजय ६२ आषाढ़, वायुवेग, भूरितेजा, एकलव्य, सुमित्र, वाटधान, गोमुख ६३ कारूष, क्षेमधूर्त्ति, श्रुतायु, उद्धह, बृहत्सेन ६४ क्षेमोग्रतीर्थ, कुहर, कलिंगपति और ईश्वर ६५

ये सब राजा बड़े पराक्रमी और कीर्त्तिमान् क्रोधवश नाम दैत्यों के गण से उत्पन्न हुये ६६ ॥

कालनेमि—यह दैत्य उग्रसेन का पुत्र कंस नाम से महाबली विख्यात हुआ ६७ ॥

इतनी कथा सुनाकर वैशम्पायनजी बोले हे राजन्! दैत्योंके पृथ्वीपर जन्म लेने के पीछे सब देवताओं ने भी अपने अपने अंश से अवतार लिया उनके नाम और जहां जहां जिसने जन्म लिया वह आगे वर्णन करते हैं ॥

देवताओं के नाम और पृथ्वीपर अवतार लेने का हाल ॥

गंधर्वपति—यह अवतार लेकर देवक नाम राजा हुआ ६८ ॥

बृहस्पति—इनका अवतार द्रोणाचार्य हैं जो भरद्वाज के वंश में अयोनिज उत्पन्न हुये ६९ ॥

महादेव अन्तक काम और क्रोध—इन चारों देवताओं के अंश से संपूर्ण वेदशास्त्र और अस्त्रविद्याके जाननेवाले द्रोणाचार्य के महावीर और बड़ा तेजस्वी अश्वत्थामा नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ७० । ७३ ॥

अष्टवसु—यह आठोंवसु वशिष्ठजी के शाप और इन्द्रकी आज्ञा से राजा शांतनु के यहां गंगाजी के गर्भसे उत्पन्न हुये उनमें सबसे छोटे सब शत्रुओं को जीतनेवाले और कुरुओं को अभय करनेवाले भीष्मजी थे जिन्होंने सब शस्त्र विद्याके जाननेवाले जमदग्निके पुत्र परशुरामजी से युद्ध किया था ७४ । ७६ ॥

रुद्रगण—ब्रह्मऋषि कृपाचार्य रुद्रगणके अवतार थे ७७ ॥

द्वापर—इनका अवतार शकुनिनाम महारथी राजा था ७८ ॥

मरुद्गण—इन देवताओं के अंशसे वृष्णिकुल में सात्यकी और राजर्षि राजा द्रुपद, राजा कृतवर्मा और राजा विराट् उत्पन्न हुये ७९ । ८३ ॥

हंसनाम गंधर्वपति जो अरिष्टाका पुत्र था—इस देवताके अंशके व्यासजी का पुत्र धृतराष्ट्र नामी बड़ा तेजस्वी माताके दोष और ऋषिके कोपसे अंधा उत्पन्न हुआ ८४ । ८५ ॥

हंसनाम गंधर्वपतिका छोटा भाई—इस देवताके अंशसे राजा पांडु सत्यधर्ममें रत बड़ा तेजस्वी उत्पन्न हुआ ८६ ॥

सूर्यके बेटे धर्मराज—इनके अंशसे विदुरजी उत्पन्न हुये ८७ ॥

कलियुग—इसके अंशसे धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधननाम उत्पन्न हुआ वह

बड़ा दुर्बुद्धि दुर्मति कुरुकुलको अपयश देनेवाला सब पृथ्वी के क्षत्रियों का नाश करनेवाला और महाभारत युद्धका रोपनेवाला था ८८। ८९॥

रावणके पुत्र आदि—इनके अंशसे धृतराष्ट्रके दुश्शासन आदि सौ पुत्र बड़े खोटे कर्म करनेवाले उत्पन्न हुये और युयुत्सु जो वेश्या से उत्पन्न हुआ था वह इन सौ पुत्रों से अधिक था ९०। ९१॥

इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय ने कहा कि मैं धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों के नाम क्रमसे सुना चाहताहूं यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले कि उनके नाम ये हैं दुर्योधन १, युयुत्सु २, दुश्शासन ३, दुस्सह ४, दुश्शल ५, दुर्मुख ६, विविंशति ७, विकर्ण ८, जलसंध ९, सुलोचन १०, विंद ११, अनुविंद १२, दुर्द्धर्ष १३, सुबाहु १४, दुःप्रधर्षण १५, ९२। ९४ दुर्मर्षण १६, दुर्मुख १७, दुष्कर्ण १८, कर्ण १९, चित्र २०, उपचित्र २१, चित्राक्ष २२, चारुचित्र २३, अंगद २४, ९५ दुर्मद २५, दुःप्रहर्ष २६, विवित्सु २७, विकट २८, सम २९, ऊर्णनाभ ३०, पद्मनाभ ३१, नन्द ३२, उपनन्द ३३, ९६ सेनापति ३४, सुषेण ३५, कुण्डोदर ३६, महोदर ३७, चित्रबाहु ३८, चित्रवर्मा ३९, सुवर्मा ४०, दुर्विरोचन ४१, ९७ अयोबाहु ४२, महाबाहु ४३, चित्रचाप ४४, सुकुण्डल ४५, भीमवेग ४६, भीमबल ४७, बलाकी ४८, भीम ४९, विक्रम ५०, ९८ उग्रायुध ५१, भीमशर ५२, कनकायु ५३, दृढ़ायुध ५४, दृढ़वर्मा ५५, दृढ़क्षत्र ५६, सोमकीर्त्ति ५७, अनूदर ५८, ९९ जरासंध ५९, दृढ़संध ६०, सत्यसंध ६१, सहस्रवाक ६२, उग्रश्रवा ६३, उग्रसेन ६४, क्षेममूर्त्ति ६५, १०० अपराजित ६६, पंडितक ६७, विशालाक्ष ६८, दुराधन ६९, १०१ दृढ़हस्त ७०, सुहस्त ७१, वातवेग ७२, सुवर्चस ७३, आदित्यकेतु ७४, बह्वाशी ७५, नागदत्त ७६, अनुयायिन ७७, १०२ कवची ७८, निषंगी ७९, दंडी ८०, दण्डधार ८१, धनुर्ग्रह ८२, उग्र ८३, भीमरथ ८४, वीर ८५, वीरबाहु ८६, अलोलुप ८७, १०३ अभय ८८, रौद्रकर्मा ८९, दृढ़रथ ९०, अनाधृष्य ९१, कुण्डभेदी ९२, विरावी ९३, दीर्घलोचन ९४, १०४ दीर्घबाहु ९५, महाबाहु ९६, व्यूढ़ोरु ९७, कनकांगद ९८, कुण्डज ९९, चित्रक १०० धृतराष्ट्र के ये सौ पुत्र थे और एक पुत्र युयुत्सुनामी वेश्या से था इसप्रकार से सब पुत्र १०१ थे और एक कन्या दुश्शलानामकी थी १०५। १०६ इन सब की बड़ाई छुटाई नामों के अनुसार है अर्थात् जिसका नाम पहले है वह अपने पीछे

वाले से बड़ा है धृतराष्ट्र के ये सब पुत्र बड़े शूरवीर युद्ध अस्त्र शस्त्र विद्या के जाननेवाले और वेद शास्त्र में निपुण थे १०७। १०८ इन सबका विवाह इनके अनुरूप स्त्रियों से किया गया और दुश्शलानाम धृतराष्ट्र की पुत्री का विवाह शकुनी की रायसे सिंधुदेश के राजा जयद्रथ के साथ किया गया १०९। ११० ॥

धर्मराज—इनके अंशसे राजा युधिष्ठिर उत्पन्न हुये ॥

वायु, इन्द्र और अश्विनीकुमार—वायु के अंश से भीमसेन इन्द्रके अंश से अर्जुन और अश्विनीकुमार के अंश से नकुल और सहदेव जो बड़े स्वरूपवान् थे उत्पन्न हुये १११ ॥

चन्द्रमा का पुत्र वर्चा—इनके अंश से अर्जुन का बड़ा प्रतापी पुत्र अभिमन्यु नामी उत्पन्न हुआ इस अभिमन्युके अवतार लेनेके समय चन्द्रमाने देवताओं से यह कहा था कि यह मेरा पुत्र प्राणसे भी प्यारा है मैं इसको पृथक् नहीं कर सकता परन्तु तुम्हारा कार्य करने के लिये यह पृथ्वीपर अवतार लेकर अर्जुनका पुत्र होगा और १६ वर्षकी उमर में युद्ध प्राप्त होने पर नररूप अर्जुन अपने पिता और नारायण रूप श्रीकृष्णके न होने के कारणसे यह महाअभेद्य व्यूहको तोड़कर भीतर घुस जायगा और वहां जाकर बड़े बड़े शूरवीरों को यमपुरी पहुँचावेगा और उसदिन सब सेना की चौथाई सेना को अकेला मार-कर संध्या होने पर मेरे पास चला आवेगा और पांडवों का वंश चलाने के लिये इससे एक पुत्र भी उत्पन्न होगा यह सुनकर देवताओं ने तारागणों के ईश्वर चन्द्रमा की पूजा की और कहा कि ऐसाहीहो हे जनमेजय ! यह अभिमन्यु तेरा पितामह अर्थात् बाबा था ११२। १२५ ॥

अग्नि—इनके अंश से धृष्टद्युम्न उत्पन्न हुआ और शिखण्डी स्त्री पूर्वजन्म का राक्षस था १२६ ॥

विश्वेदेवाओं का गण—इस गण के देवताओं के अंश से द्रौपदी के पांच पुत्र उत्पन्न हुये नाम उनके ये हैं, प्रतिविंध्य, सुतसोम, श्रुतिकीर्त्ति, शतानीक और श्रुतसेन १२७। १२८ ॥

और वसुदेवजी के पिता सूरसेन के एक पुत्री पृथानाम की ऐसी स्वरूप-वान् उत्पन्न हुई कि उसकी सदृश पृथ्वीपर कोई कन्या न थी सूरसेन ने उस कन्या को उत्पन्न होने के पहिलेही अपनी फूफी के पुत्र को देने की प्रतिज्ञा

की थी सो उस प्रतिज्ञा के अनुसार सूरसेन ने पृथाको कुंतिभोज नाम राजाको देदिया १२६।१३२ उसने उस कन्याको महात्मा और ब्राह्मण लोगों की सेवा करने के निमित्त नियत किया एक समय दुर्वासा उग्र तपस्वी ऋषि वहां आये उस कन्या ने उनकी बहुत अच्छी तरह सेवा की दुर्वासा ने प्रसन्न होकर पृथा को देववशीकरण मंत्र बताया और कहा कि इस मंत्र से तू जिस देवता को पुत्र की कामना से बुलावेगी वह आकर तेरी इच्छा को पूर्ण करेगा१३३।१३६ दुर्वासा तो चलेगये और कुंतीने उस मंत्रसे सूर्यका आवाहन किया और उनसे गर्भ को धारण करके बड़ा तेजस्वी और स्वरूपवान् कुण्डल और कवच धारण कियेहुये एक पुत्रको उत्पन्न किया और जाति बिरादरी के भयसे उसको जलमें बहा दिया १३७। १४० इसके पीछे उस बालकको जल में बहा हुआ राधाके पति अधिरथने जाते देखा वह उसको अपने घर लेआया और पुत्रभाव मानकर उसका नाम वसुषेण रक्खा थोड़े दिनों में वह बालक बड़ा होगया और सब वेद और शास्त्रों को पढ़कर सब अस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हो गया जिस समय वह पूजा करने बैठताथा उस समय जो कोई ब्राह्मण उससे जो कुछ मांगताथा वह उसको वही देताथा १४१।१४४ उसी समयमें इंद्रने अर्जुन के हितके लिये ब्राह्मणरूप धारण करके उससे कवच और कुण्डल मांगे उसने दोनों दे दिये और इंद्रने उसके बदले में एक शक्ति दी और कहा कि देवता, मनुष्य, यक्ष, गंधर्व और राक्षस में से जिस किसी पर तू इस शक्तिको छोड़ेगा वह मरजायगा १४५। १४७ वह सुषेणनामसे पहले विख्यात रहा परंतु कुंडल और कवचके हरे जानेपर उसका नाम पृथ्वी पर वैकर्तनकर्ण हुआ १४८ वह कर्ण पृथाका पहला पुत्र था और सूतके घरमें बढ़कर थोड़े दिनोंमें दुर्योधनका मंत्री होगया हे राजन्! वह बड़ा वीर शत्रुओं का नाश करनेवाला और सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ था और उत्पत्ति उसकी सूर्य के अंश से थी १४६। १५० इसके पीछे श्रीसनातननारायण भी वासुदेवनामसे पृथ्वीपर प्रकट हुये १५१॥

शेष—इनके अंशसे बलदेवजी उत्पन्न हुये॥

सनत्कुमार—इनके अंशसे प्रद्युम्नजी उत्पन्न हुये १५२॥

इनके सिवाय बहुतसे और देवताओं ने भी अपने २ अंश से वसुदेवजी के कुलमें अवतार लिया १५३॥

अप्सराओंके गण—इन सब देवियोंके अंशसे सोलह सहस्र कन्या उत्पन्न

हुईं और उन सबका विवाह श्रीकृष्णजी के साथ हुआ १५४। १५५॥

लक्ष्मी—लक्ष्मीजी ने अपने अंश से भीष्म के कुल में रुक्मिणी नाम से अवतार लिया १५६॥

शची—यह देवी राजा द्रुपदके यहां द्रौपदीनाम से यज्ञकी अग्निसे प्रकट हुई १५७॥

वह द्रौपदी श्यामा अत्यन्त सुंदरी कमललोचनी न बहुत बड़ी न अत्यन्त छोटी सब लक्षणोंसे युक्त और कमलकीसी गंध रखनेवाली थी १५८।१५९॥

सिद्धि और धृति—इन्होंने कुंती और माद्री नामसे पृथ्वीपर अवतारलिया॥

मति—यह देवी अपने अंशसे गांधारीनामसे प्रकट हुई १६०॥

इतनी कथा सुनाकर वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! मैंने सब देवता गंधर्व राक्षस और अप्सराओंके पृथ्वीपर जन्म लेने की कथा वर्णन की यह अंशावतारणपर्व धन यश पुत्र आयु और विजयका देनेवालाहै और उन मनुष्यों के सुननेके योग्यहै जो परगुणोंमें दोष नहीं लगाते हैं परमात्मा को जानने वाला मनुष्य इसको सुनकर संसारी दुःखोंसे पीड़ा नहीं पाता है १६१।१६५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तषष्टितमोऽध्यायः ६७॥

अरसठवां अध्याय।

कुरुवंशके चलानेवाले राजा दुष्यन्त की कथा॥

राजा जनमेजय बोले हे वैशंपायनजी! आपने देवता आदि के पृथ्वी पर अवतार लेनेकी कथा सुनाई अब आप से कुरुवंशकी कथा आदि से विस्तार-पूर्वक सुना चाहताहूं १।२ यह सुनकर वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इस कुरुवंश का चलानेवाला पहला राजा दुष्यन्त नामी हुआ उसने अपने बल और पराक्रमसे सब पृथ्वीको समुद्रकी सीमा और म्लेच्छोंके देशकी अवधि तक जीतकर अपने वशमें किया और उसका राज्य अनेक भोगों के साथ किया ३।५ उसके राज्यमें न वर्णसंकर उत्पन्न होता था न खेती होती थी न पाप होता था सब मनुष्य धर्ममें प्रीति रखते थे और अर्थ धर्मको पाते थे ६।७ चोरी कभी नहीं होती थी मनुष्यों को क्षुधा और व्याधिका भय नहीं होता था चारों वर्ण अपने २ कर्म करते थे इन्द्र समय पर वर्षा करता था और पृथ्वीपर धान्य और पशु अच्छीतरह उत्पन्न होते थे ८।१० ब्राह्मणलोग अपना कर्म ठीक करते थे और झूंठ कभी नहीं बोलते थे वह राजा ऐसा पराक्रमी और दृढ़ था कि

मन्दराचल पर्वत को अपनी दोनों भुजाओं से उठाकर लेजासकता था गदा आदि शस्त्रों से युद्ध करने में अत्यन्त निपुण था और हाथी घोड़े आदि की सवारी भी अच्छी तरह करता था उस राजा का बल विष्णुके समान तेज सूर्य के तुल्य और अक्षोभित्व समुद्र और क्षमा पृथ्वीके अनुरूप था प्रजा उसको बहुत चाहती थीं और वह प्रजा का पालन धर्म से करता था ११। १५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि अष्टषष्टितमोऽध्यायः ६८॥

उनहत्तरवां अध्याय।

राजा दुष्यंतके वनमें अहेर खेलने की कथा॥

इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय बोला कि महाराज मैं भरतजी के जन्म और चरित्र और शकुन्तला की उत्पत्ति का वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं १ और यह भी वर्णन कीजिये कि राजा दुष्यन्त ने शकुन्तला को कैसे पाया यह सुनकर वैशंपायन बोले कि एक समय राजा दुष्यंत बहुतसी चतुरंगिनी सेना और बड़े २ शूरवीर जो खड्ग शक्ति आदि अनेक शस्त्र लिये हुये थे साथ लेकर वनमें अहेर मारने को गया २। ५ चलते समय शूरवीरों के सिंहनाद और ताल मारनेके शब्द शंख और दुन्दुभी आदि के घोष हाथियों की चिंघार और रथोंकी झंझनाहट से चारों दिशा व्याप्त होगईं स्त्रियों ने अपने २ घरोंपर चढ़ २ कर राजापर फूलों की वर्षा की और आपस में कहने लगीं कि यह इन्द्र की समान वही राजा दुष्यंत है जिसका पराक्रम रण में वसुदेवता के समान है और जिसके सम्मुख कोई शत्रु नहीं ठहर सकता ६। ११ राजा उन स्त्रियों की प्रशंसा से प्रसन्न होता हुआ और ब्राह्मणों से स्तुति सुनता हुआ हाथी पर सवार वन को चला १२। १३ राजा के पीछे २ जो पुरवासी लोग आशीर्वाद देते और जय बोलते जाते थे वह राजा की आज्ञा पाकर लौट गये और राजा उस वनमें पहुँचा जो नन्दन वनके समान मनोहर था और जिसमें बिल्व, अर्क, खदिर, कैथा, धौ आदि अनेक उत्तम २ वृक्ष लगेहुये थे जहां तहां ऊँचे नीचे पत्थरों के ढेरों से पृथ्वी वहां की विषम हो रहीथी न वहां जलथा न मनुष्य और मृग और सिंह आदि अनेक वनके जीव फिरते थे १४। १८ राजा वहां पहुँचकर उस वनमें अहेर मारनेलगे और थोड़ी विलम्ब में राजा ने बाण, खड्ग, गदा और मुशल आदि अनेक शस्त्रों से सिंह व्याघ्र वराह मृग आदि अनेक जीवों को मारडाला जो जीव राजा के पास

होकर भागते थे राजा उनको तलवार से काट डालता था और जो दूर रहते थे उनको बाणों से भेदकर गिरा देता था इस प्रकार करने से उस वनके सब जीव व्याकुल होकर जंगल से बाहिर को भागने लगे बहुत से भूंख और प्यासस व्याकुल होकर नदी और तालाव अनुमान करके रेतकी ओर दौड़कर जाते और फिर जल न मिलने के कारण से मूर्च्छित होकर गिर पड़ते १६ । २७ उस समय राजा की सेना के मनुष्यों ने भूंखके कारणसे बहुत मृगोंको अग्नि में भूंजकर बहुतों को कूटकर और बहुतोंको वैसेही भक्षण किया वनके हाथी घायल होकर भयसे अपनी २ सूंड़ सकोड़ २ कर मूत्र और विष्ठा करते हुये भागने लगे २८ । ३० उनके भागने से बहुतसे मनुष्य दबकर मरगये इस प्रकार से राजाने सेनारूपी मेघ और बाणरूपी बूंदों से सब वनको ढककर मृगों को मार कर निश्शेष कर दिया ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकोनसप्ततितमोऽध्यायः ६९ ॥

सत्तरवां अध्याय।

राजा दुष्यंत का एक दूसरे वनमें जाना और वहां एक बड़े रमणीक आश्रम को देखकर उसमें जाना ॥

वैशंपायनजी बोले राजा दुष्यंत इसप्रकार से सहस्रों मृगों को उस वन में मारकर और अहेर करने की इच्छा से भूखा प्यासा उस वनको छोड़कर आगे को चला वनके अन्त में एक बड़ा शून्यस्थान देखा राजा वहां से भी आगे को चला गया और फिर एक दूसरे वनमें पहुँचा जहां शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलरही थी अनेक रंगों के फूल खिलरहे थे कोकिला झिल्ली आदि बहुत से पक्षी मधुर २ बोली बोल रहे थे वृक्षों की छाया अत्यन्त सघन थी भौंरे जहां तहां गूंज रहे थे ऐसा कोई वृक्ष न था जिसपर फल फूल और भौंरे न थे राजा उस वनकी अति अद्भुत शोभा को देखता हुआ वनमें चला १ । ८ उस के जाने से वृक्षोंपर से फूल टूटकर राजा के ऊपर गिरने लगे मानो वृक्ष राजा पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं ९ राजा पक्षियों के चहचहाट को सुनता सफल वृक्षों की झुकीहुई डालियोंपर गूंजतेहुये भौंरोंकी शोभा को देखता फूलरूपी वस्त्रों को पहिनेहुये वृक्षोंकी सुगंधिको सूंघता इन्द्रकी ध्वजा के समान ऊंचे वृक्षोंकी डालियों के आपसमें मिलने की शोभा को निरखता और बहुतसे स्थानों में सिद्ध चारणों के समूह, अप्सराओं के गण, गंधर्व और किन्नर आदिकोंको दृष्टि

करता हुआ वनमें उत्तम चलती हुई वायुको खाता हुआ और उस नदी के किनारे के ऊंचे वृक्षोंकी शोभाको देखता हुआ उस वनमें चला जाता था १० । १६ थोड़ी दूर जाकर राजाने उस वनमें एक आश्रम अति श्रेष्ठ जहां सुन्दर २ नाना प्रकारके वृक्ष लगेहुये थे पक्षी मधुर वाणी बोल रहे थे और अग्निकुण्डों में अग्नि जल रहीथी देखा १७ । १८ वह आश्रम जो मालती नदी के किनारे पर बालखिल्य संन्यासियों और २ बहुतसे मुनियों के गणों से युक्तथा राजाने उस आश्रम को प्रणाम किया और उस नदी के वृक्ष पक्षी और मृग आदिकी शोभा से प्रसन्न होता हुआ राजा उस मनोहर और देवलोक के तुल्य आश्रम में गया १६ । २२ जब राजा उस आश्रम के पास पहुँचा तब देखता क्याहै कि वह नदी उस आश्रम के किनारे से लगी हुई शब्द करती हुई बह रही है चक्रवाक आदि जल पक्षी और जल के जीव किलोल कर रहे हैं और वानर रीछ किन्नर शार्दूल सर्पराज और मतवाले हाथी क्रीड़ा कर रहे हैं और उस नदी के किनारे पर एक आश्रम कश्यपजी का बना हुआ है और वहां बहुतसे मुनियों के गण बैठे हुये हैं २३ । २६ उस आश्रमकी शोभा नदीके कारण से ऐसी थी जैसे बदरिकाश्रम की शोभा गंगा से है राजाने उस आश्रम में कश्यपजी के दर्शन करने को जाने की अभिलाषा से अपनी सेना के मनुष्यों से कहा कि तुम लोग यहां ठहरो हम कश्यपजी के दर्शनों को जाते हैं जबतक हम न आवें तबतक कहीं न जाना २७ । ३२ और आप राजचिह्नों को दूर करके अपने साथ मंत्री और पुरोहित को लेकर उस आश्रम में गया राजा वहां की शोभा को देखकर भूंखप्यास सब भूल गया ३३ । ३४ जब आश्रम के भीतर पहुँचा तब देखता क्या है कि वहां यज्ञ होरहा है ऋषि और ब्राह्मण लोग सामवेद ऋग्वेद यजुर्वेद और अथर्वणवेदों के मंत्रों को पद क्रम घन आदि अलंकारों से पढ़ रहे हैं कोई संहिता का पाठ कररहा है बहुतसे ऋषि लोग जो यज्ञोंकी क्रिया में निपुण न्यायतत्त्व और आत्मविज्ञान में सम्पन्न समाहार में विशारद थे और मोक्षधर्म अपनी बातको स्थापन करना दूसरे के मतको खंडन करना और सिद्धांत मत को कहना इनके परमज्ञाता शब्द और छंदकी निरुक्ति को जाननेवाले काल का ज्ञान करनेवाले द्रव्य कर्म गुण और वानर वा पक्षियों की बोली समझनेवाले और बड़े २ ग्रंथों को विचार करनेवाले थे आपस में वार्तालाप कर रहे थे राजाने उनकी वाणी को सुनकर और शांसितव्रत

अनेक ब्राह्मणों को उत्तम २ आसनों पर बैठेहुये जप और होम में परायण और देवमंदिरों में ब्राह्मणों की कीहुई पूजा को देखकर यह समझा कि में इस समय ब्रह्मलोक में हूं ३५।४८ राजा उस आश्रमकी शोभाको देखकर तृप्त नहीं होता था उपरांत उस आश्रम में राजमंत्री और पुरोहित के साथ किसी एकांत और अत्यन्त मनोहर स्थान के समीप पहुँचा ४९।५०॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्ततितमोऽध्यायः ७०॥

इकहत्तरवां अध्याय।

राजा दुष्यंत का शकुंतला से मिलाप होना और शकुंतला के जन्म होने की कथा॥

वैशंपायनजी बोले कि हे राजन्! वह राजा मंत्री और पुरोहित को उसी जगह छोड़ कर आप उस स्थान के भीतर गया और वहां ऋषि अथवा किसी और को न पाकर बड़े ऊंचेस्वर से बोला यहां कौन है १।२ उस शब्द को सुन उस स्थानमें से एक कन्या परमसुंदरी लक्ष्मीकी सदृश तपस्वी के वेषमें निकली ३ और राजा को देखकर आदरपूर्वक बोली आप अच्छे आये ४ इसके पीछे उस कन्या ने राजाका पूजन पाद्य अर्घसे करके उसको आसन पर बैठाया और क्षेम कुशल पूंछने के उपरांत मन्द मन्द मुसुकान के साथ बोली कहिये आपका क्या काम है जो कुछ कहो सो करें ५।६ राजा उस कन्याकी मधुर बोली को सुनकर बोला कि में कण्वऋषि के दर्शनों को यहां आया था कहो वह कहां गये हें ७।८ यह सुनकर वह कन्या जिसका नाम शकुंतला था बोली कि मेरा पिता ऋषि वनमें फलफूल लेने को गयाहै तुम यहां एक क्षणमात्र ठहरो वह आताही होगा ९ राजा यह सुनकर और उस कन्या की मंद मुसुकान तेज और तपसे प्रकाशमान रूप और योवनको देखकर बोला १०।११ कि तू कौन है किसकी बेटी है और कहां से और किसलिये इस वन में आई है १२ तैंने अपने दर्शनमात्रही से मेरे मन को हरलिया है इस कारण से में तुझको जानना चाहता हूं १३ यह सुनकर वह कन्या हँसती हुई मधुर बोली से बोली १४ कि में धैर्यवान् धर्मज्ञ तपस्वी कण्वऋषि की पुत्री हूं १५ राजा ने कहा कि लोक पूजित ऋषीश्वर महाराज तो ऊर्ध्वरेता कहलाते हें अर्थात् उनका वीर्य नीचे नहीं उतरता है और ऐसा कहते हें कि चाहे धर्म अपनी गत्य से डोल जावे परन्तु शांसितव्रत ऋषि अपने व्रतसे कभी नहीं डोलता है फेर तू क्योंकर ऋषि की पुत्री है १६।१७ यह सुनकर शकुंतला बोली कि

में अपने जन्म और ऋषि की पुत्री होनेका वृत्तान्त वर्णन करती हूं १८ एक समय एक ऋषि यहां आये थे उन्हों ने कण्वऋषि से मेरे जन्म का हाल पूछा था मैंने उस समय कण्वऋषि के मुख से अपने जन्म का हाल सुना था वही में तुमसे कहती हूं १९ पहिले किसीसमय में विश्वामित्र ने बड़ाउग्र तप किया था उनके तपको देखकर इन्द्रको अपने इन्द्रासन के छीन जाने का भय हुआ और उसने इसडर से मेनका अप्सरा को बुलाकर कहा २० । २१ कि हम तुझ को सब अप्सराओं से गुण में विशेष समझते हैं तुझ से हमारा एक काम है उसको तू सुन और चित्त लगाकर उसको कर २२ आजकल सूर्यके तुल्य तपस्वी विश्वामित्र ऋषि बड़ा उग्रतप कररहे हैं मुझको उनसे इन्द्रासन छीन जाने का बड़ा भय होरहाहै इससे तू अपने स्वरूप, यौवन, मधुर बोली आदि से ऋषिके चित्तको ऐसा लुभाले कि वह अपना चित्त तपस्या से हटालें ऐसा करने से मेरा बड़ा उपकार होगा तू इस कामको जैसे बने वैसे कर २३ । २६ यह सुन कर मेनका बोली कि आप जानते हैं कि विश्वामित्रऋषि बड़े तेजस्वी तपस्वी और क्रोधी हैं २७ आपभी उनसे डरते हैं फिर मेरेडरने में क्या संदेहहै २८ हे महाराज ! यह विश्वामित्र ऋषि वही हैं जिन्होंने वशिष्ठजी के सब पुत्र मारडाले और तपके बल से क्षत्रिय से ब्राह्मण हुये २९ इन्होंने ही अपने तपके प्रभाव से कौशिकी नाम नदीको प्रकट किया ३० और फिर जब वह ऋषि तपस्या करने को किसी पहिले समयमें चलेगये थे और उस समय अकाल पड़ने पर राजर्षि मतंगने उनके कुटुम्बकी स्त्रियोंका पालन कियाथा तब तपस्यासे लौटकर आने पर ऋषिने उस नदीका नाम पारा रक्खा और मतंग को यज्ञ कराया ३१ । ३२ उस यज्ञमें आप सोम पीनेको भयभीत होकर गयेथे ३३ देखो इनहीं विश्वामित्र ने क्रोधित होकर दूसरे लोककी रचना करनेको नक्षत्रोंको बनाया था ३४ भला ऐसे तपस्वी ऋषिसे मुझको क्योंकर डर न होवे इससे आप ऐसा उपाय करिये जिसमें वह ऋषि मुझको अपने क्रोध से न जलावे ३५ क्योंकि वह अपने तपके बलसे सब लोकों को जलासक्ते हैं पृथ्वी को अपने पगसे कँपाय सक्ते हैं मेरुपर्वत को फेंक सक्ते हैं और दिशाओं को घुमाय सक्ते हैं ३६ ऐसे जितेन्द्रिय और अग्नि के समान तेज रखनेवाले ऋषिको में क्योंकर स्पर्श करसक्तीहूं ३७ उनका मुख अग्नि नेत्र सूर्य चन्द्रमा और तारा जिह्वा काल के समान है मेरी सामर्थ्य उनको छूने की नहीं है ३८ तुम भी तो विचार करो कि जिसके

प्रभाव से यमराज, चन्द्रमा, महर्षि, विश्वदेवा और बालखिल्य ऋषि डरते हैं उनके सम्मुख मुझसी स्त्री की क्या सामर्थ्य है जो कुछ करसकें ३९ इससे आप मेरी सहायता के लिये वायु और कामदेव को भी मेरे साथ करदीजिये जिसमें वायु मेरे वस्त्रों को उड़ाकर मुझको नग्न करदे ४० । ४१ इन्द्रने वायु और कामदेव को मेनका की सहायता करने को आज्ञादी और वह सहायकों को लेकर इन्द्र का काम करने के लिये वहां से विश्वामित्र ऋषि के आश्रम को गई ४२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि एकसप्ततितमोऽध्यायः ७१ ॥

बहत्तरवां अध्याय।

शकुंतला के जन्मकी कथा का वर्णन ॥

जब मेनका अप्सरा इन्द्रसे विदा होकर वायु और कामदेव को साथ लेकर विश्वामित्रके आश्रम में डरती डरती पहुँची तब पहिले विश्वामित्र को प्रणाम किया और फिर क्रीड़ा करनेलगी क्रीड़ा करते में वायुने उसके चन्द्रमाके समान प्रकाशमान वस्त्रों को उड़ादिया और वह नंगी होकर वस्त्र पकड़ने को हँसती और दौड़ती हुई विश्वामित्रजी के सम्मुख आई और विश्वामित्र उसके वयरूपअनिन्दित और नंगे शरीरको देखकर कामदेवकी सहायता से काम के वश में हुये १ । ७ और उसको बुलाकर उसके साथ विहार किया वह अप्सरा उनके पास बहुत दिनतक बनीरही और उनदोनों ने आपस में ऐसा विहार दीर्घकालतक किया एक २ वर्ष एक २ दिनके समान मालूम होताथा थोड़े दिनोंके पीछे हिमालय के शिखरपर मालती नदी के पास उस मेनका के एक कन्या हुई ८ । ९ और वह अप्सरा देवताओंका कार्य सिद्ध जानकर उस कन्या को मालती नदीके किनारे पर छोड़कर वहांसे इंद्रलोकको चलीगई १० मेनका के चलेजाने पर वहांके पक्षी उस कन्या के पास आबैठे और उसको अपने [परों] से इस कारण से छिपालिया जिसमें मांस के खानेवाले जीव वहां आकर [उ]सको खा न जावें ११ । १२ उसी समय में कण्वऋषि भी वहां सन्ध्योपासन [क]रने के निमित्त नदी के किनारे पर आये और उस कन्याको पक्षियोंसे रक्षित [दे]खकर अपने आश्रम में लेआये और पुत्रीभाव मानकर उसका पालन किया [१]३ धर्मशास्त्र के मतसे तीन पिता होते हैं एक तो वह जिससे शरीर उत्पन्नहो [दू]सरा वह जो प्राणदे तीसरा वह जो अन्न देवे १४ इस कारण से हे राजा!

कण्वऋषि मेरे पिताहैं और मुझमें पुत्रीभाव और मैं उनमें पिताभाव मानती हूं और मेरा नाम ऋषिने शकुंतला इस कारणसे रक्खाथा कि वनमें शकुंत अर्थात् पक्षियों ने मेरी रक्षाकी थी १५। १६ यह कहकर शकुंतला बोली हे राजन्! मैंने अपने जन्म का हाल जैसा सुनाथा तुमसे कहा मुझको तुम कण्वऋषिही की पुत्री जानो क्योंकि मैं उनहीं को अपना पिता जानतीहूं १७। १८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विसप्ततितमोऽध्यायः ७२॥

तिहत्तरवां अध्याय।

राजा दुष्यंत का शकुन्तलासे कण्वऋषिके आश्रममें गंधर्वविवाह करना॥

यह सुनकर राजा दुष्यंत बोला कि तेरे जन्म का हाल सुनने से मुझ को यह निश्चय जानपड़ता है कि तू राजपुत्री है इससे मैं चाहता हूं कि तू मेरी पत्नी होजा और मुझसे जो कुछ तू कहै सो मैं करूं १ सुवर्ण की माला, उत्तम वस्त्र, सुनहरीकुंडल, नानाप्रकार के रत्न, मृगचर्म और सम्पूर्ण राज्य जो कुछ तुझको चाहिये सो ले परन्तु मेरी भार्या होना अंगीकार कर २। ३ विवाहोंमें गान्धर्वविवाह श्रेष्ठहै इस कारण से तू अब गान्धर्वविवाह के द्वारा मुझको विवाहले ४ यह सुनकर शकुंतला बोली कि मेरा पिता वनमें फल लेने को गया आयाही चाहताहै वह निश्चय मेरा विवाह तेरेसाथ करदेगा ५ राजा ने कहा मैं तुझपर आसक्तहूं और मेरा चित्त तुझमेंही लगा हुआ है ६ देख आत्माही भाई है और आत्माही से आत्मा की गति है इससे तुझ को आत्मा से आत्मा का दान धर्म से करना चाहिये ७ धर्मशास्त्र में आठ विवाह कहे हैं ब्राह्म १ दैव २ आर्ष ३ प्राजापत्य ४ आसुर ५ गान्धर्व ६ राक्षस ७ और पैशाच ८। ८ इन आठों विवाहों को स्वायम्भुवमनु ने धर्मसे कहाहै उनमें से पहिले चार ब्राह्मण को करना चाहिये ९ पहिले से छठे तक क्षत्रिय राजाओं को इनके सिवाय राक्षस विवाह भी और वैश्य और शूद्रों को केवल आसुरविवाह करना उचित है १० मध्य के पांच विवाहों में तीन विवाह धर्मरूप और दो विवाह अधर्मरूप हैं पैशाच और आसुरविवाह कभी नहीं करना चाहिये ११ हे शकुंतला! मैंने तुझसे यह धर्मकी गति कही है क्षत्रियों को गान्धर्व और राक्षसविवाह करना धर्मरूपहै इससे मैं काम के वशमें होरहाहूं और तूभी कामदेव के वशमें है हमारे तेरे गान्धर्वविवाह होनेमें कुछ दोष नहीं तू इसको अंगीकार कर १२। १३ यह सुनकर शकुंतला बोली

कि जो यह धर्मका मार्ग है और इसमें कुछ अधर्म नहीं है तो मैं अपनी आत्मा का दान इस नियम पर करसक्ती हूं कि जो मेरे पुत्र उत्पन्न होवे वह युवराज किया जावे अर्थात् आपके पीछे मेराही पुत्र राजा होवे १४। १६ राजा ने यह सुनकर कहा कि अच्छा ऐसाही होगा और यह कहकर कि मैं तुझको अपने नगर को ले जाऊंगा राजा ने उसके हाथ पकड़ लिये और उस के साथ भोग किया १७। १८ इसके पीछे राजा शकुंतला को वारम्वार यह विश्वास देकर कि मैं तुझको चतुरंगिणी सेना भेजकर अपने राजमन्दिर में बुलवाऊंगा चला गया १९। २० और यह चिन्ता करता हुआ कि कण्व कश्यप ऋषि आकर क्या कहेंगे अपने नगर में पहुँचा २१। २२ और यहां थोड़ी देर में कण्वऋषि अपने आश्रम में आये परंतु शकुन्तला लज्जाके मारे अपने पिता के सम्मुख नहीं गई २३ कण्वऋषि उन सब बातों को अपनी दिव्यदृष्टि से जानगये और जानकर बोले कि हे शकुंतला! तैंने मेरा निरादर करके एकांत में पुरुषके साथ भोग किया है परंतु इसमें तैंने कुछ अधर्म नहीं किया २४। २५ क्षत्रियों को गांधर्व विवाह उस समय में जब पुरुष और स्त्री दोनों काम के वश में हों विना मंत्रों के होने में कुछ दोष नहीं है २६ और राजा दुष्यंत जो तेरा पति हुआ है वह मनुष्यों में उत्तम धर्मात्मा और महात्मा है २७ उससे तेरे एक पुत्र बड़ा प्रतापी होगा वह इस पृथ्वीका राज्य समुद्रकी सीमातक करेगा और उस चक्रवर्तीकी सेना सदैव अप्रतिहत रहेगी २८। २९ मुनिके ऐसा कहने पर शकुंतला ने ऋषिके हाथों से फूल फल लेलिये और रखकर उनके चरण धोये और जब ऋषि अपने आसनपर बैठ गये तब वह बोली कि महाराज ३० मैंने राजा दुष्यंत को अपना पति करलिया है आप उस राजा और उसके मंत्री पर कृपा कीजिये ३१ यह सुनकर कण्व ऋषि बोले कि मैं तेरे कारण से राजापर प्रसन्न हूं जो तेरी इच्छा हो सो मांग ३२ वैशम्पायन बोले हे राजा जनमेजय! शकुंतला ने मुनिके ऐसा कहने पर पौरववंशियों के हितके लिये यह मांगा कि इस वंशके राजा धर्मात्मा हों और अखंड राज्य करें ३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ७३॥

चौहत्तरवां अध्याय ।

शकुंतला के राजा दुष्यंत से पुत्र होना कण्वऋषि का शकुंतलाको दुष्यंतके घर भेजना दुष्यंतका शकुंतलाको ग्रहणकरने से निषेध करना आकाशवाणी का होना राजाका शकुंतलाको ग्रहण करना और उसके पुत्र भरतनाम को राज्याभिषेक करना ॥

वैशम्पायनजी बोले दुष्यंतके प्रतिज्ञा करके जानेके तीनवर्ष पीछे दीप्ति अग्निकी समान बड़ा तेजस्वी पुत्र राजा दुष्यंतके उत्पन्न हुआ १।२ कण्वऋषि ने उसके जातकर्म आदि संस्कार विधिपूर्वक किये ३ उसके दांत उजले और चमकते हुये थे देही सिंह के समान थी हाथों में शंख चक्र गदा और मत्स्य-रेखा पड़ी थी माथा चौड़ा था ४ और वह देवताओं के पुत्रों की समान शीघ्र बड़ा होगया छःवर्षकी उमर में ५ वह सिंह व्याघ्र वाराह हाथी और भैंसों को पकड़कर मुनिके आश्रम के पास वृक्षों में बांधता था ६ और उनपर चढ़ चढ़-कर चौतरफ क्रीड़ा करता फिरता था उस वनके वासियों ने इस कारण से कि वह सबको दमन करता था उसका नाम सर्वदमन रक्खा ७। ८ कण्वऋषि ने उस लड़के का पराक्रम और अमानुषकर्म देखकर यह विचारा कि अब युव-राज होने के योग्य है और ऐसा विचार कर ऋषिने अपने शिष्योंसे कहा कि शकुन्तला को तुम उसके पुत्र सहित उसके पतिके यहां करआओ क्योंकि स्त्रियों का भाई बांधवों के घरमें रहना कीर्त्ति धर्म और शील का नाश करता है ६। १२ शिष्यों ने कहा बहुत अच्छा वह लोग शकुन्तला को पुत्र सहित लेकर हस्तिनापुर को चले १३ शकुन्तला उस देवकुमारों की तुल्य कमल-लोचन पुत्रको लेकर राजा दुष्यन्त के सम्मुख पहुँचने पर वह सब शिष्य उसे राजा को निवेदन कर चले गये उनके चले जाने पर शकुन्तला ने न्यायके अनुसार राजाकी पूजा की और बोली १४। १६ कि आपको याद होगी कि कण्वऋषि के आश्रम में मेरा आपका संगम हुआ था और आपने उस समय यह प्रतिज्ञा की थी कि जो पुत्र तेरे उत्पन्न होगा उसको मैं युवराज करूंगा सो यह पुत्र आपका मेरे उत्पन्न हुआ है अब आप उसको अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार युवराज होनेका अभिषेक कीजिये १७। १८ यह सुनकर राजा बोला कि मुझको याद नहीं पड़ती है कि मेरा तेरे साथ धर्म काम या अर्थ से किसी प्रकार का सम्बन्ध हुआ है हे दुष्टतापसि ! तू कौन है यहां से चली जाय जो तेरे मनमें आवे सो तू कर १६। २० राजाकी यह बात सुनकर शकुन्तला

महादुःखित होकर अचल सी होगई क्रोध से नेत्र लाल होगये होठ फड़कने लगे और राजा की ओर तिरछी दृष्टि से देखने लगी २१। २२ और अपने भर्त्ता राजा को अच्छीप्रकार से पहिचान कर अपने तपके तेजको धारण करके दुःख और क्रोधके साथ बोली २३। २४ कि हे राजन्! तुम सब वृत्तान्त जानने परभी प्राकृत जीवों की तरह कहते हो कि मुझको कुछ याद नहीं २५ आपका हृदय झूंठ और सचको जानता होगा क्यों अपना अपमान करते हो आपको चाहिये कि धर्म को समझ कर ऐसी बात कहो जिसमें कल्याण होवै २६ जो मनुष्य अपनी कृत्यको भूलकर अन्यथा बात कहता है वह सब पापोंके करनेका भागी होता है २७ तुम यह जानते हो कि मैं अकेला था मेरे दिये हुये वचनों को कोई नहीं जानता है परंतु यह नहीं समझते कि वह नारायण अंतर्यामी जो सबके हृदय में विराजमान है सब जानताहै और सब कर्मों का साक्षी है २८ इसके सिवाय सब देवता, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, स्वर्ग, भूमि, जल, हृदय, यमराज, दिन, रात्रि, दोनों संध्या और धर्म ये सब हर समय मनुष्य के बुरे और अच्छे कर्मों को देखते रहते हैं और उन कर्मों के साक्षी हैं २९। ३० जिस मनुष्यका हृदयस्थ कर्म साक्षी तृप्त होता है उसके पापों को यमराज दूर करदेते हैं और जिसका वह कर्म साक्षी तृप्त नहीं होता उसको यमराज बड़ी पीड़ा पहुँचाते हैं ३१। ३२ आप जो अपने कियेहुये कर्मको न मानकर अपना अपमान करते हैं इसमें आपका देवता कल्याण नहीं करेंगे और इस कारण से आपकी आत्माभी कल्याणकारक न होगी ३३ मैं आपकी पतिव्रता स्त्री आपके पास आई हुई हूं आप मेरा सबके सम्मुख तिरस्कार करते हैं और मेरे कहनेपर कुछ ध्यान नहीं करते इसका क्या कारण है क्या आप सुनते नहीं हैं ३४। ३५ जो आप मेरी कही हुई बात न मानेंगे तो आपका शिर सौटुकड़े होकर खिलजायगा ३६ हे राजन्! पुत्र स्त्रीके अपने पतिकी आत्मासे उत्पन्न होता है और वह पुत्र पिता और सब पितरों को पुन्नाम नरक से उद्धार करताहै इसकारण से उस पतिकी आत्माको ब्रह्मवेत्ता मनुष्य पुत्र कहते हैं ३७। ३९ स्त्री वही है जो चतुर पुत्रवाली और पतिव्रताहो और अपने पतिको प्राणों के समान चाहै ४० स्त्री मनुष्य की आधी देह अर्थ धर्म और कामकी दाता और संसार से तारने की मूल है ४१ जिन मनुष्यों के स्त्री होती है वे क्रियावान् गृहस्थी आनन्द के करनेवाले और लक्ष्मीवान् होतेहैं ४२ अकेले में स्त्रीही मनुष्य

की सखा होती है और स्त्रीही दुःखको दूर करके धर्म के कामों में पिताके समान मनुष्य का हित करती है ४३ दुर्गपथमें स्त्रीही मनुष्यका विश्राम होतीहै और जिसके स्त्री नहीं होती उसका विश्वास कोई नहीं करताहै इससे स्त्री पुरुषकी परम गतिहै ४४ जो स्त्री पतिव्रता होती है वह मरे हुये प्रेत और नरकमें अकेले पड़े हुये अपने पतिको नरकसे उद्धार करती है ४५ और जो पतिव्रता पति से पहले मरजाती है वह प्रेत होकर पतिकी बाट देखा करती है ४६ इसकारण से मनुष्य विवाह करते हैं और इसलोक और परलोक दोनोंमें स्त्रीको पातेहैं ४७ ज्ञानी मनुष्य ऐसा कहते हैं कि आत्मा से आत्माही उत्पन्न होती है और उसकोही पुत्र कहते हैं इस कारण से मनुष्यको चाहिये पुत्रकी माता अपनी स्त्रीको अपनी माता अर्थात् जन्मभूमि के समान समझै ४८ मनुष्य अपनी स्त्रीसे उत्पन्न हुये अपने पुत्रको देखकर उसीप्रकार प्रसन्न होताहै जैसे दर्पण में मुख को देखकर आनन्द पाताहै ४९ जो मनुष्य दुःख और व्याधि से पीड़ित होतेहैं वे भी अपनी स्त्रियों को देखकर ऐसा आनन्द मानते हैं जैसे धूपसे दुःखी मनुष्य जल में प्रवेश करने से प्रसन्न होता है ५० और जो मनुष्य क्रोधी भी होता है वहभी रतिमें प्रीति और धर्मको जानकर अपनी स्त्रीका अपमान नहीं करता है ५१ स्त्रीही मनुष्यों के जन्मका कारण है जो स्त्री हो तो ऋषियों को भी प्रजा उत्पन्न करने की सामर्थ्य नहीं होसक्की ५२ देखो मनुष्य धूलमें भरेहुये अपने पुत्रों को गोदी में लेकर हृदय से लगाते हैं ५३ फिर क्या कारण है जो तुम अपने इस पुत्र का निरादर करते हो ५४ चेंटियांभी अपने अंडोंको सेती हैं परन्तु आपसे फोड़ती नहीं हैं फिर आप तो ब्रह्मज्ञहैं आप किस कारण से अपने इस पुत्रको नहीं पालते ५५ मनुष्यको वस्त्र स्त्री और जलको हृदय में लगाने से ऐसा आनन्द नहीं होता जैसा पुत्र को गोद लेने से होता है ५६ पुत्रको छाती में लगाने से ऐसा उत्तम है जैसे मनुष्यों में ब्राह्मण चौपायों में गौ और बड़ों में गुरु ५७ इससे आपको चाहिये कि अपने इस पुत्र को छाती से लगाओ संसार में इस से अधिक सुख कोई नहीं है ५८ मैंने इस आपके पुत्र को तीनवर्ष तक पेटमें रक्खा और इसके जन्म के समय यह आकाशवाणी हुई थी कि यह बालक सौ अश्वमेध का करनेवाला होगा ५९। ६० देखो परदेशी मनुष्य अपने घरपर आकर पुत्रों को गोद में लेकर प्यार करते हैं और उनके मस्तक को सूंघकर प्रसन्न होते हैं ६१ आपभी जानते हैं कि जब लड़कों के जातकर्म आदि

संस्कार होते हैं उस समय ब्राह्मण लोग ये मंत्र वेदकी रीति से पढ़ते हैं ६२ मंत्रः ॥ अंग अंगात्संभवसि हृदयादभिजायते । आत्मा वै पुत्रनामासि सजीव-शरदां शतम् ६३ जीवितं त्वदधीनं मे संतानमपि चाक्षयम् । तस्मात् त्वं जीव मे पुत्र सुसुखी शरदां शतम् ६४ हे राजन्! यह आपकी दूसरी देह अर्थात् पुत्र आपके सब अंगों से उत्पन्न हुआ है आपको इसे जलमें प्रतिविम्ब की समान समझना चाहिये ६५ यह पुत्र तुमसे ऐसे उत्पन्न हुआ है जैसे गार्हपत्य नाम अग्नि से आहवनीय अग्नि उत्पन्न की जाती है अर्थात् आपके एक स्वरूप के इस पुत्र के होने से दो स्वरूप होगये ६६ हे राजन्! थोड़े दिन हुये आप अहेर खेलने को वनमें गये थे उस समय मेरा आपका संगम कण्वऋषि के आश्रम में हुआ था ६७ मैं मेनका नाम अप्सरा और विश्वामित्र के वीर्य से उत्पन्न हुई हूं मेनका उर्वशी आदि छः अप्सराओं में सबसे श्रेष्ठ और ब्रह्मयोनि है ६८। ६९ मेरी माता मुझको हिमालय पर्वत के शिखरपर पराये पुत्र की तरह छोड़ कर चली गई थी ७० मैं नहीं जानतीहूं कि मैंने पूर्वजन्ममें क्या पाप किये हैं जिसके कारण से बाल्यावस्था में मुझको मेरी माता ने छोड़ दिया और अब इस अवस्था में आप छोड़ते हैं ७१ हे राजन्! मुझको आप भलेही छोड़दीजिये मैं अपने आश्रम को चली जाऊंगी परन्तु आपको अपने पुत्र का त्याग करना उचित नहीं है ७२ यह सुनकर राजा दुष्यंत बोला कि मैं तेरे पुत्रको कुछ नहीं जानताहूं स्त्रियां सदैव झूंठ बोला करती हैं तेरी बातपर कौन विश्वास करेगा ७३ तेरी माता निर्दयी और बंधकी है जिसने तुझको हिमालय पर्वत के शिखर पर छोड़ दिया ७४ और तेरा पिता विश्वामित्र भी निर्दयी है जिसने क्षत्रियसे ब्राह्मण होनेका लोभ किया और अप्सरा को देखकर कामासक्त होगया ७५ जो तेरा पिता महाऋषियोंमें श्रेष्ठहै और तेरी माता अप्सराओंमें उत्तम है तो तू क्यों पुंश्चली की तरह बातें करती है ७६ तेरी यह बातें विश्वास करने के योग्य नहीं हैं तुझे ऐसी बातें बनाते मेरे सम्मुख लज्जा नहीं आती है तू दुष्ट तपस्विन है यहां से चलीजा ७७ भला कहां तो वह महर्षि विश्वामित्र कहां वह मेनका अप्सरा और कहां तू दीन तपस्विन ७८ तेरा यह पुत्र जो बड़ा बलवान् और बड़ा शरीर रखनेवाला है थोड़ेही दिनों में क्योंकर इतना बड़ा होगया ७९ तेरी योनि निकृष्ट है और पुंश्चली के समान बोलती है तू केवल दैवइच्छा और काम रागसे मेनका अप्सरा के उत्पन्न हुई होगी ८० तेरी

सब बातें झूंठ हैं में तुझको कुछ नहीं जानताहूं तेरा जहां मन हो तहां जा ८१ यह सुनकर शकुन्तला बोली हे राजन् ! तुम अपने बेलके समान छेदको तो नहीं देखते हो और दूसरे के सरसोंके बराबर छेदकी निन्दा करते हो ८२ मेनका की गिनती देवताओं में है और देवता उसके साथ रहते हैं मेरा जन्म तुमसे कहीं ऊंचा है ८३ क्योंकि तुम तो केवल पृथ्वी के चलनेवाले हो और मैं आकाश में भी विचर सक्ती हूं मेरे तुम्हारे बीचमें पृथ्वी और पहाड़ की बराबर अन्तर रहता है ८४ मैं महेन्द्र, कुबेर, यम और वरुणके घर भी जासक्तीहूं क्षमा कीजियेगा यह सच है ८५। ८६ कि जो मनुष्य कुरूप होता है वह अपने को जबतक अपना मुख दर्पणमें नहीं देखता है दूसरे से स्वरूपवान् समझता है ८७ परन्तु जब वह अपने स्वरूप को देख लेता है तब अपने और दूसरे के स्वरूप के अन्तर को जानता है ८८ स्वरूपवान् मनुष्य दूसरेका अपमान कभी नहीं करताहै और जो दुर्वचन बोलता है वही नीच होता है ८९ मूर्ख आदमी दूसरे की शुभाशुभ बातों को सुनकर अशुभ बातोंको इस प्रकार से ग्रहण कर लेता है जैसे शूकर सब चीजोंको छोड़कर विष्ठा खाताहै ९० और ज्ञानी मनुष्य उन्हीं बातों में से उत्तम बातों को ऐसे लेलेताहै जैसे हंस पानी में से दूध निकालकर पीलेता है ९१ और दुर्जन मनुष्य दूसरों को गाली देकर उसीप्रकार से प्रसन्न होता है जैसे साधु किसी को खोटा वचन कहकर दुःख पाता है ९२ और जैसे सन्तलोग वृद्धों को नमस्कार करके प्रसन्न होते हैं उसीतरह मूर्ख सज्जनों को गाली देकर सुखी होता है ९३ जो मनुष्य दोष को नहीं समझते हैं वे सदैव आनन्द में रहते हैं और मूर्खलोग दूसरों के खोट को देखा करते हैं और सब जगत् को अपना सा जानते हैं भला इससे बढ़कर संसार में क्या और हँसी होगी कि खोटा मनुष्य अच्छों को खोटा कहै ९४। ९५ क्रोधी और अधर्मी मनुष्य से नास्तिक भी डरता है तो जो पुरुष आस्तिक है वह तो अवश्य डरैगा ९६ और पुरुष अपने सदृश पुत्रको छोड़ देता है देवता उसकी लक्ष्मी को हरलेते हैं और परलोकमें भी वह सुगतिको नहीं पाता है ९७ पितरोंने भी कहाहै कि पुत्रकुल और वंशका स्थापना करनेवाला है इससे पुत्र कभी त्याज्य नहीं है ९८ मनुजीने पांच तरहके पुत्र कहे हैं एक जो अपनी स्त्री से उत्पन्न हो दूसरा जो गोद लिया जावै तीसरा जो मोल लेकर पुत्र भाव किया जावै चौथा जो पाल लिया जावै और पांचवां जिसके उपनयन आदि संस्कार किये

जावैं ९९ पुत्र मनकी प्रीतिको बढ़ाताहै और पितरों को नरक से तारताहै १०० इस कारण से हे राजन् ! आपको सत्यधर्म विचारकर पुत्रका त्याग न करना चाहिये और ऐसा कपट करना आप ऐसे नरेन्द्रसिंहों को योग्य नहीं है १०१ देखो सौ कूओंसे एक बावली सौ बावली से एक यज्ञ सौ यज्ञों से एक पुत्र और सौ पुत्रों से सत्य श्रेष्ठ है १०२ सौ अश्वमेध और सत्य बोलना इन दोनों के फलों को तराजू में रखकर तोला तो सत्य बोलना सौ अश्वमेध से भी अधिक ठहरा १०३ हे राजन् ! सब वेदोंका जानना और सब तीर्थोंमें स्नान करना भी सत्य बोलने के समान नहीं है १०४ संसार में सत्य के समान कोई धर्म नहीं है सत्यही परब्रह्म और बड़ा नियमहै आपको सत्य प्रणको छोड़ना उचित नहीं है १०५ । १०६ और जो आपको असत्यही अच्छा लगता है और मेरे कहने का कुछ विश्वास नहीं है तो मैं आप चली जाऊंगी मैं आप असत्यवादी का संग नहीं करना चाहती हूं १०७ आपके मृतक होनेपर मेरा यह पुत्र सम्पूर्ण पृथ्वीका पालन करैगा १०८ इतनी कथा सुनाकर वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! शकुन्तला वहांसे चलदी और उसके चलेजाने के पीछे आकाश-वाणी हुई कि हे राजा दुष्यन्त ! माता केवल गर्भ के स्थापन करनेका स्थानहै और पिता पुत्र है अर्थात् जो जिससे उत्पन्न हुआ है वह वही है १०९ । ११० तू अपने पुत्र को पाल और शकुन्तला का अपमान मत कर क्योंकि अपने वीर्यसे उत्पन्न हुआ पुत्र अपने पितरों को यमलोक से छुटाता है १११ शकु-न्तलाने सत्य कहा है यह गर्भ तेराही है और जो पुत्र उत्पन्न होता है वह निश्चय पिताकी दूसरी देह होती है ११२ तू पुत्रका पालन कर वे लोग बड़े मंदभागी होते हैं जो जीतेहुये पुत्रको त्यागकर आप जीते हैं ११३ अब तू अपने इस शकुन्तला से उत्पन्न हुये पुत्र को हमारी आज्ञा से पाल और हमने इसके पालने की आज्ञा दी इस कारण से इसका नाम भरत रक्खो यह सुन-कर ११४ । ११५ राजा प्रसन्न हुआ और अपने मंत्री और पुरोहित आदि से बोला कि तुम लोगों ने भी यह देवदूत की आकाशवाणी सुनी है हमने जान लिया था कि यह हमाराही पुत्र है परन्तु लोक के भय से उसको ग्रहण नहीं किया था अब इसके ग्रहण करने से सब मनुष्य शुद्ध कहेंगे और जो हम इसको पहिलेही ग्रहण करलेते तो सब कोई शंका करता ११६ । ११७ वैशं-पायनजी बोले हे जनमेजय ! ऐसा कहके राजा अपने पुत्रको बड़ी प्रसन्नता

से ग्रहण किया और उसके जन्म आदिका संस्कार करके उसको गोदीमें बिठाया और उसके मस्तक को सूंघकर उसे अपने हृदय से लगा लिया उस समय राजा को परम आनन्द हुआ तब ब्राह्मण और बन्दीजनों ने राजा की स्तुति को पढ़ा ११८। १२० इसके पीछे राजाने अपनी स्त्री शकुन्तलाका आदर किया और उससे यह शांतमय वचन बोला १२१ कि मेरा सम्बन्ध तेरे साथ लोकके परोक्ष में हुआथा इस कारण से मैंने तेरी शुद्धि के अर्थ लोक के भयसे तुझसे अनुचित कहा तू उसको क्षमा कर और तैंने जो क्रोध में मुझसे अनुचित बातें कही हैं उनको मैं क्षमा करताहूं १२२। १२४ ऐसा कहके राजाने उस अपनी प्यारी पटरानी को सुन्दर भूषण वस्त्र और भोजन आदि दिये १२५ इसके पीछे राजाने उस पुत्र का नाम भरत रखके उसका यौवराज्याभिषेक किया १२६ भरत बड़ा चक्रवर्ती राजा हुआ उसने अपने बल से सम्पूर्ण पृथ्वी के राजाओं को जीतकर अपने वश में किया और बड़ा यश पाया उसके राज्य में चारोधर्म नीति के अनुसार होते थे राजा भरतने इन्द्रके समान बड़े बड़े यज्ञ किये १२७। १२६ कण्वऋषि ने भरतको गोवितत और अश्वमेध यज्ञ कराये और भरत ने उन यज्ञों में कण्वऋषि को दश शंख धन दिया १३० यह भरत वंश और जितने पहले और पिछले राजालोग जो भारत कहलाते हैं सब इन्हीं भरत के वंशमें हैं १३१ इस भरत वंशमें बहुतसे देवता और ब्राह्मणों के तुल्य बड़े बड़े पराक्रमी राजा उत्पन्न हुये उनके नाम मैं कहांतक कहूं परन्तु उनमेंसे जो मुख्य मुख्य वंश के चलानेवाले हुये उनका वर्णन करताहूं १३२। १३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुस्सप्ततितमोऽध्यायः ७४॥

पचहत्तरवां अध्याय।

दक्षप्रजापति वैवस्वतमनु भरत कुरु अजमीढ़ यादव और कौरव आदि वंशोंके उत्पन्न होनेकी कथा॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अब मैं तुमसे दक्षप्रजापति, वैवस्वतमनु, भरत, कुरु, अजमीढ़, यादव, कौरव और भरत आदि वंशों की कथा कहताहूं यह कथा धन यश और आयुको देनेवाली है १। २ पहले प्राचेतस के दशपुत्र बड़े तेजस्वी महर्षि संत और पुण्यात्मा उत्पन्न हुये और उनके मुखसे उत्पन्न हुई अग्निने सब वनोंको भस्म करदिया ३। ४ उन प्राचेतसों से दक्ष-

प्रजापति उत्पन्न हुये और दक्षसे संपूर्ण प्रजा उत्पन्न हुई ५ प्रथम दक्षके वीरणी स्त्री से एकहजार पुत्र दक्षके समान तेजधारी उत्पन्न हुये ६ उनको नारदजीने मोक्ष विद्या और सांख्य ज्ञान जिससे बढ़कर दूसरी वस्तु नहीं है पढ़ाया ७ इन पुत्रों के पीछे दक्षके पचास पुत्री हुईं और दक्षने प्रजाको उत्पन्न करने के लिये १० पुत्री धर्मराज को १३ कश्यपजी को और २७ चन्द्रमा को विवाहदीं ८।६ जो १३ पुत्री कश्यपजीको विवाहीथीं उनमेंसे सबसे बड़ी आदिति नामके इन्द्रादिक बारह आदित्य और विवस्वत उत्पन्न हुये और विवस्वत के यमराज पुत्रहुये १०।११ सूर्य के मनु और यम ये दोनों पुत्रभी उत्पन्न हुये १२ उनमेंसे मनुजी बड़े बुद्धि-मान् और धर्मात्माथे और उन्हीं मनुके वंशमें उत्पन्न होने से सबलोग मानव कहलाते हैं १३ उन्हीं मनु से ब्राह्मण और क्षत्रिय उत्पन्न हुये हैं इसी कारण से क्षत्रियकुलका ब्राह्मणकुलके साथ मिलाप हुआ है १४ मनुके वंश में जो ब्राह्मण हुये उन्होंने वेदों को अंगोंसहित पढ़ा और वेनु, धृष्णु, नरिष्यंत, नाभाग, इक्ष्वाकु, कारूष, शर्याति, प्रषध्र और नाभाग ऋषि ये नव क्षत्रिय राजा और दशमी इलानाम पुत्री क्षत्रियकुलमें हुये इनके सिवाय मनुजी के पचास और भी पुत्र उत्पन्न हुये थे परन्तु वे आपस में वैरभाव रखने के कारण से सब नष्ट होगये और इला के पुरूरवा नाम पुत्र उत्पन्न हुआ परन्तु उसके पिताका नाम सुनने में नहीं आया १५।१८ पुरूरवा ने तेरह समुद्रों के द्वीपों का राज्य किया और अपने बलके गर्व से अंधा होकर उसने ब्राह्मणों के धनको छीन लिया ब्राह्मणों ने बहुत कुछ पुकार की परन्तु उसने कुछ नहीं सुना १६।२० इसके पीछे सनत्कुमार आदि ऋषियों ने आकर पुरूरवा को ऐसा अधर्म न करने की शिक्षा की परन्तु उसने उनकी शिक्षा को नहीं माना और उनके शापसे वह शीघ्र नष्ट होगया २१।२२ यह वही पुरूरवा है जो गन्धर्वलोक से अग्नि को लाया और तीन प्रकारके यज्ञों के लिये उसकी स्थापना की और उर्वशीअप्सरा से भी उसका समागम हुआ २३ उससे पुरूरवा के छः पुत्र उत्पन्न हुये उनके नाम ये हैं आयुधीमान् और अमावसु, दृढ़ायु, वनायु, शतायु २४ और नहुष, वृद्धशर्मा, राजिगय, अनेनस इनको स्वर्भानवी और आयुके पुत्र कहते हैं २५ राजा नहुष बड़ा पराक्रमी हुआ और उसने अपना राज्य बड़े धर्म से किया २६ यह वही राजा नहुष है जिसने पितर, देवता, ऋषि, विप्र, गन्धर्व, उरग, राक्षस,

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सबका पालन किया चोरों को मारकर ऋषियों से कर लिया और उनको अपने यानमें पशुकी तरह जोता और अपनी देही की कांति पराक्रम तप बुद्धि और इन्द्रियों के बलसे सब देवताओं का तिरस्कार करके स्वर्गका राज्य किया २७। २६ उसके छः पुत्र हुये यति १ ययाति २ संपाति ३ आयाति ४ अयति ५ और ध्रुव ६। ३० इनमें से यति तो योगाभ्यास में स्थित होकर ब्रह्मभूत मुनि होगये और ययाति ने सम्पूर्ण पृथ्वी का राज्य किया राजा ययातिने अपनी प्रजा का पालन धर्मसे किया और बहुत से यज्ञों को करके पितर और देवताओं को बड़ी भक्तिसे पूजा ३१। ३२ उसके दो पुत्र यदु और तुर्वसु देवयानी स्त्री से और दो पुत्र द्रुह्य और अनुरूप शर्मिष्ठा से बड़े धनुर्द्धारी और गुणवान् उत्पन्न हुये ३३। ३५ राजा ययातिने बहुत दिनों तक सुखपूर्वक राज्य किया और वृद्धावस्था के आनेपर एक दिन उन्होंने अपने चारों पुत्रों को बुलाकर स्त्रीभोग करने की इच्छासे कहा हे पुत्रो! हमारी अब वृद्धावस्था है परन्तु हम अभी स्त्रियों के साथ विहार करना चाहते हैं इससे तुम लोग हमारी सहायता करो हमको अपनी जवानी देदो और हमारा बुढ़ापा और राज्य लेकर उसके बदले में भोगो यह सुनकर देवयानी का बड़ा पुत्र बोला कि हमारी युवावस्था से आपका क्या काम निकलेगा ययाति बोले कि तुममें से कोई मेरे बुढ़ापे को ग्रहण करके राज्य करो और अपनी जवानी मुझको देदो मेरे बहुत यज्ञ करने के कारण से मुझे शुक्रने यह शाप दिया है कि तू कामातुर होजा सो मुझको कामदेव पीड़ा देता है मैं नये शरीर से नई स्त्रियों से भोग करना चाहता हूं ३६। ४१ यह सुनकर ययाति के तीन बड़े लड़कों ने अपनी जवानी देने से निषेध किया और पुरु नाम सबसे छोटे ने कहा कि महाराज बहुत अच्छा आप मेरी जवानी को लेकर भोग करिये मैं आपके बुढ़ापे को लेकर राज्य करूंगा ४२। ४३ यह सुनकर राजा ययाति ने अपने तपोबल से अपने बुढ़ापे को अपने पुत्र पुरु के शरीर में प्रवेश कर दिया और उसके यौवन को आप ले लिया ४४ पुरु पिताकी वृद्धावस्था लेकर राज्य करने लगा और ययाति अपने पुत्रके यौवनसे स्त्रियोंमें विहार करने लगा ४५ एक सहस्र वर्षतक राजा स्त्रियों के साथ विहार करता रहा और चैत्ररथ नाम वनमें विश्वाची से भी भोग किया परन्तु उसका कामदेव तृप्त नहीं हुआ राजा इस बातको समझकर विचारने लगा ४६। ४८ कि कामदेव भोग करनेसे कभी तृप्त

इस प्रकार से नहीं होता है जैसे घृत से अग्नि घटती नहीं है बढ़तीही जाती है ४९ यह कामदेव ऐसा प्रबल है कि इसको सब पृथ्वी सुवर्ण पशु और स्त्रियां भी तृप्त नहीं कर सक्ती हैं इससे मुझको भी अपना चित्त विषय की इच्छा से अलग करना चाहिये ५० और मनुष्य ब्रह्म को तभी पाता है जब मन वाणी और कर्म से कभी पाप नहीं करता है ५१ न किसी से डरता है और न कोई इससे भयभीत होता है और न किसी से कुछ इच्छा या द्वेष करता है ५२ राजा ययाति ने ऐसा विचार करके अपने मनको विषय की तरफ से खींच लिया और अपने पुत्र से अपने बुढ़ापे को लेकर पुत्र को राज्य दिया और उससे कहा ५३। ५४ कि तू मेरा पुत्र है तुझसे जो आगे वंश होगा वह पौरववंश कहलावैगा ५५ इतनी कथा सुनाकर वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा ययाति इस प्रकार से अपने पुत्र को राज्य देकर भृगुतुंगस्थान में जाकर तपस्या करने लगे और अनशन महाव्रत को करके अपनी स्त्री सहित स्वर्गवासी हुये ५६। ५७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ७५॥

छिहत्तरवां अध्याय।

राजा ययाति को देवयानी शुक्रकी बेटी के मिलने की कथा॥

जनमेजयने कहा हे वैशम्पायनजी! राजा ययाति जो प्रजापति से दशवीं पीढ़ी में है उसने दुर्लभ शुक्रकी कन्या किस प्रकार से पाई १ उसको मैं विस्तार सहित सुना चाहता हूं कृपा करके कहिये २ यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले कि राजा ययाति देवराज के समान तेजस्वी था उसके साथ शुक्र की कन्या देवयानी का संयोग इस प्रकार से हुआ ३। ४ कि एक समय देवता और दैत्य दोनों में तीनों लोक के राज्य करने की इच्छा से परस्पर बड़ा वैर बढ़गया देवताओं ने असुरों के जीतने के लिये बृहस्पतिजी को और असुरोंने देवताओं से जय लेने के निमित्त शुक्रजी को आचार्य बनाया ५। ६ इसके पीछे उन दोनों में बड़ा युद्ध हुआ उसमें जो दैत्य मारे गये थे उनको शुक्रजी ने अपनी संजीवनी विद्या से जिला दिया और वे दैत्य फिर देवताओं से युद्ध करने लगे और जो देवता उस युद्ध में मारे गये उनको बृहस्पतिजी संजीवनी विद्या न जानने के कारण से न जिला सके इस बात को जानकर देवता बड़े खिन्नचित्त हुये ७। १० और शुक्र के भय से भयभीत हो कर

बृहस्पतिजी के बड़े पुत्र कच नाम के पास गये और उससे कहा कि हम सब सेवकों की आपसे प्रार्थना है शुक्रजी जिन दैत्यों को हम युद्ध में मार डालते हैं उनको संजीवनी विद्या से जिला देते हैं सो आप कोई ऐसा उपाय कीजिये जिसमें शुक्रसे वह विद्या हाथ आवै हमारी समझसे तुम अभी जवान हो तुम शुक्रजी के पास चले जाओ वे वृषपर्वादैत्य के पास रहते हैं और दैत्यों की रक्षा करते हैं और उनकी खूब सेवा करके उनसे संजीवनी विद्या को सीख आओ हमको निश्चय है कि तुम अपने शील स्वभाव, चतुराई, मधुर बोली और धर्म से शुक्र और उनकी पुत्री देवयानी को प्रसन्न करके संजीवनी विद्या सीख आओगे ११ । १६ कच यह सुनकर देवताओं से बोला कि बहुत अच्छा मैं ऐसाही करूंगा यह कहकर वहां से वृषपर्वा के पास चल दिया १७ और उसकी पुरी में जाकर शुक्रजी के पास गया और दण्डवत् करके बोला कि महाराज में अंगिरस ऋषि का पौत्र और बृहस्पतिजी का पुत्र हूं आपका शिष्य होना चाहता हूं मैं एक सहस्र वर्षतक शिष्य होकर आपकी सेवा करूंगा और ब्रह्मचर्यविधान को आपके पास करूंगा १८ । २० यह सुनकर शुक्रजी बोले कि तेरा आना अच्छा हुआ तू पूजन योग्यहै ठहर २१ वैशंपायन जी बोले हे जनमेजय ! कच शुक्रजीकी आज्ञा पर बहुत अच्छा ऐसा कहकर ठहर गया और शुक्रजीके उपदेश किये हुये ब्रह्मचर्यव्रतको करनेलगा २२ और शुक्रजी और उनकी कन्या देवयानी दोनों की अच्छीतरह सेवा की कचने अपनी युवावस्था में नाचने गाने बजाने और फल फूल आदि लाकर देने से देवयानी को बहुत प्रसन्न किया २३ । २५ और देवयानी भी उसपर बहुत लाड़ करके उसके साथ एकान्तमें क्रीड़ा करनेलगी इस अवसरमें कचको यही काम करते पांच सौ वर्ष बीत गये एक समय दैत्यों ने कच को यह जान कर २६ । २७ कि यह बृहस्पतिका पुत्र है अकेला वनमें गाय चरातेमें मारडाला और उसके मांसको टुकड़े २ करके कुत्ते और गीदड़ों को खिला दिया२८ जब संध्या हुई और गायें घरको बिना कचके लौट आईं तब देवयानीने संदेह करके शुक्रजी से कहा कि महाराज आप अग्निहोत्र करचुके और सूर्य अस्त होगये परन्तु कच अभीतक नहीं आया है मुझको जान पड़ता है कि उसको किसी ने मारडाला है मैं भी कचके बिना अपने प्राणों को त्याग दूंगी २९ । ३२ यह सुनकर शुक्रजी ने देवयानी से कहा यहां आ मैं मरे हुये कचको जियाता हूं

और ऐसा कहकर शुक्रजी ने संजीवनी विद्याका प्रयोग करके कचको बुलाया और वह शरीरोंको फाड़कर बाहर निकल आया ३३।३४ उस समय देवयानी ने कच से पूछा कि तुझको इतनी देर कहां लगी कच बोला कि में कुशा और समिधा लेकर गौओं सहित एक वटके पेड़के नीचे विश्राम कर रहा था उस समय कुछ दैत्योंने मुझसे आकर पूछा कि तू कौन है मैंने कहा कि में बृहस्पति का पुत्र हूं और मेरा नाम कच है ऐसा कहने पर दैत्योंने मुझको मार और चूर्ण कर शालावृकों को खिला दिया और आप चले गये ३५।३८ अब में महात्मा शुक्रजी की विद्यासे फिर जी आयाहूं ३९ कच फिर पूर्ववत् देवयानी की सेवा करने लगा थोड़े दिनों में दैवइच्छा से देवयानी ने उसको फूल लानेको भेजा दैत्योंने उसको पहिंचान लिया और फिर मारकर समुद्रमें पिष्टीसी करके डाल दिया ४०।४१ जब देर हुई और वह नहीं आया तब देवयानीने फिर शुक्रजी से कहा और उन्होंने उसको संजीवनी विद्या से फिर बुलाया वह बुलातेही जलमें से निकलकर चला आया और सब वृत्तान्त कह सुनाया ४२ इसके पीछे दैत्यों ने तीसरी बेर कच को मारकर भस्म कर दिया और उस भस्मको वारुणी के साथ शुक्रजी को पिला दिया ४३ जब देर हुई और कच नहीं आया तब देवयानीने शुक्रजी से फिर कहा कि मैंने कचको फूल लेने भेजा था अभीतक नहीं आया है ऐसा जान पड़ता है कि उसको फिर किसीने मारडाला हे महा-राज! उसके विना मेरे भी प्राण नहीं बचेंगे में आपसे सत्य कहती हूं ४४।४५ यह सुनकर शुक्रजी बोले कि हे देवयानी! बृहस्पति का बेटा कच मरकर प्रेत होगया है हमने उसको कई बार जिलाया परन्तु वह बेर बेर मारा जाताहै इस में मेरे करनेका कुछ काम नहीं है ४६ तू क्यों इतना रोती और शोच करती है तुझको हमारे प्रभावसे ब्राह्मण, इन्द्रसहित अष्टवसु, अश्विनीकुमार, असुर और सब जगत्के जीव नमस्कार करते हैं यह ब्राह्मण अब नहीं जीसक्ता और क-दापि जीवे भी तो फिर मारा जायगा ४७।४८ यह सुनकर देवयानी बोली कि वह अंगिरस ऋषिका पौत्र और बृहस्पतिका पुत्र है उसके मरने से ऋषिके कुलका नाश होताहै में उसके लिये क्योंकर शोच न करूं ४९ इसके सिवाय वह ब्रह्मचारी तपोधन का रखनेवाला सब कामों में चतुर और मेरा परम प्रिय है जो वह नहीं जीवेगा तो में भी उसी लोक को चली जाऊंगी जिस लोक को कच गया है ५० वैशम्पायन बोले हे जनमेजय! शुक्रजी ने देवयानी की उक्त

बातों को सुनकर असुरों को बुलाया और क्रोधसे कहा कि तुम लोग हमसे द्वेष रखते हो जो हमारे शिष्योंको मार डालते हो ५१ हम जानते हैं कि तुम लोग हमको भी अब्राह्मण किया चाहतेहो जैसे आप नित्य खोटे और रौद्र कर्म किया करते हो ऐसा पाप अब न होवे क्योंकि ब्रह्महत्या इन्द्रको भी जला देती है ५२ इसके पीछे जब शुक्रजी ने मन्त्र से कच को बुलाया तब वह धीरे से शुक्रजी के पेट में बोला यह देखकर शुक्रजी ने पूछा कि हमारे पेट में तू किस राह से गया है. ५३ यह सुनकर कच बोला कि महाराज मुझको असुरों ने भस्म करके मद्य के साथ आपको पिला दिया है आपकी कृपा से मेरी स्मृति नहीं गई है मुझको सब वृत्तान्त ज्यों का त्यों याद है परन्तु उदर से निकलने में आपके मरने और तप के क्षय होने का भय है और उदर में रहने से मुझको बड़ा कष्ट मालूम होता है इसके सिवाय आपमें दैवी ब्राह्मी और आसुरी तीनों माया स्थित हैं मैं क्योंकर उनको उल्लंघन कर सक्ता हूं ५४। ५५ यह सुनकर शुक्रजी देवयानी से बोले कि अब मैं क्या करूं कच बिना मेरे मरे पेटके भीतर से नहीं निकल सक्ता है ५६ देवयानी बोली कि कचका मरना और आपका उपघात मुझको दोनों अग्निके समान जलाते हैं मेरा कल्याण दोनों में से किसी में नहीं है ५७ यह सुनकर शुक्रजी ने कच से कहा कि जो तू कच-रूपी इन्द्र नहीं है तो मैं तुझको संजीवनी विद्या देता हूं तू मेरे पेटके बाहर नि-कलकर मुझको जिला दीजो विश्वासघात मत करियो मैं तेरा गुरु हूं क्योंकि मैं तुझको यह विद्या देताहूं तुझको भी गुरुके साथ धर्मका बर्ताव करना चाहिये और मेरे पेट में गया हुआ ब्राह्मणके सिवाय दूसरा निकल नहीं सक्ताहै५८।६० वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! शुक्रजीने ऐसा कहकर कचको संजी-वनी विद्या दी और वह शुक्रके पेटको फाड़कर पूर्णमासी के चन्द्रमा के समान बाहर निकलआया ६१ और अपने गुरुको उस विद्यासे जिलाकर विद्या पाने के कारण से गुरुको नमस्कार किया और विनयपूर्वक बोला ६२ कि महाराज आपने मुझको संजीवनी विद्या दी है आप मेरे माता और पिता के समान हैं मैं आपसे द्रोह कभी नहीं करूंगा ६३ जो मनुष्य विद्याके देनेवाले परम पूज-नीय गुरुका आदर नहीं करते हैं वे नरकगामी होते हैं ६४ वैशंपायनजी बोले हे जनमेजय! इसके पीछे शुक्रजीने सुरापान करना स्मरण करके जिसके कारण से उनका ज्ञान नष्ट होगया था और ज्ञान नष्ट होनेसे ऐसी ठगाई में

आगये थे बड़ा क्रोध किया और ब्राह्मणोंका हित करने के लिये यह बोले ६५। ६६ मैं सब ब्राह्मण और लोकोंको सुनाकर यह मर्यादा स्थापित करता हूं कि आजके दिनसे जो कोई ब्राह्मण मद्यपान करेगा वह धर्मरहित होकर इस लोक में निंदित किया जायगा और उसको ब्रह्महत्या का पाप लगेगा ६७।६८ यह कहकर शुक्रजीने सब दानवोंको बुलाया और कहा कि यह कच ब्राह्मण जो हमारे पास रहता है महात्मा और ब्रह्मभून है और मुझसे संजीवनी विद्या पाकर मेरे तुल्य प्रभाव का रखनेवाला है ६९।७० यह कहकर शुक्रजी चुप हो रहे और सब दानव आश्चर्य करते हुये अपने अपने घरोंको चलेगये ७१ इसके पीछे कचने वहां रहकर एकसहस्र वर्ष पूर्ण किया उपरान्त अपने घर जाने को आज्ञा मांगी ७२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षट्सप्ततितमोऽध्यायः ७६॥

सतहत्तरवां अध्याय।

देवयानीका कचसे पाणिग्रहण करनेको कहना कचका निषेध करना और देवयानी और कचका आपस में शाप देना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब कच अपने ब्रह्मचर्यव्रतको पूरा कर गुरुसे आज्ञा पाकर स्वर्गके जानेको हुआ तब देवयानीने उससे कहा १ कि तुम अंगिरसऋषि के पौत्रहो और तपस्वी तेजस्वी और विद्यावान्हो २ तुम्हारे दादा अंगिरस और पिता बृहस्पतिजी दोनों हमारे पिताके मान्यहैं ३ मैं तुमसे एक बात कहना चाहती हूं उसको तुम अपने व्रतके समय मेरे बर्ताव पर ध्यान करके अंगीकार करो ४ वह बात यह है कि तुमने विद्या पाई और अब अपने में मेरी प्रीतिको जानकर मेरा पाणिग्रहण करो ५ यह सुनकर कच बोला कि हे देवयानी! तू मेरे गुरुकी पुत्री है और गुरुजीको प्राणसे अधिक प्यारी है मुझको जैसे गुरु महाराज पूज्य और मान्यहैं उसीतरह तू भी पूजनीय है तुझको मुझसे ऐसी बात कहना उचित नहींहै ६।८ यह सुनकर देवयानी बोली कि तुम अंगिरसऋषि के पौत्रहो और अंगिरसऋषि मेरे पिता के मान्य हैं इसकारण से तुम भी मेरे मान्यहो ९ इसके सिवाय तुमको पिछली बातों को स्मरण करना चाहिये कि जब तुमको दैत्यों ने मारडाला था तब मैंने तुम्हारे जिलाने के लिये क्या क्या काम किये थे और मेरी जैसी कुछ प्रीति तुमसे रही उसपर ध्यान करके तुमको मुझ निरपराधको त्याग करना

उचित नहीं है १०।११ यह सुनकर कच बोला कि तू मुझको वह काम करने को कहती है जो करने के योग्य नहीं है तू मुझको गुरुसे भी अधिक मान्यहै क्योंकि मैंने शुक्रजी की कोखमें वास किया है और इस कारणसे तू भी मेरी बहिन है इससे तू मुझसे ऐसी बात मत कहे मैं तेरे पास बहुत सुखसे रहा हूं तू मुझपर प्रसन्न हो और मुझे जानेकी आज्ञा देकर मार्ग में मेरे कल्याण होनेका आशीर्वाद दे और मुझको धर्ममार्ग से याद करियो १२।१५ देवयानी बोली कि तू मुझको धर्म और कामार्थ में मांगती हुई को त्याग करताहै इससे तेरी विद्या सफल न होगी १६ यह सुनकर कचने कहा देवयानी तू मेरी गुरुपुत्री है इस कारण से उत्तर देताहूं कि तैंने मुझको कामासक्त होकर निरपराध शाप दिया तुझे ऐसा करना योग्य न था क्योंकि मैंने तुझसे धर्मकी बात कही थी और सिवाय इसके मुझको ऐसा काम करने को गुरुजीने भी आज्ञा नहीं दीथी तैंने यह शाप धर्म से नहीं दिया अपनी इच्छानुसार दिया है इससे मैंभी शाप देताहूं कि तुझको पाणिग्रहण के अर्थ ऋषिपुत्र नहीं मिलेगा १७।१६ और तुमने कहा कि तुमको विद्या नहीं फलेगी सो कुछ संदेहकी बात नहीं है मैं इस विद्या को जिसको पढ़ाऊंगा उसको फलीभूत होगी २० वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! कच देवयानी से इस प्रकार वार्तालाप करके स्वर्गको चलदिया २१ और जब अपने पिताके घर पहुँचा तब उससे इन्द्रादिक देवताओं ने जो वहां पहिलेही से आगये थे कहा २२ कि तुमने हमारा बड़ा काम हमारे हित के लिये किया है इससे तुम्हारा यश संसार में सदैव बनारहेगा और तुम यज्ञों में भागभी पायाकरोगे २३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ७७॥

अठहत्तरवां अध्याय।

देवयानी और वृषपर्वा दैत्यकी बेटी शर्मिष्ठा के विवादकी कथा॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब सब देवता कचसे संजीवनी विद्या पढ़कर कृतार्थरूप और मरने से निर्भय होगये तब सबके सब इन्द्रके पास जाकर बोले कि अब पराक्रम करनेका समयहै चलकर सब शत्रुओं को मारलो १। २ इंद्र बोले बहुत अच्छा चलो राहमें उन्होंने एक सरोवरमें कुछ स्त्रियों को स्नान करते देखा ३ उस समय इन्द्रने वायु होकर उन स्त्रियों के वस्त्रों को उड़ाकर मिला दिया ४ जबवे स्त्रियां जलसे नंगी होकर बाहर आईं तब उन्होंने जल्दीमें जिसका

वस्त्र जिसके हाथ आया उसने उसीका पहिन लिया ५ उस समय देवयानी के वस्त्र शर्मिष्ठानाम वृषपर्वा दैत्यकी कन्याने भूलमें पहिन लिये ६ इस कारणसे उन दोनों में कलह होनेलगी ७ देवयानी बोली कि हे शर्मिष्ठा ! तूने शिष्य होकर मेरे वस्त्रोंको क्यों पहिनलिया है तेरे लिये इसमें अच्छा न होगा ८ यह सुनकर शर्मिष्ठा बोली कि तेरा बाप नीचे खड़ा होकर मेरे पिताकी वन्दीजनों के समान स्तुति किया करता है और मेरा पिता बैठा रहता और सोया करता है ९ मुझसे तुझमें बड़ा अन्तर है तू भिखारी दान लेनेवाले और स्तुति करनेवाले की बेटी है और मैं स्तूयमान दाता और कभी कुछ न लेनेवाले की पुत्री हूं १० अरी भिखारिनि ! तू चाहे रो चाहे छाती पीट चाहे क्रोध कर मैं तुझको कुछ नहीं गिनतीहूं तू बिना शस्त्र और निर्धन होकर मुझ सायुधसे वैर बांधती है ११ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! शर्मिष्ठाने ऐसा कहके देवयानी को कुयें में डाल दिया और क्रोधके आवेशमें वह पापिनी यहसमझकरकि यह मरगई वहां से विना विचारे घरको चली आई १२ । १३ इसी अवसर में राजा ययाति जो उस देश में अहेर मारने आये थे पियासे होनेके कारण से उस कुयेंपर जिसमें देवयानी पड़ी थी गये और उसमें उस परमसुन्दरी कन्याको देखकर उसे धैर्य देकर बोले कि तू कौन है किसकी बेटी है और इस घासफूस से घिरे हुये कुयें में दिव्य मणिजटित कुण्डल धारण किये हुये कुछ शोचती सी ध्यानसा लगाये हुये क्यों पड़ी है १४ । १८ यह सुनकर देवयानी बोली कि मैं शुक्रजी की बेटी हूं जो देवताओं से मारे हुये दैत्यों को जिला देते हैं मेरे बाप को मेरी यह गति होने की खबर नहीं है १९ हे राजा ययाति ! तुम बड़े कुलीन पराक्रमी और यशस्वीहो इस कारण से मेरे दहिने हाथ को पकड़कर मुझको इस कुयें में से निकालो २० । २१ राजा ययाति ने यह सुनकर उस को ब्राह्मणी जान उसका दहिना हाथ पकड़ कुयेंसे बाहर निकाला और वहां से अपने घरको शीघ्र चलेगये २२ । २३ उनके चलेजाने पर शोक से दुःखी देवयानी ने अपनी घूर्णिका नाम दासी से जो वहां पहले से आगई थी कहा २४ कि तू जल्दी से जाकर मेरे पिता से यह सब वृत्तान्त कहदे मैं अब वृषपर्वा के नगर में नहीं जाऊंगी २५ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय ! वह घूर्णिका दासी देवयानी की आज्ञा पाकर सम्भ्रमचित्त होकर शुक्रजी के पास आई और वन में देवयानी और शर्मिष्ठा की लड़ाई होने का सब वृत्तान्त कह

सुनाया २६ । २७ शुक्रजी पुत्रीका हाल सुनकर बड़े दुःखी हुये और वहां से वन में ढूंढ़तेहुये देवयानी के पास आकर उससे मिलकर बोले २८ । २९ कि मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार सुख और दुःख पाता है तैंने कुछ अपराध किया है जिससे तेरी यह गति हुई देवयानी बोली कि मैंने कुछ अपराध किया हो या नहीं परन्तु मैं वृषपर्वाकी बेटी शर्मिष्ठा की कहन को आपसे कहतीहूं आप उसको सावधान होकर सुनिये ३० । ३१ उसने क्रोध से लाल नेत्र करके बड़े घमण्ड से मुझसे बेर बेर यह कहा कि तू भिखारी स्तुति करनेवाले और दान लेनेवाले की बेटी है और मैं स्तूयमान दाता और दान न लेनेवालेकी पुत्री हूं ३२ । ३४ सो हे पिता! जो मैं ऐसीही हूं जैसा मुझको शर्मिष्ठाने कहाहै तो मैं शर्मिष्ठा को प्रसन्न करूंगी और उसको सखीभावसे मानूंगी ३५ यह सुनकर शुक्रजी बोले कि तू स्तुति करनेवाले और दान लेनेवाले की बेटी नहींहै तेरा पिता स्तूयमान है अर्थात् तेरे पिताकी सब कोई स्तुति करता है ३६ वृषपर्वा इन्द्र और राजा ययाति इस बातको जानते हैं कि मेरा ऐश्वर्य बल निर्द्वन्द्व और अचिन्त्य ब्रह्म है ३७ हमसे ब्रह्माजीने कहा है कि तुम जो कुछ पृथ्वी और स्वर्ग में वस्तु दीखती हैं सबके ईश्वरहो ३८ हमहीं पृथ्वीपर जल वर्षाकर सब ओषधियों को पुष्ट करते हैं ३९ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! शुक्रजी ने क्रोध और विषादयुक्त अपनी पुत्री कोइस तरह की बातें कहकर समझाया ४०॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्यष्टसप्ततितमोऽध्यायः ७८॥

उन्नासीवां अध्याय।

शुक्रजीका अपनी पुत्री देवयानी के क्रोध न करने की शिक्षा करना और देवयानी का शुक्रको उत्तर देना॥

शुक्रजी बोले हे देवयानी! जो मनुष्य दूसरों के कहे हुये निन्द्य वचनों को सहलेताहै और अपने क्रोधको घोड़े की तरह रोककर क्षमा से उस क्रोध को शांत करता है वह सब जगत्का जीतनेवालाहै १ । ५ हे पुत्री! हर महीने में यज्ञ करनेवाला और कभी किसीपर क्रोध न करनेवाला दोनों को मिलाया जावे तो क्रोध न करनेवालाही उत्तम ठहरेगा ६ जब दो बालक आपस में लड़ते हैं तब उनके माता पिता उनके लड़नेपर किसी तरहका बर्ताव नहीं करते क्योंकि बालक बल अबलको कुछ नहीं जानते ७ यह सुनकर देवयानी बोली कि मैं यद्यपि अबलाहूं परन्तु सब धर्म को क्रोध और वादके करने न

करने के बल अबल को अच्छी तरह जानतीहूं ८ परन्तु जब शिष्य अपने धर्म के विपरीत काम करनेलगे तब शिष्य के अपराध को क्षमा करना और उन खोटे चालके मनुष्यों में रहना मुझको अच्छा नहीं मालूम होता है ९ ज्ञानी लोग अभिजनों की निंदा करनेवाले मनुष्यों में बसना अच्छा नहीं जानते हैं किन्तु इसके विपरीतही को श्रेय समझते हैं १० । ११ वृषपर्वा की पुत्री के वाक्य मेरे हृदयको अभीतक अरणी काष्ठको अग्नि के समान जलारहे हैं १२ निर्धनी को धनवान् शत्रुकी सेवा करना किसी प्रकार से अच्छा नहीं है तीनों लोक में इससे बढ़कर कोई बुराई नहीं है और मरना इससे श्रेष्ठ है १३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकोनाशीतितमोऽध्यायः ७९ ॥

अस्सीवां अध्याय।

शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी होनेकी कथा ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! शुक्रजी अपनी पुत्री की बात को सुनकर और क्रोधित होकर वृषपर्वा के पास गये और उग्र स्वरूप होकर उससे बोले कि तुम नहीं जानते हो कि गौ और पृथ्वी के समान अधर्म करने का भी फल जल्दी नहीं मिलता है किन्तु वह अधर्म करनेवाले की जड़ को धीरे धीरे काटता जाता है और जो उसके करनेवाले को नहीं मिलता है तो उसके पुत्र और पौत्रों को भोगना पड़ता है निदान अधर्म का भोग अवश्यही भोगना पड़ता है १ । २ तुमने प्रथम हमारे कच नाम शिष्य को जो गुरुभक्त पुण्यात्मा परम सेवक और उत्तम ब्राह्मण अङ्गिरस ऋषिका पौत्र था मारकर हमें खिला दिया और अब हमारी देवयानी कन्या का अपमान किया ३ । ४ इस कारण से अब हम तुम को भाइयों सहित छोड़कर चले जावेंगे अब हम तुम्हारे देशमें नहीं रहेंगे तुम अपने किये हुये दोषको नहीं मानते हो और हम को झूठा समझते हो ५ । ६ यह सुनकर वृषपर्वा बोला कि मैं आपको अधर्मी और झूठा कभी नहीं समझता हूं आप तो धर्मात्मा और सत्यवादी हैं आप मुझसे अप्रसन्न न हूजिये ७ जो आप हमको छोड़कर चले जाइयेगा तो हमारा ठिकाना कहीं नहीं लगेगा हम लोग भी समुद्र में डूब मरेंगे ८ यह सुनकर शुक्रजी ने कहा कि तुम चाहे समुद्र में डूबो चाहे कहीं को भागजावो मैं अपनी प्राणप्यारी पुत्री देवयानी का अप्रिय नहीं कर

सक्ताहूं जो तुमको मुझे रखना है तो देवयानी को जैसे बने प्रसन्न करो क्योंकि मेरा जीवन उसी में स्थित है और में तुम लोगों की कुशल उसी तरह चाहा करता हूं जैसे बृहस्पतिजी इन्द्रादिक देवताओं की चाहते हैं ९। १० वृषपर्वा यह सुनकर बोला कि असुरों का जो कुछ धन हाथी घोड़ा आदि पृथ्वीपर है उस सबके और सब दैत्यों के आपही ईश्वर हैं ११ शुक्रजीने कहा कि जो तुम ऐसाही समझतेहो तो देवयानी को जाकर जैसे बने प्रसन्न करो १२ वृषपर्वा ने कहा बहुत अच्छा उस समय वे दोनों देवयानी के पास गये और शुक्रजी ने सब पूर्व वृत्तान्त कहा उसको सुनकर देवयानी बोली कि आप के कहने पर मुझको तब विश्वास होगा जब दैत्योंका राजा आप मुझसे कहे १३। १४ यह सुनकर वृषपर्वा दैत्यों का राजा बोला कि मैं तुझको दुर्लभ से दुर्लभ पदार्थ जो तू मांगेगी सो दूंगा १५ देवयानी बोली कि मैं यह चाहती हूं कि तेरी शर्मिष्ठा पुत्री अपनी हजार दासियों सहित मेरी दासी होकर मेरे पास रहे और मेरा पिता जहां मुझको देदे वहां भी वह मेरे साथ जावे १६ यह सुनकर वृषपर्वा ने धात्री को आज्ञा दी कि तू जल्दी जाकर शर्मिष्ठा को लेआ और उससे कहो कि जो कुछ देवयानी कहे सो करे १७ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! धात्री उसी समय शर्मिष्ठा के पास गई और जाकर उससे कहा कि शुक्रजी देवयानी के कारण तेरे भाईबन्दों को छोड़कर जाना चाहते हैं इस कारण से तुझको चाहिये अपने कुल के हित के लिये तू देवयानी के पास जा और जो कुछ वह तुझसे कहे उसको कर १८। १९ शर्मिष्ठा बोली कि मैं जातीहूं और देवयानी मुझसे जो कुछ कहेगी मैं वही करूंगी मेरे कारणसे देवयानी के कहनेसे शुक्रजी न जावें २० वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! शर्मिष्ठा ऐसा कहके पिता की आज्ञा से अपनी हजारों दासियों सहित पालकी में सवार हो नगरके बाहर गई और देवयानी के पास जाकर बोली कि मैं हजार दासियों सहित तेरी दासी हूं तू जो कहेगी सो मैं करूंगी और तेरा पिता जहां तुझे देगा मैं वहीं तेरे साथ जाऊंगी २१। २२ यह सुनकर देवयानी ने कहा कि तू तो स्तूयमान की बेटीहै और मैं भीख मांगनेवाले दान लेनेवाले और स्तुति करनेवाले की पुत्रीहूं तू मेरी दासी क्योंकर होगी २३ शर्मिष्ठा ने कहा कि मैं जातिभाइयों के हित करने के लिये तेरी दासी होकर जहां तेरा पिता तुझे देगा वहीं तेरे साथ जाऊंगी २४ वैशम्पायनजी

बोले हे जनमेजय! शर्मिष्ठा के दासी होनेकी प्रतिज्ञा करनेपर देवयानी अपने पिता से बोली २५ कि मैं अब प्रसन्न होकर नगर में जाती हूं आपका विद्या बल और विज्ञान निश्चय सफल है २६ वैशम्पायन बोले हे जनमेजय! शुक्रजी भी अपनी पुत्रीकी उक्त बात को सुनकर दैत्यों से पूजित नगर में गये २७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्यशीतितमोऽध्यायः ८० ॥

इक्यासीवां अध्याय।

राजा ययाति का देवयानी से विवाह होने की कथा॥

वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! बहुत दिन बीतने पर एक दिन देवयानी क्रीड़ा करने को उसी वनको गई १ और शर्मिष्ठा आदि हजारों दासियों सहित इच्छा के अनुसार उसी वनमें क्रीड़ा करती मद्यपान करती और फलों को खातीहुई इधर उधर विचरने लगी उसी समय राजा ययाति भी वहां अहेर खेलता हुआ जलकी प्यास के कारण से आया और उसने देवयानी और शर्मिष्ठा आदि सब स्त्रियों को देखा २। ५ उस समय देवयानी परम सुन्दर रूप धारण किये हुये मुसुकराती हुई हजारों दासियों के मध्य में बैठी थी और शर्मिष्ठा उसकी सेवा कररही थी ६। ७ उनको देखकर राजा ययाति ने पास जाकर पूछा कि जो दो अत्यन्त सुन्दरी कन्या दो सहस्र दूसरी कन्याओं के बीचमें बैठी हुई हैं मैं उन दोनों के गोत्र और नामको सुना चाहता हूं ८ यह सुनकर देवयानी बोली कि मैं दैत्योंके गुरु शुक्रजी की और यह दैत्यों के राजा वृषपर्वा की पुत्री है मेरा नाम देवयानी और इसका नाम शर्मिष्ठा है यह मेरी दासी है और मैं जहां जाऊंगी वहां यह मेरे साथ रहेगी ९। १० राजा बोला कि यह दैत्यों के राजा की कन्या तेरी अनुचरी क्योंकर हुई ११ देवयानी ने कहा कि दैव जो चाहता है सोई होता है इसकी कथा विचित्र है तुम को सुनने से क्या काम है तुम इसको दैवकी इच्छा समझो १२ और तुम्हारा रूप और वेष राजाओं कासा मालूम होता है और बोली ब्राह्मणों कीसी है कहो क्या तुम्हारा नाम है कहां से आये हो और किसके पुत्र हो १३ राजा बोला कि हमने ब्रह्मचर्य रहकर संपूर्ण वेदको पढ़ा है और राजा नहुष के पुत्र हैं नाम हमारा ययाति है १४ देवयानी ने कहा कि इधर किस निमित्त आये हो क्या कुछ जल से उत्पन्न पदार्थ आपको चाहिये १५ राजा ने कहा कि हम अहेर खेलते हुये प्यास के मारे इधर चले आये हैं अब तुम्हारी क्या आज्ञा है १६

देवयानी बोली कि आप मेरे भर्ता हूजिये मैं इन दो सहस्र कन्या और शर्मिष्ठा सहित आपके आधीन हूं १७ राजा ने कहा देवयानी तू शुक्रजी की पुत्री है में तेरे साथ विवाह करने के योग्य नहीं हूं १८ यह सुनकर देवयानीने कहा कि ब्राह्मणों से क्षत्रिय उत्पन्न हुये हैं और ब्राह्मण क्षत्रिय दोनों मिलेहुये भी हैं फिर तुमतो आप ऋषि के समान हो और ऋषिपुत्र हो इससे तुमको मुझसे विवाह करना अनुचित नहीं है १९ राजा बोला कि यों तो चारों वर्ण एकही देही से उत्पन्न हुये हैं परन्तु धर्म सबके जुदे २ हैं और ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठहैं २० देवयानी बोली कि पाणिग्रहण का धर्म यह है कि जो पहिले हाथ पकड़े वही पति होता है तुमने मेरे हाथ को पहिलेही पहिल पकड़ा था इससे मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूं मैं तपस्विनीहूं मेरा हाथ अब दूसरा नहीं पकड़ सक्ता २१। २२ राजा ने कहा कि ब्राह्मण विषधर सर्प और अग्निसे भी अधिक डरने के योग्य है २३ देवयानी बोली क्योंकर २४ राजा ने कहा कि सर्प के काटने और हथियार के मारने से एकही आदमी मरता है परन्तु ब्राह्मण के कोप से देशके देश नाश होजाते हैं २५ इससे मैं ब्राह्मण से सबसे अधिक डरता हूं और जब तक तेरा पिता तुझको अपनी प्रसन्नता से मुझको न देगा तबतक मैं तेरे साथ अपना विवाह नहीं कर सक्ता २६ देवयानी बोली कि तुम विवाह तभी करना जब मेरा पिता तुमको मुझे देवे परन्तु यों भी विवाह करने में तुमको कोई भय नहीं हो सक्ता है क्योंकि तुमतो मुझसे विवाह करनेकी इच्छा रखतेही नहीं हो मैंही तुमको चाहती हूं २७ यह कहकर देवयानी ने धात्री को भेज कर शीघ्र अपने पिता शुक्र को बुलवा लिया राजा ने शुक्रजी को दण्डवत् की २८। २९ और देवयानी ने अपने पिता से कहा कि यही राजा ययाति है जिसने संकटमें मेरा हाथ पकड़ा था मैं अपना विवाह इसके सिवाय दूसरे से नहीं करना चाहती हूं आप मुझे राजा को दे दीजिये ३० यह सुनकर शुक्र जी ने राजा से कहा कि मैं इस अपनी प्यारी कन्या को तुमको देता हूं तुम इसको ग्रहण करो ३१ राजाने कहा कि महाराज वर्णसंकरके उत्पन्न होने का अधर्म मुझको न लगे ऐसा कीजिये ३२ शुक्रजी बोले कि मैं तुमको अधर्मसे छुड़ाता हूं तुम हमसे जो इच्छा हो वर मांगो ३३ और देवयानी का विवाह अपने साथ धर्म विधिसे करके प्रीतिपूर्वक रहो ३४ और यह शर्मिष्ठा नाम वृषपर्वा की कन्याभी तुम्हारे साथहै इसका भरण पोषण अच्छी तरह से करना

परन्तु इस के साथ सोना नहीं ३५ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा ययाति ने शुक्रजी की बात को सुनकर उनकी प्रदक्षिणा करी और देवयानी का विवाह अपने साथ विधिपूर्वक करके देवयानी शर्मिष्ठा और दोसहस्र कन्याओं सहित दैत्य और शुक्रजी से विदा होकर बहुतसा धन दहेज में लेकर अपने नगर को चले आये ३६ । ३८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकाशीतितमोऽध्यायः ८१ ॥

बयासीवां अध्याय ।

राजा ययाति से देवयानी और शर्मिष्ठा के एक २ पुत्र उत्पन्न होने की कथा ॥

वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! राजा ययाति वहां से चलकर अपने नगर में आये और देवयानी को राजमंदिर में ठहराया १ इसके पीछे राजाने शर्मिष्ठा को सहस्र दासियों सहित देवयानी की सलाह से अशोकवनिका के पास एक घर बनवाकर वास दिया २ और उसके भरण पोषण के लिये अन्न और वस्त्र आदि का बन्दोबस्त करा दिया ३ राजा ययाति देवयानी के साथ विहार करने लगे और बहुत वर्षों के उपरान्त मासिकधर्म होने पर देवयानीके गर्भ रहा और उससे उसके पहला पुत्र उत्पन्न हुआ ४ । ५ इसी अवसरमें हजार वर्ष बीतने पर शर्मिष्ठा भी जवान होगई और मासिकधर्म होने पर यह विचार करने लगी कि मैंने अभीतक किसी से विवाह नहीं किया है क्या करना चाहिये जिससे मेरा ऋतुमती होना व्यर्थ न होवे देवयानी के तो पुत्र भी होगया और मेरी युवावस्था योंही जाती है मैं भी देवयानी की तरह राजा को अपना पति बनाकर उनके साथ विहार करूं ऐसा करने में राजा से मेरे निश्चय पुत्र होगा परमेश्वर ऐसा करे कि राजा मेरे पास किसी दिन अकेले आवें ६ । ९ दैवयोग से राजा वहां एक दिन शर्मिष्ठा को देखने चले गये शर्मिष्ठा उनको अकेले देखकर हाथ जोड़कर बोली १० । ११ कि महाराज आपके घर की स्त्रियोंको चन्द्रमा इन्द्र विष्णु यम और वरुणभी नहीं देखसक्ते हैं दूसरेकी क्या गिनती है और आप मेरे भी रूप कुल और शील स्वभाव को जानते हैं इस कारण से मैं आपकी प्रसन्नतापूर्वक आपसे रतिदान मांगतीहूं १२ । १३ राजा ने यह सुनकर कहा कि मैं तेरे शील स्वभावको अच्छीतरह जानताहूं और तेरे स्वरूप में भी किसी प्रकारकी कसर नहीं है परन्तु देवयानी के विवाहके समय शुक्रजी ने मुझसे यह कहाथा कि तुम शर्मिष्ठा के साथ शयन मत करना इस

कारण से मुझे यह काम करना योग्य नहीं है १४। १५ शर्मिष्ठाने कहा कि क्रीड़ा, स्त्रीके पास, प्राणके भयमें, विवाह और जहां सब धन जाताहो इन पांचों जगह झूंठ बोलने से पाप नहीं होताहै १६ जो मनुष्य साक्षीहो और उससे पूछने पर वह किसी बातको मिथ्या जानकर झूंठ बोले तो वह मिथ्या से पतित होकर नरक में पड़ताहै १७ राजाने कहा कि राजा प्रजाको शिक्षा देनेवाला होताहै इससे जो राजा झूंठ बोलताहै वह शीघ्र नाशको प्राप्त होजाताहै इस कारण से मैं संकटमें भी पड़ने पर झूंठ नहीं बोलना चाहताहूं १८ शर्मिष्ठा बोली अपने और अपनी सखी दोनों के पति एकही से होते हैं आप मेरी सखी के पति हैं इसकारण से मेरे भी पति हैं १९ राजाने कहा कि हमारा यह व्रत है कि हमसे जो कोई मनुष्य जो कुछ मांगताहै हम उसको वही देते हैं तू भी अपने मनकी कामनाको कह जो तू मांगेगी सो दूंगा २० यह सुनकर शर्मिष्ठा बोली कि मैं चाहतीहूं कि आप मुझे अधर्म से बचावें आपसे मेरे पुत्र होंगे तो मैं अच्छे धर्मको करूंगी २१ हे राजन्! स्त्री दास और लड़का ये तीनों अधन कहलाते हैं और इनके पास जो कुछ द्रव्यहै वह उसीका कहलाता है जिसके पास ये होवें २२ मैं देवयानीकी दासीहूं और देवयानी आपकी स्त्री है इस कारण से मैं भी आपही की हूं आपको मुझे और देवयानी दोनोंको समान प्रीतिसे रखना चाहिये २३ यह सुनकर राजाने कहा तू सत्य कहती है और ऐसा कहके उन दोनों ने एक दूसरेका आदर किया और सुखपूर्वक इच्छानुसार दोनों कामसंगम करके वहां से अपने २ घरको चले आये २४। २५ उस संगम से शर्मिष्ठाके गर्भ रहा और समयपर उसके देवताओं के कुमारों के समान पुत्र उत्पन्न हुआ २६। २७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्व्यशीतितमोऽध्यायः ८२॥

तिरासीवां अध्याय।

शर्मिष्ठाके राजा ययाति से पुत्र होनेका हाल जानकर देवयानी का क्रोधकरके अपने पिता शुक्रके पास जाना और शुक्र के शाप से राजा ययातिका वृद्ध होजाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब देवयानीने शर्मिष्ठाके पुत्र होने का हाल सुना तब उसको बड़ी चिन्ता हुई १ और शर्मिष्ठाके पास जाकर उससे पूछा कि तैंने कामके लोभसे यह क्या अधर्म किया है २ शर्मिष्ठाने कहा कि मैंने कोई अधर्म नहीं कियाहै यह पुत्र मेरे एक महात्मा वेदके जाननेवाले ऋषि

से उत्पन्न हुआहै मैंने उससे धर्मकी रीति से कामकी याचना कीथी ३। ४ देव-
यानी बोली जो यह बातहै तो अच्छाहै परन्तु उस ब्राह्मण और उसके गोत्रका
क्या नामहै ५ शर्मिष्ठा बोली कि उस ब्राह्मण के सूर्यरूपी तेजको देखकर मेरी
सामर्थ्य उससे नाम और गोत्र पूछनेकी नहीं हुई ६ देवयानी बोली हे श-
र्मिष्ठा! जो यह पुत्र तेरे ब्राह्मणसे उत्पन्न हुआहै तो मैं भी प्रसन्न हूं ७ वैशम्पायन
जी बोले हे जनमेजय! वे दोनों आपस में इसप्रकार से बातचीत करके हँसती
हुई अपने २ घरको आईं ८ राजा ययाति के फिर देवयानी से दो पुत्र यदु और
तुर्वसु नामी इन्द्र और विष्णु के समान उत्पन्न हुये ९ और द्रुह्यु अणु और
पुरुनामी तीन पुत्र शर्मिष्ठा के हुये १० इसके पीछे एकसमय देवयानी राजाके
साथ वनको गई और वहां देवताओं के लड़कोंके समान शर्मिष्ठाके पुत्रोंको
खेलते हुये देखकर अचम्भे में आगई और राजासे पूछनेलगी कि ये किसके
बालकहैं रूप और तेजमें तो आपके सदृश मालूम होते हैं ११। १२ देवयानी
ने राजासे यह कहकर उन लड़कों से पूछा कि तुम्हारा क्या नामहै किसके वंश
में तुम उत्पन्न हुयेहो और तुम्हारा बाप कौनहै १४ उन लड़कों ने राजाकी तरफ़
अंगुली उठाकर बताया कि ये हमारे पिताहैं और हमारी माका नाम शर्मिष्ठा
है १५ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! वे लड़के देवयानी से माबापका नाम
कहकर राजा के पास दौड़े परन्तु राजाने देवयानी के भयसे उनको गोदी में
नहीं लिया और वे रोतेहुये अपनी माके पास चलेगये राजाको इस बातसे बड़ी
लज्जा हुई १६। १७ इसके पीछे देवयानी ने उन बालकों का राजाकी तरफ़ प्रेम
देखकर शर्मिष्ठासे कहा कि तैंने मेरे अधीन होनेपर मुझसे निडर होकर मेरी
इच्छाके विपरीत काम क्यों किया है १८। १९ शर्मिष्ठा बोली कि मैंने तुम
से ऋषिका नाम लिया था सो सत्यहै और तुमसे इस कारण से नहीं डरी कि
मैंने कोई बात न्याय और धर्मके विपरीत नहीं की २० जबसे तुमने राजा में पति
का भाव मानाथा उसीसमय से मैंने भी राजाको अपना पति मान रक्खाथा
क्योंकि जो अपनी सखी का पति होताहै वही अपनाभी पति होताहै २१ क्या
तुम इस बात को नहीं जानतीहो तुम ब्राह्मणी और मेरी पूज्यहो और राजा
मेरा तुमसे भी अधिक पूज्यहै २२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! देव-
यानी शर्मिष्ठाकी बातको सुनकर राजासे बोली कि तुमने मेरा बड़ा अप्रिय
किया अब मैं यहां नहीं ठहरूंगी और ऐसा कहकर वह वहां से अपने पिताके

घरको चलदी राजा उसके पीछे २ उसकी शुश्रूषा करता चला परन्तु उसने न कुछ जवाव दिया न लौटी २३।२५ निदान दोनों शुक्रजी के घर पहुँचे और दोनों ने शुक्रजी को यथोचित वन्दना करी और देवयानी ने शुक्रजीसे कहा २६।२७ कि महाराज धर्मको अधर्म ने जीतलियाहै और नीचे दर्जेवाला ऊँचे दर्जेपर होगयाहै देखिये यह राजा धर्मात्मा विख्यातहै परन्तु इसने मर्यादाको छोड़कर शर्मिष्ठा से संगम किया और उसके तीन पुत्र उत्पन्न हुये और मुझ अभागी के केवल दोही पुत्र अभीतक हुये हैं २८।३० यह बात सुनकर शुक्रजी बोले हे राजन्! तुमने अपने धर्म को छोड़कर अधर्म में प्रीति करी इस कारण से तुम शीघ्र बुड्ढे होजावोगे ३१ यह सुनकर राजा ने कहा कि मैंने यह कर्म कामके वशसे नहीं किन्तु धर्मरूप ऋतुदान दियाहै ३२ हे महाराज! जो मनुष्य ऋतुदान नहीं देता है और अकेले में कामवती स्त्री के कहने पर उससे भोग नहीं करता उसको ब्रह्मवादी लोग ब्रह्महत्यारा और भ्रूणहत्या का करनेवाला कहते हैं ३३।३४इस कारणसे अधर्म के भयसे मैंने यह कार्य किया था ३५ यह सुनकर शुक्रजी बोले कि यह सब सत्य है परन्तु मेरे आधीन होनेपर तुमने मेरी आज्ञा लेकर यह कर्म नहीं किया इससे तुम मिथ्याचार करने से पापभागी हुये ३६ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! शुक्र जीके शापसे राजा उसी समय वृद्ध होगये ३७ राजाने अपना यह हाल देख-कर शुक्रजी से विनय की कि महाराज! मैं देवयानी के यौवनसे सदैव अतृप्त रहूंगा कृपाकरके ऐसा कीजिये कि जिससे यह वृद्धावस्था मुझ को न सतावे ३८ शुक्रजी ने कहा कि मेरी वाणी झूंठ नहीं होसक्ती परन्तु तुम इस अवस्था को चाहे जिसे देकर उसकी यौवनअवस्था को लेसक्ते हो ३९ राजा बोले महा-राज! जो आप आज्ञा दें तो मैं अपनी अवस्था को अपने पुत्रोंसे बदललूं ४० शुक्रजी ने कहा कि तुम हमारा ध्यान करके अपनी अवस्था को अपने पुत्रों से बदललो तुमको ऐसा करनेका पाप न होगा ४१ और जो पुत्र तुमको अपनी अवस्था देगा वह बड़ी उम्रवाला और कीर्तिमान् होगा और उसके बहुत सन्तान होंगे ४२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्र्यशीतितमोऽध्यायः ८३॥

चौरासीवां अध्याय।

राजा ययातिका अपने सबसे छोटे पुत्रको अपना बुढ़ापा देकर उसके यौवनके लेनेकी कथा॥

वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! राजा ययाति शुक्रजी से विदा होकर अपने घर आये और अपने यदुनाम बड़े पुत्रको बुलाकर बोले कि मैं शुक्रजी के शापसे वृद्ध होगयाहूं मेरे बाल श्वेत और देहीपर झुर्रियां पड़गई हैं परन्तु मेरा मन अभी विषयों के भोगसे नहीं भरा है तुम अपनी यौवन अवस्था हमें देदो और हमारा बुढ़ापा लेलो एक सहस्र वर्ष बीतने पर हम तुम्हारा यौवन तुमको देकर अपनी वृद्धावस्थाको लेलेंगे १। ४ यह सुनकर यदु ने कहा कि महाराज बुढ़ापे में भोजन पानमें बहुतसे दोष होजाते हैं डाढ़ी मूछ श्वेत सब शरीर शिथिल निर्बल और झुर्रियां पड़जाने के कारण से मनुष्य कुरूप होजाताहै और कुछ काम करने के योग्य नहीं रहता इससे मैं आपके बुढ़ापे को नहीं लेसक्ता आपके मुझसे अधिक प्यारे और भी पुत्र हैं आप उनसे यौवन लेकर अपना बुढ़ापा देदीजिये ५। ८ यह सुनकर ययाति ने उससे कहा कि तू मेरा पुत्र होकर मेरा कहना नहीं मानताहै इससे तेरी सन्तान राजा नहीं होगी९ फिर राजाने अपने तुर्वसु नाम पुत्रको बुलाकर कहा कि मेरे बुढ़ापे को लेकर अपना यौवन मुझे दे मेरा चित्त अभी भोगसे नहीं भराहै मैं एकसहस्र वर्ष पीछे तुम्हारा यौवन तुमको लौटादूंगा १०। ११ तुर्वसुने कहा कि मैं भोग बल रूप बुद्धि और प्राण के नाश करनेवाले बुढ़ापे को नहीं चाहताहूं १२ यह सुनकर ययाति ने कहा कि मेरा पुत्र होकर मेरा कहना नहीं मानता है इससे जहां तू राज्य करेगा तेरी प्रजा नाश होजायगी १३ और तू ऐसे पापी जीवोंमें जाकर राजा होगा जो मांसभक्षी पशुकी तरह कर्म करनेवाले गुरुजनोंकी स्त्रीसे रमण करनेवाले और तिर्यग्योनिके तुल्य हैं १४। १५ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! राजा ययाति अपने तुर्वसुनाम पुत्रको इस प्रकार शाप देकर शर्मिष्ठा से उत्पन्न हुये अपने द्रुह्युनाम पुत्रसे बोले कि हे पुत्र! तू मेरे बुढ़ापेको लेकर अपना यौवन मुझको दे मैं एकसहस्र वर्ष तेरे यौवन से भोगकर फिर तुझे लौटादूंगा और अपना बुढ़ापा लेलूंगा १६। १८ द्रुह्युने कहा कि बुढ़ापे में मनुष्य हाथी घोड़ा रथ और स्त्री आदिका भोग नहीं भोगसक्ता है मैं बुढ़ापा नहीं लेसक्ता हूं १९ यह सुनकर ययाति ने कहा कि तू मेरी आत्मा से उत्पन्न होकर मेरे कहने को नहीं मानता है इससे तेरी इच्छा कभी पूरी न होगी २०

और तू ऐसे देशमें विना राजा हुये रहेगा जिसमें घोड़ा हाथी गदहा गौ बैल बकरा पालकी डोली आदि किसी सवारी की गति न होगी २१। २२ फिर राजा ने अपने अणु नाम पुत्र से कहा कि तुम अपना यौवन मुझको एक सहस्र वर्ष के लिये दो मुझे अभी भोग करने की इच्छा है २३ अणुने कहा कि बूढ़ा मनुष्य अपवित्र बालकों के समान असमर्थ और दूसरे के आधीन भोजन खानेवाला होता है और समयपर अग्नि में आहुति नहीं देताहै इस से मैं आपके बुढ़ापे को नहीं लेसक्ता २४ यह सुनकर ययाति ने कहा कि तू मेरा आत्मज होकर मेरे बुढ़ापेको दोष लगाकर नहीं लेता है इस कारणसे तू वृद्ध होजायगा २५ तेरे पुत्र युवा हो होकर मरजायँगे और तू अग्निहोत्र न कर सकेगा २६ इसके पीछे राजाने अपने पुरुनाम पुत्रको बुलाकर कहा कि तू मुझको सबसे प्याराहै तू मेरे इस बुढ़ापे को जो शुक्रके शापसे होगयाहै ले और अपने यौवनको मुझे देदे एकसहस्र वर्ष पीछे मैं तेरे यौवनको तुझे लौटा दूंगा २७। २८ यह सुनकर पुरुने कहा बहुत अच्छा आप मेरे यौवनको लेकर इच्छानुसार भोग कीजिये मैं आपके कहने के अनुसार आपका बुढ़ापा लेकर रहूंगा ३०। ३२ राजा यह सुनकर बोले कि मैं तुझसे बहुत प्रसन्न हूं तेरी प्रजा अपने मनोवाञ्छित फलको पावेगी ३३ यह कहकर राजाने शुक्रजीका स्मरण करके अपने बुढ़ापेको पुरुकी देही में प्रवेश कर दिया ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुरशीतितमोऽध्यायः ८४॥

पचासीवां अध्याय।

राजा ययातिका पुत्रसे यौवन लेकर एकसहस्र वर्ष तक भोग करना उपरांत पुत्रको राज्य देकर तपस्या करने को वन में चला जाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! राजा ययाति अपने छोटे पुत्र पुरु से यौवन लेकर इच्छानुसार भोग करने लगे १ ययाति ने कोई भोग काल और धर्म के विपरीत नहीं किया २ उनके राज्यमें देवता यज्ञों से पितर श्राद्धों से दीन पुरुष दया से ब्राह्मण इच्छापूर्वक धन देने से अतिथि भोजन से और वैश्य और शूद्र धर्म से पालन करने से प्रसन्न रहे और चोरों को दण्ड देकर चोरी बन्द करदी ३। ४ ययाति ने प्रजाका पालन इन्द्रकी तुल्य बड़े धर्म से किया और नाना प्रकार के सुन्दर पदार्थों को भोगकर सहस्र वर्षके बीतने के अन्तसमय को याद किया ५। ७ और जो कुछ वर्ष बाकी रहगये थे उनमें नन्दन वनमें

जाकर विश्वाची अप्सरा से भोग किया और मेरु पर्वत पर अलकापुरी में जाकर अपने पूरे सहस्र वर्ष बिताकर राजा घरको आये और अपने पुरुनाम पुत्र से बोले ८। १० कि मैंने तेरे यौवन से सम्पूर्ण पदार्थों को अपनी इच्छाके अनुसार भोगा परन्तु यह कामदेव शांत नहीं होता है जैसे अग्नि में आहुति देने से अग्नि बढ़ती जाती है ठण्ढी नहीं होती इसी प्रकार से विषयकी इच्छाभी विषयके भोगोंको भोगने से नहीं जाती है ११। १२ पृथ्वीपर विषयकी तृष्णा किसीकी कभी पूरी नहीं होती है देखो मुझे विषयमें आसक्त हुये एक सहस्रवर्ष वीत गये परन्तु मेरी तृष्णा नहीं गई है यह तृष्णा प्राणों के नाश करनेवाली है इससे इसको अवश्य छोड़ना चाहिये जबतक मनुष्यों में विषयकी तृष्णा लगी हुई है तबतक मनुष्य दुःखसे नहीं छूटसक्ता है इस कारण से मैं इसको अब त्याग कर द्वन्द्व और ममताको छोड़कर ब्रह्ममें चित्त लगाकर वनवास करूंगा १३।१६ हे पुत्र पुरु! तुझसे मैं बहुत प्रसन्न हूं तू अब अपनी अवस्था को ले और इस राज्य को कर १७ ऐसा कहके राजाने पुरु को यौवन देदिया और अपने बुढ़ापे को ले लिया १८ इसके पीछे राजा ने पुरुको राजतिलक करनेके लिये ब्राह्मण आदिकों को बुलाया और वे लोग राजा की इच्छा को सुनकर बोले कि महाराज बड़े पुत्र के होतेहुये छोटे पुत्र को राजतिलक होना योग्य नहीं है पुरु से अभी चार भाई और बड़े हैं तिलक सब से बड़े पुत्र यदुको जो शुक्रजी का दौहित्र है होना चाहिये हमने जो कुछ बात थी आपको जतादी है करना न करना आपके आधीन है परन्तु आपको मर्यादा और धर्म को उल्लंघन नहीं करना चाहिये १६। २२ यह सुनकर राजा ययाति ने कहा कि बड़े पुत्र को राज्य न देने का कारण यह है कि पुरु से चारों बड़े पुत्रों ने मेरी बड़ी अवज्ञा की है और पुरु ने मेरी आज्ञा को पालन करके मेरी जराअवस्था को लेकर मेरा बड़ा हित किया जो पुत्र अपने माता पिता का हित नहीं करता है और उनकी आज्ञाको नहीं मानता है वह पुत्र पुत्रके तुल्य नहीं है इसके सिवाय शुक्रजीने भी मुझसे यह कहा था कि जो पुत्र तुम्हारी आज्ञा को माने वही राजा होवे इस कारण से मेरी सबसे यह प्रार्थना है कि आप लोग पुरुको राजतिलक दीजिये २३। २६ यह सुनकर पुरवासियों ने कहा कि महाराज जो पुत्र गुणवान् और माता पिताकी आज्ञा को पालन करनेवाला है वह छोटा भी सर्वथा योग्य है ३० आपके छोटे पुत्र पुरु ने आपका हित किया है और

शुक्रजी ने भी उसको राज्य देने को वरदान दिया है तो आप निस्संदेह उस को राज्य दीजिये हम लोग उसमें कुछ जवाब नहीं दे सक्के ३१ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पुरवासियों की इस बात को सुनकर राजा ने अपने छोटे पुत्र पुरुका राज्याभिषेक कराया और उसको राज्य सौंपकर आप तपस्या करने के लिये तपस्वी ब्राह्मणों के साथ वन को चला गया ३२। ३३ इसके पीछे यदु से यादव तुर्वसु से यवन द्रुह्य से भोज और अनु से म्लेच्छ उत्पन्न हुये ३४ और पुरु से पौरव वंश चला जिस वंश में हजार वर्ष राज्य करने को तुम उत्पन्न हुये ३५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पंचाशीतितमोऽध्यायः ८५॥

छियासीवां अध्याय।

राजा ययाति के वन में तपस्या करके मृत्यु पाकर स्वर्ग में जाने की कथा॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा ययाति वनमें जाकर वानप्रस्थ मुनि होगये और कन्द मूल फल आदि का भोजन करके शंसितव्रत जितेन्द्रिय रहकर थोड़े काल में मृत्यु पाकर स्वर्गवासी हुये १। २ राजा ने बहुत दिनोंतक स्वर्ग में सुखपूर्वक वास किया उपरान्त वहां से इन्द्र की आज्ञा से कर्मका फल भोगने पर पृथ्वीपर गिरा दिये गये परन्तु मैंने सुना है कि राजा पृथ्वीपर नहीं गिरे आकाश में लटके रहे और राजा वसुमाति अष्टक प्रतर्दन और राजा शिबि के साथ फिर स्वर्गवासी हुये ३। ५ यह सुनकर राजा जनमेजय ने कहा कि महाराजा ययाति सूर्य के समान तेजस्वी और कुरुओं के कुलके बढ़ानेवाले थे मैं उनके स्वर्ग और पृथ्वी के संपूर्ण चरित्र और स्वर्ग से गिराये जाने का कारण विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं ६। ९ यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले कि बहुत अच्छा मैं आपसे राजा ययाति के स्वर्ग और पृथ्वीसम्बन्धी सब पापों के हरनेवाली कथा को कहता हूं १० राजा ययाति अपने छोटे पुत्र पुरु को राज्य देकर आप आनन्दपूर्वक तपस्या करने को वन को चलेगये ११ और वहां जाकर कन्द मूल फल खाकर तपस्या करने लगे और अनेक कर्म करके देवता और पितरों को प्रसन्न किया १२ एक सहस्र वर्षतक राजा ने शंसितात्मा और क्रोधरहित रहकर वानप्रस्थ अग्नि में होम शिलावृत्ति और अतिथिभोजन आदि आचरण किये इसके पीछे तीस वर्षतक केवल जल पीकर और एक वर्षतक केवल वायु खाकर रहे और एक वर्ष

पंचाग्नि ताप छः महीने एक पैरसे खड़े रहकर राजा तपस्या के उपरान्त देह को छोड़कर स्वर्ग में गये १३ । १७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षडशीतितमोऽध्यायः ८६ ॥

सत्तासीवां अध्याय।

राजा ययातिका स्वर्गमें इन्द्रसे मिलना और इन्द्रसे अपने पुत्र पुरुकी शिक्षा करनेका वृत्तान्त कहना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! हमने सुना है कि राजा ययाति स्वर्ग में जाकर देवता आदि से पूजित होकर रहने लगे और ब्रह्मलोक और देवलोक में आनन्दपूर्वक घूमने लगे १ । २ बहुत दिनों पीछे एक दिन राजा से इन्द्रसे मिलाप हुआ जब दोनों आपस में बात करचुके तब इन्द्रने राजा से पूछा ३ कि जब तुमने अपने पुत्र पुरुको राज्य दिया तब तुमने उससे क्या कहा था ४ यह सुनकर राजा बोले कि हमने पुरुको राज्य देकर यह शिक्षा की थी कि तुम पृथ्वी मध्यदेश अर्थात् जो देश गङ्गा और यमुना के बीच में है उसका राज्य करो और प्रांतदेशों का राज्य अपने भाइयों को देदो ५ क्रोधी से क्रोध न करनेवाला अक्षमावान् से क्षमा करनेवाला पशुओंसे मनुष्य और मूर्खों से विद्वान् सदैव श्रेष्ठ होता है ६ इसकारण से तुमको चाहिये कि जो तुमको क्रोध में गाली भी दे तो तुम उसको क्षमा करो क्षमा करने से क्रोधी का संहार होजाता है और उसके पुण्यको क्षमावान् पाता है ७ दुखिया को कभी दुःख न देना न कभी किसी से कठोर वचन कहना हीन पुरुषकी सहायता से शत्रु के जीतने की इच्छा कभी न करना और ऐसी बात न कहना जिससे मनुष्यों को दुःख पहुँचे ८ जो मनुष्य दुःखदायी रूखी तीक्ष्ण और कांटों के समान दुःख देनेवाली बात किसीसे कहते हैं उनका कल्याण कभी नहीं होता है और वह दरिद्री रहते हैं ९ तुमको चाहिये कि आगे और पीछे हर समय सत्पुरुषों की संगति में रहो और उनकी चालपर चलो और जो उनके मुख से कोई मर्यादा-रहित बात निकल जावे तो उसको क्षमा करो १० जो आदमी साधु होता है वह खल के बाणरूपी वचनों को सहकर उससे बदला लेने का विचार नहीं करता है ११ मनुष्योंपर दया करना दान देना और मीठी बोली बोलना इनके समान तीनों लोक में ईश्वरकी भक्ति नहीं है इसकारण से तुमको चाहिये कि कभी कठोर वचन न बोलो १२ जो मनुष्य पूजन के योग्यहैं उनका

पूजन करना चाहिये और दान देना और कभी किसीसे कुछ न मांगना यह तुम्हारा धर्म है १३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्ताशीतितमोऽध्यायः ८७ ॥

अट्ठासीवां अध्याय।

राजा ययातिका स्वर्ग से गिरना और अष्टक महर्षिका राजा से स्वर्ग से गिरने का कारण पूछना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इन्द्रने ययाति के पुत्रको शिक्षा करने का हाल सुनकर पूछा कि तुमने सब कामों को पूरा करके घर छोड़कर तपस्या की तुम अपनी तपस्या को किसकी तपस्या की बराबर जानते हो १ यह सुनकर ययाति ने कहा कि देवता मनुष्य गन्धर्व और महर्षि आदि में मैं किसी की तपस्या को अपनी तपस्या की बराबर नहीं जानता हूं २ यह सुनकर इन्द्र ने कहा कि तुमने विना जाने अभिमान भरे हुये वचनों से सबका अपमान किया इससे तुम्हारा पुण्य क्षीण होगया अब तुम स्वर्ग से पृथ्वी पर गिराये जावोगे ३ राजा ने कहा कि जो मेरा पुण्य क्षीण होगया है तो कृपा करके मुझको ऐसे देश में डालिये जहां सज्जन पुरुष रहते हों ४ इन्द्रने कहा कि अच्छा ऐसीही जगह पर गिराये जावोगे परन्तु अब अभिमान न करना ५ इसके पीछे राजा ययाति स्वर्ग से पृथ्वी पर गिराय दिये गये उनको आकाश से पृथ्वीपर आते देखकर अष्टकनाम बड़े राजऋषिने कहा ६ कि तुम कौनहो जो इन्द्र कासा स्वरूप धारण किये हुये सूर्य के समान आकाश से चले आते हो ७ तुम्हारे इन्द्र सूर्य और विष्णु के समान प्रभाव को देखकर हम सबको आश्चर्य होता है इस कारण से हम पूछना चाहते हैं कि आपके ऊपरसे गिरने का क्या कारण है ८। ९ न हम तुमसे पूछ सक्ते हैं न तुम हमसे पूछते हो अब तुम अपने भय और मोहको छोड़कर सत्सङ्ग में आकर निर्भय रहो यहां इन्द्रभी तुमको पीड़ा नहीं देसक्ते हैं १०।११ अच्छे पुरुष सन्तों की प्रतिष्ठा सदैव करते हैं वही सन्तलोग और तुम्हारे समान सत्पुरुष यहां मौजूद हैं १२ सत्पुरुषों में आया हुआ अभ्यागत उसीप्रकार से समर्थ होजाता है जैसे तपाने में अग्नि संग्रह करने में पृथ्वी और प्रकाश करने में सूर्य हैं १३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि अष्टाशीतितमोऽध्यायः ८८ ॥

नवासीवां अध्याय।

राजा ययातिका अष्टकसे अपने स्वर्ग में रहने का वृत्तान्त और वहां से पृथ्वीपर गिरनेका कारण कहना॥

वैशम्पायनजी बोले कि राजा ययाति अष्टक की बातको सुनकर बोले कि मैं नहुष का पुत्र और पुरुका पिता राजा ययाति हूं पुण्य के क्षय होजाने से स्वर्ग से गिराया गया हूं १ मैं आप सबलोगों से उमर में बड़ा हूं इसकारण से मैंने तुमलोगों को प्रणाम नहीं किया जो मनुष्य विद्या तप और आयु में बड़े होते हैं वे द्विजन्माओं के सदैव पूज्य हैं २ यह सुनकर अष्टक बोला कि उमर में बड़ा होने से मनुष्य बड़ा नहीं होता है हां विद्यावान् और तपस्वी मनुष्य सदैव पूज्य और बड़ा होता है ३ यह सुनकर ययाति बोले कि धर्म और कर्मका नाश करनेवाला और नरक में डालनेवाला पाप है यह जानकर सन्तलोग अपने सन्तभाव को छोड़कर असन्तों के कर्मों के अनुसार काम नहीं करते हैं ४ मेरे पास पुण्यरूपी बहुतसा धन था वह अभिमान करने से जाता रहा अब मैं उसको चेष्टा करने से नहीं पासक्ता हूं मेरी समझ में ऐसाही आता है और जिसकी ऐसी समझ होती है वही विशेष ज्ञाता कहलाता है ५ संसार में बड़ा धनाढ्य वही मनुष्य है जो यज्ञ करे वेदयुक्त विद्या पढ़े और मोह छोड़कर तपस्या करके स्वर्ग को जावे ६ मनुष्य को चाहिये कि वेदों को पढ़े धन पाने से बहुत प्रसन्न न हो अहंकार न करे और प्रारब्ध को अपनी बुद्धिसे अधिक बलवान् जाने सुख और दुःख ये दोनों दैवके आधीन हैं इससे सुखमें हर्ष और दुःखमें विषाद कभी न करे सदैव एकसा रहना चाहिये ७।८ हे अष्टक! मुझको भय में मोह कभी नहीं होता है और न मुझे किसी प्रकार का मानसी दुःख है जैसा मेरे लिये विधाता ने रचा है मैं उसीमें प्रसन्न हूं १० स्वेदज, अण्डज, उद्भिज्ज, सर्प, कृमि, जलजीव, पत्थर, तृण और काष्ठ सब प्रारब्ध के क्षय होनेपर अपने आदिकारण में जा मिलते हैं ११ इस कारण से हे अष्टक! मैं सुख और दुःख दोनों को अनित्य जानकर किसी बातका सन्ताप नहीं करता हूं १२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अष्टक राजा ययाति अपने नानाको सब गुणों से युक्त जानकर बोले १३ कि आपने स्वर्ग में रहकर जिन जिन लोकों में जो जो पदार्थ भोगे हैं उनको कृपा करके कहिये आप धर्मकी बातें नारदजी के समान कहते हैं १४ यह सुनकर राजा

ययाति बोले कि हम सार्वभौम हैं हमने तपके बल से बड़े बड़े लोकों को जीता था और सहस्र वर्ष तपस्या करके स्वर्ग में वास पाया था १५ पहले हम इन्द्रपुरी में जो सौ योजन लम्बी है और जिसमें हजार द्वार हैं सहस्र वर्ष तक रहे १६ इसके पीछे हजार वर्षतक हमने प्रजापतिजीके लोकमें वास किया १७ और फिर ब्रह्माजी के लोक में बहुत दिनतक आनन्दपूर्वक बसकर अयुत वर्षतक नन्दन वन में रहे वहां हम इच्छापूर्वक अच्छे अच्छे पदार्थों को भोग करते थे और जैसी अप्सरा से चाहते थे विहार करते थे १८। १९ इसके पीछे मुझसे देवताओं के दूतने बड़े ऊंचे स्वर से कहा कि तुम पृथ्वी पर गिराये जाते हो २० तीन बार यहै शब्द मैंने सुना और फिर नीचे को गिरा दिया गया उस समय देवता मुझपर दयाकरके कहनेलगे कि यह बड़े दुःखकी बात है देखो राजा ययाति क्षीण पुण्य होने के कारण से पृथ्वीपर गिराये जाते हैं मैंने उनकी बोली को सुनकर कहा कि मुझको ऐसी जगह बतलाइये जहां सत्पुरुष रहते हों क्योंकि मैं सत्पुरुषों के बीचमें गिरना चाहताहूं २१।२२ तब देवताओं ने मुझसे आप लोगों की यज्ञभूमि का हाल कहा मैं सुनकर आपके यज्ञकी गन्ध से प्रसन्न होता हुआ और धूम्र को देखता हुआ यहां चला आया हूं २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकोननवतितमोऽध्यायः ८९ ॥

नब्बेवां अध्याय।

अष्टक का राजा ययाति से पृथ्वीपर चलेआनेका कारण पूछनेकी कथा ॥

यह सुनकर अष्टक बोला कि आप नन्दनवन में दशलाख वर्ष रहकर इस पृथ्वीपर चले आये इसका क्या कारण है १ ययातिने कहा कि जिसप्रकार इस पृथ्वीपर धनवान् मनुष्यको धनके नष्ट होजाने पर भाई बन्धु लोग छोड़ देते हैं इसी प्रकार पुण्य के क्षीण होनेपर स्वर्ग में देवता भी मनुष्यको त्याग देते हैं २ यह सुनकर अष्टक बोला कि मेरे चित्तमें बड़ा सन्देह होगया आपही इस मेरे सन्देह को दूर करसक्ते हैं स्वर्ग में पुण्य क्योंकर क्षीण होजाता है और उत्तम पुरुष कौन लोग होते हैं और पुण्यवान् मनुष्य किसके धाम को जाते हैं ३ ययाति ने कहा कि मनुष्य क्षीण पुण्य होनेपर पृथ्वीरूपी नरक में पड़ता है और संसार में गृध्र और कुत्ता आदि जीवों के भोजन के निमित्त जन्म लेकर बेटा और नाती आदि से अपने परिवार को बढ़ाता है ४ इससे

मनुष्य को दोषयुक्त और निंदित कर्म कभी न करना चाहिये ५ अष्टक ने कहा कि जो उसको गृध्रपक्षी आदि जीव खाजाते हैं तो उसकी देह किस प्रकारसे होती है और जो आपने भौमनाम नरक कहा सो क्या पृथ्वीही है ६ ययाति ने कहा कि मनुष्य अपने कर्मों के अनुसार पृथ्वी पर जन्म लेता है और जन्म लेनेपर जो कोई परलोक का विचार न करके योंही अपनी उमर को गँवाता है वही इस पृथ्वीरूपी नरक में पड़ता है ७ स्वर्ग से गिराये जाने पर साठहजार अस्सीवर्ष में जीव इस पृथ्वीपर आता है और यहां आने पर उसको बड़ी बड़ी डाढ़वाले राक्षस खाजाते हैं ८ यह सुनकर अष्टक ने कहा कि जब जीवको राक्षस खाजाते हैं फिर वह सब इन्द्रियों से युक्त देहसे गर्भ में क्योंकर वास करताहै ९ ययाति बोले कि पुरुषका जलरूप वीर्य स्त्री के रजसे मिलकर कर्मके अनुसार योनि में प्राप्त होकर गर्भ होजाता है १० वनस्पति, ओषधी, पृथ्वी, वायु, आकाश, चौपाये और द्विपद आदि सब गर्भभूतहैं अर्थात् गर्भही से उत्पन्न होते हैं ११ अष्टक ने कहा कि जीव अपने जीवरूपी शरीरसेही माता के गर्भ में रहता है या दूसरी देह धरकर वास करता है १२ और नेत्र कान आदि इन्द्रियां और ज्ञान उसको कौन देता है १३ राजा ययातिने कहा कि स्त्रीके रजस्वला होनेपर पुरुषके योनिगत वीर्यको वायु कर्म फलके अनुसार गर्भस्थान में खींच लेताहै और पांचों तन्मात्राओं से अधिकार पाकर उस गर्भको क्रम से बढ़ाता है १४ जब गर्भ बढ़कर पूरा होजाताहै तब वह उत्पन्न होकर मनुष्य कहलाता है और वह कानों से सुनता आंखों से देखता नाकसे सूंघता जीभ से स्वाद जानता त्वचा से स्पर्श करता और मनसे भेदभाव जानताहै ये सब विषय इसशरीरमें उपाधिरूप हैं १५।१६ यह सुनकर अष्टक ने कहा कि जो मनुष्य मरने के पीछे जला दिया या गाड़ दिया जाताहै या जिसको दूसरे जीव खाजाते हैं वह फिर किस आत्मा से चैतन्य होजाताहै १७ ययातिने कहा कि जीवात्मा स्वप्नके समान शब्द करके अपने पाप और पुण्य को साथ लेकर स्थूल शरीर को छोड़कर सूक्ष्म शरीर धारण करलेता है १८ इसके पीछे पुण्यात्मा जीव अच्छी योनि में और पापी जीव कीड़े पतंगे चौपाये आदि अनेक बुरी योनियों में जन्म लेते हैं १९।२० अष्टक बोला कि तप सेवा विद्या आदि कौनसा ऐसा पदार्थ है जिसके करने या जानने से मनुष्य को अच्छे लोक मिलते हैं २१ ययाति ने कहा कि

सन्त लोग स्वर्ग के जाने को ७ दरवाजे बतलाते हैं वह ये हैं तप १ दान २ शम ३ दम ४ लज्जा ५ सूधापन ६ और सब जीवों पर दया ७। २२ जो मनुष्य विद्याको पढ़कर अपने आपको बड़ा पण्डित जानता है और अपनी विद्या के बलसे दूसरे मनुष्यों के यश को नाश करता है उसकी अच्छी गति नहीं होती है और न उसकी विद्या उसको ब्रह्मफल देतीहै २३ संसारमें मनुष्य को अभय करनेवाले चार पदार्थ हैं अग्निहोत्र करना १ मौन होना २ वेद पढ़ना ३ और यज्ञ करना ४ और इन्हीं चारों को विपरीत अर्थात् अभिमान के साथ करने से बड़ा भय होता है २४ मनुष्य को चाहिये कि आदर पाकर हर्ष और निरादर से विषाद न करे क्योंकि जो सन्त हैं वे सन्तों का आदर करते हैं और असाधु में कभी साधुबुद्धि नहीं होती है २५ और अपने देने या करने या पढ़ने आदि पर यह अभिमान करना कि मैं ऐसा करता हूं बड़े भारी भयका देनेवाला है इससे मनुष्य को ऐसा कभी नहीं करना उचित है २६ जो मनुष्य मनके मार्गको रोकनेवाले पुराण के आश्रय को जानते हैं उनका दोनों लोकों में कल्याण होता है २७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि नवतितमोऽध्यायः ९० ॥

इक्यानबे का अध्याय।

अष्टकने राजा ययाति से पूछा कि महाराज गृहस्थी संन्यासी आचार्य और वानप्रस्थ के कौन २ धर्म हैं कि जिनके करने से मनुष्य ब्रह्मको प्राप्त होता है तिसकी कथा॥

इसके उपरांत राजा ययाति से अष्टक ने पूछा कि गृहस्थी, संन्यासी, आचार्य और वानप्रस्थके कौन कौन से धर्म हैं जिनके करनेसे मनुष्यको ब्रह्मकी प्राप्ति होती है १ यह सुनकर ययाति ने कहा कि आचार्य अर्थात् ब्रह्मचारी के ये धर्म हैं गुरुकी आज्ञा से पढ़ना १ विना कहे गुरुका काम करना २ सोकर गुरुसे पहले उठना ३ गुरु से पीछे सोना ४ जितेन्द्रिय रहना ५ मृदु बोलना ६ धैर्य रखना ७ सावधान रहना ८ और स्वाध्याय में प्रीति रखना ९ ब्रह्मचारी को इन कर्मों के करने से मोक्ष मिलती है २ और धर्म से लाये हुये धनसे यज्ञ करना १ दान करना २ अतिथिको भोजन देना ३ और विना दिये किसी की चीजको कभी न लेना ४ ये चारों मोक्षके देनेवाले गृहस्थी के कर्म हैं ३ और अपनेआप लाई हुई चीजको भोजन करना १ कभी पापकर्म न करना २ दूसरों को देना ३ जीवमात्र को दुःख न देना ४ वनमें बसना ५ और नियत

आहार रहना ये छः कर्म वानप्रस्थ मुनियों के हैं ४ और संन्यासी के कर्म ये हैं उद्यम करके न खाना १ गुणवान् होना २ जितेन्द्रिय रहना ३ विरक्तस्वभाव होना ४ गृहस्थ से दूर रहना ५ देवालय आदि स्थानों में सोना ६ और देशान्तरों में अकेला घूमना ७।५ मनुष्य को उचित है कि जिस समय मन में वैराग्य उत्पन्न हो उसी समय सब सुखों को छोड़कर वनमें जा बसे ६ ऐसा करने से उस मनुष्य की दश पीढ़ी पिछली और दश अगली और एक आप अर्थात् २१ पीढ़ी मुक्ति पाती हैं ७ यह सुनकर अष्टकने कहा कि मौनी और मुनि कौन२ होते हैं आप कृपा करके कहिये ८ ययाति ने कहा कि मुनि दो प्रकार के होते हैं एक तो वह जो ग्राम को पीठ देकर वन में वास करते हैं और दूसरे वह जो वनको पीठ देकर ग्राम में रहते हैं ९ अष्टक बोला कि उन दोनों के क्या लक्षण हैं और वन में रहनेवाला ग्राम को और ग्राम का बसनेवाला वन को क्योंकर पीठ देता है १० ययाति ने कहा कि ग्राम को पीठ देनेवाला मुनि वहहै जो वनमें रहता है और ग्रामकी चीजोंको नहीं खाता है ११ और वनको पीठ देकर ग्राममें बसनेवाला मुनि वह है जिसके न घर हो न आग हो न गोत्र हो और जो कोपीन और ओढ़ने को वस्त्र और प्राण जबतक रहें तबतक भोजन चाहनेकी इच्छा रक्खे और ग्राममें रहा करे १२।१३ हे अष्टक! इस लोक में सिद्धि उन्हींको मिलती है जो सब कर्म और सब कामनाओंको छोड़कर मौन होकर स्थित होजातेहैं १४ जो मुनि शुद्धचित्त शुद्धभोजन अहिंसा और शुद्धकर्म करनेवाले हैं उनका सत्कार सदैव करना चाहिये १५ और जो मुनि तपस्या करते २ ऐसा दुर्बल होगयाहो कि उसमें केवल हाड़ रहगयाहो और निर्द्वंद्व होकर मौनमें स्थितहो वह मुनि इस संसारको जीतकर परलोकको विजय करताहै १६।१७ और जो मुनि गऊकी तरह अपने मुखमें भोजन लेकर दूसरेके देने से खाताहै उसकी निश्चय मोक्ष होती है १८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकनवतितमोऽध्यायः ९१॥

बानबे का अध्याय।

राजा ययातिको अष्टक और प्रतर्दन महर्षियोंका अपने पुण्य देने और ययातिको उनके न लेनेकी कथा॥

अष्टकने फिर राजा ययाति से पूछा कि आपने दो प्रकारके मुनि कहे हैं उन दोनोंमेंसे देवताओं की सात्मता अर्थात् मुक्ति किसको पहले मिलतीहै १

यह सुनकर ययातिने कहा कि वनवासी और योगी दोनों मुक्ति पाने के अधिकारीहैं परन्तु ब्रह्मज्ञानीको जल्दी मोक्ष मिलती है योगीको देरमें मिलती है और जो योगी थोड़ी उमर होने के कारण से तपस्या करते में मरजाता है उसको मोक्ष कई जन्ममें मिलती है जो लोग झूंठे कुमति और कुकर्मीहैं उनको मोक्ष विना कर्म का फल भोगे नहीं मिलतीहै २।५ अष्टकने कहा कि तुमको दूत वनाकर किसने भेजाहै तुम वड़े तेजधारीहो कहांसे तुम आये हो कहांको जाओगे और कहां तुम्हारा स्थानहै ६ ययाति बोले कि मैं क्षीणपुण्य होनेके कारणसे स्वर्गसे भौमनरक अर्थात् पृथ्वीपर गिराया गयाहूं और इन्द्रसे वरदान पाने के कारणसे आप ऐसे सत्पुरुषों में गिरना चाहताहूं ७।८ अष्टकने कहा कि तुम भौमनरकमें मत गिरो हमको यह बतलाओ कि स्वर्ग और आकाश में हमारे कितने लोक हैं ९ ययाति बोले इस पृथ्वीपर जितने गौ घोड़ा आदि जीवहैं स्वर्गमें तुम्हारे उतनेही लोक हैं १० अष्टक ने कहा कि तुम पृथ्वीपर मत गिरो मैं तुमको अपना पुण्य देताहूं उस पुण्यसे तुम हमारे लोकों में जाकर आनन्द करो ११ यह सुनकर ययातिने कहा कि हमने ब्राह्मणों को सदैव दान दियाहै हमारा धर्म दान लेनेका नहीं है यह केवल ब्राह्मण का धर्म है इससे हम आपके दिये हुये पुण्य को नहीं ले सक्ते हैं १२।१३ इस बात को सुनकर अष्टकके पास बैठा हुआ दूसरा सत्पुरुष बोला कि मैं प्रतर्दन हूं आपसे पूछताहूं कि स्वर्ग और आकाशमें मेरे कितने लोकहैं १४ ययातिने कहा कि हे प्रतर्दन! स्वर्गमें तुम्हारे बहुतसे लोकहैं और सब सुखदायी तेजयुक्त और शोकके दूर करनेवाले हैं मैं एक २ में सात २ दिनभी रहकर उनका पार नहीं पासक्ताहूं १५ यह सुनकर प्रतर्दनने कहा कि अच्छा हम आपको अपना पुण्य देते हैं आप पृथ्वीपर न गिरिये और हमारा पुण्य लेकर हमारे लोकों को आनन्दपूर्वक भोगिये १६ ययाति बोले कि बराबर तेजधारी राजाओंको एक दूसरेसे विपत्ति पड़नेपरभी पुण्य आदि कोई वस्तु न मांगनी चाहिये १७ जो धर्मात्मा धर्म और यश की देनेवाली राहपर चलनेवाले हैं उनको कृपणता छोड़कर धर्मही करना उचितहै १८ इसके सिवाय जो कर्म किसीने नहीं किया वह मैं क्योंकर करसक्ता हूं इस बातको सुनकर राजा ययाति से वसुमान नाम राजा ने कहा १९ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विनवतितमोऽध्यायः ९२ ॥

तिरानवे का अध्याय।

वसुमान और शिबिनाम महर्षियोंका राजा ययातिको अपना पुण्य देना और राजा ययातिका उसको न लेना और उन सबके साथ रथपर बैठकर स्वर्गको जाना ॥

वसुमानने राजा ययाति से पूछा कि कहो स्वर्ग और आकाश में हमारे कितने लोकहैं १ ययाति बोले कि पृथ्वी आकाश दिशा और विदिशा आदि जितने संसार में लोकहैं जिनमें सूर्यका प्रकाश होता है उतनेही तुम्हारे लोक स्वर्गमें हैं और तुम्हारी बाट देखरहे हैं २ वसुमान यह सुनकर बोले हे ययाति! तुम पृथ्वीपर मत गिरो जो तुम दानमें दूषण जानतेहो तो हम अपने इन सब लोकोंको तुमको एक तिनके के बदले में मोल बेचते हैं तुम उनको लेकर सुखसे उनमें बसो ३ ययातिने कहा कि मैं ऐसा झूंठा लेन देन नहीं कर सक्ताहूं जिसको आजतक किसीने नहीं किया है वसुमान बोला जो तुमको मोल लेना अच्छा नहीं जानपड़ता है तो हम तुमको उन लोकोंको योंहीं देतेहैं तुम उनको लेलो हम उन लोकोंमें नहीं जावेंगे ४। ५ इसी अवसरमें शिबिनाम राजाने भी ययाति से पूछा कि स्वर्गादि में हमारे कितने लोकहैं ६ ययातिने कहा कि तुमने किसी मांगतेहुये साधुका अपमान मन और वाणी से भी नहीं कियाहै इस कारण से तुम्हारे बहुत से बड़े २ लोकहैं ७ यह सुनकर शिबिने कहा कि आपको मोल लेना नहीं रुचता है तो आप हमारे लोकों को वैसेही ग्रहण कीजिये हम उन लोकोंमें नहीं जायँगे ८ ययातिने कहा कि हे शिबि! तुम्हारा प्रभाव इंद्रके समानहै इससे स्वर्गमें तुम्हारे लोक भी अनन्त हैं परन्तु मेरी इच्छा दूसरेके दियेहुये लोकमें रहनेकी नहींहै और न मैं दूसरेकी दी हुई वस्तुको अच्छा जानताहूं ९ यह सुनकर अष्टक बोला कि जो तुम एक का पुण्य नहीं लेतेहो तो हमसब तुमको अपना अपना पुण्य देते हैं तुम हमारे लोकों में जाकर रहो और हमसब पृथ्वीपर रहेंगे १० ययाति बोले कि आपलोग मेरेलिये वह यत्न कीजिये जो मेरे योग्यहो क्योंकि मैं ऐसे कामको कभी नहीं करसक्ता जिसको कभी किसी ने न किया हो ११ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसी अवसर में स्वर्ग से पांच रथ सुवर्ण के बने हुये अत्यन्त चमकदार आतेहुये देख पड़े उनको देखकर अष्टक ने ययाति से पूछा कि ये किसके रथ हैं १२ ययाति ने कहा कि अग्नि के समान ये पांचों रथ आप लोगों को

लेने के लिये स्वर्ग से आयेहैं १३ यह सुनकर अष्टकने कहा कि इनपर चढ़कर आप स्वर्ग को जाइये हम सब भी समयके आने पर आमिलेंगे १४ ययातिने कहा कि हमको देवलोक का रास्ता दिखलाई देता है इससे ऐसा जानपड़ता है कि हम सब स्वर्ग को एकही साथ चलेंगे १५ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे वे पांचों उन पांचों रथों पर चढ़कर अपने तेज से पृथ्वी और आकाश में प्रकाश करते हुये स्वर्ग को चले गये १६ राह में अष्टक ने राजा ययाति से कहा कि मैं जानता था कि सब से आगे मेरा रथ चलेगा क्योंकि इन्द्र मेरे मित्र हैं परन्तु देखो उशीनर का बेटा राजा शिवि हम सबके आगे रथ पर चढ़ा हुआ जा रहा है १७ ययाति बोले कि राजा शिवि के तुम से आगे जाने का कारण यह है कि वह दानी तपस्वी सत्यवादी धर्मात्मा लज्जावान् लक्ष्मीवान् सौम्य और प्रजापालन की इच्छा रखनेवाला है और उसने जो कुछ धन पाया सब देवताओं के नामपर देदिया १८। १९ इसके उपरांत अष्टक ने फिर राजा ययाति से पूछा कि तुम सत्य २ कहो तुम कौनहो किसके पुत्र हो कहां से आये हो और आपका घर कहां है आपने जो जो काम किये हैं वह दूसरा नहीं कर सक्ता है २० यह सुनकर ययाति ने कहा कि मैं नहुष का पुत्र और पुरुका पिताहूं और दूसरी गुप्तबात यह है कि मैं तुम्हारा नाना हूं २१ हमने सब पृथ्वी को जीतकर राज्य किया ब्राह्मणों को छादन दिये १०१ अश्वमेध यज्ञ किये २२ और सुवर्ण सहित सब पृथ्वी का दान देकर सौ अर्ब गोदान किये २३ हम झूठ कभी नहीं बोलते हैं हमारा सत्य पृथ्वी और स्वर्गमें अग्नि के समान प्रकाश कर रहाहै सत्यही संतों को प्यारा है २४ हे अष्टक! सब देव मुनि आदि सत्यसेही पूजित हैं २५ हम पांचों की कथाको जो कोई ब्राह्मणों के बीच में कहेगा वह हमारे लोक को पहुँचेगा २६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा ययाति स्वर्ग से गिरकर अपने दौहित्रोंसे तारेहुये फिर स्वर्गको गये २७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रिणवतितमोऽध्यायः ९३॥

चौरानवे का अध्याय।

वैशम्पायनजीका राजा जनमेजयसे पुरुवंशके राजाओं की नामसहित कथा कहना॥

जनमेजय बोले हे वैशंपायनजी! अब कृपा करके पुरुवंशके उन राजाओं की कथाका वर्णन कीजिये जो वंश के चलानेवाले सत्यवादी धर्मात्मा और

दुःख के हरनेवाले हुये १।३ वैशंपायनजी बोले बहुत अच्छा सुनिये में कहताहूं ४ राजा पुरु के तीन पुत्र बड़े महारथी पौष्टिनाम स्त्रीसे उत्पन्न हुये एकका नाम प्रवीर दूसरे का नाम ईश्वर और तीसरे का नाम रौद्राश्व था ५ इन तीनों में वंशका चलानेवाला प्रवीर हुआ और उसके शूरसेनी नाम रानी से मनस्युनाम पुत्र हुआ जिसने चारों समुद्रतक पृथ्वी की रक्षा की ६ मनस्यु के सौवीरी स्त्री से तीन पुत्र शक्त, संहनन और वाग्मी नाम और मिश्रकेशीरानी से अन्वग्भानु आदि पुत्र बड़े शूरवीर उत्पन्न हुये ७।८ और रौद्राश्व के अप्सराओं से दश पुत्र बड़े धनुर्धारी शूरवीर ज्ञानी और यज्ञके करने वाले उत्पन्न हुये उनके नाम ये हैं ऋचेयु, कक्षेयु, कृकणेयु ९।१० स्थंडिलेयु, वनेयु, जलेयु, तेजेयु, सत्येयु ११ धर्मेयु और सन्नतेयु और इनमें सब से बड़े ऋचेयु के अनाधृष्टि नामी पुत्र बड़ा पराक्रमी पृथ्वी पर हुआ जैसे स्वर्ग में इन्द्रहैं १२ अनाधृष्टि के मतिनार नाम पुत्र बड़ा धर्मात्मा हुआ जिसने अश्वमेध और राजसूय यज्ञ किये १३ और मतिनार के चार पुत्र बड़े पराक्रमी हुये उनके नाम ये हैं तंसु १ महान् २ अतिरथ ३ और द्रुह्यु ४।१४ इनमें से पौरव वंशको चलानेवाला तंसु हुआ १५ और उसके ईलिननाम पुत्र सब पृथ्वीका जीतनेवाला उत्पन्न हुआ १६ ईलिनका विवाह रथंतरी नाम स्त्रीसे हुआ और उसमें पांच पुत्र दुष्यंत १ शूर २ भीम ३ प्रवसु ४ और वसु ५ नाम उत्पन्न हुये इन सबमें दुष्यंत सबसे श्रेष्ठ हुआ १७।१८ उसके शकुन्तला स्त्रीसे भरतनामी पु बड़ा महात्मा और वंश चलानेवाला उत्पन्न हुआ १९ भरत ने तीन विवाह किये और तीनों से तीन २ पुत्र उत्पन्न हुये परंतु उनमें कोई पुत्र राजाके समान न था इस कारण से भरतजी ने उनको अङ्गीकार नहीं किया इसपर उनकी माताओंने उन पुत्रोंको मारडाला २०।२१ इसपीछे भरत ने पुत्र होने के निमित्त भरद्वाज से यज्ञ कराया और उस यज्ञके प्रभाव से भरत के भुमन्यु नाम पुत्र हुआ २२ उसको भरतने अपने अनुरूप समझकर पुत्र माना और सयाना होनेपर उसका राज्याभिषेक करादिया २३ भुमन्यु के दिवरथनामी पुत्र उत्पन्न हुआ और दिवरथ के पांच पुत्र पुष्करिणी स्त्रीसे उत्पन्न हुये उनके नाम येहैं सुहोत्र, सुहोता, सुहवि, सुयजु और ऋचीक २४ इनमें से सुहोत्र जो सबसे बड़ाथा राजगद्दीपर बैठा और उसने राजसूय और अश्वमेध आदि यज्ञों को करके सब पृथ्वीका राज्य हाथी घोड़ा

आदि बड़े वैभव से धर्मपूर्वक किया और उसके राज्यमें मनुष्य और खेती आदि सबकी वढ़ोतरी रही २५।२६ उसके ऐक्ष्वाकी रानीसे तीनपुत्र अजमीढ़ सुमीढ़ और पुरुमीढ़नामी उत्पन्न हुये ३० इन तीनोंमें राजा अजमीढ़ बड़ा श्रेष्ठ हुआ और उसका तीन रानियों से विवाह हुआ उनके नाम ये हैं धूमिनी, नीली और केशिनी इनमें से धूमिनी के ऋक्ष नीली के दुष्यंत और परमेष्ठी और केशिनीके जह्नु, व्रजन और रूपिण नाम पुत्र उत्पन्न हुये ३१।३२ इनमें से दुष्यंत और परमेष्ठीके वंशसे सब पंजाबी हुये और जह्नुके कुशिक और व्रजन और रूपिणके बड़े भाई ऋक्षके संवर्ण नाम पुत्र उत्पन्न हुये ३३।३४ संवर्ण के राज्यमें प्रजा बहुत क्षय होगई और वर्षा न होनेके कारण से भूख और अनेक व्याधियों से दुःखित होकर जहां तहां भागगई ३५।३६ इसी अवसरमें पंजाबके राजाओं ने दश अक्षौहिणी सेना लेकर संवर्णपर चढ़ाई की और उसको युद्धमें जीतकर उसका राज्य अपने राज्यमें मिला लिया ३७।३८ राजा संवर्ण वहां से भयभीत होकर अपनी रानी मंत्रीपुत्र और दूसरे सुहृदों को लेकर भागा ३९ और सिंधुनदी के जंगल में पहाड़के पास जाकर बसने लगा ४० एक हजार वर्षतक राजा संवर्ण वहां उसी तरह रहा किया उपरांत वहां एक दिन वशिष्ठजी गये उनको देखकर संवर्ण ने बड़े आदरसे उनको बैठाया और पाद्य अर्घ्यआदिसे पूजन करके विनय की कि महाराज मैं राज्य पाने के अर्थ यत्न किया चाहताहूं आप मेरे पुरोहित हूजिये ४१।४४ वशिष्ठजी ने पुरोहित होना स्वीकार किया और राजा संवर्ण को साम्राज्य अभिषेक किया ४५ इसके पीछे राजा संवर्ण ने सब क्षत्रियों को जीतकर अपने अधीन किया और अपने राज्यको पाकर बड़े २ दक्षिणावाले यज्ञ किये ४६।४७ संवर्ण के तपतीनाम रानी से जो सूर्यकी कन्याथी कुरुनाम बड़ा धर्मात्मा पुत्र उत्पन्न हुआ ४८ उसके नामसे कुरुजांगल देश विख्यात हुआ और उसने अपनी तपस्यासे कुरुक्षेत्रको पवित्र किया ४९ उसके वाहिनी रानी से पांच पुत्र उत्पन्नहुये अविक्षित १ अविष्यंत २ चैत्ररथ ३ मुनि ४ और जनमेजय ५।५० इनमें से अविक्षितके आठ पुत्र हुये परीक्षित १ शबलाश्व २ आदिराज ३ विराज ४ शाल्मलि ५ उच्चैश्श्रवा ६ भंगकार ७ और जितारि ८।५१ इनके बहुतसे वंश हुये परीक्षितके सात पुत्र हुये जनमेजय १ कक्षसेन २ उग्रसेन ३ चित्रसेन ४ इन्द्रसेन ५ सुषेण ६ और भीमसेन ७ और ये सातों बड़े वीर और

धर्मात्माथे ५२।५३ जनमेजयके आठ पुत्र हुये धृतराष्ट्र १ पंडु २ वाह्लीक ३ निषध ४ जाम्बूनद ५ कुंडोदर ६ पदाति ७ और वसाति ८ ये आठों बड़े पराक्रमी और मनुष्योंके हित करनेवालेथे ५४।५६ इनमेंसे धृतराष्ट्र ने राजगद्दी पाई और उसके ११ पुत्र हुये कुंडिक १ हस्ती २ वितर्क ३ क्राथ ४ कुण्डिन ५ हविःश्रवा ६ इन्द्राभ ७ भुमन्यु ८ प्रतीप ९ धर्मनेत्र १० और सुनेत्र ११ इन सबों में तीनों पिछले पुत्र पृथ्वीपर विख्यात हैं और उन तीनों में भी प्रतीप बड़ा अनूप राजा हुआ ५७।५९ उसके तीन पुत्र बड़े महारथी हुये देवापि १ शांतनु २ और वाह्लीक ३। ६० इनमें से देवापिने धर्मकी इच्छासे वनवास किया और शांतनु और वाह्लीक राजा हुये ६१ इतनी कथा सुनाकर वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसप्रकार भरतवंश में देवऋषियों के तुल्य बड़े २ पराक्रमी अनेक राजा उत्पन्न हुये ६२।६३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुर्णवतितमोऽध्यायः ९४॥

पंचानवे का अध्याय।

वैशंपायनजीका राजा जनमेजय से कुरुवंश की कथा दक्षसे लेकर राजा जनमेजय के पौत्र होनेतक वर्णन करना॥

राजा जनमेजय बोले हे वैशंपायनजी ! मैंने संपूर्ण पहिले मनुष्योंकी संक्षेप कथा सुनी परंतु उन महात्माओंकी अमृतरूपी कथाओंको सुनने से मेरा चित्त नहीं भरता है इस कारण से मैं चाहताहूं कि कृपा करके आप उन सबोंकी कथा विस्तारपूर्वक मनुआदि प्रजापति से लेकर अबतक वर्णन कीजिये १।५ यह सुनकर वैशंपायनजी बोले कि हमने यह कथा जिस प्रकारसे व्यासजी महाराजसे सुनी है उसी प्रकारसे तुमको सुनाते हैं सुनो ६ दक्षके अदिति, अदितिके सूर्य, सूर्यके इला, इलाके पुरूरवा, पुरूरवाके आयु, आयुके नहुष और नहुषके ययाति उत्पन्न हुये और ययातिका दो स्त्रियों से विवाह हुआ ७ एकका नाम देवयानीथा जो शुक्रजीकी बेटी थी और दूसरीका नाम शर्मिष्ठा था जो वृषपर्वा दैत्यकी पुत्री थी ८ देवयानीसे यदु और तुर्वसु नाम और शर्मिष्ठासे द्रुह्य अनु और पुरुनाम पुत्र उत्पन्नहुये ९ यदुसे यदुवंश और पुरुसे पौरववंश उत्पन्न हुआ १० पुरुकी स्त्रीका नाम कौशल्याथा उसके जनमेजयनाम पुत्र उत्पन्नहुआ और वह पुत्र तीन अश्वमेध और एक विश्वजित् यज्ञोंको करके वनको चला गया ११ उसने अपना विवाह अनन्तानाम माधवीकन्यासे कियाथा और उससे

उसके प्राचिन्वान्नाम पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम प्राचिन्वान् होनेका यह कारणहै कि उसने पूर्वकी दिशाको उस स्थानतक जयकियाथा जहां सूर्य उदय होते हैं १२ प्राचिन्वान्का विवाह अश्मकी नाम यादवकुलकी कन्या से हुआ और उससे उसके संयातिनाम पुत्र उत्पन्न हुआ १३ संयातिने अपना विवाह वारांगीनाम ६ दृषद्वैतनामकी बेटीसे किया और उससे उसके अहंयाति नाम पुत्र उत्पन्न हुआ १४ अहंयातिका विवाह कृतवीर्यकी बेटी भानुमती से हुआ और उसके सार्वभौमनाम पुत्र हुआ १५ सार्वभौमने कैकय देशमें जाकर सुनंदा नाम उस देशकी राजकन्या को स्वयंवरमें जीता और उससे उसके जयत्सेन नाम पुत्र उत्पन्न हुआ १६ जयत्सेनका विवाह राजा विदर्भकी बेटी सुश्रवा नामसे हुआ उसके अवाचीन नाम पुत्र उत्पन्न हुआ १७ अवाचीनने राजा विदर्भकी दूसरी बेटी मर्यादानामसे विवाह किया उसके अरिहः नाम पुत्र हुआ १८ अरिहः ने अपना विवाह अंगीनाम रानीसे किया उसके महाभौमनाम बेटा उत्पन्न हुआ १९ महाभौम का विवाह प्रसेनजितकी बेटी सुयज्ञानामसे हुआ उसके अयुतनाम पुत्र उत्पन्न हुआ और सौ पुरुषमेध यज्ञ करने के कारण से उसका नाम संसारमें अयुतनामी विख्यात हुआ २० उसने अपना विवाह कामा-नाम पृथुश्रवा की बेटीसे किया उसके अक्रोधन नाम पुत्र हुआ २१ इस अक्रो-धन को राजा कलिंग की बेटी करंभानाम विवाहीगई उसके देवातिथि नाम पुत्र हुआ २२ देवातिथि को राजा विदेह की बेटी मर्यादा विवाहीगई उसके अ-रिहःनाम पुत्र उत्पन्न हुआ २३ अरिहःने अपना विवाह राजा अङ्गकी सुदेवानाम कन्या से किया उसके ऋक्षनाम पुत्र हुआ २४ ऋक्षका विवाह तक्षक की ज्वालानाम बेटीसे हुआ उसके मतिनारनाम पुत्र हुआ २५ इस मतिनार ने सरस्वती नदी के किनारे बारह वर्ष में समाप्त होनेवाला सत्रयज्ञ किया और उस यज्ञके पूरे होने पर सरस्वती ने आकर उससे अपना विवाह किया उससे तंसु नाम पुत्र हुआ २६ और तंसु के कालिंगी रानी से ईलिन नाम पुत्र हुआ २७ ईलिन ने अपना विवाह रथंतरी स्त्री से किया और उसके दुष्यंत आदि पांच पुत्र उत्पन्न हुये २८ दुष्यंत का विवाह विश्वामित्र की शकुंतला नाम बेटीसे हुआ और उसके भरतनाम बेटा हुआ २९ इसका नाम भरत होने का कारण यह है कि राजा दुष्यंतको आकाशवाणी हुईथी कि माता केवल क्षेत्रहै पुत्र बापकाही होताहै शकुंतला सच कहती है उसका तू अपमान मत

कर अपने पुत्रको पाल पुत्र तेराही है पुत्र पिताको यमलोक से छुड़ाता है सो पुत्रके पालन की आज्ञा आकाशवाणी से मिलने के कारण से उसका नाम भरत हुआ और काशीके राजाकी सुनंदानाम कन्यासे विवाह होकर उसके भुमन्यु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ३०।३२ भुमन्युका विवाह राजा दशार्हकी विजया नाम पुत्री से हुआ उसके सुहोत्र नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ३३ सुहोत्रने अपना विवाह सुवर्णानाम राजा इक्ष्वाकुकी कन्या से किया उसके हस्तीनाम पुत्र हुआ जिसके नाम से हस्तिनापुर नगर विख्यातहै ३४ हस्तीका विवाह राजा त्रिगर्त की कन्या यशोधरा से हुआ उसके विकुंठननाम पुत्र उत्पन्न हुआ ३५ विकुंठन ने सुदेवानाम राजा दशार्ह की बेटीसे किया और उसके अजमीढ़ नाम पुत्र हुआ ३६ अजमीढ़के चार रानीथीं कैकेयि १ गांधारी २ विशाला ३ और ऋक्षा ४ उन चारों से राजा अजमीढ़ के १२४ पुत्र अपना २ अलग २ वंश चलानेवाले उत्पन्न हुये परन्तु उनमें पौरववंश का चलानेवाला संवर्ण हुआ ३७ उसका विवाह तपती नाम सूर्य की कन्या से हुआ उससे उसके कुरुनाम पुत्र उत्पन्न हुआ ३८ राजा कुरुका विवाह राजा दशार्ह की बेटी शुभांगीनाम से हुआ उसके विदूरनाम पुत्र हुआ ३९ विदूरका विवाह माधवी संप्रिया से हुआ उसके अनुश्वानाम पुत्र हुआ ४० अनुश्वा को मगध देश के राजा की बेटी अमृता नाम विवाही गई उससे उसके परीक्षित नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ४१ परीक्षितके बाहुदासुयशनाम रानी थी उससे भीमसेन नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ४२ भीमसेन का विवाह कुमारीनाम कैकयदेशकी बेटीसे हुआ उसके प्रतिश्रवा नाम पुत्र हुआ ४३ प्रतिश्रवाके प्रतीपनाम पुत्र हुआ प्रतीप के शैब्या और सुनंदानाम दो रानियांथीं उन दोनों के देवापि १ शांतनु २ और बाह्लीक नाम तीन पुत्र उत्पन्न हुये ४४ इनमें से देवापि और बाह्लीक वनवासी हुये और शांतनु राजा हुआ ४५ इस तीसरे का नाम शांतनु होने का यह कारण है कि वह जिसपर अपना हाथ फेर देता था वह जवान होजाता था और सुख भोगताथा ४६ राजा शांतनुका विवाह भागीरथी गंगा से हुआ उससे उनके देवव्रत नाम पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम पीछेसे भीष्म विख्यात हुआ ४७ भीष्मने अपने पिताका प्रिय करने को अपना विवाह न करने की प्रतिज्ञा की और अपने पिताका विवाह सत्यवती से करवाया जिसको काली और योजनगंधा भी कहतेहैं ४८ यह सत्यवती वहीथी जिसके पहले

पराशर मुनिसे व्यासजी उत्पन्न हुयेथे राजा शांतनु से विवाह होने के पीछे उसके दो पुत्र उत्पन्न हुये ४९ एकका नाम विचित्रवीर्य और दूसरे का नाम चित्रांगद था इनमें से चित्रांगद तो बालापनमेंही गंधर्वोंके हाथसे मारागया और विचित्रवीर्य राजा हुआ ५० उसका विवाह राजा काशीकी अंबिका और अंबालिका नाम बेटियों से हुआ ५१ परंतु विचित्रवीर्य विना संतान के मर गया उसके मरनेपर उसकी माता सत्यवती ने वंशनाश होनेके प्रयोजन से व्यासजी का स्मरण किया और व्यासजी स्मरण करतेही वहां आगये और सत्यवतीसे बोले कि मुझको क्यों बुलायाहै ५२। ५३ सत्यवती बोली कि तुम्हारा भाई विचित्रवीर्य अपुत्र मरगया है तुम उसके संतान उत्पन्न करो ५४ व्यास जीने तथास्तु कहकर विचित्रवीर्य की स्त्रियों के धृतराष्ट्र १ पांडु २ और विदुर ३ पुत्र उत्पन्न किये ५५ इनमेंसे धृतराष्ट्र के गांधारी रानीसे सौ पुत्र उत्पन्न हुये ५६ जिनमें ४ मुख्य दुर्योधन १ दुश्शासन २ विकर्ण ३ और चित्रसेन ४ थे ५७ और पांडुके दो रानियां थीं कुंती १ और माद्री २। ५८ एक समय राजा पाण्डु वनमें अहेर खेलनेको गया वहां उसने अज्ञान से एक मृगरूप मुनि को अपनी मृगीरूप स्त्रीसे भोग करते में बाणसे मारा और वह मुनि मरतेसमय राजासे बोला कि तुमने मुझको भोगकी इच्छासे तृप्त न होने दिया और मार डाला इस कारण से तुमभी भोग करतेही में मरजाओगे तुम्हारी भी भोगकी इच्छा पूरी न होगी राजा उस शाप को सुनकर बड़ा दुःखी हुआ और अपनी कुन्ती नाम रानीसे बोला कि मैंने अपनी चपलता से ऐसा शाप पाया है अब मुझसे तुम्हारे पुत्र नहीं होसक्ता है और विना पुत्रके मनुष्य को स्वर्गमें अच्छे लोक नहीं मिलते हैं इससे कुछ ऐसा उपाय करो जिससे मेरे पुत्र होय यह सुनकर कुंती बोली कि बहुत अच्छा और अपने मंत्रसे धर्मराज वायु और इन्द्र को बुलाकर धर्म से युधिष्ठिर वायु से भीमसेन और इन्द्र से अर्जुन नाम पुत्रों को उत्पन्न किया ५९। ६१ राजा पांडु यह देखकर बहुत प्रसन्न हुये और कुंती से कहा कि तेरी सवति माद्री विना पुत्रके रही जाती है इसके भी पुत्र होनेका उपाय करो यह सुनकर कुन्ती ने बहुत अच्छा कहकर माद्रीको भी वह मंत्र दे-दिया और उसने अश्विनीकुमारों को मंत्र से बुलाकर नकुल और सहदेवनाम दो पुत्र उत्पन्न किये ६२। ६३ इसके पीछे एक दिन राजा पांडु अपनी माद्री स्त्री को शृंगार किये हुये देखकर कामदेव के वश में होगये और भोगकी इच्छा

से उसको स्पर्श करते ही मरगये ६४ माद्री राजाके साथ सती होगई और कुंती से कहगई कि मेरे दोनों पुत्रों को भी तुम्हीं पालन करना ६५ इसके पीछे उस वन के तपस्वी लोग राजा पांडु के उन पांचों पुत्र और कुंती को लेकर हस्तिनापुर को आये और सब पुत्रों को भीष्म विदुर आदि को सौंपकर अन्तर्धान होगये ६६ उनके चलेजाने पर देवताओं ने पांडवों पर फूलोंकी वर्षा की और दुन्दुभी बजाई ६७ फिर पांडवों ने अपने पिताका मरण सबको सुनाकर उसका और्ध्वदैहिक श्राद्ध आदि किया और वहां रहने लगे परन्तु उनके रहने को दुर्योधन बालकपनही मे नहीं देखसका ६८ और निकालने के अनेक उपाय किये परन्तु कोई उपाय न चलसका ६९ तब दुर्योधन ने छल करके पाण्डवों को धृतराष्ट्र से आज्ञा दिवाकर वारणावर्त नगर को भिजवाया और वे लोग विदुरजी के मंत्रसे लाखके घरको जलाकर आप बचकर वहां से चल दिये ७०।७१ राह में एक हिडम्ब नाम दैत्य मिला पाण्डवों ने उसे मारडाला और वहां से चलकर एक चक्रापुरी नाम नगर में पहुँचे ७२ वहां कुछ काल रहकर बकनाम राक्षस को मारकर पाञ्चालनगर को गये ७३ वहां पर पाण्डवों का द्रौपदी से विवाह हुआ और विवाह होनेपर अपने देश को आये ७४ और उन पांचों पाण्डवों के द्रौपदी से एक एक पुत्र उत्पन्न हुआ नाम उनके ये हैं युधिष्ठिर से प्रतिविन्ध्य १ भीमसेन से सुतसोम २ अर्जुन से श्रुतकीर्ति ३ नकुल से शतानीक ४ और सहदेव से श्रुतकर्मा ५ । ७५ इसके पीछे राजा युधिष्ठिर ने राजा शैल्य की कन्या को स्वयंवर में विवाहा उससे यौधेय नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ७६ भीमसेन ने राजा काशी की बलन्धरा नाम कन्या से अपना विवाह किया उसके सर्वगन्धनाम पुत्र उत्पन्न हुआ ७७ और अर्जुन ने श्रीकृष्ण की बहिन सुभद्रा से अपना विवाह किया उससे उसके अभिमन्यु नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ७८ नकुल का विवाह राजा चंदेरी की करेणुमती नाम कन्या से हुआ उससे उसके निरमित्र नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ७९ सहदेव ने अपना विवाह मद्रदेश के मद्रराज नाम राजाकी विजया नाम पुत्री से किया उसके सुहोत्र नाम पुत्र हुआ ८० और इन सबसे पहले भीमसेन के हिडम्बा राक्षसी से घटोत्कच नाम पुत्र उत्पन्न हुआ ८१ हे राजा जनमेजय! पाण्डवों के उक्त ११ पुत्र उत्पन्न हुये परन्तु उनमें वंश का चलानेवाला अभिमन्यु ही हुआ ८२ उसका विवाह राजा विराट की कन्या उत्तरा नाम से हुआ उसके अश्वत्थामा

के अस्त्रकी अग्नि मे मरा हुआ छःमहीने का बालक उत्पन्न हुआ उस समय श्रीकृष्णजी ने कहा कि मैं इसको सजीव करदूंगा इसको उठालो उनके कहने से कुन्ती ने उस मरेहुये बालकको गोदमें उठालिया और अपने तेज से सजीव करदिया और सब कुल के क्षय होनेपर उत्पन्न होने के कारण उसका नाम परीक्षित रक्खा ८३। ८४ परीक्षित का विवाह माद्रवती तुम्हारी माता से हुआ उसके तुम जनमेजय पुत्र हुये ८५ तुम्हारा विवाह वपुष्टमारानी से हुआ उससे तुम्हारे शतानीक और शंकुकर्ण नाम दो पुत्र उत्पन्न हुये तुमने शतानीक का विवाह वैदेही से किया उससे तुम्हारे अश्वमेधदत्त नाम पौत्र उत्पन्न हुआ है ८६ इतनी कथा सुनाकर वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! हमने तुमको यह कुरुपाण्डवों के वंशकी पूरी पूरी कथा सुनाई यह कथा परम पवित्र और ब्राह्मण आदि चारों वर्णों के सुनने के योग्य है ८७ जो कोई मनुष्य इस पुण्य इतिहास को सुनेगा वह स्वर्ग पावेगा और सबका मान्य होगा ८८। ८९ क्योंकि यह व्यासजीका बनाया हुआ महाभारत चारों वेदोंके समान पुण्य देनेवाला है और इसके सुनने से मनुष्य को धन यश और आयु मिलती है ९० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पञ्चनवतितमोऽध्यायः ९५ ॥

छियानवे का अध्याय।

राजा महाभिष को गंगाजी को नंगी देखने के कारण ब्रह्माजी का शाप देना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इक्ष्वाकुके वंशमें एक महाभिष नाम राजा बड़ा सत्यवादी और पराक्रमी हुआ था १ उसने सहस्र अश्वमेधयज्ञ करके इन्द्रको बहुत प्रसन्न किया और मरने पर स्वर्गलोक पाकर वहां सुखपूर्वक रहने लगा २ एक समय वह राजा ब्रह्माजी की उस सभा में जहां सब देवता और बड़े २ राजर्षि ब्रह्मर्षि बैठेहुये थे बैठा हुआ था ३ उस समय वहां गंगानदी आई और उसका अति उज्ज्वल वस्त्र हवासे उड़गया और वह नंगी होगई ४ उसको इसप्रकार से देखकर सब देवताओं ने अपनी गर्दन झुकाली परन्तु राजा महाभिष गंगाजी को नंगी देखता रहा ५ ब्रह्माजी ने यह देखकर उसको शाप दिया कि तू पृथ्वी पर जन्म लेकर मनुष्ययोनि पावेगा और देह छोड़नेपर फिर इसलोक में आवेगा ६ उस समय राजाने पृथ्वी के सब धर्मात्मा राजाओंको विचारकर अपना जन्म राजा प्रतीप के यहां लेना विचारकर उसके घर जन्म

लिया७ और गङ्गा वहांसे उस राजाको ध्यान करती हुई लौटी ८ राहमें उसको अष्टवसु देवता मिले उनके विवर्ण स्वरूपको देखकर गङ्गाने उनसे पूछा कि यह क्या हाल तुमलोगोंका हुआ कहो सब देवता कुशलहैं ९।१० अष्टवसु बोले कि हम वशिष्ठजी को सन्ध्या करते में उल्लंघन करके चलेगये उस थोड़े अपराध को अपमान जानकर वशिष्ठजीने हमको यह शाप दियाहै कि तुम मनुष्ययोनिमें उत्पन्न होकर नरदेह धारण करो यह शाप अब किसी प्रकारसे नहीं लौटसक्ता है क्योंकि वशिष्ठजी ब्रह्मवादी हैं इसकारण से हम चाहते हैं कि तुम संसार में नरदेह धारण करो हम सब तुम्हारे उदरमें जन्म लेंगे हमको संसारी स्त्रियों के उदरमें वास करना अच्छा नहीं मालूम होता है यह सुनकर गङ्गाजीने कहा बहुत अच्छा परन्तु यहतो कहो कि मनुष्योंमें तुम्हारा पिता कौन होगा ११।१५ वसुओंने कहा कि राजा प्रतीप के शान्तनुनाम पुत्र होनेवाला है हमारा पिता वही होगा १६ यह सुनकर गङ्गा बोली अच्छा मैं निष्पाप हूं मैं अवश्य उस राजाका प्रिय और तुम लोगोंके मनकी इच्छा पूरी करूंगी १७ वसुओंने कहा कि जिस समय हम लोग तुम्हारे बालकरूप उत्पन्नहों उसी समय तुम हमको अपने जल में बहादेना जिसमें हम नरदेह से शीघ्र मुक्त होजावें १८ गङ्गाने कहा अच्छा परन्तु ऐसा करो जिसमें उस राजासे मेरा सङ्गम होने पर उसके मुझसे कोई पुत्र भी होवे १९ वसुओं ने कहा कि हम आठों अपना २ अष्टमांश देंगे उससे जो तेरे पुत्र होगा वह उस राजाका पुत्र कहावेगा २० वह बड़ा पराक्रमी होगा परन्तु न वह अपना विवाह करेगा और न कोई उसके पुत्र उत्पन्न होगा २१ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अष्टवसु गङ्गासे इसप्रकार से सम्मत करके चलेगये २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षण्णवतितमोऽध्यायः ९६॥

सत्तानवे का अध्याय।

राजा महाभिषका राजा प्रतीपके जन्म लेकर शन्तनुनाम से प्रसिद्ध होना और उसका अहेर खेलने में एक सुन्दर स्त्रीको गङ्गातट पर देखना॥

वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! इसके पीछे एक समय राजा प्रतीप हरद्वार को गये और वहां कई वर्ष रहकर गङ्गातट पर नित्य जप किया करते थे १ एक दिन गङ्गाजी अपना अत्यन्त सुन्दर मोहिनी स्वरूप धारण करके राजा प्रतीप की दहिनी जांघपर आ बैठी २। ३ राजाने उसे देखकर कहा कि

तू क्या चाहती है ४ गङ्गा बोली कि मैं तुमको चाहती हूं तुमभी मुझको अंगीकार करो सत्पुरुषों को कामवती स्त्रीका त्याग करना उचित नहीं है ५ राजा प्रतीप बोला कि मैं पराई स्त्रीको कभी खोटी दृष्टिसे नहीं देखताहूं और न अपने असमान स्त्री से विवाह करता हूं मेरा यही व्रत है ६ गङ्गा बोली कि मैं दिव्य कन्या हूं अश्रेय और अगम्य होना तो दूरहै कहने के योग्य भी नहीं हूं इससे तुमको चाहिये कि मुझे अङ्गीकार करो ७ यह सुनकर राजा ने कहा कि यह सब सच है परन्तु तू आकर मेरी दहिनी जांघपर बैठगई यह पुत्र पौत्र पुत्री और पुत्रकी बहू आदि के बैठने का आसन है स्त्री के बैठनेको बाईं जांघ है इसकारण से मैं धर्म के विपरीत कभी नहीं करूंगा हां मैं तुझको अपने पुत्रके साथ विवाह करसक्ताहूं ८। ११ यह सुनकर गङ्गा बोली कि बहुत अच्छा मैं तुम्हारे पुत्रके साथ अपना विवाह करके तुम्हारी भक्ति के कारण से भरतकुल में रहूंगी तुम सब राजाओं के मुकुटमणिहो और तुम्हारे गुणों को मैं सौ वर्ष में भी नहीं कहसक्ती हूं परन्तु इतना कहेलेती हूं कि समय पाकर जो कुछ काम मैं करूं तुम्हारा पुत्र मुझको उसके करने से न रोंके ऐसा करने से मैं बहुत प्रीति के साथ तुम्हारे पुत्रके साथ रहूंगी और वह पुत्रोंसहित सुन्दर स्वर्ग का सुख भोगेगा १२। १५ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! यह सुनकर गंगा वहीं अन्तर्धान होगई और राजा प्रतीप अपनी स्त्री सहित पुत्रके अर्थ तप करने लगे १६। १७ कुछ दिनों में राजा महाभिष ने स्वर्ग से गिरकर राजा प्रतीप के यहां जन्म लिया और शांत अवस्था में उत्पन्न होने के कारण से राजा ने उसका नाम शंतनु रक्खा और वह अपने पिछले स्वर्ग के सुखको याद करके शुभ कर्मों को करने लगा १८। १६ थोड़े दिनों में जब शंतनु युवा हुये तब प्रतीप ने उनको एक दिन बुलाकर कहा कि हमने तेरे लिये पहिले से एक स्त्री को वर रक्खा है जो वह किसी समय अकेले में तेरे पास आवे तो तू उसका तिरस्कार मत कीजियो और उसे किसी कामके करने से न रोकियो वह तुझसे बहुत प्रीति मानकर तेरे पास रहेगी वह स्त्री बड़ी दिव्य स्वरूपवान् है पुत्रकी कामना से तेरे पास आवेगी सो तू हमारी आज्ञा का पालन करियो और उस स्त्री से प्रीतिपूर्वक बात करियो २०। २२ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय ! राजा प्रतीप अपने पुत्र शंतनु को इस प्रकार से शिक्षा करके रानी सहित वनको चलेगये और राजा शंतनु राज्य करने लगे २३ एक समय राजा अहेर खेलने

को वन में गया और वहां वन के जीवोंको मारता हुआ गंगा के किनारे पर पहुँचा २४।२५ और उसने एक परमसुन्दरी लक्ष्मी के समान, कमललोचनी, दिव्यअंग, तेजस्विनी, अदोष सुन्दर आभूषण और वस्त्र पहिरे हुये अकेली स्त्री को देखा २६।२७ वह दोनों एक दूसरे को देखने लगे न राजा उस स्त्री की शोभा को देखकर तृप्त होता था न वह स्त्री उस राजा को हृदय में उत्पन्न हुई प्रीति के कारण से अपनी दृष्टि से दूर करती थी २८।२९ अन्त में राजाने बड़ी मधुर वाणी से उस स्त्री से कहा कि तू कौन है देवी, गन्धर्वी, अप्सरा, यक्षी, पन्नगी अथवा मानुषी मैं चाहताहूं कि तू मेरी भार्या होकर रह ३०।३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तनवतितमोऽध्यायः ९७॥

अट्ठानवे का अध्याय।

गंगाका मनुष्यरूप धरकर राजा शंतनुकी पटरानी होकर रहना और उसके अष्टवसुओं का शापके कारण से जन्म लेना और गंगाका उनको शापसे मुक्त करना॥

वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! गंगा राजा शंतनुके मृदु मुसुकानसहित उक्त मीठे वचनों को सुनकर और अष्टवसुओं से जो निबंध कियाथा उसको याद करके राजा के पास आई और कहा कि मैं तेरी पटरानी इस निबंधके साथ होसक्ती हूं कि बुरा या भला जो कुछ मैं करूं उसके करनेमें मुझे कभी न रोको और न मुझसे कभी अप्रिय वचन कहो और जो ऐसा करोगे तो मैं उसी समय तुमको त्याग करदूंगी १।४ यह सुनकर राजाने कहा बहुत श्रेष्ठ तब गंगा राजा को इस निबंधके साथ पाकर बड़ी प्रसन्न हुई ५ राजा उसके साथ आनन्दपूर्वक कामकलोल करके उससे कभी किसी कामको नहीं पूछता था जो उसकी इच्छा में आता था वही करती थी ६ उसके शील स्वभाव औदार्य गुण एकांत की सेवा आदि गुणों को देखकर राजा उससे अत्यन्त प्रसन्न रहता था और वह दोनों आपस में हावभाव स्नेह के साथ रमण करते थे राजा की इच्छा जैसे भोगकी होती थी वैसेही गंगा उसके साथ विहार करती थी दोनों ने एक दूसरे के मनको वश में कर रक्खा था इस प्रकार से रतिरंग की तरंगों में सदैव मग्न रहने से राजाको कई वर्षोंतक गंगा के ऋतुस्नान के महीने नहीं जानपड़े ७।११ इसके उपरांत उस मनुष्य रूप गंगा में राजा से आठ पुत्र देवताओं के सदृश उत्पन्न हुये १२ जब पुत्र उत्पन्न

होता था तब वह स्त्री उसको गंगाकी धारमें यह कहकर डालदेती कि मैं तुझ को प्रसन्न करती हूं १३ राजा शंतनु इस बातको जानकर बहुत अप्रसन्नमन होताथा परन्तु गंगाके त्याग करने के भयसे कुछ नहीं कहता था १४ गंगा ने सात पुत्र इसीप्रकार से अपनी धार में बहादिये जब आठवां पुत्र हुआ तब राजा ने दुःखी होकर गंगासे कहा कि अरी हत्यारी तू कौन और किसकी बेटी है जो ऐसी हत्या करती है इस पुत्रको मत मार १५। १६ यह सुनकर गंगाने कहा कि लो यह आपका पुत्र मौजूद है मैं नहीं मारती हूं परन्तु आज से मैं आप को निबन्ध के टूट जाने के कारण से त्याग करूंगी १७ मैं जह्नुकी पुत्री गंगाहूं मुझे देवताओं का कुछ काम करना था इस प्रयोजनसे तेरे साथ रहीथी १८ और ये तेरे आठों पुत्र जो मैंने होतेही गंगा में बहा दिये थे सो अष्टवसु देवता हैं वशिष्ठजी के शापसे इनको पृथ्वीपर जन्म लेनापड़ा था और इस मनुष्यलोक में आपके सिवाय वसुओं को उत्पन्न करनेवाला पिता और मेरे सिवाय उनको उदरमें रखनेवाली माता न होने के कारण से मुझको आप के यहां पटरानी होकर रहना पड़ा और उनको जन्मतेही जल में डालने का कारण यह था कि मुझसे और वसुओं से यह निबन्ध हो चुका था कि तू हम को मनुष्य देहसे जन्म लेतेही मुक्त करियो सो वह अष्टवसु अब शापसे मुक्त हुये और आपने भी उनको उत्पन्न करके स्वर्ग के अक्षय लोकों को अपने करतल में करलिया अब मैं जातीहूं १९। २३ तुम इस मेरे पुत्रको अच्छी तरह पालना यह प्रत्येक वसुके अष्टमांशोंसे उत्पन्न हुआहै और मैंने वसुओं से इस पुत्रको मांगा था २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्यष्टनवतितमोऽध्यायः ९८॥

निन्नानवे का अध्याय।

अष्टवसु देवताओं को वारुणि ऋषिकी गऊ हरने और वारुणि ऋषि के उनको शाप देने का वृत्तांत गंगाका राजा शंतनुसे कहना॥

यह सुनकर राजा शंतनुने गंगा से पूछा कि आपव किसका नामहै और वसुदेवता तो सब जगत के ईशहैं वे मनुष्यलोक में क्योंकर और किस पाप से उत्पन्न हुये और तेरे उस दिये हुये पुत्रने क्या ऐसा कियाहै जिसके कारण से इस को मनुष्यलोकमें वास करना पड़ेगा १। ३ यह सुनकर गंगा बोली कि आपव नाम वशिष्ठकाहै और वशिष्ठ वरुणके पुत्रहैं ४। ५ उनका आश्रम उस वनमें है

जो मेरुपर्वतकी बगल से चलागयाहै उसमें बड़े बड़े सुन्दर मृग पक्षी रहते हैं और हरऋतु में अनेकतरह के फल पुष्प लगते हैं और वहीं वह ऋषि तप करते हैं ६।७ उनको कश्यपजी ने हवन आदि के साधनके लिये नन्दनीनाम गऊ जो दक्षकी सुरभीनाम पुत्री से उत्पन्न हुई थी दी और वह गऊ उस तापस वनमें जहां बड़े २ ऋषि रहते थे भयरहित विचरतीहुई फिरा करती थी ८। १० एक समय उस वनमें अष्टवसु देवता अपनी स्त्रियों सहित आये और उस वन पहाड़ की शोभा देखते और स्त्रियों से रमण करते हुये इधर उधर विचरनेलगे ११।१२ उनमें से द्युनाम वसुकी सुमध्यमानाम स्त्रीने उस सुन्दर खुर पूंछ और स्वरूप वाली नन्दनी गौको देखा और अपने पति द्यु को दिखलाया द्यु उस अत्यंत स्वरूपवान् गऊको देखकर बोला १३।१७ कि यह गऊ वारुणि ऋषि की है और उसीका यह वन है १८ इसके दूधमें यह प्रभाव है कि जो मनुष्य उसको पी ले तो दश हजार वर्षतक जीवे और कभी वृद्ध न होवे १६ यह सुनकर सुमध्यमा अपने पति से अत्यंत शुश्रूषा करतीहुई बोली कि महाराज मनुष्यलोक में उशीनर राजर्षि की बेटी जितवती नाम बड़ी स्वरूपवान् एक मेरी सखी है मैं इस गऊको उसके लिये लेना चाहतीहूं जिसमें वह इसके दूध को पीकर पृथ्वीपर दश हजार वर्षतक सुखपूर्वक रहे और वृद्ध न होवे मेरी इस प्रसन्नता को आप पूरा कीजिये इससे बढ़के मुझे प्रसन्न करनेवाली कोई चीज नहीं है २०।२५ उसकी बातको सुनकर द्युने ऋषि के परम तेज और अपने को आकाश से पृथ्वी पर गिरायेजाने का हाल न जानने के कारण से उस गऊ को बछड़ा सहित अपने पृथुआदि भाइयों की सहायता से हरा और उसको वहां से ले चले २६।२७ इसके उपरान्त वारुणि ऋषि वन से फल फूलआदि लेकर अपने आश्रम में आये और गऊको वहां न देखकर चारों ओर ढूंढ़नेलगे जब कहीं पता नहीं पाया तब अपनी दिव्यदृष्टि से जाना कि अष्टवसु देवता गऊको लेगये हैं यह जानकर ऋषिने बड़ा क्रोध किया और वसुओंको शाप दिया कि २८।३० मेरी गौ को चुराने के कारणसे वसुओंको निस्संदेह पृथ्वीपर जन्म लेना पड़ेगा ३१ इस शापके हालको जानकर वसुदेवता उन ऋषिके आश्रम में आये और शापसे छुटने को ऋषिसे विनय की उस समय ऋषिने कहा कि हमने शाप तो तुम सबकोही दियाहै तुमलोग इस शापसे एक वर्ष में छूटजाओगे और द्यु जिसके कारण से तुम सबको शाप

दियागया है बहुत दिनों तक पृथ्वीपर मनुष्यदेह धारण करके रहेगा ३२। ३८ परन्तु बड़ा धर्मात्मा और सब शास्त्रों में विशारद होगा और यह पिताके प्रिय करने के लिये न स्त्रीसंबन्धी भोगोंको भोगेगा न इसके सन्तान होगी ३६।४० गंगा बोली हे राजा! वसु देवता यह सुनकर मेरे पास आये और मुझसे यह वर मांगा कि तू हमको उत्पन्न होतेही जलमें डालदीजियो मैंने वैसाही करके सात वसुओंको शापसे मोक्ष किया अब यह आठवां द्युनाम वसु रहगया है सो यह उस ऋषिके शापसे बहुत दिनों तक पृथ्वीपर रहेगा ४१। ४४ वैशंपायनजी बोले हे जनमेजय! गंगा राजा से उक्त वृत्तान्त कहकर वहीं अन्तर्धान होगई और उस लड़के कोभी लेगई ४५ पीछे वह लड़का अपने पिता शंतनु से गुणमें अधिक और देवव्रत हुआ और नाम उसका गांगेय हुआ ४६ राजा शंतनु गंगा के अन्तर्धान होने पर खिन्नचित्त होकर अपने घरको आये इतनी कथा सुनाकर वैशम्पायनजी ने कहा कि मैं अब राजा शंतनु के गुण और माहात्म्य को कहता हूं क्योंकि यह पापों का दूर करनेवाला महाभारत इतिहास उसी राजा का है ४७। ४८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकोनशततमोऽध्यायः ६६॥

सौ का अध्याय।

राजा शंतनु का अपने देवव्रत पुत्रको गंगाके पास से लाना और युवराज करना और देवव्रतका अपने पिता के प्रिय करनेको मरणपर्यंत ब्रह्मचर्य रहना और राज्य न करने की प्रतिज्ञा करके सत्यवतीको अपने पिताके विवाह करने के लिये लाना और तब से उसका नाम भीष्म होना और पिताका उसको स्वच्छंद मरणका वरदान देना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा शंतनु बुद्धिमान्, धर्मात्मा, सत्यवादी, जितेन्द्रिय, दानी, क्षमावान्, तेजधारी, धैर्यवान् १। २ प्रजा का पालन करनेवाला, मतवाले हाथी के समान पराक्रमी, सब राजलक्षणों से युक्त और बड़ा यशस्वी था इसके चलन को देखकर सब प्रजा धर्म से सब काम करती थी आजतक उसकी बराबर कोई धर्म का करनेवाला राजा नहीं हुआ ३।६ इसके इन गुणों को देखकर सब राजा उसे राजाधिराज की पदवी देकर भय बाधा और शोक से रहित होकर रहनेलगे और उसकी शिक्षा के अनुसार यज्ञ और दान करने लगे ७। ८ राजा शंतनु के राज्य में सब प्रजा धर्म के अनुसार चलती थी क्षत्री ब्राह्मणों की सेवा करते थे वैश्य क्षत्रियों के

आज्ञाकारी थे और शूद्र ब्राह्मण क्षत्री और वैश्य तीनों वर्णों की सेवामें रहते थे१०इन्द्रके समान धर्मज्ञ और सत्यवादी होने के कारण से लक्ष्मी ने उसके घर में वास किया राजधानी हस्तिनापुर और राज्य उसका समुद्रपर्यन्त था११।१२ इस राजा में रागद्वेष कुछ न था दर्शन चन्द्रमा के समान तेज सूर्य कासा शीघ्रता वायुकीसी क्रोध यमराजकासा और क्षमा पृथ्वी की समानथी १३ उसके समय में जीवहिंसा नहीं होने पाती थी वह धर्म के आचरण से नीतिके अनुसार दंड देकर राज्य करताथा १४ । १५ उसने राज्यशासन ऐसा किया कि सबमनुष्यों के मन दान धर्ममेंही रहते थे न कोई किसी प्रकारका अधर्म करता औरन कोई झूंठ बोलता था और जो कोई दुःखी और अनाथ होता था उसका पालन किया जाताथा १६ । १८ राजा शंतनु ३६ वर्षतक वन में भी रहे और किसी प्रकार का स्त्रीसम्बन्धी सुख नहीं भोगा १६ और उसके पुत्र जिनके नाम सुदेव और गांगेय दोनों थे अपने पिता के समान धर्मात्मा थे २० राजा शंतनु सब अस्त्र शस्त्रविद्याओं में निपुण महारथी और महापराक्रमी था २१ एक समय वह शंतनु अहेर खेलता हुआ गंगानदी के किनारे पर पहुँचा और उसमें थोड़ा जल देखकर विचार करनेलगा कि यह उत्तम नदी पहले के समान क्यों नहीं बहती है २२ । २३ ऐसा विचारकर कारण को जानने के लिये आगे को बढ़ा और थोड़ी दूर जाकर देखता क्या है कि एक बड़ा तेजस्वी लड़का शस्त्रोंका प्रयोग कररहा है और उसीने अपने बाणों से गंगा के जल को रोक रक्खा है २४ । २५ यह अमानुष कर्म उस लड़के का देखकर राजा शंतनु अचंभेमें रहगया और वनमें वास करने के कारणसे उसको नहीं पहिंचाना २६।२७ परंतु उस लड़केने राजाको जानलिया और वह राजाको मायासे मोहित करके उसी जगह जलमें समायगया २८ इस बातको देखकर राजाको यह शंका हुई कि यह मेरा पुत्र तो नहीं है इस बातको जानने के लिये राजाने जलके पास जाकर गंगा से कहा कि हमारे पुत्रको हमको दिखादो गंगा यह सुनकर तुरन्तही सुन्दर स्वरूप धरकर दहिने हाथमे भीष्मकी बांह पकड़े हुये जलसे निकल आई और राजा को उसे दिखलाया परन्तु राजाने गंगाजी को यद्यपि पहिले देखाथा नहीं पहिंचाना २६ । ३१ उस समय गंगा ने राजा से कहा कि यह वही लड़का है जो मेरे तुमसे आठवां पुत्र उत्पन्न हुआ था अब इसको तुम घर ले जाओ ३२ इसने वेदों को अंगों सहित वशिष्ठजी से पढ़ा है यह बड़ा

धनुर्धारी युद्ध में इन्द्रके समान और राजधर्म में बड़ा पंडित है इसने शुक्र और बृहस्पतिजी के पास जो कुछ विद्या थी वह सब पढ़ी है और परशुरामजी से सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र की विद्या सीखी है ३३।३८ इतनी कथा सुनाकर वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा शंतनु गंगाजी से आज्ञा पाकर अपने पुत्रको लिये हुये हस्तिनापुर नाम बड़े रमणीक निज नगर में आये और अपने सब मनोरथों को पूरा हुआ जानकर उसको अपना युवराज किया ३९।४१ भीष्मने अपने चाल चलन से अपने पिता समेत सब कुटुम्बी और प्रजाको प्रसन्न किया और राजा शंतनु अपने उस पुत्रके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे चार वर्ष के पीछे राजा एक दिन यमुनानदी के किनारे को वन में चलागया और वहां बड़ी उग्र गन्धकी सूंघकर यह देखने लगा कि यह सुगन्ध कहां से आती है ४२।४४ थोड़ी देर इधर उधर घूमने के उपरांत उसने यमुना के किनारे पर एक अत्यन्त सुन्दरी धीमरों की कन्या को देखा और यह जानकर कि यह सुगन्ध उस कन्या की देह में से आती है उसके पास जाकर पूछा कि तू कौन है किसकी बेटी है और क्या करना चाहती है यह सुनकर वह बोली कि मैं धीमरों की बेटी हूं अपने पिता की आज्ञासे धर्मार्थ के लिये नाव चलाती हूं ४५।४७ राजा ने उसके स्वरूप और उसके अंगकी सुगन्ध को देखकर उसपर मोहित हो उसके पिता के पास जाकर उस को मांगा ४८।४९ उसका पिता राजा की बात सुनकर बोला कि महाराज कन्या तो जन्म होतेही देने के लिये होती है देने में मुझको कुछ शंका नहीं है क्योंकि आपके सदृश वर कहां मिलेगा परन्तु इसके देने में मेरी एक प्रार्थना है जो आप उसको अंगीकार करें तो मैं कन्या आपको देदूं राजाने कहा कि वह क्या है वह बोला कि इस कन्या से जो पुत्र उत्पन्नहो वह आपके पीछे राजा होवे आप सत्यवादी हैं जो इस बात का निबन्ध आप सत्य सत्य करें तो मैं आपको कन्या देदूं ५०।५४ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा शन्तनु यद्यपि उस समय कामाग्नि से उस कन्यापर मोहित हो रहाथा परन्तु उसने उस धीमरों के राजा को वह वर नहीं दिया और उस कन्या को अपने हृदय में ध्यान करता हुआ घरको चला गया ५५।५६ और उसके शोचमें दिन दिन पीला पड़कर दुर्बल होने लगा नित्य उस कन्या के ध्यान में बैठा रहता था और घोड़े आदिपर भी कभी सवार नहीं होता था इस बातको

राजा के देवव्रत नाम पुत्र ने देखकर एक दिन राजा से पूछा कि इस शोचका क्या कारण है सब राजा आपकी आज्ञा का पालन करते हैं आप जो कुछ बातहो मुझसे कहिये मैं उसका यत्न करूंगा ५७। ६० यह सुनकर राजा शंतनु बोले कि मेरे एक तूही अकेला पुत्र है यद्यपि तू शूरवीर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और सौ पुत्र से भी अधिक है परन्तु तोभी संसार में एक पुत्र का होना लोग अपुत्र की बराबर जानते हैं संसार के अनित्य होने के कारण मुझको यह शोच रहता है कि कदाचित् तू किसी समय युद्ध में मारा गया तो हमारा वंश लोप होजायगा अग्निहोत्र और तीनों वेद विद्या पुत्रके होने के सोलहवें अंश के समानभी नहीं होते हैं और सब मनुष्य और प्रजाओंमें यह बात विदित है कि जिस मनुष्य के संतान रहती है उसको कहीं कभी भय नहीं रहता है और उसकी मुक्ति होती है इसी बातको वेद पुराण और देवताभी कहते हैं संतान के नष्ट होने पर मनुष्यका जीवन व्यर्थ होजाता है इस कारण से यद्यपि मैं वृथाको किसी स्त्री से विवाह करना नहीं चाहताहूं परन्तु उक्त बातों को ध्यान करने से चित्त में दिनरात शोच बना रहता है ६१। ६७ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! देवव्रत अपनी बुद्धि से राजा के शोच के कारणको जानगया और एक बूढ़े मन्त्री से पूछनेपर उसने जाना कि राजा उस धीमर की कन्या से विवाह करना चाहते हैं ६८। ७० यह जानकर देवव्रत अपने साथ बूढ़े क्षत्रियों को लेकर उस धीमरों के राजा के पास गया और उस से उसकी कन्याको अपने पिता के साथ विवाह करने के लिये मांगा ७१ वह धीमरों का राजा देवव्रत की बातको सुनकर उन्हें आदर सहित लिवा लेगया और यथाविधि पूजन करके बोला कि आप राजा शंतनु के पुत्र सब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं आपसे मैं कुछ कहना चाहताहूं इस कन्याके साथ सम्बन्धको छोड़कर ऐसा कोई नहीं है जो दुःखी न हो मनुष्यकी तो क्या गिनती है जो इन्द्रभी इसके साथ सम्बन्ध करने से उल्लंघन करे तो वहभी पछतावे यह सत्यवती कन्या जिस मनुष्यके वीर्य से उत्पन्न हुई है वह पुरुष आपकेही समान गुणवान् था ७२। ७५ इस कन्याको पहले विवाहके लिये असितनाम देवऋषि ने भी मुझसे मांगा था परन्तु मैंने उनसे इन्कार कर दिया और आपके पितासे भी मैंने कहाथा कि आप इसके साथ अपना विवाह कर लीजिये ७६। ७७ मैंने इसको कन्या की तरह पाला है इस

कारण से मेरी आपसे यह प्रार्थना है कि इसके देने में आपके साथ सापत्न दोष प्राप्त होगा सो इसके पुत्रोंकी तो किनमें गिनती है यदि आप देवता या किसी गंधर्व के भी विरोधी होवें तो आपके क्रोध करने पर वह भी जीता नहीं रहसक्ता सो इसके देने में मुझे इस बातके सिवाय और कोई शोच नहीं है ७८। ८० वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! देवव्रत उसकी बात को सुनकर सब क्षत्रियों के बीच में बोले कि मैं सच्ची प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं राज्य नहीं करूंगा इसके जो पुत्र होगा उसीको राज्य दूंगा ऐसी प्रतिज्ञा आजतक न किसीने की और न कोई करेगा ८१। ८३ यह बात सुनकर वह धीमरों का राजा बोला कि महाराज आपने सत्य प्रतिज्ञा की और आप निस्संदेह अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार करेंगे परन्तु मुझको एक संदेह और है कि जो आपके पुत्र होगा वह अवश्य राज्य के लिये विरोध करेगा ८४। ८८ वैशम्पायन बोले हे राजा जनमेजय! देवव्रत यह बात सुनकर उस निषादपति के अभिप्राय को जानगये और पिता का प्रिय करने के लिये सब क्षत्रियों के बीचमें कहा कि हम राज्य तो छोड़ ही चुके अब यह प्रतिज्ञा करते हैं कि आज से मरने तक हम ब्रह्मचर्य रहेंगे विवाह नहीं करेंगे और हमको विना पुत्र के भी स्वर्गवास मिलेगा ८९। ९२ इस बातको सुनकर निषादपति बहुत प्रसन्न हुआ और देवव्रत को कन्या लाकर देदी ९३ उस समय देवताओं ने देवव्रत पर आकाशसे फूलोंकी वर्षा की और कहा कि इसने भीष्मव्रत किया है इससे इसका नाम भीष्म होगा ९४ इसके पीछे भीष्मने सत्यवती से कहा कि माता रथपर सवार होकर अपने घरको चलो ९५ वैशम्पायनजी बोले यह कहकर भीष्मने उसको रथपर सवार करालिया और हस्तिनापुर में लाकर अपने पिता को निवेदन किया ९६ सब राजाओं ने भीष्मकी उस प्रतिज्ञाको जानकर प्रशंसा की और राजा शंतनु ने अत्यन्त प्रसन्न होकर यह वरदान दिया कि जब तू चाहेगा तभी तेरी मृत्यु होगी ९७। ९८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शततमोऽध्यायः १००॥

एकसौएक का अध्याय।

राजा शंतनुका दो पुत्र होने के पीछे देहान्त होना भीष्मका बड़े पुत्रको राज्य देना और उसके मारेजानेपर उसके छोटेभाई को राजगद्दीपर बिठाकर धर्मसे राज्य करना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा शंतनु अपना विवाह सत्य-

वती से विधिपूर्वक कर आनन्दसे उसके साथ रहने लगे थोड़े दिनों में उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ राजाने उसका नाम चित्रांगद रक्खा फिर कुछ समय बीतने पर दूसरा पुत्र हुआ उसका नाम चित्रवीर्य रक्खा १ । ३ यह दोनों पुत्र अच्छी तरह युवा नहीं होने पाये थे कि राजा शंतनु का देहान्त होगया उन के स्वर्गवासी होनेपर भीष्मजीने अपनी माता की अनुमति से चित्रांगद को राजतिलक दिया ४ । ५ उसने अपने पराक्रम से सब राजाओं को जीतलिया और अपने को अद्वितीय जानने लगा मनुष्य तो कहां देवता और गन्धर्वों को भी वह अपने समान नहीं जानता था उसी अवसर में एक चित्रांगद नामी गन्धर्व उससे युद्ध करने को आया और उन दोनोंने कुरुक्षेत्रकी भूमि पर तीन वर्ष तक महायुद्ध किया अन्तको राजा चित्रांगद उस गन्धर्व के हाथ से तुमुल युद्ध करते में मारा गया ६ । ९ वह गन्धर्व तो उसे मारकर स्वर्ग को चलागया और भीष्मजीने चित्रांगदका प्रेतआदि कर्म कराकर उसके छोटे भाई चित्रवीर्य को जो अभी छोटा ही था राजतिलक करदिया १० । १२ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय ! चित्रवीर्य ने धर्मशास्त्र के परिपूर्ण वेत्ता भीष्मजी के मत के अनुसार राज्य का शासन किया और भीष्म ने भी उसका पालन अच्छी तरह से किया १३ । १४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकाधिकशततमोऽध्यायः १०१ ॥

एकसौदो का अध्याय ।

भीष्मजीका राजा काशीकी तीन कन्याओंको स्वयंवरमें जीतकर लाना और उनमेंसे दोका विवाह अपने छोटेभाई चित्रवीर्यसे करदेना और चित्रवीर्यका विना सन्तान राजयक्ष्मारोग में मरजाना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा ! जबतक चित्रवीर्य बालक रहा तबतक भीष्मजीने सत्यवती के मतके अनुसार राज्यका पालन किया और जब वह तरुण हुआ तब भीष्मजी ने उसके विवाह करने का विचार किया १ । २ इसी अवसरमें यह सुनने में आया कि राजा काशीकी तीनों कन्याओं का स्वयंवर है और तीनों कन्या अप्सराओं के समान सुन्दरी हैं ३ भीष्मजी यह खबर पाकर अकेले रथपर सवार होकर काशी को चलदिये और स्वयंवर में पहुँचकर सब राजाओं और उन तीनों कन्याओं को देखा ४ । ५ इसके पीछे जब सब राजाओंकी विरदावली पढ़ीगई तब भीष्मजीने उन कन्याओं को आप ग्रहण

करना विचारा ऐसा विचार करके उन कन्याओंको अपने रथपर बिठालिया और काशीराज आदि सब राजाओं से कहा कि संसार में आठ विवाह विख्यात हैं ब्राह्म्य १ आर्ष २ आसुर ३ राक्षस ४ गांधर्व ५ दैव ६ प्राजापत्य ७ और पैशाच ८ इन आठों में से राक्षस विवाह वह है जो कन्या को स्वयंवर से बलसे हरलेजावे और राजाओं को यही विवाह करना उचित है इस कारण से हम अब इन तीनों कन्याओं को हरकर लियेजाते हैं तुम सब लोग जो इच्छामें आवे सो यत्न करो हम युद्धके लिये खड़े हुये हैं ऐसा कहके भीष्मजी उन कन्याओं सहित रथको हँकवाकर वहांसे चलदिये ६। १४ यह बात देखकर सब राजालोग महाक्रोध से दांतों को पीस २ भुजाओं को स्पर्श करतेहुये उठ खड़े हुये और अपने २ भूषण वस्त्रोंको फेंक २ कर कवच और अस्त्र शस्त्र धारण करने लगे फिर अस्त्र शस्त्रों को धारण करके क्रोधसे टेढ़ी भौं और लाल २ आंखें किये हुये रथोंपर सवार होकर भीष्मजी के पीछे दौड़े और उस अकेले से युद्ध करने लगे १५। २० पहले तो ऐसा तुमुल युद्ध हुआ कि जिसके देखने से मनुष्य के रोंयें खड़े होजावें उन सब राजाओंने एक साथ दश हजार बाण भीष्मजी के मारे परन्तु वह बाण भीष्मजी के पास पहुँचने नहीं पायेथे कि भीष्मजीने अपने बाणों से उनको काटकर बीचमेंही गिरादिया २१ इसपर सब राजाओं ने भीष्मजी को घेरलिया और चारों ओर से इसप्रकारसे बाण मारने लगे जैसे पहाड़पर मेघ बरसता है २२ भीष्मजी ने अपने बाणोंसे उस बाणों की वर्षाको रोककर प्रत्येक राजाके तीन तीन बाण मारे २३ उस समय उन राजाओं ने भी भीष्मजी के पांच २ बाण मारे और भीष्मजीने उनके बाणोंको काटकर प्रत्येक राजा के दो २ बाण और मारे २४ वैशम्पायनजी बोले हे राजा! इस प्रकारसे उन राजा और भीष्मजी से बाण और बरछी आदि आयुधों से देवता और असुरों के युद्धके समान युद्ध हुआ अन्तमें भीष्मजीने अपने बाणोंसे सहस्रों धनुष ध्वजा कवच और बाणों को काट २ कर सब राजाओं को मारकर भगा दिया और वह लोग भीष्मके बाण चलाने की लाघवता और शरीररक्षाकी निपुणता को सराहते हुये चलेगये और भीष्मजी भी उन कन्याओं सहित वहांसे अपने देश की ओर चलदिये २५। २८ थोड़ी दूर गयेथे कि राजा शाल्व स्त्री की कामनासे मत्त हाथी के तुल्य बड़े क्रोधसे दांत पीसता हुआ भीष्मजी के पीछेसे पहुँचा और दूरसे पुकारकर कहा कि खड़ा रह २९। ३१ भीष्मजी ने

उसकी बोलीको सुनकर बड़े क्रोध से निर्भय कालाग्नि के समान धनुष बाण हाथमें लेकर अपने रथको लौटाया और दोनों सन्मुख होकर इसप्रकार से गरज २ कर युद्ध करने लगे जैसे पुष्पवती गऊको देखकर सांड़ दहाड़ते हैं और सब राजा लोग जो पहले भीष्मके सन्मुख से भागगये थे अलग खड़े होकर उन दोनोंका युद्ध देखनेलगे ३२। ३५ उस समय राजा शाल्वने बाणों से भीष्म जी को ढकदिया और इस बातको वह भागे हुये राजा लोग देखकर राजा शाल्व के लाघव हस्त की सराहना कर पुकार कर बोले बहुत अच्छा २। ३६। ३८ राजाओं के इस शब्द को सुनकर भीष्मजी को बड़ा क्रोध हुआ और अपने सारथी से बोले कि मेरे रथको उस राजाके सन्मुख लेचल मैं उसको इस प्रकार से मारूंगा जैसे सर्प को गरुड़जी मारते हैं ३९। ४० इसके पीछे भीष्मजी ने राजा शाल्व के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से वारण करके उसके रथके घोड़े और सारथी वारुण और ऐन्द्र अस्त्रों से मारडाले ४१। ४३ इस प्रकार से भीष्मजी राजा शाल्व को जीतकर और उसको जीता छोड़कर वहांसे हस्तिनापुर की ओर चलदिये और राजा शाल्व अपने नगर को लौटगया और धर्मसे अपने राज्य को करने लगा और जो राजा लोग स्वयंवर में आये थे वहभी अपने अपने देशको लौट गये ४४। ४६ महापराक्रमी भीष्मजी वन नदी और पहाड़ोंको नांघते हुये थोड़े दिनों में उन तीनों कन्याओं को बेटी बहिन के समान अपने छोटे भाई चित्रवीर्य के साथ विवाह करने को लिये हुये उस हस्तिनापुर में पहुँचे जहां वह चित्रवीर्य अपने पिता राजा शंतनु के समान राज्य कर रहाथा ४७। ५१ और उनको विचित्रवीर्य को देदिया इसके पीछे जब भीष्मजी सत्यवती माताकी आज्ञा से उन तीनों कन्याओं का विवाह चित्रवीर्य से कराने को बैठे तब राजा काशी की अम्बानाम सबसे बड़ी कन्या भीष्मजी से हँसकर बोली कि मैंने पहले से अपने मनमें राजा शाल्व को वर रक्खाथा और राजा शाल्वने भी मेरे पिताके सम्मत से मुझे अंगीकार किया था इस कारण से मेरा स्वयंवर राजा शाल्वही के साथ होना उचित है तुम धर्मज्ञहो धर्मको समझकर जैसा उचित जानो वैसा करो ५२। ५५ यह बात सुनकर भीष्मजी ने वेदपारग ब्राह्मणों से निश्चय करके अम्बाको जाने की आज्ञा दी और उसकी दोनों छोटी बहिन अम्बिका और अंबालिका का विवाह अपने छोटे भाई चित्रवीर्य से विधिवत् करादिया ५६। ५८ विचित्रवीर्य उन

अत्यन्त सुन्दरी स्त्रियोंको पाकर जिनके घूंघरवाले बाल लाल नख और उन्नत पीन पयोधरथे पाकर उनके साथ कामासक्त होगया और वह स्त्रियांभी अपने योग्य अश्विनीकुमारों की सदृश स्वरूपवान् देवताओं के समान पराक्रमी पतिको पाकर बड़ेहर्ष से उसके साथ विहार करने लगीं ५६। ६२ इसप्रकार से चित्रवीर्य ने बड़े आनन्दपूर्वक सात वर्षतक उन स्त्रियों के साथ रमण किया आठवें वर्षमें उसको तरुण अवस्थाही में राजयक्ष्मारोग होगया ६३ वैद्यलोग और २ सुहृज्जन उसकी ओषधी करते करते हारगये परन्तु उसको आराम नहीं हुआ और वह उसी वर्षमें वैकुण्ठवासी हुआ ६४ भीष्मजी को उसके मरनेका बड़ा शोक हुआ और उन्होंने सब ब्राह्मणों और सत्यवती माताकी आज्ञा से उसका सम्पूर्ण प्रेतकर्म अच्छे प्रकारसे किया ६५। ६६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्व्यधिकशततमोऽध्यायः १०२॥

एकसौतीन का अध्याय।

सत्यवती का भीष्मजी से चित्रवीर्य की स्त्रियों के संतान उत्पन्न करने को कहना और भीष्मजी का प्रतिज्ञा के कारण ऐसा कर्म करने से निषेध करना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा! सत्यवती अपने पुत्र के मरने के शोक से अत्यन्त दुःखी हुई और उसकी क्रिया कर्म होने के पीछे अपनी दोनों बहुओं को धैर्य देकर पुत्र होने की इच्छासे भीष्मजी से बोली १। २ कि हे भीष्म! अब तेरे सिवाय कौरव को पिण्डदान करनेवाला कोई नहीं रहा है ३ तू धर्म और अधर्म दोनों अच्छी तरह जानता है क्योंकि तू नानाप्रकार सब वेदों को जानता है और तेरा धर्मभी इसप्रकार से अचल है जैसे सत्य में आयु और शुभ कर्म करने में स्वर्ग दृढ़ होताहै ४। ५ इसके सिवाय मैं तेरे धर्मको कुलाचार में और बुद्धिको आपत्तिकाल में देखकर यह जानती हूं कि तू बृहस्पति और शुक्र के समान बुद्धिमान् है इसकारण से मैं तुझसे कुछ कहना चाहती हूं तुझको उसके अनुसार करना उचित है ६। ७ वह यह है कि मेरा चित्रवीर्य पुत्र जो तेरा बलवान् प्यारा भाई था बिना संतान के मरगया और उसकी दोनों रानियां जो अत्यन्त स्वरूपवान् और तरुण हैं पुत्र होने की इच्छा रखती हैं इस कारण से तू मेरी आज्ञा से धर्म कर और इन दोनोंको पुत्रदान दे जिसमें यह कौरवों का वंश अस्त न होजावे और पिण्डदानके लुप्त होने

से पितृलोग न डूबें ८। ११ माता और सुहृज्जनों की इस बात को सुनकर भीष्मजी बोले कि आपलोगों का यह कहना सत्य है परन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा की है और जो व्रत लिया है उसको भी तुम अच्छीतरह जानते हो मैं अपनी उस प्रतिज्ञा से किसी प्रकार से नहीं डोलसक्ता हूं १२। १४ मैं एक सत्य के पीछे त्रिलोकी और देवताओं का राज्य और इससे भी जो कुछ अधिक पदहो छोड़ सक्ताहूं और इसके सिवाय चाहे पृथ्वी गंधको, जल रसको, ज्योति रूप को, वायु स्पर्श को, सूर्य अपनी प्रभाको, अग्नि तेजको, आकाश शब्द को, चन्द्रमा शीतलता को, इन्द्र पराक्रम को और धर्मराज धर्म को छोड़ देवें परन्तु मैं सत्य को किसी प्रयोजन से नहीं छोड़ सक्ताहूं १५। १८ यह सुनकर सत्यवती बोली कि हे पराक्रमी! मैं तेरे सत्य धर्मको जानती हूं और मुझे तेरी प्रतिज्ञा की भी यादहै जो तैंने मेरेलिये की थी परन्तु तू चाहे तो अपने धर्म से दूसरी त्रिलोकी रचदे इस कारणसे धर्माधर्मको विचारकर ऐसा कर जिसमें पितरोंका पिण्ड लुप्त न हो और सब सुहृद्लोग प्रसन्न होवें १९। २२ यह सुनकर भीष्मजी बोले कि हे माता! तुमको धर्मकी ओर देखना चाहिये क्षत्रियोंका धर्म छोड़ना बड़ाईकी बात नहीं है परन्तु राजा शंतनु की संतानके पृथ्वीपर अक्षय होने के लिये मैं तुमसे क्षत्रियों का धर्म वर्णन करूंगा उसको सुनकर तू उसका निश्चय लोक व्यवहार और धर्मज्ञ ज्ञानी पुरोहितों से करियो २३। २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्र्यधिकशततमोऽध्यायः १०३॥

एकसौचार का अध्याय।

भीष्मजीका सत्यवती से ब्राह्मणों के वीर्य से क्षत्रियों के वंशों के उत्पन्न होने की कथा कहना॥

भीष्मजी बोले कि पूर्वकाल में परशुरामजी ने अपने पिताके वध का वैर लेने के लिये अपने फरसे से सहस्रार्जुनकी सहस्र भुजा काटडाली थीं और फिर धनुर्बाण लेकर अस्त्र शस्त्रों से २१ वेर क्षत्रियों से युद्ध करके क्षत्रियों का लेशमात्र पृथ्वीपर नहीं रहने दिया था उस समय में क्षत्रियों की स्त्रियों ने वेद-पारग ब्राह्मणों के साथ संगम करके संतान उत्पन्न की और उससे फिर क्षत्रियोंके वंश पृथ्वीपर चले वेदोंमें भी यह निश्चय करके लिखाहै कि क्षेत्रमें उत्पन्न हुआ पुत्र उसीका होताहै जिसका वह क्षेत्रहो अर्थात् जिस स्त्री का विवाह जिससे हुआहो उस स्त्री के जो पुत्र उत्पन्न होता है वह उसीका होताहै जिसके साथ उस

स्त्रीका विवाह हुआहो और लोकमें भी हमने ब्राह्मणों से फिर क्षत्रियोंका उत्पन्न होना और इस व्यवहार का संसार में प्रचार होना देखाहै १ । ७ अब हम एक पुराना इतिहास इस विषय में वर्णन करतेहैं पहले समयमें एक उतथ्यनाम ऋषिथा और ममतानाम उसकी स्त्रीथी एक समय ऐसा हुआ कि ममता गर्भवती थी उस समय उसके पास रमण करने की इच्छा से उतथ्य ऋषिका छोटा भाई बृहस्पति नामी जो बड़ा तेजस्वी और देवताओंका पुरोहितथा आया और उससे रमण करना चाहा ८ । ६ उससमय ममताने बृहस्पतिजीसे कहा कि मैं तुम्हारे बड़े भाई के वीर्य से गर्भवती हूं और मेरे गर्भ के बालक ने षडंग वेदको गर्भमेंही पढ़ाहै आपभी अमोघवीर्यहो अर्थात् आपकाभी वीर्य व्यर्थ नहीं जासक्ता है परन्तु गर्भ में दो बालकोंके लिये जगह नहीं है इससे आप इस अवस्था में मेरे साथ रमण न कीजिये १० । १२ बृहस्पतिजी ने कामके वश होनेके कारणसे उस बातको न माना और ममताके साथ संगम करने लगे यह देखकर गर्भ के भीतर से उस बालक ने कहा कि महाराज आप संगम न कीजिये आप अमोघवीर्य हैं और यहां मैं पहिले से आया हुआहूं दोके लिये जगह नहींहै आप मुझको दुःख न देवें बृहस्पतिजी ने उस बालक की बातको कुछ न सुना और ममता के साथ संगम किया जब वीर्य त्यागने का समय हुआ तब उस गर्भस्थ बालक ने वीर्य के भीतर जानेके मार्गको अपने पैरोंसे रोंकदिया और वह वीर्य जगह न पानेके कारण से पृथ्वीपर गिरपड़ा १३ । १८ बृहस्पतिजी यह देखकर बड़े क्रोधित हुये और उस गर्भस्थ बालक को घुड़ककर बोले कि तैंने हमारे वीर्य को व्यर्थ कियाहै इस पापसे तू अंधा होगा थोड़े कालमें वह बालक बृहस्पतिजीके शापके कारण से दीर्घतमानाम अंधा उत्पन्न हुआ और विद्या के प्रभाव से उसका विवाह प्रद्वेषी नाम तरुण रूपवती ब्राह्मणीसे हुआ १६ । २१ थोड़े कालमें उसके गौतमादिक बड़े २ तपस्वी पुत्र उत्पन्न हुये २२ इसके पीछे उसने सुरभीके पुत्रोंसे गोधर्म अर्थात् प्रकाशमैथुन पढ़ा और उसको पढ़कर स्त्रियोंके साथ रमण करनेलगा २३ उसके इस आचरणको देखकर वहांके और रहनेवाले तपस्वी मुनि आपसमें कहनेलगे कि यह अंधा मर्यादा के विपरीत कर्मोंको करताहै इसका पास रहना अच्छा नहीं है इससे इसको त्यागना चाहिये वह तो यह बातें करकर चुप होरहे कि इसी अंतर में अंधतमामुनि से उनकी प्रद्वेषी स्त्री क्लेश करने लगी उससमय मुनि ने उससे कहा कि तू

अकारण मुझसे द्वेष क्यों करती है २४। २६ यह सुनकर प्रद्वेषी बोली कि स्त्री का पुरुष पालन करने से पति भरण करने से भर्ता कहलाता है परन्तु मैंने उसके विपरीत क्लेश सह २ कर किया कि तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रका पालन किया तुमतो जन्मके अंधेहो अब मुझसे यह क्लेश नहीं उठाया जाता यह सुनकर अंधतमामुनि क्रोधित होकर उससे बोले कि तू मुझको क्षत्रियोंके बीच में ले चल वहां तुझको धन मिलेगा २७। २८ प्रद्वेषीने कहा कि मुझको तुम्हारा दिया हुआ दुःखका कारण धन नहीं चाहिये तुम्हारे मनमें आवे सो करो मुझसे तुम्हारा पालन अब नहीं होसक्ता ३० यह सुनकर दीर्घतमा ऋषि ने कहा कि आजसे हम इस लोक में यह मर्यादा बांधते हैं कि स्त्री एक पतिके सिवाय दूसरा पति कभी न करे और जो स्त्री अपने पतिके जीतेजी अथवा मरने पर दूसरे मनुष्य के साथ संगम करेगी वह नरकगामिनी होगी आजसे स्त्रियोंके पतिका न होना पातक गिना जायगा और पतिके न होने पर चाहे स्त्रियोंके पास सम्पूर्ण भोग करने के पदार्थ होवें परन्तु सब व्यर्थ होंगे और वह संतान को सिवाय पतिके दूसरे से उत्पन्न न कर सकेंगी और जो ऐसा करेंगी तो उनकी अकीर्ति होगी और नरकगामिनी होंगी इस बात को सुनकर उस ब्राह्मणीने बड़ा क्रोध किया और अपने पुत्रोंको आज्ञा दी कि इस अंधेको लेजाकर गंगामें बहाय आवो ३१। ३४ यह सुनकर उसके गौतमादिक पुत्रों ने उसको बांधकर उड़पमें बैठाके गंगामें बहाय दिया और यह चिन्ता करते घरको लौटआये कि अब यह अंधा और बूढ़ा क्योंकर भरणयोग्य होगा ३५।३६ वह अंधा बहते २ बहुत से देशों में घूमता हुआ उस स्थान पर पहुँचा जहां धर्मात्मा राजा बलि स्नान कर रहाथा राजा उसको बाहर निकाल उससे हाल पूछ सब वृत्तान्त जानकर उसको बड़ा तपस्वी समझकर घर लेगया और कहनेलगा कि महाराज आप धर्मार्थकी रीतिसे मेरी स्त्रियोंके पुत्र उत्पन्न कीजिये ३७। ४० यह सुनकर अंधतमाने कहा कि बहुत अच्छा इसके पीछे राजा ने अपनी सुदोष्णानाम स्त्रीको ऋषिके पास भेजा उसने उस ऋषिको अंधा और बूढ़ा जानकर उसके पास अपनी दासी को भेजदिया और आप नहीं गई ४१। ४२ उस ऋषि से उस दासी के ग्यारह पुत्र उत्पन्न हुये ४३ उन पुत्रों को राजा पढ़ते हुये देखकर बोला कि यह मेरे पुत्र हैं ४४ तब ऋषि ने कहा कि ये पुत्र आपके नहीं हैं मेरे हैं क्योंकि यह दासी से उत्पन्न हुये हैं

आपकी सुदोष्णानाम स्त्रीने मुझे अंधा और बूढ़ा जानकर मेरे पास अपनी दासी को भेजदियाथा आप नहीं आई ४५। ४६ राजा ने यह सुनकर ऋषि को वाणी से प्रसन्न किया और उसके पास अपनी सुदोष्णारानी को भेज दिया ४७ तब ऋषि उस रानीकी देहको स्पर्श करके बहुत प्रसन्न हुये और बोले कि तेरे बड़े तेजधारी पुत्र होंगे ४८ इसके पीछे उस रानी के उस ऋषिसे पांच पुत्र उत्पन्न हुये अंग १ बंग २ कलिंग ३ पुंड्र ४ सुह्य ५ और यह पांचों जिस २ देशके राजा हुये वह २ देश उन्हींके नाम से विख्यात हुये ४९ जैसे अंग का देश अंगनाम से बंगका बंगनाम से कलिंगका कलिंगनाम से पुंड्रका पुंड्रनाम से और सुह्यका सुह्यनाम से विख्यात हुआ इस प्रकार पहले समय में राजा बलिका वंश हुआ था ५०। ५१ इसके सिवाय और २ बहुत से धनुर्धारी और धर्मात्मा क्षत्रिय ब्राह्मणों से उत्पन्न हुये हैं इस बातको समझकर जैसा उचितहो करना चाहिये ५२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुरधिकशततमोऽध्यायः १०४॥

एकसौपांच का अध्याय।

भीष्मजी की सलाहसे सत्यवती का व्यासजी को बुलाना और उनसे चित्रवीर्य की स्त्रियोंके पुत्र उत्पन्न करनेको कहना और व्यासजीका पुत्र उत्पन्न करनेको अंगीकार करना॥

भीष्मजी बोले हे माता! उक्त कथाको जानकर तुमभी किसी उत्तम ब्राह्मण को धन देकर विचित्रवीर्यकी स्त्रियों के संतान उत्पन्न करने के लिये निमंत्रण करो १। २ यह सुनकर सत्यवती हँसती हुई लज्जासहित भीष्मजी से बोली कि तेरा सब कहना सत्य है तू हमारे कुलमें धर्म और सत्यरूप है ऐसा कौनसा धर्म है जो तुझसे न कहा जावे इस कारण से मैं तुझसे एक वृत्तान्त कुल के बढ़ाने को कहतीहूं उसको सुनकर जैसा उचितहो वैसा कीजियो ३।५ मेरे पिताके एक धर्मनावथी उस नावपर मेरे पिताने मुझको इस आज्ञासे नियत किया था कि जो कोई महात्मा पार जाने को चाहे उसको तू इस नावपर बैठाकर पार उतार दिया करियो मैं बहुत दिनों तक उस कामको करती रही एक समय वहां पराशरमुनि आये मैं उनको नावमें बैठाकर पार ले चली जब यमुनाके बीच में पहुँचे तब उन्होंने मुझे युवा देखकर काम के वश से मेरे साथ संगम करनेको कहा मैंने पिताके भय और ऋषिके शाप के डरसे कुछ उत्तर नहीं दिया तब उस महात्माने अपने तेज से वहां अंधेरा

करके मेरे साथ संगम किया ६। १० मेरी देही में पहले बुरी मछली कीसी दुर्गंध आती थी ऋषिने उस दुर्गंध को दूर कर दिया और यह सुगन्ध को दे दी ११ इसके पीछे उस ऋषिने मुझसे कहा कि तू इस हमारे गर्भको यमुना के टापू में छोड़दे तू फिर ज्यों की त्यों कन्या होजायगी मैंने वैसाही किया और मैं कन्या होगई वह गर्भ गिरतेही बड़ा होकर अपने पिताके साथ चलागया और मुझसे यह कहगया कि जब कभी तुझको कोई विपत्ति आकर पड़े तब तू मुझको याद करियो मैं उसी समय वहां पहुँचूंगा सो वह मेरा पुत्र परम तपस्वी सत्यवादी और महायोगी है उसने वेदों के चार भाग किये हैं इस कारण से उसका नाम व्यासजी हुआ है और ईश्वर से अनन्य होने से उसे कृष्ण भी कहते हैं सो वह मेरी तेरी आज्ञा से चित्रवीर्य की स्त्रियों के अवश्य सन्तान् उत्पन्न करेगा जो तू कहे तो मैं उसको स्मरण करूं १२। १८ भीष्मजी उस महात्मा व्यास का कीर्तन सुनकर अञ्जली बांधकर बोले कि बुद्धिमान् वही है जो अर्थ धर्म और काम इन तीनों को अच्छे प्रकार से देखता है और इनके अनुकूल और विपरीत कर्मोंको अच्छी रीति से विचारकर निश्चय करता है इस कारण से जो तुमने कहाहै सो सब धर्मयुक्त और हमारे कुलका हित करनेवाला है हमारी भी रुचि यही है तुम व्यासजी का स्मरण करो १९। २१ वैशंपायन बोले हे जनमेजय! भीष्मजीकी बातको सुनकर सत्यवती ने वेद-व्यासजी का ध्यान किया और वे माताकी चिन्ता को जानकर वेद पढ़ते हुये उसी क्षण वहां आन पहुँचे २२। २३ सत्यवती उनकी विधिवत् पूजा करके बहुत दिनों के पीछे मिलने के कारण पुत्रस्नेह से आंखों में आंसू भरकर मिली तब व्यासजी ने भी आंखों में आंसू भरकर अपनी सत्यवती माता को प्रणाम किया और कहा कि हे माता! मैं तेरे मनकी इच्छा पूरी करनेको आया हूं जो कुछ तेरा प्रयोजन हो सो मुझसे कह २४। २६ इसके पीछे राजपुरो-हित ने व्यासजी की मंत्रों से विधिवत् पूजा की और व्यासजीने उसको आनन्दपूर्वक ग्रहण किया उस समय सत्यवती ने व्यासजी से कुशल क्षेम पूछकर कहा कि पुत्र मा बापके साधारणमात्र उत्पन्न होता है उसकी मा और बाप दोनों एकसेही बड़े हैं इस कारण से मैं तुम्हारी माता हूं क्योंकि तुम मेरे पहिलेही पहिल उत्पन्न हुये और चित्रवीर्य मेरे तुमसे पीछे उत्पन्न हुआ सो माताकी ओरसे तुम और पिताकी ओरसे भीष्म दोनों चित्रवीर्य के भाई हो

अब भीष्म तो सत्यब्रह्मचर्य व्रत धारण करने के कारण से राज्य के पालन और पुत्रके उत्पन्न करने की इच्छा नहीं करता है इस कारण से मेरी यह इच्छा है कि तुम अपने छोटे भाई चित्रवीर्य के स्नेहसे उसकी दोनों अत्यन्त सुन्दरी पुत्र की कामना रखनेवाली स्त्रियों के मेरी आज्ञा और भीष्मकी प्रार्थना से कुल के बढ़ाने के लिये कुलके योग्य सन्तान उत्पन्न करो २७। ३५ यह सुनकर व्यासजी ने कहा कि हे माता ! तू पर अपर अर्थात् प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों धर्मोंको जानती है इससे तेरी बुद्धि धर्ममें रहती है अब मैं तेरे कहनेके अनुसार धर्मके अर्थ अपने छोटे भाई को मित्रावरुण के समान पुत्र दूंगा परन्तु तू उन दोनों चित्रवीर्य की स्त्रियों से कहदे कि एक वर्ष तक व्रत करके अपनी देहको शुद्ध करें क्योंकि विना व्रत किये कोई स्त्री मेरे पास नहीं आसक्की है ३६।३९ यह सुनकर सत्यवती बोली कि ऐसा उपाय करो जिसमें मेरे पुत्रकी बहुयें जल्दी गर्भवती होवें क्योंकि विना राजा के देश अनाथ और प्रजाका नाश होता है न जप यज्ञादि धर्म होते हैं न वर्षा होती है राजा विना देश शून्य क्योंकर रहसक्ता है ४०। ४१ व्यासजी बोले कि जो तू अकाल में पुत्र चाहती है तो इस प्रकार से होसक्ता है कि तेरे पुत्रकी बहुयें मेरे कुरूप गंध और वेष को सहकर प्रीति से उत्तम वस्त्र पहिनकर सुन्दर शय्या बिछाकर मेरी राह देखें और जब मैं आऊं तब मुझसे प्रीतिपूर्वक रमण करें और मेरे वेष आदि को देखकर ग्लानि न करें यह कहकर व्यासजी वहीं अन्तर्धान होगये और सत्यवती अपने पुत्रकी बहुओं के पास आकर बोली कि मैं तुम दोनों से जो धर्म कहती हूं उसको सुनो ४२। ४६ मेरे भाग्य से अब यह कुरुवंश अस्त होना चाहता है सो भीष्मने मेरे दुःखके दूर करने को मुझे एक सलाह दी है वह तुम दोनों के अधीन है इस कारण से तुम दोनों उस बातको स्वीकारकर पुत्र उत्पन्न करो जो इस राज्यके भार को उठावें और इस नष्ट हुये कुरुवंश को फिर से उद्धार करें ४७। ४९ इस प्रकार से सत्यवती ने उन दोनों को धर्म कह कर पुत्र के उत्पन्न करने के लिये उद्यत किया और ब्राह्मणको भोजन दिये ५० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः १०५ ॥

एकसौछह का अध्याय।

व्यासजीका सत्यवती के कहने से चित्रवीर्य की अम्बिका और अम्बालिकानाम स्त्रियों के धृतराष्ट्र और पाण्डुनामी पुत्र उत्पन्न करना और एक दासी के विदुरजी को उत्पन्न करना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे जब अम्बानाम चित्रवीर्य की स्त्री ने ऋतुस्नान किया तब सत्यवती ने उससे कहा कि तू इस समय शयन करने के स्थानपर रह आधीराततक तेरे पास तेरा देवर आवेगा वह अपने अंशसे तेरे पुत्र उत्पन्न करेगा १। २ सत्यवती तो यह कहकर चलीगई और अम्बा वहां भीष्मआदि अच्छे २ कुरुवंशके आदमियों का ध्यान करती रही ३ जब दीपक जलगये तब व्यासजी वहां आये अंबा उनकी कपिलजटा अग्नि के समान जलतीहुई आंखें और भूरी मूछोंको देखकर डरगई और आंखें बन्द करलीं ४। ५ व्यासजीने अपनी माताका कहा करने को उसके साथ संगम किया परन्तु अंबा डरके मारे उनके दर्शन न करसकी ६ जब व्यासजी वहां से बाहर आये तब सत्यवती ने पूछा कि इसका पुत्र गुणवान् होगा या नहीं ७ व्यासजी बोले ८ कि इसके बड़ा पराक्रमी दशहजार हाथीके तुल्य बलवाला राजर्षियोंमें उत्तम और बड़ा बुद्धिमान् पुत्र होगा परन्तु माताके अवगुणसे अंधा होगा और उसके सौ पुत्र होंगे ९। १० यह बात सुनकर सत्यवती बोली कि अंधा राजा कुरुवंश के योग्य नहीं है इस कारणसे आप दूसरा पुत्र दीजिये जो वंशको बढ़ावे ११। १२ व्यासजी तथास्तु कहकर चलेगये और थोड़े दिनों में अंबा के अंधा पुत्र उत्पन्न हुआ १३ इसके पीछे सत्यवतीने अपनी अंबालिका नाम पुत्रवधूको समझाकर पुत्र उत्पन्न करने को तय्यार किया और पहले के समान फिर व्यासजी को बुलाया १४ व्यासजी पहले के सदृश अंबालिका के पास भी गये वह उनके स्वरूप को देखकर डरगई और भय से पांडु अर्थात् पीली पड़गई व्यासजी ने अपने कहने के अनुसार उस डरी हुई से संगम किया और जब संगम करचुके तब अंबालिका से कहा कि तेरे पांडु अर्थात् पीली पड़जाने के कारण तेरा पुत्र भी पांडु होगा और वह इस संसार में इसी नामसे बोलाजावेगा यह कहकर व्यासजी बाहर चले आये और सत्यवती के पूछने पर उससे उस पुत्रके पांडु होने का हाल कहा १५। १६ सत्यवती ने फिर तीसरा और पुत्र मांगा और व्यासजी उससे तथास्तु कहकर चलेगये २०

थोड़े दिनोंमें अंबालिका के बड़ा सुंदर पांडुनाम पुत्र उत्पन्न हुआ जिस के पांचों पांडव बड़े धनुर्धारी हुये इसके पीछे सत्यवती ने अपनी बड़ी बहू अंबिका को ऋतुस्नान करनेपर ऋषिके पास जानेको आज्ञा दी परन्तु वह उनके स्वरूपसे पहिलेहीसे डरीहुई थी आप नहीं गई और अपनी परमसुन्दर दासीको अपने गहने कपड़े पहिनाकर भेज दिया २१। २४ वह दासी ऋषि को देखतेही उठ खड़ी हुई और दण्डवत् करके बड़े आदर से उनको लाकर उनकी सेवा करनेपर ऋषिने उसके साथ आनन्दपूर्वक भोग किया और चलते समय उससे बोले कि तू अदासी होगी और तेरा पुत्र बड़ा धर्मात्मा और बुद्धिमान् होगा २५। २७ सो उस दासी के गर्भ में माण्डव्य ऋषि के शाप से धर्मराज ने आकर जन्म लिया और उनका नाम विदुर हुआ विदुरजी काम क्रोधसे रहित पांडु और धृतराष्ट्रके भाई थे २८। २९ इस प्रकारसे व्यासजी सत्यवती से पूर्वोक्त सब वृत्तान्त कहकर अन्तर्धान होगये और वह तीनों पुत्र देवताओं के लड़कों के समान बड़े हुये ३०। ३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षडधिकशततमोऽध्यायः १०६॥

एकसौसात का अध्याय।

चोरी करके चोरोंका मांडव्यऋषि के आश्रममें छिपरहना और राजदूतोंका उन ऋषि और चोरों को पकड़ लेजाना और राजाका उन सबको शूली देना॥

इतनी कथा सुनाकर जनमेजय बोले कि हे वैशम्पायनजी! धर्मराज ने क्या ऐसा किया था जिससे उनको शूद्रयोनि में जन्म लेना पड़ा और वह ब्रह्मऋषि कौन थे जिन्होंने उनको शाप दिया १ वैशम्पायनजी बोले कि मांडव्यनाम एक ब्राह्मण बड़ा तपस्वी सत्यवादी और सब धर्मोंका जाननेवाला था वह अपने आश्रम में मौनव्रत को लेकर एक पेड़के सहारे से खड़ा होकर ऊपर को हाथ किये हुये तप कर रहाथा २। ३ एक समय ऐसा हुआ कि कुछ चोर वहां के राजा के यहां से चोरी करके उस ब्राह्मणके आश्रम के पास आये और राजदूतों के भयसे सब चोरी का धन उस ब्राह्मण के आश्रम में रख कर आपभी वहीं छिपरहे पीछे से राजदूतभी वहां चोरोंको ढूंढ़तेहुये पहुँचे और उस ब्राह्मण से पूछा कि चोर किधर गयेहैं उस ब्राह्मण ने मौनव्रत रखने के कारण से उनको कुछ जवाब नहीं दिया इसपर वह लोग उस ब्राह्मण के आश्रम को ढूंढ़ने लगे और वहां चोरोंको चोरीके धनसहित पकड़लिया ४। १०

और उनको उस ब्राह्मण सहित राजा के पास लेगये राजा ने उन सबके लिये शूली देनेकी आज्ञा दी और राजदूतों ने उस आज्ञाके अनुसार उस ब्राह्मण को भी शूलीपर बैठा दिया ११। १३ वह ब्राह्मण उस शूलीपर बहुत दिनों तक निराहार बैठा हुआ तप करा किया और वेदाध्ययन नहीं भूला उसकी इस दशाको देखकर और २ तपस्वी ऋषिलोग बड़े दुःखी हुये और रातको पक्षी का रूप धरकर उसके पास आकर पूछते थे कि तुमने ऐसा क्या पाप किया है जिससे तुमको यह दुःख मिलाहै १४। १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्ताधिकशततमोऽध्यायः १०७॥

एकसौआठ का अध्याय।

माण्डव्यऋषि के शूली देनेपर न मरने से राजाका उनसे अपराध क्षमा कराना और ऋषिको मरकर स्वर्गमें जाने पर धर्मराज को शूद्रयोनि में जन्म लेने के शाप देने की कथा॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उन ऋषिलोगों के पूछने पर वह ब्राह्मण कहता था कि मैं क्या दोष बताऊं मैंने तो आजतक किसी का कुछ अपराध नहीं किया १ इसके पीछे जब उस ब्राह्मण को शूली पर बैठे २ कई दिन होगये और वह नहीं मरा तब राजदूतों ने यह सब हाल राजा से कहा वह यह सुनकर मंत्रियों सहित दौड़ा आया और हाथ जोड़कर बोला कि महाराज मुझसे यह अपराध अज्ञान और मोहसे हुआ है आप मेरे ऊपर कृपा करके मेरे अपराधको क्षमा करें २। ४ ऋषिने कहा कि अच्छा हमने तेरा अपराध क्षमा किया इसपर राजाने उसको शूलीपरसे उतारनेकी आज्ञा दी सब मनुष्य बल कर २ के हारगये न वह शूली पृथ्वीमेंसे उखड़तीथी न उस ऋषि की गुदासे निकलतीथी तब राजाने उस शूलीको उस जगहसे कटवा दिया जिस जगहसे वह ऋषि के अंगसे बाहरथी ५। ६ इसके पीछे वह ऋषि वहां से उस शूलीके भीतर घुसेहुये टुकड़े सहित वनको चलागया और बड़ी उग्र तपस्या करके स्वर्गके दुर्लभ लोकोंको अपने वशमें करलिया और इसी कारण से उसका नाम अणीमांडव्यऋषि विख्यात हुआ थोड़े दिनोंमें वह मरकर जब स्वर्गको गया तब उसने वहां धर्मराजसे पूछा कि मैंने ऐसा क्या अपराध किया था जिससे मुझे तुमने इतना कष्ट दिया जो कुछ सत्य हालहो मुझसे कहो और मेरे तपके बलको देखो ७। १० धर्मराज ने कहा कि तुमने एक पतंगिका

की पूंछमें मींक छेदीथी उसके कारणसे तुमको यह दुःख मिला ११ यह सुन-कर अणीमांडव्यने कहा कि तुमने थोड़े से अपराध के लिये हमको महाकष्ट दिया इसकारण से तुमको शूद्रके यहां जन्म लेकर मनुष्य होना पड़ेगा १२ और मैं आजसे यह मर्यादा धर्मफल के उदय करनेवाली बांधताहूं कि चौदह वर्षकी आयुतक मनुष्य को कोई पाप न लगे १३ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस शापके कारणसे धर्मराजने शूद्रयोनिमें जन्म लिया और संसार में विदुरनामसे विख्यात हुये १४ विदुरजी अर्थ धर्ममें कुशल, लोभ और क्रोध से रहित, दीर्घदर्शी, निर्वैर और कुरुवंश का हित करनेवाले थे १५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्यष्टाधिकशततमोऽध्यायः १०८॥

एकसौनव का अध्याय।

धृतराष्ट्र व पाण्डु और विदुरजीके उत्पन्न होनेपर सब राज्य में आनन्द होना और भीष्मजीका उन तीनों को पुत्रोंकी सदृश पालना और उन तीनोंका बड़ा होकर सब शास्त्र और युद्धों में निपुण होजाना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उन तीनों चित्रवीर्य के पुत्रों के उत्पन्न होने पर कुरुजांगल देश कौरवदेश और कुरुक्षेत्र तीनों में बड़ी वृद्धि हुई १ वर्षा अच्छी तरह होनेलगी खेतियों में अन्न रसवान् और अच्छा होने लगा वृक्षों में पुष्प और फल ऋतु २ पर फलने लगे २ सवारी के वाहन पुष्ट होगये और मृग पक्षी आदि सुखपूर्वक रहनेलगे ३ नगर में व्यापारी और शिल्पी आने लगे शूरवीर विद्यावान् और सन्तलोग परम सुखी हुये ४ सब जगह सतयुग वर्तमान होगया राज्य में कोई चोर न रहा सब मनुष्य अपना अपना धर्म करने लगे ५ प्रजा के लोग धर्म और यज्ञ करने का स्वभाव रख-कर परस्पर लोभ क्रोध वैर और मिथ्या छोड़कर रहने लगे ६। ७ नगर की शोभा महेन्द्रपुरके समान होगई जहां तहां सैकड़ों मन्दिर बने हुये दरवाजों पर तोरण बँधी हुई पुरवासी अपनी इच्छाके अनुसार नदी वन खंड बावली और कानन आदि अनेक रमणीक स्थानों में घूमने लगे ८। १० उस समय में कुरुओं के राज्य में न कोई पुरुष कृपण होता था न कोई स्त्री विधवा होती थी ११ सब राज्य में जहां तहां कुयें बाग बावली और रमणीक ब्राह्मणों के आश्रम बनगये और नित्य नये नये उत्सव होनेलगे १२ भीष्मजीके रक्षा करने से सब पृथ्वी रमणीक होगई और सब राज्य में उनका धर्मचक्र फिरनेपर उस देश

में बड़ी वृद्धि होगई १३।१४ जब उन तीनोंका संस्कार हुआ तब सब पुरवासियों और कुलवंशियों ने बड़ा उत्सव किया और घर २ में यह शब्द होनेलगा भोजन करो भोजन दो १५। १६ भीष्मजीने धृतराष्ट्र पांडु और विदुर इन तीनों को पुत्रके समान पाला और वह तीनों कुछ कालमें तरुण होकर वेद शास्त्र पुराण वेदांग शिक्षा आदिको पढ़कर नीति धनुर्वेद ढाल तलवार और गज शिक्षा आदि सब युद्धों में निपुण होगये १७। २० उन तीनों में धृतराष्ट्र देहबल में पांडु धनुर्विद्या में और विदुरजी धर्म के करने में श्रेष्ठ हुये विदुरजीकी बराबर तीनों लोक में धर्ममार्ग से आत्मदर्शन का पानेवाला नहीं हुआ २१। २२ इस प्रकार से नष्ट हुये कुरुवंशके फिर प्रकट होने पर सब देशों में यह बड़ाई होने लगी कि राजा काशी की दोनों पुत्रियों की बराबर शूरवीर पुत्र उत्पन्न करने वाली कुरुजांगल देशकी बराबर देश धर्मात्माओं में भीष्म से धर्मात्मा और नगरों में हस्तिनापुरकी बराबर नगर कोई नहीं है २३। २४ इसके पीछे पाण्डु को राजतिलक दियागया धृतराष्ट्र अन्धे होनेके कारणसे और विदुर शूद्र योनि में उत्पन्न होनेसे राजा नहीं हुये २५ तदनन्तर एक समय विदुर से धर्म तत्त्व के जाननेवाले भीष्मजीने कहा २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि नवाधिकशततमोऽध्यायः १०९॥

एकसौदशका अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र से गांधारी के विवाह होनेकी कथा॥

भीष्मजीने कहा कि हमारा कुल इस संसार में बड़ा विख्यात है और सब राजाओं को जीतकर वश में करने के कारणसे अधिराज गिनाजाता है १ इस को हमने नष्ट होते देखकर सत्यवती और व्यासजीकी अनुमति से तुम तीनों को उत्पन्न करके फिर स्थापित किया है सो अब हम चाहते हैं कि कोई ऐसा उपाय किया जावे जिससे यह कुल समुद्रकी सदृश बढ़े २। ४ हमने सुना है कि एक पुत्री तो राजा सुबल के है एक राजा मद्रके है और एक यादव कुल में है और तीनों अत्यन्त सुंदरी हैं हमारी समझसे ये तीनों कुल श्रेष्ठ और हमारे कुलके साथ सम्बन्ध करने के योग्य हैं अब जो कुछ इसमें तेरी सलाहहो सो कह ५। ७ यह सुनकर विदुरजी ने कहा कि आप हमारे माता पिता और गुरु हैं जैसा कुछ आप इस कुल के लिये हित समझें सो करें ८ वैशम्पायनजी बोले इसके पीछे भीष्मजी ने ब्राह्मणों से सुना कि राजा सुबलकी बेटी गांधारी

ने शिवजी की सेवा करके सौ पुत्र होनेका वरदान लिया है यह सुनकर भीष्म जी ने एक दूतको राजा सुबल के पास उसकी कन्याको धृतराष्ट्र के साथ विवाह करने के लिये मांगने को भेजा राजा सुबल ने अपने जमाई को अन्धा सुनकर पहिले तो चिंता की फिर बुद्धिसे कुलको विचार कर देना अंगीकार किया और उस कन्याको अपने पुत्र शकुनी के साथ बहुत से दान दहेज के साथ हस्तिनापुर को भेज दिया शकुनी अपनी बहिन को लेकर वहां आया और विधिपूर्वक उसे धृतराष्ट्र को देदिया इसके उपरान्त भीष्मजी ने उसका विवाह धृतराष्ट्र के साथ वेदविधि से करादिया और गांधारी ने अपने पतिको अन्धा जानकर आंखों से पट्टी इस प्रयोजनसे बांधली कि पतिकी निंदा न होवे ६। १६ विवाह होने के पीछे शकुनी भीष्मजी से पूजित अपने देशको आया १७ और गांधारी ने अपने शील स्वभाव से सब गुरुजनोंकी सेवा की और कभी किसी को उत्तर न दिया इस प्रकार के चलन से उसपर सब छोटे बड़े सदा प्रसन्न रहने लगे १८। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि दशाधिकशततमोऽध्यायः ११०॥

एकसौग्यारहका अध्याय।

दुर्वासाऋषिका कुन्तीको देववशीकरण मंत्र देना कुन्तीका उस मंत्रसे सूर्यको बुलाकर भोग करना और उसके कर्णनामी पुत्र उत्पन्न होना॥

वैशम्पायनजी बोले कि यादव कुल में शूरसेन नाम वसुदेवजीके पिताथे उनके पृथानाम एक कन्या हुई वह कन्या ऐसी स्वरूपवती थी कि उसकी समान संसार में दूसरी कन्या न थी उसके उत्पन्न होने के पहले शूरसेन के फूफीजाद भाई राजा कुंतिभोजने संतान न होने के कारण से शूरसेन से कहा था कि तुम्हारे जो संतति हो सो हमको देना शूरसेन ने उससमय राजा कुंतिभोजसे कहा कि अबकी जो कुछ हमारे संतति होगी सो हम तुमको देंगे इस कारण से जब शूरसेन के पृथा उत्पन्न हुई तब उसने उसको राजा कुंतिभोज को देदी राजा कुंतिभोजने उसको पाला और जब वह सयानी हुई तब उससे राजा ने कहा कि जो अतिथि ब्राह्मण यहां आया करें उनकी तू सेवा किया कर पृथा अपने पिता कुंतिभोजकी आज्ञाके अनुसार जो कोई अतिथि ब्राह्मण वहां आया करता उसकी सेवा किया करती थी एक समय वहां दुर्वासा ऋषि आये कुंती ने उनकी अच्छी तरह से सेवा करके उनको प्रसन्न किया चलते

समय उन्होंने भविष्य आपद्धर्मको जानकर उसे वशीकरण मन्त्र विधिपूर्वक बताया और उससे कहा कि इस मन्त्र से तू जिस देवता को बुलावेगी वह तेरे पास चला आवेगा और उसके प्रभावसे तेरे पुत्र होगा १।७ कुंती ने इस बातको सुनकर आश्चर्य किया और मन्त्रकी परीक्षा करने के लिये सूर्य देवता को बुलाया ८ मन्त्रके प्रभाव से सूर्यदेवता वहां चले आये और उससे बोले कि कहो मुझे किस निमित्त बुलाया है कुंती उनको देखकर भौचक रहगई और बोली कि महाराज मुझको एक ब्राह्मण ने मन्त्र दिया था उसकी परीक्षा के लिये आपको बुलाया था मैं आपको प्रणाम करती हूं मेरा अपराध क्षमा कीजिये और अपने लोक को पधारिये ६।१२ यह सुनकर सूर्य बोले कि हमको सब मालूम है तुझे दुर्वासा ऋषिने मन्त्र दिया है अब तू किसी बातका संदेह मत कर निर्भय होकर हमारे साथ संगम कर हमारा मिलना निष्फल नहीं जाता और जो तू ऐसा न करेगी तो हमको वृथा बुलाने का तुझे दोष लगेगा १३।१४ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! सूर्य की यह बात सुनकर जब कुंती ने अपने कन्यात्व के जाने के भयसे संगम करना अंगीकार नहीं किया तब सूर्यने फिर उससे कहा कि तेरा कन्यात्व हमारी कृपासे नहीं जायगा यह कहकर सूर्य ने कुंती के साथ संगम किया और उसके एक पुत्र बड़ा शूरवीर कुंडल और कवच धारण किये हुये उत्पन्न हुआ इसके पीछे सूर्य तो उसको फिर पूर्ववत् कन्या होजाने का वरदान देकर स्वर्गको चले गये और कुन्ती विचार करने लगी कि इस लड़के को क्या करूं अन्त में भाई बांधवों के भयसे उसने उस लड़के को नदी में बहादिया १५।२२ उसको बहा हुआ जाते देखकर राधा के पति सूतने उसे निकाललिया और लाकर अपनी स्त्रीको देदिया वह उसको पुत्र के समान पालने लगी और धन सहित उत्पन्न होने के कारण से उसका नाम वसुषेण रक्खा २३।२४ थोड़े दिनों में वह बालक बड़ा होकर महाशूर वीर और सब अस्त्र शस्त्रों का जाननेवाला होगया और सूर्यके सन्मुख बैठकर उससमय तक सूर्यका आराधन किया करता जबतक सूर्य पीठ पीछे जाते उस पूजा के समय में जो कोई ब्राह्मण उसके पास जाताथा उसको वह जो कुछ वह मांगता था सो देता था २५।२६ एक समय अर्जुन के हितके लिये इन्द्र ब्राह्मण का रूप धरकर उसके पास गया और उससे कुण्डल सहित कवचको मांगा २७ यद्यपि वह कवच कुंडल उसकी देहके साथ उत्पन्न हुये थे परन्तु उसने उन

के भी देने में देर न की तुरन्त देह से उखाड़कर देदिये २८ इन्द्र उसके इस कर्म को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसको एक बरछी दी और कहा कि देवता राक्षस मनुष्य गंधर्व आदि जिस किसीके तू इसबरछीको मारेगा वह उसी समय मरजायगा २९ । ३० पहिले तो उसका नाम वसुषेणथा और जबसे उसने यह उक्त कर्म किया तबसे उसका नाम वैकर्त्तनकर्ण होगया ३१ ॥

इति श्रीम.भाषमहाभारते आदिपर्वण्येकादशाधिकशततमोऽध्यायः १११ ॥

एकसौबारहका अध्याय ।

कुन्ती का स्वयंवर होना उसमें कुन्तीका राजा पांडुको जयमाल पहिराना उसका पांडुके साथ विवाह होना और पांडुका कुन्ती को लेकर अपने नगरको आना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा कुन्तिभोज की वह पृथा नाम कन्या अत्यन्त सुन्दरी रूपवती गुणवती और शीलवतीथी उसकी सुंदरता को देखकर कई एक राजाओं ने उसको मांगना चाहा १ । २ इसी अवसर में राजा कुन्तिभोज ने उसका स्वयंवर किया और उस स्वयंवर में देश देश के राजा इकट्ठे हुये उस समय पृथा राजा पांडुके स्वरूप को जो सिंहके समान बड़ी बड़ी आंखें और चौड़ी छातीको निकाले हुये उन सब राजाओं के बीचमें इन्द्र के समान बैठा हुआथा और अपने सूर्यरूपी तेजसे सब राजाओं के तेज को अस्त कर रहाथा देखकर आसक्त होगई और कामके वशमें होकर लज्जा सहित उसके गले में जयमाल डालदी ३ । ७ यह देखकर अन्य सब राजा अपने २ वाहनोंपर चढ़ २ कर जैसे आयेथे वैसेही चलेगये ८ तब राजा कुंतिभोज ने राजा पांडुसे पृथाका विवाह करदिया और उसको दहेजमें नाना प्रकारके धन दिये राजा पांडु उन सबको लेकर बड़ी सेनाके साथ जिसमें नाना प्रकार की पताका और ध्वजा मनुष्य लिये हुयेथे ब्राह्मण और महर्षियों से प्रशंसित होता हुआ अपने नगर में आया और पृथासहित अपने भवन में प्रवेश किया ९ । ११ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ११२ ॥

एकसौतेरहका अध्याय ।

राजा पांडुका माद्री से विवाह होना और उसका बहुत से राजाओं को जीतकर अनेक प्रकार का बहुतसा धन लाना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे भीष्मजी राजा पांडुका

दूसरा विवाह करना विचारकर बूढ़े मंत्री और ब्राह्मण महर्षियों को अपने साथ लेकर चतुरंगिणी सेना सहित मद्रदेश को गये १। २ राजा मद्र उनके आने का संदेशा सुनकर आगे से लिवाने को आया और बड़े आदर से नगर में लेजाकर अच्छे आसन पर बैठाकर पाद्य अर्घ्य और मधुपर्क से पूजन करके बोला कि आपका आना किस प्रयोजन से हुआ है ३। ४ यह सुनकर भीष्मजी बोले कि हमने सुनाहै कि आपकी बहिन यशस्विनी अभी कुँवारी है हम उसको राजा पांडुके साथ विवाह करने के लिये तुमसे मांगने आये हैं हम तुम दोनों परस्पर विवाह करने के योग्यहैं इससे तुम हमारे इस संबंध को ग्रहण करो ५। ७ राजा मद्र बोला कि तुमसे श्रेष्ठ वर हमको निस्संदेह नहीं मिलेगा परन्तु हमारे कुलमें पहिले राजाओं ने कुछ मर्यादा प्रवृत्त की है उसको आपभी अच्छी तरह जानते हैं मैं अपने मुँहसे उसको नहीं कह सक्ता कि उसको आप दीजिये परन्तु वह कुलका धर्म होने के कारण मैं उसको उल्लं-घन नहीं कर सक्ताहूं चाहे वह बुराहो या भला ८। ११ यह सुनकर भीष्मजी बोले कि यह परम धर्म है ब्रह्माजी ने आप इस धर्मको कहा है इसमें कुछ दोष नहीं है इस धर्मको पहिले मनुष्योंने भी कियाहै हम इस तुम्हारे कुलकी मर्यादा को जानते हैं १२। १३ यह कहकर भीष्मजी ने मद्रदेशके राजा शल्य को सुवर्ण रत्न हाथी घोड़े रथ अच्छे २ वस्त्र मणि मोती और मूंगे आदि अनेक तरह के रत्न मँगवाकर दिये शल्य उनको लेकर प्रसन्न होगया और अपनी बहिन को अच्छी तरह अलंकृत करके भीष्मजी को देदी १४। १६ भीष्मजी उसे लेकर अपने नगर को आये और शुभ मुहूर्त में उसका विवाह राजा पांडु के साथ करदिया १७। १८ विवाह होने पर राजा पांडु ने माद्रीको अच्छे राज-मन्दिर में रक्खा और उसके और कुन्ती के साथ सुखपूर्वक तीस रात्रि तक विहारकरके पृथ्वी जय करने की इच्छासे भीष्म धृतराष्ट्र आदि वृद्ध कुरुवंशियों की चरणवंदना करके सबसे आशीर्वाद पाकर हाथी घोड़ा आदिकी बड़ीभारी सेना लेकर मंगलाचरण सुनता हुआ नगरसे बाहर निकला १६। २३ राजा ने पहिले उस बड़ी भारी सेनाको लेजाकर दशार्ण देशोंपर चढ़ाई की और उन्हें विजय किया २४। २५ उसके पीछे मगधदेश के राजाओं को जो अपराधी और बलका बड़ा गर्व रखते थे मारा और वहां से बहुतसा खजाना और वाहन ले-कर मिथिला देशमें जाकर विदेहवंशी राजाओं को जीता २६। २८ इसी

प्रकार से राजा पांडु ने काशी सुह्य और पुंड्रदेशों के राजाओं को भी जीतकर अपने वशमें किया २९ बहुत से राजा लोग उस पांडुरूपी अग्नि की बाणरूपी ज्वाला में पड़कर मरगये और बहुत से बलहीन होकर राजा पांडु के वश में होकर कुरुओं की सेवामें नियुक्त हुये ३० । ३१ जिन २ राजाओं को पांडु ने जीताथा उन सबों ने राजा पाण्डु को देवताओं में इन्द्रके समान शूरवीर समझा ३२ और सब ने धन नाना प्रकार के रत्न, मणि, मोती, मूंगा, सुवर्ण, चांदी, गौ, अश्व, रथ, हाथी, खच्चर, ऊँट, भैंसा, बकरी, बकरा, कंबल, मृगचर्म आदि अनेक प्रकार की वस्तु ला लाकर हाथ जोड़ २ कर राजा को निवेदन कीं और राजा पांडु ने उन सब को ग्रहण किया ३३ । ३५ इसके पीछे राजा पांडु उस सब धनको लेकर प्रसन्नचित्त अपने देश के मनुष्यों को हर्षित करता हुआ हस्तिनापुरको गया ३६ राजा शंतनु के मरने के पीछे जो कौरवकुलकी कीर्ति अस्त होगईथी उसको पांडुने फिरसे प्रकट किया और जिन राजाओं ने उस समय में कुरुओं का धन और देश लेलिये थे उनको जीतकर उनपर कर बांध लिया ३७ । ३८ उसके आने का हाल सुनकर भीष्म जी सब मंत्रियों और पुरवासियों सहित आगे से लिवाने को आये और हाथी घोड़ा आदि उसके लायेहुये असंख्य धनको देखकर बहुत प्रसन्न हुये यद्यपि राजा पाण्डु किले से दूरपरथा परन्तु भीष्मादिकों को आते हुये देखकर रथसे उतर पड़ा और अपने पिता भीष्म के चरणों में वन्दना करके सब पुरवासी आदि का यथायोग्य सम्मान किया उस समय भीष्मजी ने उसे करुणासहित स्नेह के साथ छाती से लगा लिया और उसे सब देशों को जीतकर आया हुआ जानकर बहुत प्रसन्न हुये ३९ । ४३ इसके पीछे भीष्मजी उसे साथ लेकर अनेक प्रकारके बाजे बजवाते हुये नगरके भीतर गये ४४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः ११३ ॥

एकसौचौदहका अध्याय।

राजा पांडुका अपनी रानियों सहित वनमें अहेर खेलने को जाना और विदुरजीका विवाह राजा देवककी कन्यासे होना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे राजा पाण्डुने अपनी भुजाबल से जीतेहुये धनको धृतराष्ट्र की आज्ञा से भीष्मजी सत्यवती माता विदुर और अन्य सुहृद्जनों को भेंट किया १ । २ सत्यवतीने उस धनको भीष्म

जी और कौशल्या को देकर प्रसन्न किया और कौशल्या अपने पुत्र पाण्डुसे मिलकर ऐसे प्रसन्न हुई जैसे इन्द्राणी अपने पुत्र जयन्त को मिलकर होती है ३। ४ धृतराष्ट्रने उस धनसे सैकड़ों अश्वमेधकी तुल्य पंचमहायज्ञ किये ५ इसके पीछे राजा पाण्डु अपनी कुन्ती और माद्रीनाम रानियों सहित हिमालय पहाड़के नीचे केशाल के वनमें अहेर खेलने को चलागया और मद्र के स्थानों को छोड़कर वनमें बसकर पहाड़ों और वनों में दोनों रानियों सहित इस प्रकार से घूमा करता था जैसे ऐरावत हाथी अपनी हथिनियों के साथ में क्रीड़ा करता हुआ विचरा करता है ६। ६ उस वनके रहनेवाले उसे दोनों रानियों सहित कवच और शस्त्र धारण किये हुये घूमते देखकर यह जानते थे कि यह देवता है १० धृतराष्ट्रकी आज्ञा से राजा पाण्डु को सब प्रकारकी भोगने की चीजें वनमें नित्य पहुँचती थीं ११ इसके पीछे भीष्मजी ने यह सुना कि राजा देवक के ब्राह्मण के वीर्य से शूद्रयोनिमें उत्पन्न हुई एक कन्या अत्यन्त सुन्दरी है १२ भीष्मजी ने उस कन्या को लाकर विदुरजी के साथ विवाह करदिया और उसके विदुरजी से पिताके समान गुणवान् और नम्र पुत्र उत्पन्न हुये १३। १४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ११४॥

एकसौपन्द्रहका अध्याय।

व्यासजी के बरदान से गांधारी के सौ पुत्र और एक कन्या उत्पन्न होना और एक वेश्या से धृतराष्ट्र के युयुत्सुनामी पुत्र उत्पन्न होना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे धृतराष्ट्र के सौ पुत्र गांधारी से और एक पुत्र वेश्या से उत्पन्न हुये १ और राजा पांडुके पांच महारथी पुत्र वंश के चलानेवाले देवताओं के अंश से कुन्ती और माद्री नाम दोनों रानियों के उत्पन्न हुये २ यह सुनकर जनमेजय बोले कि महाराज गांधारी के सौ पुत्र क्योंकर और कितने दिनों में हुये और उन सबकी कितनी कितनी उमर हुई ३ और जो एक पुत्र वेश्या से हुआ वह क्योंकर हुआ और गांधारी सी धर्मचारिणी और आज्ञाकारिणी स्त्रीसे धृतराष्ट्र क्योंकर निवृत्त हुये कि जिसके कारणसे उन्होंने ऐसा कर्म किया ४ और पांडुके ऋषिका शाप होने के पीछे पांच पुत्र देवताओं से कैसे हुये इस सबको आप विस्तारपूर्वक कहिये मेरा मन इसके सुनने से नहीं भरता है ५। ६ यह सुनकर वैशम्पायनजी

बोले कि एक समय व्यासजी क्षुधा और श्रम से व्याकुल होने के कारण गांधारी के पास गये थे गांधारी ने उनकी अच्छी तरह से सेवा की उस सेवा से व्यासजी ने प्रसन्न होकर गांधारी से कहा कि हम से वर मांगो उस समय गांधारी ने कहा कि महाराज मेरे मेरे पतिके समान सौ पुत्र होवें व्यासजी उससे तथास्तु कहकर चले गये और उसको धृतराष्ट्र से गर्भ रहा ७। ८ दो वर्षतक वह गर्भको धारण किये रही उपरान्त कुन्ती के सूर्य के समान पुत्र के जन्म का होना सुनकर उसको बड़ी चिन्ता हुई और धृतराष्ट्र से छिपाकर अकेले में गर्भको पीटनेलगी ९। ११ उसकी चोट से उसके एक मांस का पिंड लोहे के समान उत्पन्न हुआ उसको देखकर गांधारी ने फेंकने का विचार किया कि इतने में इस बात को जानकर वहां व्यासजी आपहुँचे और उस मांसके पिंडको देखकर गांधारी से पूछा कि तेरा क्या विचार है गांधारी बोली कि महाराज मैंने कुंती के सूर्य के समान पुत्र उत्पन्न होनेका हाल सुनकर बड़े दुःख से अपने पेटको पीटडाला उसकी चोटसे मेरे यह मांस का पिण्ड उत्पन्न हुआ है आपने मुझे सौ पुत्र होने का वरदान दिया था परन्तु उन सौ पुत्रों के बदले में यह मांस पिंड हुआ है १२। १६ यह सुनकर व्यासजी बोले कि मेरा कहना मिथ्या कभी नहीं होसक्ता है जैसा मैंने कहा है वैसाही होगा अब सौ घड़े घृत से भरवाकर ऐसी जगह में रक्खो जहां उनको कोई छू न सके और इस मांसके पिंडको पानी से सींचो १७। १८ वैशम्पायनजी बोले कि पानी डालतेही उस मांस के पिंड के अंगूठे २ भर के सौ टुकड़े होगये व्यासजी ने उन सबको एक एक घड़े में रखवा दिया और घड़ों को बन्द करके ऐसे स्थान में रखवा दिया जहां उनको कोई न छू सके और गांधारी से यह कहकर कि प्रत्येक घड़ेको इतने २ दिनों में उघाड़ना आप हिमालय पर्वत पर तपस्या करने को चले गये १९। २३ वह गर्भ उन घड़ों में बढ़ते रहे और क्रम के अनुसार पहिले दुर्योधन उत्पन्न हुआ जन्म के प्रमाण से युधिष्ठिर दुर्योधन से बड़ा था और जिस दिन दुर्योधन उत्पन्न हुआ उसी दिन भीमसेननेभी जन्म लिया दुर्योधन उत्पन्न होतेही बड़े शब्द से रोने लगा उसके शब्द को सुनतेही गधे रेंकने लगे गीदड़ रोने लगे गृध्र अपना अपना शब्द करने लगे हवा बड़े वेगसे चलने लगी और दिन दग्ध हुआसा मालूम होने लगा २४। २७ उस समय राजा धृतराष्ट्र ने भीष्मजी विदुरजी

ब्राह्मण और सब सुहृद् कुरुवंशियों को बुलाकर डरते डरते कहा कि हमारे कुल को बढ़ानेवाला युधिष्ठिर पहिले उत्पन्न हुआ है वह राजा होगा इसमें हमारा कहना कुछ नहीं है और युधिष्ठिर के पीछे यह हमारा पुत्र भी राज्य करेगा परन्तु इस हमारे पुत्रके जन्म के समय चारों ओर से जो गीदड़ों ने भयानक शब्द किया उसका क्या कारण है २८।३१ यह सुनकर विदुरजी और सब ब्राह्मण उसको समझकर कहने लगे कि गीदड़ों का जन्म के समय बोलना अच्छा नहीं है यह बड़ा भारी अशकुन हुआ है जो इस बालक की रक्षा की जायगी तो बड़ा अकल्याण होगा और यह बालक सब कुलका नाश करेगा इसका उपाय भी सिवाय इस बालक को त्याग करने के और कुछ नहीं है इससे जो आप कुलकी शांति चाहते हैं तो इसको त्याग दीजिये आप यही जानना कि मेरे सौ पुत्र न थे एक कम सौही थे ३२।३५ आप हमारी बात को अंगीकार कीजिये और सब जगत् के कल्याण के लिये इस एक पुत्र को त्याग दीजिये क्योंकि ऐसा लिखा है कि एक के पीछे जो कुलका नाश होताहो तो उस एकको त्याग देना चाहिये और जो कुल के पीछे गांवभर मारा जाताहो तो उस कुलको निकाल देना चाहिये और जो एक ग्राम के पीछे सब देश क्षय होताहो तो उस ग्रामको छोड़कर देशको बचालेना चाहिये और जो पृथ्वी के पीछे प्राण जातेहों तो प्राण बचाने के लिये उस पृथ्वी को त्याग देना उचित है ३६ विदुरजी और ब्राह्मणों ने बहुतेरा समझाया परन्तु धृतराष्ट्रने पुत्रके स्नेहसे उसको त्याग नहीं किया ३७ इसके पीछे एक महीने के अन्तर में धृतराष्ट्र के वह सब पुत्र उत्पन्न होगये और उन सौ पुत्रों से एक कन्या अधिक उत्पन्न हुई ३८ जब गांधारीको गर्भ रहा था उस समय गर्भ के बड़े होने पर गांधारी को क्लेश हुआ था उस क्लेशके कारण से राजा धृतराष्ट्र की सेवा कुछ काल एक वेश्याने कीथी इसकारण से उस वेश्याके उसी वर्ष में धृतराष्ट्र से युयुत्सुनाम बड़ा बुद्धिमान् पुत्र उत्पन्न हुआ ३९।४० हे राजा जनमेजय! धृतराष्ट्र के इस प्रकार से सौ पुत्र और एक कन्या गान्धारी से और एक पुत्र वेश्यासे उत्पन्न हुआ ४१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ११५॥

एकसौसोलह का अध्याय।

वैशंपायन का जनमेजय से गांधारी के सौ पुत्रों से एक कन्या अधिक होनेका वृत्तांत कहना॥

जनमेजय बोले कि महाराज आपने कहा कि गांधारी के सौ पुत्र और एक कन्या और वेश्याके एक पुत्र उत्पन्न हुआ परन्तु व्यासजी ने तो गांधारी को सौ पुत्रही होनेका वरदान दिया था और उस मांसपिंड के होनेपर भी व्यासजी ने उसको जलसे सिंचवाकर सौही टुकड़े किये थे फिर कन्या कहांसे हुई मुझको इसमें बड़ा संदेह है आप कृपा करके कहिये कि यह कन्या उन सौ पुत्रों से अधिक क्योंकर हुई १। ५ वैशम्पायनजी बोले कि तुमने यह अच्छा प्रश्न किया है अब इसका वृत्तांत सुनो जिस समय गांधारी के वह मांसका पिंड उत्पन्न हुआ था और वहां व्यासजी आये थे उस समय व्यासजी ने आप वहां बैठकर उस मांसपिंडको जलसे सींचा और उसके टुकड़े २ होजाने पर अपने हाथ से एक २ टुकड़ा गांधारी को देकर एक २ घीसे भरेहुये घड़ों में डलवाया था उस समय गांधारी अपने मनमें विचार करने लगी कि व्यासजी ने सत्य कहा था मेरे निस्संदेह सौ पुत्र होंगे परन्तु इन सौ पुत्रों के सिवाय एक पुत्री भी होती तो क्याही अच्छा था क्योंकि पुत्रीके होने से मेरे पति को धेवते के होने से जो स्वर्ग में लोक मिलते हैं वह भी मिलजाते और मैं भी अपने को पुत्र और दौहित्र होने से संसार में कृतकृत्य मानती अब जो कुछ मैंने आजतक तप होम और गुरुकी भक्ति की है वह सत्य हो तो मेरे इन सौ पुत्रों से छोटी एक पुत्री भी होवे गांधारी यही विचार कर रही थी कि इसमें व्यासजी ने उससे कहा कि ले ये सौ पुत्र तेरे होंगे मेरा कहा कभी झूठा नहीं होता है और इन सौ पुत्रों से यह एक टुकड़ा और बचाहै इसको भी घी भरे पात्र में धरदे इससे एक कन्या होगी इससे तेरे धेवता होगा इतनी कथा सुनाकर वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह कन्या सौ पुत्रों से अधिक इस प्रकार से हुई थी अब और जो कुछ तुम कहो सो वर्णन करें ६। १८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ११६॥

एकसौसत्रह का अध्याय।

धृतराष्ट्रके सौ पुत्रों के नाम॥

जनमेजय बोले कि महाराज मैं धृतराष्ट्र के पुत्रों के नाम बड़े से लेकर सबसे छोटेतक सुना चाहता हूं १ वैशम्पायनजी बोले कि नाम उनके क्रम-

पूर्वक ये हैं, दुर्योधन, युयुत्सु, दुःशासन, दुःसह, दुःशल, जलसन्ध, समसह, विंद, अनुविंद, दुर्द्धर्ष, सुबाहु, दुःप्रहर्षण, दुर्मर्ष, दुर्मुख, दुःकर्ण, कर्ण, विविंशति, विकर्ण, शल, सत्त्व, सुलोचन, चित्र, उपचित्र, चारुचित्र, शरासन, दुर्मद, दुर्विगाह, विवित्सु, विकटानन, ऊर्णनाभ, सुनाभ, नन्द, उपनन्द २।५ चित्रबाण, चित्रवर्मा, सुवर्मा, दुर्विमोचन, अयोबाहु, महाबाहु, चित्रांग, चित्रकुण्डल ६ भीमवेग, भीमबल, बलाकी, बलवर्द्धन, उग्रायुध, सुषेण, कुण्डधार, महोदर ७ चित्रायुध, निषंगी, पाशी, वृन्दारक, दृढ़वर्मा, दृढ़क्षत्र, सोमकीर्ति, अनूदर ८ दृढ़सन्ध, जरासन्ध, सत्यसन्ध, सहस्रवाक, उग्रश्रवा, उग्रसेन, सेनानी, दुष्पराजय ९ अपराजित, कुण्डशायी, विशालाक्ष, दुराधर, दृढ़हस्त, सुहस्त, वातवेग, सुवर्चस १० आदित्यकेतु, बह्वाशी, नागदत्त, अग्रयायि, कवची, क्रथन, कुण्ड, कुण्डधार, धनुर्द्धर ११ वीर, उग्र, भीमरथ, वीरबाहु, अलोलुप, अभय, रौद्रकर्मा, दृढ़रथाश्रय १२ अनाधृष्य, कुण्डभेदी, विरावी, चित्रकुण्डल, प्रथम, प्रमाथी, दीर्घरोम, पराक्रमी, दीर्घबाहु, महाबाहु, व्यूढोरु, कनकध्वज, कुण्डाशी और वीरजा और इन सौ पुत्रोंसे छोटी दुःशलानाम कन्या १३।१४ धृतराष्ट्र के ये सब पुत्र बड़े शूरवीर युद्ध वेद और सब शस्त्रों के चलाने में पण्डित थे १५।१६ समय के आने पर धृतराष्ट्रने परीक्षा कर करके सबका विवाह सबके अनुरूप स्त्रियों के साथ करदिया और उस दुःशलानाम कन्याका विवाह राजा जयद्रथ से करदिया १७।१८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ११७॥

एकसौअठारह का अध्याय।

राजा पाण्डुका अहेर खेलते में मृगरूप मुनिको विषय करनेमें मारना और उस मुनिका राजाको शाप देना॥

राजा जनमेजय बोले कि हे वैशम्पायनजी! आपने राजा धृतराष्ट्र के पुत्रों का अपूर्व जन्म जैसा कि मनुष्यों में कभी नहीं हुआ और उन सब के भिन्न भिन्न नाम वर्णन किये अब में पाण्डवों के जन्मकी भी कथा विस्तार सहित सुना चाहताहूं जिनकी उत्पत्ति आपने देवताओं के अंशसे अंशावतारण पर्व में कही थी १।४ वैशम्पायनजी बोले कि राजा पांडु उस वन में नित्य अहेर खेला करताथा एक दिन उसने एक हिरनको हिरनी से मैथुन करते हुये देखा और उसी समय उन दोनोंको सुनहरीपर लगेहुये पांच बाणोंसे छेदडाला ५।६

वह हिरन बड़ा तेजस्वी तपोधन और पराक्रमी ऋषि था अपनी स्त्री से मृग-रूप धरकर भोग कररहा था बाणोंके लगतेही वे दोनों चिपटे हुये गिरपड़े और राजा को देखकर वह हिरन व्याकुल होकर मनुष्यभाषा में बोला ७। ८ कि हे राजा ! जो मनुष्य कामी क्रोधी निर्बुद्धि और पापी हैं वे भी ऐसा कुकर्म नहीं करते हैं जैसा तुमने किया है हां भावी तो बलवान् होती है और मनुष्य की बुद्धि भी भावी के अनुसार होजाती है परन्तु जैसा तुम्हारा कुल धर्मात्माओं में मुख्य गिनाजाता है वैसा काम तुमने नहीं किया ६। ११ यह सुनकर पांडु बोले कि अरे मृग ! तू हमारी निंदा क्यों करता है राजाओं को अहेर खेलना उसी प्रकार से लिखा है जैसे शत्रु को मारना लिखाहै क्षत्रियों को छल करके ही मृगों का मारना लिखा है इससे हमने केवल क्षत्रियधर्म कियाहै तू हमारी निन्दा वृथा करताहै देखो अगस्त्यजीने भी सत्रयज्ञ में मृगों को अहेर में मारकर देवताओं को उनके मांसकी आहुति दीथी १२। १५ मृग बोला कि शूरवीर लोग सुप्त कामासक्त और प्रमत्त वैरी को भी नहीं मारते हैं १६ पांडु बोले कि राजालोग वैरी मृगोंको जैसे पाते हैं वैसेही मार डालते हैं यह क्षत्रियों का धर्म है तू क्यों निन्दा करता है १७ मृग बोला कि मैं अपने मारे जाने के कारण से मृगों के मारनेवालों की निन्दा नहीं करता हूं परन्तु यह कहता हूं कि तुमने मेरे मैथुनको देखा नहीं विनाही देखे मार दिया ऐसा कौन बुद्धिमान् होगा जो सब प्राणियों के आनन्दकारी मैथुन करते हुये मृग को वन में मारेगा १८। १६ मैंने इस मृगी के सन्तान उत्पन्न करने के लिये इसके साथ भोग कियाथा परन्तु तुमने उसको निष्फल करदिया २० कौरववंशी राजा बड़े विवेकी होते हुये चले आये हैं और तुम भी उसी वंश में उत्पन्न हुये हो और सम्पूर्ण शास्त्र धर्म और स्त्रियोंके भोगोंको देवताओं के समान जानते हो परन्तु तुमको ऐसा हिंसात्मक निंदित धर्मविरुद्ध और स्वर्गके यश को दूर करनेवाला कर्म करना योग्य न था २१। २३ तुमको तो हिंसा पाप और अधर्म करनेवाले मनुष्यों को दण्ड देना चाहिये न कि आपही ऐसा काम करना २४ कि मुझ अनपराधी मूल फल के खानेवाले और वन में शान्त स्वरूप होकर रहनेवाले मृगवेषधारी मुनि को भोग करते में वृथा मारडाला मैं किंदमनाम मुनि हूं मृग के स्वरूप को धरकर इस वन में फिरा करता हूं आज मैंने मनुष्यों की लज्जा से मृगस्वरूप से मृगी के साथ भोग किया था परन्तु

तुमने हमारे परमानन्दको नाश करके यह दुःख दिया इस कारणसे मैंभी तुमको शाप देताहूं कि जिस तरह हम दोनों को तुमने विषय के आनन्द में मारकर दुःख दिया है उसी तरह तुमभी अपनी स्त्री से विषय के सुख में लिप्त होने पर मरणरूपी दुःखको पावोगे और वह स्त्री भी तुम्हारी प्रीति से तुम्हारे साथ मरकर प्रेतलोक को जायगी परन्तु विना जाने मारने के कारण से तुमको ब्रह्महत्या नहीं लगेगी २५। ३२ वैशंपायनजी बोले हे जनमेजय! यह कहकर उस मृगरूप मुनिने अपने प्राण छोड़दिये और राजा पांडु महादुःखी होकर वहां क्षणभर ठहरकर अपने स्थानको आया ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्यष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ११८ ॥

एकसौउन्नीस का अध्याय।

राजा पांडुका शापके दुःखसे सब संसारी भोग छोड़कर अपनी रानियोंसहित शतशृंगपर्वत पर जाकर तप करना और धृतराष्ट्रको भाईका बड़ा शोक करना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा पांडु उस मुनिको छोड़कर अपने स्थानपर आया और अपनी स्त्रियों सहित विलाप करके बोला कि देखो सत्पुरुषोंके कुलमें उत्पन्न हुये मनुष्य भी अंतःकरणको अशुद्ध करनेवाले कामादिक खोटे कर्मोंको करके दुर्गति पाते हैं मैंने सुनाहै कि मेरा पिता बड़े धर्मात्मा के वीर्यसे उत्पन्न हुआ था और कामात्मा होने के कारण से बालअवस्था में ही मरगया और व्यासजी महाराजने मुझको उसकी स्त्रीसे उत्पन्न किया १। ४ अब मेरी बुद्धि अनीति और हिंसा कर्म करनेवाली होगई है इस कारण से सब बंधनों को छोड़कर अपने पिता व्यासजी की तरह मोक्षका साधन करने में चित्त लगाऊंगा और ब्रह्मचर्य होकर रहूंगा ५। ६ और तप करूंगा ऐसा करने से मुंडित मुनि होकर वनस्पति आदि को खाकर जिस आश्रम में चाहूंगा घूमा करूंगा ७ और पृथ्वीपर सोना शून्यस्थान अथवा पेड़ोंकी जड़ में रहना न किसी को बुरा कहना न भला कहना न किसी बातका हर्ष शोक मानना अपनी बुराई भलाई को एकसा समझना नमस्कार और आशीर्वाद से कुछ प्रयोजन न रखना द्वन्द्व और परिग्रह को दूर करना ८। ९ न किसीको हँसना न किसीपर क्रोध करना नित्य आनन्द में रहना सब जीवधारियों का हित करना १० किसी प्राणीको न मारना सबको अपनी समान देखना ११ कभी दश पांच घरोंसे भीख मांगलाना जो भीख न मिले तो उपवास करलेना थोड़ा

भोजन करना १२ लोभसे दश घरों से भीख मांगलाना और जो दश घरों में न मिले तो सातही घरकी भीखसे तृप्त होजाना तप करना भीख मिलने न मिलने को एकसा जानना १३ जो एक बांहमें चंदन लगाहो और दूसरी में काठ घिसकर लगा दिया हो तो दोनों में से किसीको बुरा भला न मानना १४ मरना और जीना दोनों मेंसे किसी को प्रिय या अप्रिय न जानना जीना मरना चाहनेवालों की तरह कोई कर्म न करना १५ यज्ञ इन्द्रियां धर्म और अर्थ की सब क्रियाओं के फलको अनित्य जानकर सबको त्याग करना चित्तकी मलिनता को शुद्ध करना १६। १७ सब पापोंसे दूर रहना किसी बंधन के पास न जाना वायुकी तरह सबसे मिलना परन्तु किसी के वश में न रहना १८ इन कर्मों को करके देहांत तक निर्भय मार्गका आश्रय लेकर रहूंगा १९ शापसे संतान उत्पन्न करने में असमर्थ होनेके कारण से मैं अब गृहधर्म के करने के योग्य नहीं रहा अब तो मेरा परमधर्म वानप्रस्थ है वैशंपायनजी बोले कि राजा पांडु यह कहकर दुःख से श्वासभर कुंती और माद्री नाम अपनी दोनों रानियों की ओर देखकर बोले २०। २२ कि तुम दोनों हस्तिनापुर जाकर विदुरजी भीष्मजी धृतराष्ट्र सत्यवती राजपुरोहित शंसितव्रत ब्राह्मण और जो और हमारे नगर में वृद्धजन हों सबसे कहदो कि राजा पांडु तो सब त्याग करके वनको चलागया २३। २४ राजाकी यह बात सुनकर और उसके चित्तको वनवासमें देखकर वे दोनों रानियां बोलीं कि महाराज यहां और भी ऐसे आश्रम हैं जहां पर आप हम दोनों के साथ तपस्या कर सक्ते हैं हम दोनों भी इन्द्रियों को वशमें कर कामके सुखको छोड़कर स्वर्गमें भी आपको अपना पति पाने के लिये तपस्या करेंगी २५। २८ और जो आप हमको छोड़ दीजियेगा तो हम दोनों आजही अपने प्राणोंको छोड़देंगी २९ यह सुनकर राजा पांडु बोले कि जो तुम्हारा भी चित्त तप करने में है तो बहुत अच्छा है अब मैं अपने पिता की चालपर चलूंगा ३० अर्थात् गांव के सुखों को छोड़कर तप करना वन में रहना पेड़ों की छालके वस्त्र पहरना कन्द मूल फल खाना दोनों समय अग्निहोत्र करना आचमन करना दुर्बल होना थोड़ा खाना जटा रखना फटे पुराने और चमड़े के कपड़े पहरना ३१। ३२ जाड़ा गरमी और हवाको सहना भूख प्यास को न देखना कठिन तप करके देहको सुखा देना ३३ एकान्त में रहना हिंसा न करना कच्चे पक्के जैसे वनके फल मिलजायँ वैसेही खालेना वाणी

और जलसे देवता और पितरों को तृप्त करना ३४ गांवके मनुष्य तो कौन गिनती में हैं कुलके भाई बांधवों को भी न देखना ३५ वानप्रस्थ के इन सब धर्मों को मैं देहान्त होने तक करूंगा ३६ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा पांडुने यह कहकर शिरपेच बाजू कुंडल कंठी बड़े मोलके कपड़े और स्त्रियोंके गहने उतारकर ब्राह्मणों को देदिये और उनसे कहा कि तुम सब लोग हस्तिनापुर जाकर कहदो कि राजा पांडु सब संसारसंबंधी सुखों को छोड़कर दोनों स्त्रियों सहित वनको चला गया ३७। ३६ यह सुनकर वह सब नौकर लोग हाय २ कर रोने लगे और बड़े दुःख से विलाप करते हुये सब धन लिये हुये हस्तिनापुर पहुँचे ४०। ४१ और राजा धृतराष्ट्र को सब धन देकर राजा पांडु के वनको चले जाने का सब हाल कह सुनाया ४२ उस हालको सुनकर राजा धृतराष्ट्र भाई का बड़ा शोच करने लगे और उस शोच में खाट पर सोना और आसन पर बैठना आदि भोगों को छोड़ दिया ४३। ४४ और राजा पांडु उस वनसे अपनी दोनों स्त्रियोंसहित नागशतनाम पहाड़ को चलागया ४५ वहां से चैत्ररथ वन कालकूट और हिमाचल पर्वतों पर सोता हुआ गन्धमादननाम पहाड़ पर पहुँचा ४६ और वहां से सिद्धपुरुष और बड़े २ ऋषियों से रक्षा पाता हुआ इन्द्रद्युम्न तालाब और हंसकूट नाम पर्वतपर होता हुआ शतशृङ्ग नाम पर्वत पर पहुँचा और वहां तप करने लगा ४७। ४८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकोनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ११६॥

एकसौबीस का अध्याय।

राजा पाण्डुका ऋषियों से सन्तान होनेका उपाय पूछना और ऋषियों के उत्तर देनेपर राजा का कुंती से किसी अच्छे ब्राह्मण से सन्तान उत्पन्न करने को कहना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा पाण्डु वहां तप करते २ सब ऋषियों का प्रियदर्शन होगया और हरएक ऋषि की सेवा में चित्त लगाकर जितेन्द्रिय अहंकाररहित और स्वर्ग जानेकी इच्छासे तप करनेवाला होकर रहने लगा कोई ऋषि उसको भाईके समान कोई मित्रके समान और कोई पुत्रके समान समझता था १। ३ और वह तप करते २ किल्विषरहित होकर ब्रह्मऋषि के समान होगया ४ एक समय वहां के सब तेजस्वी ऋषि अमावास्या के दिन ब्रह्माजी के दर्शनों को चलने लगे उनको जाते हुये देखकर

राजा ने पूछा कि आज आप लोग सब मिलकर कहांको जाते हैं ५। ६ ऋषि लोग बोले कि आज स्वर्गलोक में देवऋषि और पितरों का मेला है सो हम लोग उस मेले में ब्रह्माजी के दर्शनों को जाते हैं ७ यह सुनकर राजा पाण्डु उन मुनियों के साथ अपारस्वर्ग को जानेकी इच्छासे ऊपर को मुँह करके दोनों स्त्रियोंसहित उठ बैठा उसको वहां जाने को उद्यत देखकर ऋषियों ने कहा कि ८ हे पांडु ! स्वर्ग की राह तेरे जाने के योग्य नहीं है इन स्त्रियोंको बड़ा कष्ट होगा क्योंकि हमने उत्तर की ओर हिमालय पर्वत पर जाने के समय बहुत से कठिन २ देश देखे थे और राह में देवता गन्धर्व और अप्सराओं के रहने की भूमि पड़ती है जहां सैकड़ों विमान फिरा करते हैं और अनेक २ प्रकारके स्वरों से गाना हुआ करता है इनके सिवाय कुबेरके बगीचे बड़ी २ नदियों के किनारे और पहाड़ों की बड़ी २ कन्दरा जिनमें बरफके कारण से वृक्ष मृग और पक्षी आदि कुछ नहीं हैं वे राहमें पड़ते हैं उनमें पक्षी तो जाही नहीं सक्ते मृग और पशुओं की गति क्योंकर होसक्ती है वहां तो केवल वायु सिद्ध पुरुष और महर्षिलोग जासक्ते हैं दूसरे की सामर्थ्य नहीं है ९। १४ यह सुनकर पांडु बोले कि जिन मनुष्यों के सन्तान नहीं होती है उनको स्वर्ग नहीं मिलता है इस कारण से हम अपने को सन्तानहीन देखकर नित्य दुःखी रहते हैं और पितृऋण से मुक्त न होने के कारण यह सन्देह बना रहता है कि इस देहनाश होनेपर पितरोंका भी नाश होजायगा १५। १६ संसारमें मनुष्य पर चार ऋण रहते हैं देवऋण १ पितृऋण २ ऋषिऋण ३ और मनुष्यऋण ४ इन चारों ऋणों को मनुष्यको देना उचित है विना इन चारों ऋणों के दिये मनुष्य को स्वर्ग नहीं मिलता है १७। १८ यज्ञ करने से देवऋण वेद पढ़ने से ऋषिऋण पुत्रश्राद्ध से पितृऋण और अहिंसा से मनुष्यऋण इस प्रकार चारों ऋणों से मनुष्य मुक्त होते हैं सो मैं देवऋण ऋषिऋण और मनुष्यऋण से तो मुक्त होचुका हूं परन्तु पितृऋण अभी रहगया है इस ऋणसे भी मुक्त होने का कोई उपाय आप ऐसा बतावें जैसे मैं अपने पिताकी स्त्री के व्यासजी से उत्पन्न हुआ हूं १९। २२ यह सुनकर ऋषिलोग बोले कि हम अपनी दिव्य दृष्टि से जानते हैं कि तुम्हारे देवताओं के समान पुत्र उत्पन्न होंगे हमने यह दैवनिर्मित कर्म का फल कहा है इस फलके मिलने के लिये तुम यत्न करो २३। २५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा पाण्डु उन

ऋषियों की बात को सुनकर अपने को शापके कारण से सन्तान उत्पन्न करने में असमर्थ देखकर चिन्ता करने लगा और कुन्ती को एकान्त में बुलाकर बोला कि तू सन्तान उत्पन्न करने का यत्न कर २६। २७ क्योंकि संसार में सन्तानही धर्ममयी कही गई है यज्ञ जप तप और ज्ञान विना सन्तान के पवित्र नहीं होते हैं इस बात को समझकर मैं जानता हूं कि मुझे मरने पर अच्छे लोक नहीं मिलेंगे मुझको तू नष्टही हुआ समझ क्योंकि मुनि के शाप से मैं आप सन्तान उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहाहूं २८। ३१ धर्मशास्त्रमें ६ पुत्र बंधुदायाद और ६ अबन्धुदायाद लिखे हैं उनको सुनो ३२ बन्धुदायाद पुत्र ये हैं स्वयंजात १ जो व्याहता स्त्री के पति से उत्पन्नहो प्रणीत २ जो व्याहता स्त्रीके किसी महात्मा की कृपा से उत्पन्नहो परिक्रीत ३ जो व्याहता स्त्री के वीर्य मोल लेकर उत्पन्नहो पौनर्भव ४ जो ऐसी व्याहता स्त्रीके जिसका व्याह पहले किसी और से हुआहो पहले पतिसे उत्पन्न हुआहो कानीन ५ जो व्याह होने के पहले कन्यापन में हुआहो कुण्ड ६ जो व्याहता स्त्री के व्यभिचार से उत्पन्न हुआहो ३३ और अबन्धुदायाद पुत्र ये हैं दत्त १ जो मा बापने देदियाहो क्रीत २ जो धन देकर मोल लियाहो कृत्रिम ३ जो आप आजाय और यह कहे कि मैं तुम्हारा पुत्रहूं सहोढ़ ४ जो उस स्त्री से उत्पन्नहो जो व्याहने के समय गर्भवती हो ज्ञातिरेता ५ जो उत्तम भाई बांधवों से अपनी स्त्रीके उत्पन्न कराया जाय हीनयोनिधृत ६ जो हीन जाति की स्त्री से उत्पन्न हो ३४ आपत्तिकालमें मनुष्य देवर से भी पुत्र चाहा करते हैं देखो स्वायम्भुव मनु ने आप यह कहा है कि श्रेष्ठ मनुष्यों से उत्पन्न हुआ जो पुत्र है वह अपने वीर्य से उत्पन्न हुये पुत्रसे अधिक धर्म फलका देनेवाला है ३५। ३६ सो हे कुन्ती! मैं पुत्रके उत्पन्न करने में अपने को असमर्थ देखकर तुझको आज्ञा देताहूं कि तू किसी सदृश अथवा श्रेष्ठ मनुष्य से संतान उत्पन्न कर देखो तुमने शारदंडायनी की कथा सुनी होगी कि वह अपने पतिकी आज्ञा से रजस्वला धर्म से निवृत्त होने पर चौराहे पर स्नान और अग्निहोत्र करके एक ब्राह्मण को वरकर उसके पास रही और उससे उसके दुर्जयआदि तीन महारथी पुत्र उत्पन्न हुये इसलिये तू भी मेरी आज्ञा को मान और किसी तपस्वी ब्राह्मणके पास रहकर सन्तान उत्पन्न कर ३७। ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२० ॥

एकसौइक्कीसका अध्याय।

कुन्तीका अपने पतिव्रतधर्म को छोड़नेमें निषेध करना और राजा व्युषिताश्वके पुत्र होनेकी कथाका कहना कि आप अपने योगबलसे मेरे मानसिक पुत्र उत्पन्न कीजिये॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कुंती राजा पांडुकी उक्त बातें सुनकर बोली कि महाराज आपको मुझ पतिव्रता से ऐसी बात कहना उचित नहीं है मेरे तो आपके सिवाय दूसरा मनुष्य नहीं है मैं दूसरे मनुष्यके पास मनसे भी न जाऊंगी मैं तो आपके साथही स्वर्गको भी जाऊंगी आपही मेरे साथ धर्मरूपी संतान उत्पन्न करनेके लिये संगम करें १।५ देखो मुझे इस विषयमें एक कथा पुराणों की यादहै आप उसको सुनिये ६ पहिले समयों में पुरुके वंशमें व्युषिताश्व नाम एक राजाथा उसने सोमयज्ञ और अग्निष्टोम आदि अनेक यज्ञों को करके सब देवता और ऋषियों को प्रसन्न किया और ब्राह्मणों को बड़ी २ दक्षिणा दी कि उसकी कीर्त्ति पौराणिक लोग अबतक गातेहैं उस राजाको अश्वमेध यज्ञ करने पर दश हाथियों का बल मिला और परम तेजस्वी होगया उसने अपने बलसे समुद्र तक पृथ्वी को जीतकर चारों दिशाओं के राजाओंको बांधकर अपने वश में करलिया ७।१५ उसका विवाह राजा काक्षीवान् की परमसुन्दरी भद्रानाम कन्या से हुआ और वह उसके साथ कामकलोल करने लगा कुछ दिनों में अत्यंत कामासक्त होने से उस राजा के राजयक्ष्मा का रोग होगया और वह उसी रोगमें मरगया उसके मरने से उसकी स्त्री को महा दुःख होगया १६।१८ और वह उस राजाके शिरको गोदमें रखकर विलाप कर २ के कहनेलगी कि हे पति! इस संसारमें विना पतिके स्त्रीका जीना व्यर्थहै पतिरहित स्त्रीका मरना ही अच्छा है इससे आप मुझको अपने साथ लेचलो मैं आपके विना क्षण भरभी जीना नहीं चाहती मुझपर प्रसन्नहो और अपने साथ लेचलो मैं आपके पीछे २ छायाकी तरह जहां २ आप जायँगे चली चलूंगी और आप के हितमें रत रहूंगी मैंने चकवा चकवी का वियोग कियाथा निस्संदेह उसी पाप से मेरा आपका वियोग हुआ है जो स्त्री विना पतिके क्षणभर भी जीती है उसका जीना नरकमें गिरने के समानहै मैंने पूर्व जन्ममें जो पाप कियेहैं वही आज मेरे सामने आयेहैं आज से मैं आपके वियोग में सब सुखों को छोड़कर कुशाके बिछौना पर सोकर आपके दर्शनों की बाट देखा करूंगी हे महाराज! मुझ दुःखी और विलाप करती पर कृपा करो और मुझे शिक्षा दो १९।३०

इस प्रकार से विलाप करने पर गुप्त वाणी हुई कि तू उठ मैं तेरे इस संसार में पुत्र उत्पन्न करूंगा और जब तू ऋतुस्नान करचुकेगी तब मैं तेरी सेजपर अष्टमी और चौदस को आऊंगा २१ । २२ यह सुनकर वह पतिव्रता भद्रा उठ बैठी और उसने वैसाही किया कि उसके उस मुर्दे से शाल्वनाम तीन और भद्रनाम चार पुत्र उत्पन्न हुये हे राजन् ! इसी प्रकार से आपभी अपने योगबल से मेरे मानसिक पुत्र उत्पन्न कीजिये २४ । २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणिएकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२१ ॥

एकसौबाईसका अध्याय ।

राजा पांडुका कुन्तीको प्राचीन धर्म कहकर किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण से पुत्र उत्पन्न करने के लिये तैयार करना और कुन्तीका माताके देवआकर्षण मन्त्र मिलने का हाल कहकर पूछना कि किस देवताको बुलाकर सन्तान उत्पन्न करूं ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! राजा पांडु कुन्तीका कहाहुआ धर्मयुक्त इतिहास सुनकर यह बोला कि तैंने कहा सो सब सत्य है पहिले समय में व्युषिताश्व ने ऐसाही किया था परन्तु वह राजा देवताओं के तुल्य था १ । २ अब मैं तुझसे महात्मा ऋषियों का कहाहुआ धर्मतत्त्व कहता हूं तू उसको सुन पहिले स्त्रियोंके लिये कोई मर्यादा न थी स्वेच्छाचारिणी रहतीथीं जहां चाहैं तहां व्यभिचार करतीथीं उनको उस व्यभिचारका दोष नहीं लगताथा पुराना धर्म ऐसाहीथा अब वह धर्म नहीं रहाहै हां पशु पक्षियोंमें तो वही धर्म चला जाता है और उत्तर कुरुखण्डमें भी अबतक बना है वहांके महर्षिलोग अद्यापि उसी धर्मको करतेहैं परन्तु थोड़े काल से वह मर्यादा इस देश से उठगई है कारण उसका यहहै कि उद्दालक नाम एक महर्षि था और उसके श्वेतकेतु नाम एक बेटाथा ३ । ६ एक दिन ऐसा हुआ कि उस श्वेतकेतुकी माताको एक ब्राह्मण हाथ पकड़कर विषय करनेको बलसे लेचला यह देखकर श्वेतकेतु को बड़ा क्रोध हुआ उसको क्रोधित देखकर उसके पिताने कहा कि हे पुत्र ! तू क्रोध मत करे यह सनातन धर्म है पृथ्वीपर चारों वर्णों की स्त्रियां स्वेच्छाचारिणी हैं और गौओं की तरह अपने २ वर्ण में रमती हैं १० । १४ श्वेतकेतु ने इस पुराने धर्म को अच्छा नहीं जाना और यह मर्यादा बांध दी कि आजसे जो स्त्री व्यभिचार करेगी उसको गर्भहत्या के समान पाप होगा और जो पुरुष पतिव्रता स्त्री के साथ भोग करेगा और जो स्त्री पति से आज्ञा दीहुई सन्तान

उत्पन्न करने के लिये और पुरुष के पास न जायगी उन दोनों को भी यही पाप होगा तब से मनुष्यों में यह मर्यादा होगई है परन्तु और जीवों में अभी वही धर्म चलाजाता है १५। २० इसके सिवाय हमने यह भी सुना है कि राजा सौदास की स्त्रीने अपने पतिकी आज्ञासे पुत्र उत्पन्न होने के निमित्त वशिष्ठजी के साथ संगम किया और उसके ऋषिके संयोग से अश्मनाम पुत्र उत्पन्न हुआ २१। २२ और तुझको यह भी मालूम है कि कुरुवंश की वृद्धि करने के लिये हमारा भी जन्म व्यासजी से हुआ है इससे हे प्रिये! तुझे भी मेरी धर्मयुक्त बात मानना उचित है २३। २४ ऋतुकाल आनेपर पतिको स्त्री के साथ संगम करना अवश्य उचित है और अन्य समय में स्त्रीकी इच्छा है संगम करे अथवा न करे यह पंडितों का कहाहुआ पुराना धर्म है २५। २६ और पतिव्रता स्त्री को चाहिये कि जो कुछ पति कहे उसको अवश्य करे उचित और अनुचित का उसमें विचार न करे २७ में आप पुत्र उत्पन्न करने की सामर्थ्य से हीन पुत्र के होने और देखने की इच्छा रखने के कारण से अपनी लाल अंगुलियों से कमल के समान अञ्जली बनाकर हाथ जोड़कर तुझसे विनय करताहूं कि तू मेरी आज्ञा से किसी तपस्वी ब्राह्मण के द्वारा सन्तान उत्पन्न कर तेरे कारण से मुझको पुत्र रखनेवालों कीसी गति मिलेगी २८। ३० वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! कुन्ती राजा पांडुकी उक्त विनययुक्त वाणी को सुनकर बोली कि महाराज जब मैं बापके घर में कन्या थी उस समय मैं अपने बापकी आज्ञा से अतिथियों की सेवा किया करती थी एक समय वहां बड़े भयानक और प्रशंसा के योग्य व्रत के करनेवाले दुर्वासाऋषि आये मैंने उनको अच्छीतरह से टहल करके प्रसन्न किया उन्होंने मुझे प्रसन्न होकर देवताओं को बुलाने की आकर्षणशक्ति देनेका वरदान दिया और मुझको एक मन्त्र बताया और कहा कि इस मन्त्रसे तू जिस देवता को बुलावेगी वह आकर तेरे वशमें होजायगा चाहे उससे तेरा कुछ कामहो या न हो और उस देवता से तेरे पुत्र भी उत्पन्न होगा ३१। ३५ सो अब वह समय आया है ब्राह्मण का वचन किसी प्रकार से मिथ्या नहीं होसक्ता है अब आप पुत्र के उत्पन्न करने के निमित्त जिस देवता के बुलाने की मुझे आज्ञा देवें उसको मैं बुलालूं मुझे केवल आपकी आज्ञा चाहिये ३६। ३८ यह सुनकर राजा पांडु बोले कि तू आजही जैसे बने देवता को बुलाने का यत्न कर हमारी समझ में

तो तू धर्मराज को बुला उससे उत्पन्न हुआ पुत्र भी धर्मात्मा होगा क्योंकि धर्मराज सब लोकों में पुण्यवान् हैं और उनके अंश से उत्पन्न पुत्र भी कभी अधर्म नहीं करेगा ३६। ४२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कुन्ती ने राजा से तथास्तु कहकर नमस्कार की और अपने पतिकी आज्ञा का पालन किया ४३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२२॥

एकसौतेईसका अध्याय।

युधिष्ठिर भीमसेन और अर्जुन का कुन्ती के देवताओं से उत्पन्न होना और उनके जन्मोत्सव देखने को सब देवता आदिकों का आना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कुन्तीने पतिकी आज्ञा पाकर धर्मराज के लिये भेंट और पूजा की सामग्री तय्यार करके दुर्वासा के दिये हुये मन्त्र को विधिपूर्वक जपा और धर्मराज का आवाहन किया उस मन्त्र के प्रभाव से धर्मराज विमानपर बैठे हुये वहां तुरन्त आन पहुँचे उनके आने के समय तक गांधारी को गर्भ धारण किये हुये एक वर्ष होचुका था १। २ धर्मराज ने कुंती के पास आकर हँसके कहा कि तू क्या चाहती है कुंतीने हँसकर उत्तर दिया कि पुत्र ४ तब धर्मराज ने कुंती के साथ संगम किया और उसके प्रभाव से उसके शुक्लपक्ष पञ्चमीतिथि ज्येष्ठा नक्षत्र तुला लग्न अभिजित् मुहूर्त्त मध्याह्न के समय में पुत्र उत्पन्न हुआ ५। ६ उसके उत्पन्न होते ही यह आकाशवाणी हुई कि यह पुत्र धर्मात्माओं में श्रेष्ठ मनुष्यों में उत्तम बड़ा पराक्रमी और सत्यवादी राजा होगा पांडु का यह ज्येष्ठ पुत्र है यह तीनों लोक में युधिष्ठिर नाम से विख्यात होगा ७। ६ राजा पांडु उस तेजस्वी और धर्मात्मा पुत्रको पाकर कुंती से बोला कि क्षत्रियबल से बड़ा होने से कहा जाता है इससे दूसरे बलवान् पुत्रको उत्पन्न कर यह सुनकर कुंतीने उसी मन्त्रसे वायुको बुलाया १०। ११ मंत्र के प्रभावसे वायु देवता मृगपर चढ़ेहुये आये और हँसकर कुन्तीसे बोले कि तू क्या चाहती है कुंतीने लज्जासहित कहा आप कृपाकरके मुझे एक पुत्र ऐसा दीजिये जो बड़ा बलवान् बड़े शरीरवाला और सबके घमंडको तोड़नेवालाहो १२। १३ यह सुनकर वायु ने कुंती के साथ भोग किया और उसके प्रभाव से उसके अत्यन्त पराक्रमी भीमसेन उत्पन्न हुआ १४ उसके उत्पन्न होतेही यह आकाशवाणी हुई कि यह सब बलवानों में श्रेष्ठ है और एक और आश्चर्य हुआ कि कुंती

अपनी गोदमें भीमसेन को लिये हुये बैठी हुई थी बैठे २ भीमसेन सोगया उस समय कुंती व्याघ्रके डरसे अकस्मात् उठकर भागी और भीमसेन उसकी गोदी से गिरपड़ा उसके गिरतेही उस पहाड़ के पत्थर जहांपर वह गिरा था टुकड़े २ होगये इस बात को देखकर राजा पांडुने बड़ा आश्चर्य किया १५। १८ जिस दिन भीमसेन राजा पांडु के उत्पन्न हुआ था उसी दिन राजा धृतराष्ट्र के दुर्योधन उत्पन्न हुआ भीमसेन के उत्पन्न होने पर राजा पांडु यह विचार करने लगा कि मेरे एक पुत्र देवताओं के समान पराक्रमी और होवे तो अच्छा है मैंने सुना है कि इन्द्र सब देवताओं का राजा है और अतुल पराक्रमी है जो मैं उसका आराधन करूं तो निस्सन्देह उसकी कृपासे मेरे बड़ा शूरवीर और युद्ध में अमानुष कर्म करनेवाला पुत्र होगा ऐसा विचारकर राजाने ऋषियों के सम्मत से कुन्ती को एकवर्ष तक व्रत करने को आज्ञा दी और आप एक पाँव से सूर्य के उदय से सूर्य के अस्त होनेतक खड़ा रहकर इन्द्रकी तपस्या करनेलगा बहुत दिनों में इन्द्र प्रसन्न हुआ और राजासे आकर बोला १६। २६ कि हे राजन्! मैं तुझको ऐसा पुत्र दूंगा जो तीनों लोक में प्रसिद्ध होगा गऊ और ब्राह्मणों की रक्षापूर्वक शत्रुओं को नाश करके सब भाइयों को प्रसन्न करेगा २७। २८ यह सुनकर राजा पांडु ने कुन्तीसे कहा कि ले अब इन्द्र तुझपर प्रसन्न है और तुझको तेरे मनका सा पुत्र देने कहता है उसने कहा है कि तेरे महापराक्रमी सूर्यके समान तेजस्वी शत्रुओंका जीतने वाला यशस्वी सब गुणोंसे पूर्ण पुत्र उत्पन्न होगा सो तू अब इन्द्रको बुला और उससे पुत्र उत्पन्नकर २६। ३२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कुन्ती ने राजा की बातको सुनकर इन्द्रका मन्त्र से आवाहन किया इन्द्र उस मन्त्रके प्रभाव से तुरन्त वहां चलेआये और कुन्तीके साथ संगम किया उससे कुन्तीके अर्जुन उत्पन्न हुआ उसके होतेही आकाशवाणी हुई ३३। ३४ कि हे कुन्ती! तेरा यह पुत्र कार्तवीर्य के समान अजेय शिवके तुल्य पराक्रमी और बड़ा यशस्वी होगा ३५। ३६ तुझसे इसकी प्रीति ऐसी होगी जैसे विष्णु और अदिति की हुई थी ३७ और यह मद्र, कुरु, सोम, चन्देरी और काशी आदि देशों के राजाओं को जीतकर अपने वशमें करेगा और इसकी बाहुबल से अग्निदेवता खाण्डववन को जलाकर प्रसन्न होंगे यह भाइयों सहित सब राजाओं को जीतकर तीन अश्वमेध यज्ञ करेगा ३८। ४० इसके सिवाय यह

लड़का परशुराम और विष्णुके समान पराक्रमी होकर महादेवजी को युद्ध में प्रसन्न करेगा और उनसे पाशुपत अस्त्र लेगा ४१ । ४२ और इन्द्रकी आज्ञासे निवातकवच नाम दैत्योंको मारकर स्वर्गसे सब अस्त्रविद्या लावेगा और ब्राह्मण की नष्ट हुई लक्ष्मीको फिर देगा ४३ । ४४ यह आकाशवाणी सुनकर कुन्ती और उस पर्वत के सब तपस्वी ऋषियों को बड़ा हर्ष हुआ और इन्द्रादिक देवताओं ने आकाश से फूलोंकी वर्षा की और आकाश में नगारों का शब्द होने लगा ४५ । ४७ उस समय वहां सब देवता, नाग, गरुड़, गन्धर्व, अप्सरा, प्रजापति और सप्तऋषि आये और सबों ने अर्जुन की पूजा की ४८ और भरद्वाज, कश्यप, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि, वशिष्ठ, अत्रि, मरीचि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, दक्ष, प्रजापति आदि ऋषिलोग अर्जुन का जन्मोत्सव देखने को आये अप्सरा अच्छे अच्छे वस्त्र और भूषण पहिन २ कर अर्जुनके गुणोंको गाने लगीं और महर्षि लोग जय बोलने लगे४६ । ५२ हे राजा जनमेजय ! अर्जुनके जन्मोत्सव में जो २ गंधर्व और अप्सरा नाचने और गाने आयेथे उनकेनाम ये हैं। गंधर्वोंकेनाम ॥ भीमसेन, उग्रसेन, ऊर्णायु, अनघ, गोपति, धृतराष्ट्र, सूर्यवर्चा, युगप, तृणयकार्ष्णि, नन्दि, चित्ररथ, शालिशिरा, पर्जन्य ५३ । ५४ कलि, नारद, बृहक, कराल, महामन ५५ सुवर्ण, विश्वावसु, सुमन्यु, सुचन्द्र, शर, हाहा, हूहू ॥ अप्सराओं के नाम ॥ अनूचान, अनवद्या, गुणमुख्या, गुणावरा, अद्रिका, सोमा, मिश्रकेशी, अलंबुषा, मरीचि, शुचिका, विद्युत्पर्णा, तिलोत्तमा, अम्बिका, लक्षणा, क्षेमा देवी, रम्भा, मनोरमा, असिता, सुबाहु, सुप्रिया, वपु, पुण्डरीका, सुगन्धा, सुरसा, प्रमाथिनी, काम्या, शारद्वती, मेनका, सहजन्या, काणका, पुञ्जकस्थला, ऋतुस्थला, घृताची, विश्वाची, पूर्वचित्ती, अम्लोचा, उर्वशी और धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, अंशभग, इन्द्र, विवस्वान, पूषा, त्वष्टा, सविता, पर्जन्य और विष्णु आदि बारहों सूर्यों ने आकाश में ठहरकर पांडवों के यशको बढ़ाया ५६ । ६५ उस आनन्द के समय में मृग, व्याध, सर्प, निर्ऋति, अजैकपात्, अहिर्बुध्न्य, पिनाकी, दहन, ईश्वर, कथली, स्थाणु और भग आदि एकादश रुद्र दोनों अश्विनीकुमार, अष्टवसु, वायु, विश्वेदेवा और साध्यभी आकर स्थित होगये ६६ । ६८ और कर्कोटक, वासुकि, भुजङ्गम, कच्छप, कुण्ड, तक्षक आदि बड़े बड़े तपस्वी और विषधर सर्प और तार्क्ष्य,

अरिष्टनेमि, गरुड़, असितध्वज, अरुणि और आरुणि आदि विनता के पुत्र भी वहां आकर बैठगये ६६। ७१ हे राजा जनमेजय! यह सब देवता आदि महर्षि और सिद्धलोगों को दिखाई दिये मनुष्यों में से उनको किसीने नहीं देखा ऋषि लोग यह देखकर बड़ा आश्चर्य करके पांडवोंपर विशेष प्रीति करने लगे ७२। ७३ इसके पीछे राजा पांडु और पुत्रकी चाहना करके कुन्ती से बोला कि एक पुत्र और उत्पन्न कर कुन्ती ने कहा कि आप तो सब धर्मों को अच्छी तरह जानते हैं संसार में तीन पुत्र होना तो आपद्धर्म में गिना जाता है चौथे पुत्र के होने से स्वैरिणी और पांचवें से व्यभिचारिणी स्त्री गिनी जाती है आप मुझसे और पुत्र उत्पन्न करने के लिये क्योंकर कहते हैं ७४। ७६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२३॥

एकसौचौबीस का अध्याय।

माद्रीनाम पाण्डुकी स्त्री के अश्विनीकुमारों से दो पुत्र उत्पन्न होना और पांचों पाण्डवों के नामकरण होनेका वृत्तान्त॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कुन्तीके पुत्र और धृतराष्ट्र के लड़कों के उत्पन्न होने के उपरान्त राजा पांडुकी माद्रीनाम स्त्रीने राजा पांडुसे एकदिन एकांत में कहा कि आपको मेरे दुःखकी कुछ भी खबर नहीं है मुझको छोटी होने के कारण से कुंती के आधीन रहने और धृतराष्ट्र के सौपुत्र होने का कुछ दुःख नहीं है परन्तु यह दुःख मारेडालता है कि मेरे कोई पुत्र नहीं है यद्यपि मेरे भाग्यसे अब आपके तो संतान कुन्ती के पुत्र होने से होगई परन्तु तो भी मैं यह चाहती हूं कि कुन्ती मेरे भी मंत्र द्वारा पुत्र उत्पन्न करदे तो कुन्ती का मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह होगा में उससे सवतिपने के अभिमान से नहीं कहसक्ती हूं जो आप कृपाकरके उसे प्रेरणा करें तो मेरा बड़ा प्रिय होगा १।६ यह सुनकर पांडुने कहा कि हमारे हृदय में दिन रात यही विचार रहता था परन्तु तुझसे इस कारण से नहीं कहा था कि तू माने या न माने अब हमको तेरे हृदय की बात मालूम होगई हम यत्न करते हैं कुंती हमारी बात को अवश्य मानलेगी ७।८ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे एक दिन राजा पांडु ने कुन्ती से अकेले में बुलाकर कहा कि मैं कुलकी वृद्धिके लिये एक बात कहता हूं उसके करने से मेरा बड़ा प्रिय और तेरी संसार में बड़ी कीर्त्ति होगी देखो कीर्त्तिके लिये इन्द्रने अधिपति होने पर भी बड़े २ यज्ञ किये और कीर्त्तिही

के लिये ब्राह्मण लोग तप और महर्षिलोग ऊंचे नीचे काम करते हैं इस कारण से तू दुःखरूपी समुद्र में डूबीहुई माद्रीको संतानरूपी नाव में चढ़ाकर पार उतारदे और इस संसार में बड़ा यश लेले ६। ११ यह सुनकर कुन्ती प्रसन्न हुई और माद्री को निकट बुलाकर मंत्र बताकर बोली कि इस मंत्र से जिस देवता को ध्यान करके बुलावेगी वही आकर तेरे पुत्र उत्पन्न करेगा माद्रीने यह सुनकर दो पुत्र होने की इच्छा से मंत्र द्वारा दोनों अश्विनीकुमारों को बुलाया वे दोनों मंत्र के प्रभाव से चले आये और माद्री से संगम करके चले गये उसके प्रभाव से माद्री के दो पुत्र बड़ा नकुल और छोटा सहदेव उत्पन्न हुये उनके उत्पन्न होने पर आकाशवाणी हुई कि ये दोनों पुत्र बड़े स्वरूपवान् भाग्यशाली तेजस्वी और गुणसम्पन्न होंगे १२। १८ इसके पीछे उस पर्वतपर रहनेवाले ऋषियों ने उन पांचों लड़कों को आशीर्वाद देकर बड़े का नाम युधिष्ठिर उससे छोटे का नाम भीमसेन तीसरे का नाम अर्जुन चौथे का नाम नकुल और पांचवें का नाम सहदेव रक्खा १६। २१ वे पांचों लड़के जब एक २ वर्ष के हुये तब पांच २ वर्ष के से मालूम होनेलगे २२ पांडु उन पराक्रमी धीर बड़े वीर और देवमूर्ति पुत्रों को देख २ कर अत्यन्त आनन्द में रहने लगा और उस जगह के रहनेवाले ऋषि और ऋषियों की स्त्रियां उनपर बड़ा प्यार करने लगीं २३। २५ इसके पीछे राजा पांडुने कुन्ती से एकान्त में माद्री के और पुत्र उत्पन्न करने के लिये कहा कुन्ती ने उत्तर दिया कि मैंने एक पुत्र होने के लिये मंत्र दिया था सो उसने अपनी ठगई से युग्म देवों को बुलाकर दो पुत्र उत्पन्न किये मैं ऐसा नहीं समझी थी कि इनका नाम द्विवचन होने से पुत्र भी दोही होंगे इससे अब आप मुझसे उसके लिये कुछ न कहिये २६। २७ पांडु यह सुन कर चुप होरहा और वह सिंहदर्प, सिंहग्रीव, सिंहगामी और महापराक्रमी पांचों पांडुके पुत्र देवताओं के समान थोड़े काल में उसी पर्वत पर बड़े हुये और बड़े वीर धनुर्द्धर और महारथी हुये २८। ३० उनको देख २ कर सब ऋषिलोग आश्चर्य करते थे और वे पांचों और धृतराष्ट्र के सौ पुत्र कुरुवंश के बढ़ानेवाले थोड़ेही दिनों में ऐसे बड़े होगये जैसे जल में कमल जल्दी से बढ़जाता है ३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२४॥

एकसौपच्चीस का अध्याय।

राजा पांडुका काम के वश में होकर माद्री के साथ विषय करके मरजाना
और माद्रीका राजा के साथ सती होने की कथा॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा पांडु अपने दर्शनीय पुत्रों को देख २ कर प्रसन्नतापूर्वक उस पहाड़ के वनमें रहनेलगा एक समय चैत्र वैशाख के दिनों में वसंतऋतु के आने पर जब वह वन ढाक तिलक आंब चम्पा आदि अनेक वनके वृक्षों के फूलने और जहां तहां कमलयुक्त जल के तालाब आदि अनेक स्थानों के होने के कारण से अत्यन्त शोभायमान हो रहा था तब वह राजा अपनी माद्रीनाम रानी सहित इधर उधर घूमने लगा वसंतऋतुकी हवा लगते ही राजा को कामदेव ने आ सताया और उसकी देह में अग्नि के समान ऐसा प्रवृत्त होगया कि राजा उसके वेगको न रोक सका राजा की बुद्धि उस समय नष्ट होगई और कालकी प्रेरणा से ज्ञान भी जाता रहा और कामाग्नि में अंधा होकर शापको भूलगया और माद्री को जो उसके साथ में थी एकान्त स्थान पर विषय की इच्छा से पकड़ लिया रानी ने उसे अपनी शक्ति भर रोका परन्तु उसने बलसे उसके साथ मैथुन किया और पंचत्व को प्राप्त होगया १।१२ माद्री ने यह देखकर राजा को हृदय से लगा लिया और बड़े उच्चस्वर से रोदन किया १३ उसके रोने के शब्द को सुनकर कुन्ती पांचों पुत्रों सहित दौड़ी जब पास आई तब माद्री ने उससे बड़े दुःख से कहा कि तूही अकेली आ लड़कों को वहीं छोड़ आ यह सुनकर कुन्ती लड़कों को कुछ दूर पर छोड़कर अकेली वहां रोती हुई गई और राजा और माद्री को पृथ्वी पर सोते हुये देखकर महाविलाप करके कहने लगी कि हे माद्री! मैं राजा से सदैव बची रहती थी आज तू अकेले में इसके पास कैसे आगई जो राजा शापको भूलकर कामके वश में होगया तुझे राजाकी रक्षा करनी उचित थी परन्तु तू मुझसे धन्य है जो तैंने मरते समय राजा का प्रसन्नमुख तो देख लिया १४।२१ यह सुनकर माद्री ने कहा कि मैंने बहुत २ रोंका परन्तु होनहार के वश होकर राजा से अपना चित्त नहीं रोंका गया २२ यह सुनकर कुन्ती बोली कि मैं राजा की बड़ी धर्मपत्नीहूं मुझेही धर्मफल का बड़ा अधिकार है इससे तू उठ बैठ और लड़कों को पाल मैं राजाके साथ प्रेतलोक को जाऊंगी २३।२४ माद्री बोली तुम लड़कों का पालन करो

राजा के साथ प्रेतलोक में मैं जाऊंगी क्योंकि राजा मुझसे विषय करके अतृप्त विषय भयाहै इससे मुझको यमलोक में जाकर राजा को तृप्त करना उचित है और इसके सिवाय तेरे लड़कों में मेरा भाव अपने लड़कों के समान न होगा और असमान भाव रखने से पाप लगेगा इससे तुम मुझही को पति के साथ जाने दो २५। २७ मुझको ही अपना शरीर राजाके साथ जलाना उचित है तुम मेरे लड़कों को भी अपनों के समान पालन करना अब जाओ और लड़कों की रक्षा करो मुझे तुमसे और कुछ नहीं कहना है यह कहकर माद्री चिता में आग लगाकर पतिके साथ भस्म होगई २८। ३१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पंचविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२५॥

एकसौछब्बीस का अध्याय।

ऋषियोंका पांडुके पांचो पुत्र और कुन्तीको लेकर हस्तिनापुर आना और उनको धृतराष्ट्र को निवेदन करके पांडुके मरने और माद्री के सती होनेका वृत्तांत कहकर वहीं अन्तर्द्धान होजाने की कथा॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस पर्वत के रहनेवाले ऋषि जो मन्त्रशास्त्री और देवताओं के तुल्य थे राजा का मरना देखकर आपस में विचार करने लगे कि इस राजा ने अपना राज्य छोड़कर तपस्या करने के लिये हमलोगों की शरण ली थी अब वह अपने छोटे छोटे पुत्र और स्त्री को छोड़कर मरगया इससे अब हमारा यह धर्म है कि इन लड़कों को माता और राजा की अस्थि सहित इनके देश को पहुँचादें १। ४ वैशम्पायनजी बोले हे राजा! तपस्वी लोग ऐसा विचार करके उन सबको भीष्म और धृतराष्ट्र के पास पहुँचाने के निमित्त कुन्ती को आगे करके राजा पांडु और माद्री के अस्थि लेकर पांचों पांडवों सहित वहांसे चल दिये और थोड़े दिनों में कुरुजांगल देशके पार होकर हस्तिनापुर में पहुँचे यद्यपि वह मार्ग बहुत दूरथा परन्तु कुन्तीने उस बड़े मार्ग को थोड़ा समझा और लड़कों को लाड़से लियेहुये उन तपस्वियों के साथ चली आई ५। ६ वहां पहुँचकर ऋषियों ने द्वारपालकों से कहा कि राजा धृतराष्ट्र से हमलोगों के आनेका हाल कह सुनाओ उन्होंने वैसाही किया और राजा धृतराष्ट्रने उनको सभामें बुलालिया उन सहस्रों मुनियों का आना सुनकर सबलोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ और ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्र और वैश्यआदि सब पुरवासी अपनी २ स्त्रियों और

लड़कों सहित भीष्म विदुर सत्यवती कौशल्या गांधारी सोमदत्त बाह्लीक धृतराष्ट्र के सब पुत्र और राजपुरोहित उन ऋषियों को देखने आये और उनको प्रणाम कर २ के सभामें बैठ गये जब उन सबके आने और बैठने का शब्द बन्द होगया तब भीष्मजी ने उन ऋषियों का विधि के अनुसार पाद्य अर्घ्य आदिसे पूजन किया और उनके सन्मुख अंजली जोड़कर बोले कि महाराज यह राज्य और देश आपका ही है आप इनको ग्रहण कीजिये यह सुनकर उन ऋषियों में से एक वृद्ध ऋषिने सब ऋषियों का मत पाकर कहा १०। २१ कि राजा पांडु जो संसार के भोगों को छोड़कर शतशृंग पर्वत पर तपस्या करने को चला गयाथा आज १७ दिन हुये कि मरकर स्वर्गलोक को चला गया और उसकी माद्रीनाम स्त्री पातिव्रत धर्मसे उसके साथ सती होगई उन दोनों के अस्थि मौजूद हैं और यह कुन्ती राजा की दूसरी रानी है और यह पांचों लड़के राजा पांडुके पुत्र हैं इनमें सबसे बड़ा युधिष्ठिर धर्मराजसे उससे छोटा भीमसेन वायुसे और उससे छोटा बड़ा धनुर्द्धारी अर्जुन इन्द्र से कुन्ती के उत्पन्न हुये हैं और इन तीनों से छोटे यह दोनों स्वरूपवान् लड़के नकुल और सहदेव नामी अश्विनीकुमार से माद्री के उत्पन्न हुये हैं इनके उत्पन्न होने से कुरुकुल की वृद्धि हुई और इनका वेदाभ्यास आदि देखकर तुम प्रसन्न होओगे जो कुछ कर्म राजा पांडु और माद्रीका आप करना उचित समझें सो करें प्रेतकर्म के निवृत्त होनेपर राजा को धर्मगति प्राप्त होने के लिये पितृमेध विधान अर्थात् वृषोत्सर्ग करना उचित है २२। २३ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह ऋषिलोग यह कहकर गुह्यकों सहित वहीं अन्तर्द्धान होगये और गंधर्वनगर की तरह उनको अदृश्य होते हुये देखकर सबको बड़ा आश्चर्य हुआ २४। २५ गंधर्वनगर आकाश में एक उत्पातसूचक चिह्न है॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२६॥

एकसौसत्ताईस का अध्याय।

धृतराष्ट्रका विदुरजीसे राजा पांडु और माद्रीके प्रेतकर्म कराने की कथा॥

उन तपस्वियों के अंतर्द्धान होनेपर राजा धृतराष्ट्र ने विदुरजी से कहा कि आप राजा पांडु और माद्रीका प्रेतकर्म राजाओं की तरह करवाइये और रत्न पशु धन वस्त्र आदि जो जिसको चाहिये दीजिये राजा पांडु शोचने के योग्य

नहीं है क्योंकि उसके पांच पुत्र देवपुत्रोंके समान पराक्रमी मौजूद हैं १। ४ यह सुनकर विदुरजी राजा धृतराष्ट्र से बहुत अच्छा कहकर उठ खड़े हुये और भीष्मजी के साथ अच्छी जगह पर जाकर राजा पांडु और माद्री के अस्थि का संस्कार किया और ऋतुके सुगंधित पुष्प चन्दन और जलती हुई अग्नि पुरोहितों से मँगवाकर उन अस्थियों को सुन्दर अरथी में अच्छे अच्छे वस्त्र बिछाकर रक्खा और उसको अनेक द्रव्य और माला आदि से भूषित करके राजमंत्री जाति के भाई बन्धु सज्जन पुरवासी और कुटुम्बके मनुष्यों सहित छत्र और चमर डुलाते हुये बड़े बाजेगाजे से गंगाजी को लेचले अरथी के आगे २ ब्राह्मण लोग जलती हुई यज्ञकी अग्निको लिये हुये चले और पीछे २ सब पुरवासी चारों वर्णके मनुष्य भीष्म विदुर और सब पाण्डव रोते हुये यह कहते कि यह राजा हमको अनाथ कर चला हाय राजा तू कहां जाता है जब गंगाजी पर पहुँचे तब उस अरथी को एक सुन्दर स्थानपर उतारा ५। १७ और राजा और रानी की अस्थियों को सोने के घड़े में भरे हुये जलसे सींचकर चन्दन अगर आदि अनेक २ सुगन्धित द्रव्यों से लेप किया और अच्छे अच्छे वस्त्र मँगाकर ढक दिया उस समय राजा पांडु मरा हुआ भी जीतासा दीखने लगा इसके पीछे वेदके जाननेवाले ब्राह्मणों की आज्ञानुसार उन घृतावसिक्त अस्थियों का अच्छे अच्छे सुगन्धवाले काष्ठों की चिता में रखकर दाह कर्म किया १८। २३ उस समय पुत्रके मोहसे कौशल्या हायपुत्र २ ऐसा कहकर पृथ्वीपर गिरपड़ी उसकी यह दशा और कुन्ती के परम करुणा और दुःखयुक्त रोने को देखकर भीष्म विदुर आदि सब मनुष्य और पशु पक्षी आदि जीव रोने लगे इसके पीछे भीष्म विदुर सब पांडव और कौरवों ने जलांजली दी और महादुःखी होने लगे उस समय मंत्रियों ने उनको समझा कर रोने से निवृत्त किया २४। ३० बारह दिन तक सब पुरवासियों ने लड़कों सहित पांडवों के तरह राजा के मरने का शोक किया और सबके सब पांडवों के साथ पृथ्वीपर सोते थे ३१। ३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२७॥

एकसौअट्ठाईस का अध्याय।

राजा पांडु और धृतराष्ट्र की माताओं का सत्यवती के साथ जाकर वनमें तपस्या करके स्वर्गलोक को जाना धृतराष्ट्र और पांडुके पुत्रोंको बालचरित्र करना दुर्योधनका भीमसेन को अन्नविष खिलाकर गंगाजी में डालदेना भीमसेनका नागलोक में पहुँचकर चैतन्य होना और वहां कुण्डों के रस पीनेकी कथा॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे कुन्ती भीष्म आदि ने भाइयों सहित राजा पाण्डुका स्वधामृतमय श्राद्ध किया और कुरुवंशी और सहस्रों ब्राह्मणों को भोजन कराके मुख्य मुख्य ब्राह्मणों को अनेक रत्न और गांव दिये उपरान्त वहां से पाण्डवोंको लेकर सब मनुष्य हस्तिनापुर को आये १।३ और सबों ने राजा का इस प्रकार से शोक किया जैसे कोई अपने भाई बन्धुके मरने का करता है ४ इसके पीछे व्यासजी सत्यवती माता को दुःखित देखकर वहां आये और सत्यवती से कहा कि अब आगे बहुत बुरा समय आता है बड़े बड़े छल और प्रपंच इस पृथ्वी पर होंगे और पृथ्वी यौवन-हीन होजायगी और कुरुओं की अनीति से सब देश और कुटुम्बका नाश होगा इससे अब तू वन में जाकर तपस्या और वनवास कर कुटुम्ब का नाश देखने से तुझको बड़ा दुःख होगा यह सुनकर सत्यवती ने व्यासजी को बहुत अच्छा कहकर विदा किया और आप अम्बिका के पास जाकर बोली कि तेरे पुत्र पौत्रों के अन्याय से अब आगे सब कुटुम्ब और देशका नाश होगा इससे जो तेरी इच्छा हो तो मैं कौशल्या को जो पुत्रके शोक से अत्यन्त दुःखी है लेकर वनको जाऊं अम्बिकाने तथास्तु कहकर आपभी वनको चलना स्वीकार किया और सत्यवती उन दोनों पुत्रवधुओं को लेकर वनको चली गई और वे तीनों कठिन तप कर २ के स्वर्ग को चली गईं ५।१३ वैशम्पायनजी बोले इसके पीछे पाण्डव वहां भोग भोगने लगे और थोड़े काल में बड़े होगये १४ जब वे सब पाण्डव और धृतराष्ट्रके पुत्र बालक्रीड़ा करते थे तब पाण्डव सदैव उन सबसे अधिक रहतेथे १५ एक भीमसेन उन सब धृतराष्ट्रके पुत्रों को दौड़ने में लक्ष्यभेदन अर्थात् निशाना लगाने में भोजन में और सब लड़कों के खेलों में हरा देता था १६ कभी उनको पकड़कर छिपजाता था और कभी उनको पकड़ २ कर पाण्डवों के साथ लड़ता था १७ और अकेलाही उन सबके सबों को थोड़े ही कष्टसे पकड़ रखता या दण्ड देकर छोड़ देता था १८ कभी उनके

वालों को पकड़कर मारता और धरती में घसीटे २ फिरता और वह रोते और घसीटने से उनके कन्धे और जांघें छिल जाती थीं १९ जब जलक्रीड़ा करने को वे जाते तब भीमसेन दश दश धृतराष्ट्र के पुत्रोंको गहरे जल में पकड़ लेजाता और गोता देकर मुरदासा करके छोड़ता था २० और जब कभी वह बालक किसी वृक्ष पर फल तोड़ने को चढ़जाते तब भीमसेन उस वृक्षको पकड़ कर हिला डालता और वह सब लड़के और वृक्षके फल नीचे गिरपड़ते २१।२२ इस प्रकार से धृतराष्ट्र के पुत्र शिक्षा और अभ्यास आदि किसी बात में भीमसेन से कभी न जीतसके सदैव ईर्षा करते रहते थे और भीमसेन भी उनसे लड़कपन से ईर्षा रखता था परन्तु किसी के चित्त में द्रोह न था २३।२४ दुर्योधन भीमसेन के उस प्रसिद्ध बलको समझ कर दुष्टता और पापबुद्धिसे यह विचारने लगा कि यह भीमसेन बड़ा बलवान् है और हम सब से ईर्षा रखता है इससे इसको छल से दण्ड देना योग्य है जो इसको सोते हुये को गंगाजी में डाल दिया जावे तो इसके मरजाने पर युधिष्ठिर और अर्जुन को बलसे बांधकर कारागृह में डाल दिया जायगा और मैं अकंटक होकर राज्य करूंगा यह विचार कर दुर्योधन भीमसेन के मारने का नित्य दांव देखने लगा २५।३० एक समय दुर्योधन ने प्रमाणकोटिनाम गंगा के एक स्थान में जलक्रीड़ा करना विचार कर बड़े २ डेरे और तम्बू ऊंची ऊंची ध्वजा लगवाकर बनवाये और वहां गड़वा दिये और चतुर मनुष्यों से भक्ष्य भोज्य पेय चोष्य और लेह्य आदि अनेक प्रकार के भोजन के पदार्थ बनवाये इसके पीछे दुर्योधन ने युधिष्ठिर से कहा कि चलो आज गंगा किनारे चलकर सब भाई जलक्रीड़ा करें युधिष्ठिर बोले अच्छा चलो फिर सबजने हाथी घोड़ा और रथ आदि अनेक सवारियों पर बैठकर वहां से चलदिये और वनके समीप पहुँचकर महाजनों को बिदा कर दिया और आप सब उस वन में इस प्रकार से घुसगये जैसे सिंह पर्वत की कन्दरा में प्रवेश करता है उपरान्त उन उत्तम २ डेरों में जो बड़े उजले अनेक २ प्रकार के चित्र और जाली झरोखे और खम्भ छज्जे आदि से बड़े शोभायमान लगते थे जाकर बैठगये और वहां की शोभा देखने लगे जहां तहां कूप और बावली बनी हुई थीं ताल और तलैयों में कमल फूल रहे थे और उस सब स्थान में सुन्दर २ ऋतुके फूल फूले हुये थे ३१।४३ थोड़ी देर बैठने पर सबोंने मिलकर वहां भोजन किया ४४

दुर्योधन पापी ने भीमसेनको मारने की इच्छा से उसके भोजनमें कालकूट नाम विष मिलवा दिया और पेटमें कटारी रखकर ऊपरे मनसे हँस हँसकर भीमसेनको वह विष मिले हुये पदार्थ खिलाये भीमसेन उस मर्म को न जानकर स्वादुपूर्वक बहुतसा भोजन करगया और दुर्योधनने अपना कार्य सिद्ध हुआ समझा ४५।४८ भोजन करने के पीछे सब भाइयों ने जलक्रीड़ा की और सन्ध्या होने पर सबों ने उस रात्रिको वहीं बसना विचारकर सूखे वस्त्र पहर लिये भीमसेन वहांपर लेटगया और जलक्रीड़ा में अत्यन्त व्यवसायसे थक जाने और विषके आवेश में मोहित होने के कारण से वहां की ठण्ढी ठण्ढी हवा में अचेत होकर सो गया ४६।५३ उस समय दुर्योधन ने भीमसेन के सब अङ्गको वनकी बेलि आदि से बांधकर उसको अथाह जल में गिरवा दिया और वह गिरकर नीचे को चलागया और अचेतही नागलोकमें पहुँचा वहां उसको बड़े विषधर सर्पोंके कुमार काटने लगे उनके जङ्गमविष से भीमसेन का स्थावर कालकूट विष दूर होगया और उसने चैतन्य होकर सब बन्धनों को तोड़डाला और सर्पों को मारने लगा बहुतसे सर्प मारडाले और जो जीते बचे वह भागकर वासुकि नाम अपने राजाके पास गये और उससे कहा कि महाराज एक मनुष्य बड़ा पराक्रमी बँधा हुआ मृतकप्राय जल में डुबाया हुआ हमारे लोक में पहुँचा था हम उसको काटनेलगे काटनेसे वह जीउठा और बन्धनोंको तोड़कर हमको मारने लगा हम जानते हैं कि वह विष पिये हुये होगा जो हमारे काटनेसे जी उठा आप उसको चलकर देखिये ५४।६२ यह सुनकर वासुकि नागोंसहित भीमसेनके देखनेको आया जब निकट पहुँचा तब आर्यकनाम नाग कुन्तीके नानाने उसे पहिचान लिया और उससे लिपटकर मेरा धेवता मेरा धेवता कहकर खूब मिला यह देखकर वासुकि प्रसन्न हुआ और आर्यकसे बोला कि इसकी क्या सेवा करनी चाहिये हमारी समझमें इसको बहुतसा धन और रत्न देकर बिदा करो यह सुनकर आर्यक बोला कि महाराज जो आप प्रसन्नहैं तो इसको वह रस पीनेको दीजिये जिसके पीने से दशसहस्र हाथीका बल होजाताहै धन और रत्नों से क्या होगा वासुकि बोला बहुत श्रेष्ठ है वासुकि के यह कहने पर भीमसेन पवित्र होकर पूर्वाभिमुख बैठ गया और कुण्डों में भरेहुये रस को पीने लगा जब आठ कुण्डों का रस पी चुका तब नागराज की बताई हुई उत्तम सेजपर सुखपूर्वक सोगया ६४।७१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि अष्टविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२८॥

एकसौउन्तीस का अध्याय ।

भीमसेनके न मिलनेपर कुन्ती और युधिष्ठिर का शोच करना विदुरजीका उनको धैर्य देना और भीमसेनका आठवें दिन नागलोक से आकर सब वृत्तान्त कहना और विदुरजी का पाण्डवोंका बाणविद्या सीखने को कृपाचार्य से निवेदन करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! भीमसेन की तो यहां यह गति हुई और वहां जलक्रीड़ा समाप्त होनेपर दुर्योधन आदिक सब भाई वहां से अपनी २ सवारियों पर चढ़कर यह कहते हुये चले कि भीमसेन आगे गया है युधिष्ठिर भी उनके साथ साथ उनके पाप और अन्तःकरण की मलीनता और वैरभाव को न जानकर विश्वासपूर्वक चला आया जब सब हस्तिनापुर में पहुँचे तब युधिष्ठिर ने कुन्तीको नमस्कार करके पूंछा कि यहां भीमसेन तो नहीं आया है हमने वहां उद्यान में उसको सब जगह ढूंढ़ा परन्तु जब नहीं पाया तब यह समझा गया कि आगे गया है अब यहां भी मैं उसको नहीं देखता हूं तैंने तो उसे कहीं नहीं भेजा है जो भेजा हो तो मुझे बता दे विना भीमसेन के मेरा चित्त स्वस्थ नहीं होता है वड़ी विलम्ब हुई अभीतक आया नहीं है कहीं वहीं तो मारा नहीं गया जहां वह सोरहा था यह सुनकर कुन्ती हाय २ कर रोने लगी और बोली कि मैंने भीमसेन को नहीं देखा है तू छोटे भाइयों को लेजाकर ढूंढ़१।११ यह कहकर कुन्तीने विदुरजीको बुलाकर कहा कि कल उद्यानमें सब भाई गये थे वहां से आज और तो सब लौट आये हैं परन्तु भीमसेन अभी नहीं आया है वह दुर्योधन की आंखों में सदैव खटका करता था क्योंकि वह दुर्मति क्षुद्राज्य का लोभी और निर्लज्ज है इससे मुझको यह बड़ा सन्देह होरहा है कि कहीं उसको मार तो नहीं डाला १२ । १५ यह सुनकर विदुरजी ने कहा कि तू चिन्ता मत करे और ऐसा मत कहे जो वह यह सुन पावेगा तो तेरे इन लड़कोंको भी मारडालेगा तेरे सब लड़कों की बड़ी आयु है जैसा मुनीश्वरों ने कहा था भीमसेन आवेगा और तुझे आनन्द देगा १६ । १७ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! विदुरजी यह कहकर अपने घरको चले गये और कुंती अपने पुत्रोंको लेकर घरमें बैठी चिन्ता करती रही १८ आठवें दिन भीमसेन उस रसके पचजाने पर जगा और अतुलबल उसके शरीर में होगया उसको जगा हुआ देखकर सर्पोंने कहा कि इस रस के प्रभावसे तुम्हारे युद्ध में दश सहस्र हाथीका बल होगा अब तुम यहां के दिव्य जलसे स्नान करके अपने घर

को जाओ तुम्हारे भाई तुम्हारी चिंता करते होंगे १६। २२ यह सुनकर भीमसेन ने स्नान किया और उत्तम वस्त्र और माला पहिनकर नागों के दिये हुये भोजन और विषके दूर करनेवाली औषधी खाई उपरान्त नाग उसको गहना आदि देकर जलके बाहर उसी स्थान पर पहुँचा गये जहां वह सब जलक्रीड़ा करने को आये थे और वहीं अन्तर्धान होगये भीमसेन वहां से उठकर घरको आया और बड़े भाई और माता को नमस्कार करके छोटे भाइयों पर प्यार किया माता और सब भाई उससे बड़े हर्षके साथ मिले और परमानन्द के साथ बैठ गये उस समय भीमसेन ने दुर्योधन के विष देने और नागलोक में पहुँचने का सब हाल कह सुनाया उस को सुनकर युधिष्ठिर ने कहा कि अब इस हाल को किसी से न कहना और पाण्डव तब से सावधान होकर रहने लगे २३। ३४ दुर्योधन कर्ण और शकुनि तीनों पाण्डवों के मारने का उपाय किया करते थे पाण्डव उनके मन्त्रको जानकर विदुरजी के कहने के अनुसार किया करते थे और विदुरजी ने उनको धनुर्वेद की शिक्षाके लिये शरस्तम्ब पर उत्पन्न हुये वेदशास्त्र के परमवेत्ता कृपाचार्य को निवेदन कर दिया ३५। ३८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकोनत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १२६॥

एकसौतीस का अध्याय।

कृपाचार्य द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा की उत्पत्ति और कृपाचार्यका
शरद्वान् ऋषि और द्रोणाचार्य का परशुरामजी से अस्त्रविद्या
पाने और आचार्यपदवीको पहुँचने की कथा॥

राजा जनमेजय बोले हे वैशम्पायनजी! आप कृपा करके कृपके शरस्तम्ब पर उत्पन्न होने और अस्त्रविद्या पानेकी कथा वर्णन कीजिये १ वैशम्पायनजी बोले गौतम नाम एक महर्षि थे उनके शरद्वान् नाम एक पुत्र था उसने बड़ी तपस्या करके वेद और अस्त्रविद्या सीखी और उसकी बुद्धि जैसी धनुर्विद्या में रहती थी वैसी वेदों के पढ़ने में नहीं रहती थी इन्द्र उसकी तपस्या और अस्त्रविद्या की निपुणता को देखकर शङ्कित हुआ और विघ्न करने के लिये उसने उसके पास जानपदी नाम देवकन्याको भेजा २। ६ वह एक वस्त्र पहिने हुये शरद्वान् के आश्रम में आई शरद्वान् उसके सुन्दर स्वरूपको देखकर कामासक्त होगये धनुष्बाण हाथ से गिरपड़ा और स्थान छोड़कर भागे भागने में उनका शरीर कांपने लगा और उनका वीर्य दो टुकड़े होकर अचेतता से शरमें

गिरपड़ा उस शरमें उसवीर्यसे एकपुत्र और एक कन्या उत्पन्न होगई ७।१३ इसके पीछे एक समय वहां राजा शन्तनु अहेर खेलने को गया उसकी सेना के किसी मनुष्य ने उस लड़के और लड़की को धनुष् और बाण सहित देखा और यह जानकर कि यह किसी ऐसे ब्राह्मणके पुत्र और पुत्री हैं जो धनुर्विद्या में अत्यन्त निपुण था राजा से जाकर सब हाल कह सुनाया राजा उसकी बात सुनकर वहां चला गया और उन दोनों को देखकर घर ले आया और उनको पुत्र और पुत्रीके समान पाला और संस्कार किया थोड़े दिनों में जब वे कुछ सयाने हुये तब राजा ने उस पुत्रका नाम कृपायुक्त घर लाने के कारण से कृप रक्खा इसके पीछे शरद्वान् को तपके प्रभाव से यह ज्ञान हुआ कि मेरे पुत्र और पुत्री दोनों राजाकी रक्षामें हैं यह जानकर शरद्वान् राजाके पास आये और कृपको अपना गोत्र आदि सब बताकर चारों प्रकार की धनुर्विद्या अस्त्रविद्या और अन्य बहुतसी गुप्तविद्या पढ़ाईं उन विद्याओं को पढ़कर कृप थोड़ेही दिनों में आचार्यपदवी को पहुँचगया और उससे सब पाण्डव धृतराष्ट्र के पुत्र और यादव आदि राजाओं ने आकर धनुर्विद्या सीखी १४।२३ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे भीष्मजी उन सब अपने पौत्रोंको विशेष बाणविद्या सिखाने की इच्छासे किसी ऐसे आचार्य को ढूँढ़ने लगे जो बड़ा बलवान् बुद्धिमान् और सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्रों की विद्या में अत्यन्त निपुण हो भरद्वाज के पुत्र द्रोणाचार्य को जो सम्पूर्ण वेदशास्त्र बाणविद्या और अस्त्रविद्या में परम प्रवीण और पण्डित थे बुलाकर यथावत् पूजन किया और उक्त विद्याओं के सीखने के लिये सब लड़कों को उनका शिष्य करा दिया द्रोणाचार्य ने उन सब पाण्डव और धृतराष्ट्र के पुत्रों को धनुर्वेद बहुत अच्छी तरह से पढ़ाया और वे सब थोड़ेही दिनो में द्रोणाचार्य की कृपासे सब शास्त्रों में निपुण होगये २४।२६ यह सुनकर राजा जनमेजय बोला कि महाराज मैं द्रोणाचार्य और उनके पुत्र अश्वत्थामा की उत्पत्ति उनके हस्तिनापुर आने का हेतु और अस्त्रविद्या पानेका वृत्तान्त विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं आप कृपा करके कहिये ३०।३१ वैशम्पायनजी बोले भरद्वाज नाम एक बड़े व्रतके करनेवाले ऋषि थे वह हरद्वार में गंगातट पर रहा करते थे उन्होंने एक दिन गंगास्नान करते में घृताची अप्सरा को नग्न देखा और उसके अत्यन्त सुन्दर यौवनस्वरूप को देखकर कामासक्त होगये उस

समय भरद्वाजजी का चित्त काम से प्रेरित होने से उस अप्सराकी ओर ऐसा लग गया कि उनका वीर्य गिरने लगा भरद्वाजजी ने उस वीर्यको द्रोणनाम यज्ञपात्र में रखदिया उस वीर्यसे उस द्रोणमें द्रोणाचार्य उत्पन्न हुये सयाने होने पर द्रोणाचार्य सम्पूर्ण वेद और वेदके अंगों को पढ़कर पंडित होगये फिर भरद्वाजजीने द्रोणाचार्यको अग्निवेश मुनिको सौंप दिया और उनसे द्रोणाचार्य ने आग्नेय अस्त्र सीखा ३२। ३८ भरद्वाजजीका पृषतनाम पांचालदेश का राजा बड़ा मित्र था उसके द्रुपदनाम एक पुत्र था वह पुत्र और द्रोणाचार्य दोनों साथ पढ़ा और खेला करते थे कुछ दिनों में पृषत तो मरगया और द्रुपद पांचाल देशका राजा हुआ ३९। ४१ और भरद्वाजजी भी स्वर्गवासी हुये उनके पीछे द्रोणाचार्य ने अपने पिताके आश्रम में रहकर बड़ा तप किया और पिताकी आज्ञाको पूरा करने के लिये पुत्रके लोभ से अपना विवाह शारद्वती कृपी नाम कृपाचार्य की बहिन से जो बड़ी धर्मात्मा थी किया उससे उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ उसने होतेही घोड़ेके हींसने कासा शब्द किया उस समय आकाशवाणी हुई कि इस लड़केने होतेही अश्वकासा शब्द कियाहै इससे इस का नाम अश्वत्थामा होगा ४२। ४६ द्रोणाचार्य उस पुत्रको देखकर प्रसन्न हुये और अपने आश्रम में रहा किये थोड़े दिनों में उन्होंने यह सुना कि परशुराम जी जो सब अस्त्र शस्त्रविद्या में परम निपुण थे ब्राह्मणों को अपना सब धन दिया चाहते हैं यह सुनकर द्रोणाचार्य अपने सब शिष्यों सहित महेन्द्रनाम पर्वत पर परशुरामजी के पास गये परशुरामजी उस समय सब छोड़कर वनको जाने वाले थे द्रोणाचार्य ने उस समय उनसे अपना उत्पन्न होना अंगिरस के कुलमें कहकर परशुरामजी के चरणों की वंदना की और कहा कि महाराज मैं द्रोण नाम भरद्वाजजी का अयोनि से उत्पन्न पुत्रहूं आपके पास कुछ मांगने आया हूं ४७। ५४ परशुरामजी बोले कि तेरा आना शुभ हो तू ब्राह्मणों में श्रेष्ठ है मुझसे क्या चाहता है द्रोणाचार्य बोले कि महाराज मैं अनंत धन चाहता हूं ५५। ५६ परशुरामजी ने कहा कि मेरे पास जो कुछ सोना चांदी था आज सब ब्राह्मणों को देचुका और समुद्र पर्यंत पृथ्वी कश्यपजी को देदी अब केवल मेरे पास मेरा शरीर और अनेक अस्त्र रहगये हैं इनमें जो तुम मांगो सो हम तुमको देदें ५७। ६० द्रोणाचार्य बोले कि अच्छा महाराज मुझको संहार-प्रयोग और रहस्यसहित संपूर्ण अस्त्र दीजिये ६१ यह सुनकर परशुरामजी

ने द्रोणाचार्य को अशेष अस्त्र और बाणविद्या संहारप्रयोग और रहस्य सहित सिखा दी और वह वहां से विदा होकर अति प्रसन्न चित्त अपने परम प्यारे मित्र द्रुपदके पास आये ६२ । ६३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३० ॥

एकसौइकतीस का अध्याय ।

द्रोणाचार्यका पांचालदेशके राजाके पास जाकर उससे अपनी मित्रताका हाल सुनाना राजा का तिरस्कार करना द्रोणाचार्यका क्रोधित होकर हस्तिनापुरमें आना और भीष्मजीका उनकी बाणविद्याकी निपुणताका हाल सुनकर उनको टिकाना और द्रोणाचार्यका भीष्मजीसे अपने वहां आनेका वृत्तान्त कहना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जब द्रोणाचार्यने द्रुपद के पास जाकर बड़ी प्रीति से कहा कि हे राजन् ! मैं तेरा मित्रहूं द्रुपद यह सुनकर प्रभुता के मदसे क्रोधित होकर टेढ़ी भौंह और लाल नेत्र किये हुये बोला कि अरे ब्राह्मण तेरी बुद्धि संस्काररहित है तू यह नहीं जानता है कि शोभाहीन और दरिद्री मनुष्यों से बड़े राजाओं की मित्रता क्योंकर होसक्री है १ । ५ समय के बीतनेपर पुरानी मित्रताभी जीर्ण होजाती है हमारी तेरे साथ लड़कपनकी मित्रता थी सो मित्रता कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो अमर होकर रहै कालके व्यतीत होने और क्रोधसे मित्रता जाती रहती है हमारी तेरी मित्रता उस समय में अर्थ सम्बन्धी थी अब उसको बहुत दिन होगये उस मित्रता को अब मत मानो क्योंकि धनाढ्य दरिद्री पंडित मूर्ख शूरवीर नपुंसक पुष्ट और निर्बल इनकी मित्रता विवाह और वैर शोभा नहीं देतेहैं इनकी शोभातो बराबरही में है शास्त्री और मूर्ख रथी और अरथी राजा और राजाधिराज की आपस में क्या मित्रता है ६ । ११ यह निठुर वचन सुनकर द्रोणाचार्य को बड़ा क्रोध हुआ और दो घड़ीतक मौन रहकर मनको प्रबोध कर कुरुवंशियों के देशको चले आये और वहां से हस्तिनापुर में पहुँचे वहां जाकर कृपाचार्य के घर में गुप्तवास करने लगे द्रोणाचार्यका पुत्र कृपाचार्य के पीछे पांडवों को अस्त्रविद्या सिखाता था परन्तु इस बातको किसीने नहीं जाना १२ । १५ द्रोणाचार्य कुछ दिनों तक वहां गुप्त बसे रहे एक समय ऐसा हुआ कि कुरुवंश के सब लड़के गुल्ली दंडा खेलने को नगरके बाहर गये वहां खेलते खेलते अकस्मात् उनकी गुल्ली कुयें में जा पड़ी उसके निकालने के लिये उन बालकों ने अनेक यत्न किये

परन्तु वह गुल्ली कुयेंसे न निकली हारकर बेर बेर उस कुयें में शिर झुका झुका कर गुल्ली को देखने लगे उस समय उन बालकों ने उस निर्जल कुयें के पास एक काले वृद्ध ब्राह्मण को कुछ सत्कर्म करते हुये देखा वह बालक उसको देख कर उसके पास चलेगये और उसको चारोंओर से घेरलिया उनको देखकर द्रोणाचार्यने मुसकरा कर कहा कि बड़े आश्चर्य की बातहै कि क्षत्रिय होकर तुम से यह गुल्ली नहीं निकलती तुम्हारे बल और अस्त्रशिक्षा को धिकार है हमसे कहो तो गुल्ली अँगूठी दोनों को कुयेंमें डालकर बाणों या सींकों से निकाल दें तुमको हमें भोजन देना चाहिये १६।२४ यह कहकर द्रोणाचार्यने अपने हाथसे अँगूठी उतारकर उस अंधे कुयें में डाल दी यह देखकर युधिष्ठिरने कहा कि जो तुम इसको निकाल दोगे तो कृपाचार्य के मत से तुमको भिक्षा शीघ्र मिल-जाया करेगी यह सुनकर द्रोणाचार्य हँसकर बोले कि देखो यह मुट्ठी की बराबर सींकें हैं हम मंत्र से गुल्ली को एक सींक से छेदते हैं और उस सींक को दूसरी से और दूसरी को तीसरी से छेदकर तुम्हारी गुल्ली को निकाले देते हैं तुम मंत्र का पराक्रम देखो यह बात दूसरा मनुष्य नहीं करसक्ता है २५।२८ वैशम्पायन जी बोले हे राजा जनमेजय! यह कह कर द्रोणाचार्य ने उक्तरीति से गुल्ली को निकाल दिया लड़के उसको देखकर बहुत प्रसन्न हुये और बोले कि महाराज अँगूठी को भी निकाल दीजिये तब द्रोणाचार्य ने धनुष बाण लेकर बाण से अँगूठी को छेदकर निकाल दिया लड़के यह बात देखकर बड़े आश्चर्य में होगये और द्रोणाचार्य को नमस्कार करके बोले कि महाराज आप सत्य कहते हैं आपकी समान कोई नहीं है आप कौन हैं और आपका क्या काम है जो कुछ आप हमसे कहैं सो हम आपका काम करें २९।३३ वैशम्पायनजी बोले कि द्रोणाचार्य उन बालकों की बात सुनकर बोले कि तुमलोग जाकर हमारा यह सब हाल भीष्मजी से कहो वह हमको जान जायँगे ३४।३५ लड़के यह सुनकर अच्छा कहकर भीष्म जी के पास गये और उनसे द्रोणाचार्य का सब वृत्तान्त कहा ३६ भीष्मजी वह सब वृत्तान्त सुनतेही जानगये कि द्रोणाचार्य हैं और यह समझकर कि वह इन लड़कों को अस्त्रविद्या सिखाने के लिये बहुत श्रेष्ठ हैं आप वहां चले गये और उनको आदरपूर्वक लाकर पूंछा कि आपका आना क्योंकर हुआ है द्रोणाचार्य बोले कि बहुत दिन हुये मैं अग्निवेश महर्षि के पास बाण-

विद्या सीखने को गया था वहां से ब्रह्मचारी होकर मैंने बहुत दिनोंतक गुरु की सेवा की और बाणविद्या सीखी उन्हीं दिनों में वहां पांचालदेश के राजा का यज्ञसेन नाम पुत्र भी बाणविद्या सीखने को आया करता था ३७। ४२ साथ पढ़ने और अस्त्रविद्या सीखने के कारण से मेरी उसकी परम मित्रता होगई और हम दोनों प्रीतिपूर्वक वहां रहते रहे उस समय उसने मुझसे यह कहा कि हे द्रोण ! मैं अपने पिताका प्यारा पुत्रहूं जिस समय मेरा राज्याभिषेक होगा मैं सौगंद खाकर कहता हूं कि मैं तेरे निमित्त सब भोग करदूंगा मेरा राज्य तेरे ही आधीन रहैगा यह कहकर वह अस्त्राभ्यास समाप्त होनेपर अपने घरको चलागया और मैं उसकी बातको मनमें धरे रहा इसके पीछे मैंने पिताकी आज्ञा से पुत्रके लिये बड़ी बुद्धिमान् व्रत करनेवाली धर्मात्मा स्त्री से अपना विवाह किया और उससे मेरे अश्वत्थामा नामी बड़ा पराक्रमी और सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ ४३।५० लड़कपन में वह धनी मनुष्यों के लड़कों को दूध पीते देखकर घरमें आकर दूध मांगता और दूध न मिलने के कारण से रोता मैं यह बात देखकर बड़ा दुःखी हुआ और शुद्धप्रतिग्रह लेनेकी इच्छा से गाय के निमित्त सब देशों में फिरा परन्तु किसीने मुझको गाय न दी तब मैं अश्वत्थामा को जलमें चूर्ण घोलकर सफ़ेद २ जल पिलाकर उसे बहला देता और वह उसीको दूध समझकर बड़े आनन्द से पी लेता और उन धनी मनुष्यों के बालकों में जाकर यह जानकर कि मैंने भी दूध पिया है नाचता वे बालक उसका यह हाल देखकर उसकी हँसी करते और यह निन्दा करते कि द्रोणको धिक्कार है जो कहीं धन नहीं पाता है और उसका लड़का आटा घुला हुआ जल पीकर अपने को दूधपीनेवालों में गणना करके नाचता है उनकी यह निन्दा सुनकर मैंने अपने को बहुत निन्दित समझा और धनके लोभसे धनी मनुष्यों की सेवा करना न अङ्गीकार करके वहां से अपने प्यारे पुत्र और स्त्री सहित पहिली मित्रता को समझकर राजा द्रुपद के पास चलागया ५१। ६० वहां पहुँचने पर मैंने सुना कि आजकल पांचाल देशकी गद्दीपर द्रुपदही है यह सुनकर मैंने द्रुपद की पहिली बात याद करके अपने को बड़े हर्ष से कृतार्थ माना और राजा से मिलने पर मैंने कहा कि हे द्रुपद! मैं द्रोणनाम तुम्हारा मित्र हूं ६१।६२ द्रुपद मेरी बातको सुनकर इसप्रकार से मुझसे हँस करके कहने लगा जैसे कोई तुच्छ आदमी से कहता है ६३ कि तेरी बुद्धि संस्काररहित मालूम

होती है जो तू मुझको अपना मित्र बतलाता है पुरानी जान पहिंचान समय बहुत होजाने पर जाती रहती है मेरी तेरी केवल लड़कपन में मित्रता थी परंतु तू यह नहीं जानता है कि वेदपाठी की वेदरहित से रथपर सवारकी बेरथवाले से धनी की दरिद्रीसे पण्डित की मूर्ख से शूरवीरकी नपुंसक से राजाओंकी ऐसे मनुष्योंसे जो राजा नहीं हैं मित्रता कभी नहीं होती है मित्रता की शोभा तो बराबरवालोंही में है इसके सिवाय मित्रता समय पाकर नाश भी होजाती है वह कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो अमर हो इससे तू पुरानी मित्रताको छोड़दे मुझे स्मरण नहीं आता है कि मैंने तुझसे राज्य के विषय में कुछ कहा हो हां एक रात्रि का भोजन तुझको देसक्ता हूं ६४। ७२ यह सुनकर मुझको बड़ा क्रोध हुआ और वहां से स्त्रीसहित चलदिया और अपने मनोरथ को पूरा करने के लिये शिष्यों को ढूंढ़ता हुआ यहां हस्तिनापुर को आया हूं मैं आपके मनोरथ को बढ़ाऊंगा अब जो कुछ आप आज्ञा दें सो मैं करूं ७३। ७५ यह सुनकर भीष्मजी बोले कि आप धनुष् को उतारकर बैठिये और इस कुरुकुल में सबसे पूजित रहकर सब लड़कों को अस्त्रविद्या सिखाइये कुरुओंके पास जो कुछ राज्य और धनहै उस सबको और कुरुओं को आप अपनाही समझिये आप हमको भाग्य से मिले हैं आपने बड़ी कृपा की जो यहां आये अब जो कुछ आपकी इच्छा हो सो हमसे कहिये आपका मनोरथ तत्काल पूरा किया जायगा ७६।७६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३१ ॥

एकसौबत्तीस का अध्याय।

द्रोणाचार्य का सब धृतराष्ट्र के पुत्र और पाण्डवों को अस्त्रविद्या सिखाने और अस्त्राभ्यास में परीक्षा करने की कथा ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीष्मजी के पूजा करने पर द्रोणाचार्य ने कुरुओं के वंश में स्वस्थतापूर्वक वास किया और भीष्मजीने अपने सब पौत्रों को अस्त्रविद्या सीखनेके लिये उनका शिष्य करादिया और उनको रहने को सुन्दर घर धन धान्य आदि अनेक प्रकार के द्रव्य दिये १।२ द्रोणाचार्य बड़े प्रेम से उन सब कुरु पाण्डवों को शिष्यभाव से ग्रहण करके अस्त्र शिक्षा करने लगे एक दिन एकान्त में शिष्योंको प्रणाम करते देखकर द्रोणाचार्य ने उनसे कहा कि मेरे मनमें एक काम है सो जब तुम अब अस्त्र हमसे सीख चुकोगे तब हम उसके करनेको तुमसे कहेंगे कहो तुमलोग हमारे उस काम

को करदोगे या नहीं ४।६ वैशंपायनजी बोले कि द्रोणाचार्य की बातको सुनकर सब कुरुवंशी चुप हो रहे थोड़ी देर में अर्जुन ने कहा कि महाराज मैं आपके उस काम को पूरा करूंगा यह सुनकर द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बड़ी करुणासे प्रेमपूर्वक छाती से लगा लिया और उसके मस्तक को बार २ सूंघ २ कर प्रसन्न हुये ७।८ इसके पीछे द्रोणाचार्य ने पाण्डवों को संपूर्ण अस्त्र सिखाये और अन्धक वृष्णि आदि अनेक वंशों के राजा लोग अस्त्रविद्या सीखने को वहां आकर द्रोणाचार्य के शिष्य हुये और सूतका बेटा कर्ण भी वहां अस्त्रविद्या सीखने को आता था वह अर्जुन से ईर्षा रखता था और दुर्योधन का आश्रय पाकर कुटिलता करता था ६।१२ अस्त्राभ्यास में अर्जुन सबसे अधिक हुआ और द्रोणाचार्य उसको सब शिष्यों में असमान मानने लगे १३।१५ द्रोणाचार्य सब शिष्यों को अस्त्रविद्या अच्छी तरह सिखाते थे और जब उनको कोई रहस्यकी बात अपने पुत्रको बतानी होती तब वह अपने पुत्रको बड़े मुखका घड़ा पानी भरलाने को देते और अन्य सब शिष्यों को बहुत छोटे मुखका घड़ा देते जिसमें पुत्र पानी लेकर शीघ्र आजावे और उस समय अकेले में उसको वह रहस्य की बात बता देते अर्जुन तब वारुणास्त्र से घड़े को भरकर गुरुपुत्र के साथही आजाता इसकारण से अर्जुन सब गुणों में गुरुपुत्रके बराबर ही रहता था किसी बात में उससे कम नहीं था १६।१६ और द्रोणाचार्य भी उसकी सेवा और अस्त्राभ्यास से उससे बड़े प्रसन्न थे २० एक दिन उसके अस्त्राभ्यास को देखकर द्रोणाचार्य ने रसोइये को बुलाकर कहा कि तू अर्जुन को अँधेरे में भोजन करने को कभी मत दीजो वह ऐसाही करता था एक दिन अर्जुन रसोई खाता था हवा से दीपक बुझगया तब अर्जुन का हाथ रसोई खाते में और जगह चलागया अर्जुन इस बातको समझकर विचारने लगा कि रात्रिको भी शस्त्रका अभ्यास करना चाहिये यह समझकर उसने रात्रि में भी अभ्यास करना प्रारम्भ किया उसके धनुष्का शब्द सुनकर द्रोणाचार्य उसके पास चले आये और प्रेमसे उसे छातीसे लगाकर कहा कि मैं ऐसा यत्न करूंगा। जिस में धनुर्धारियों में तेरे समान कोई न होगा तुझसे सच कहता हूं २१।२७ वैशम्पायनजी बोले हे राजन्! इसके पीछे द्रोणाचार्य ने अर्जुन और कौरवों को घोड़े हाथी रथ धरती गदा तलवार बाण बरछी और अनेक हथियारों की लड़ाई सिखाई २८।२६ द्रोणाचार्य की अस्त्रविद्या में ऐसी कुशलता सुन

कर सहस्रों राजा और राजाओं के लड़के उनसे अस्त्राभ्यास सीखने को आये ३० इसके पीछे हिरण्यधनुष्नाम धीमरों के राजाका एकलव्य नाम बेटाभी द्रोणाचार्य से बाणविद्या सीखने को आया द्रोणाचार्य ने उसे धीमर समझ कर अपना शिष्य नहीं किया और वह उनको मन से गुरु मानकर नमस्कार करके वन को चलागया और द्रोणाचार्य की मट्टी की मूर्ति बनाकर बड़ी गुरुभक्ति संयुक्त बाणका अभ्यास वन में करने लगा और थोड़े दिनों में बाणको लेने लगाने और छोड़ने की हस्तलाघवता को प्राप्त किया ३१।३५ एक समय ऐसा हुआ कि सब कौरव और पाण्डव द्रोणाचार्य की आज्ञा से अहेर खेलने को उसी वन में गये और उनके पीछे एक मनुष्य अहेर की सामग्री और एक कुत्ता भी लेकर गया वह कुत्ता वनमें घूमने लगा और घूमते २ एक स्थानपर एकलव्यको शस्त्राभ्यास करते हुये देखकर भूंकने लगा एकलव्यने उस कुत्ते के मुख में एकसाथ सात बाण मारे तब वह कुत्ता वहां से भागकर पांडवों के पास आया पांडव उसे देखकर आश्चर्य करने लगे और उसकी हस्तलाघवता और शस्त्रभेदनके अभ्यास को जानकर बड़े दुःखी हुये और वन में उसे ढूंढ़ने लगे जब उसके पास पहुँचे तब उसको न पहिंचानने के कारण से पूंछा कि तू कौन है और किसका शिष्य है ३६।४४ वह बोला कि मैं हिरण्यधनुष् धीमर का बेटा और द्रोणाचार्यका शिष्यहूं और यहां बाण-विद्यामें अभ्यास किया करताहूं ४५ वैशंपायनजी बोले कि उसकी बात को सच समझकर सब पांडव वहां से चले आये और द्रोणाचार्य से सब वृत्तांत कहा और अर्जुनने अकेले में यह कहा कि महाराज मुझको आपने बड़ी प्रीतिसे छाती से लगाकर यह कहा था कि मेरा कोई शिष्य तुझसे अधिक न होगा फिर निषादपतिका एकलव्यनामी बेटा मुझसे अधिक और सब संसारसे विशेष परा-क्रमी क्यों है ४६।४६ वैशंपायनजी बोले कि अर्जुन की बातको सुनकर द्रोणा-चार्यने कुछ देरतक तो विचार किया उपरांत उसे साथ लेकर वनमें गये और उस जटाधारी मैले और फटे कपड़े पहिने हुये एकलव्य को देखकर ठहर गये एक-लव्य द्रोणाचार्यको पहिंचानकर हाथ जोड़कर सन्मुख खड़ा होगया और अपने को उनका शिष्य बनाकर उनकी अच्छीतरह पूजा की ५०।५३ द्रोणाचार्य उससे बोले कि जो तू मेरा शिष्यहै तो मुझे गुरुदक्षिणा दे वह प्रसन्न होकर बोला कि महाराज जो कुछ कहिये सो करूं आपके निमित्त मेरे आधीन ऐसा कोई

पदार्थ नहीं है जो न देसकूं ५४।५५ यह सुनकर द्रोणाचार्य बोले कि तू अपने दहिने हाथका अंगूठा हमको देदे अपनी प्रतिज्ञा सत्य कर सत्यमें सदैव भलाई है वैशम्पायनजी बोले कि एकलव्यने द्रोणाचार्य की बातको सुनकर विना विचारे अपना अँगूठा काटकर देदिया तबसे वह बाण अपनी अँगुलियों से खींचकर चलाने लगा परंतु अँगूठा न रहने के कारण वह हाथकी लाघवता जाती रही अर्जुन यह बात देखकर प्रसन्न हुआ और द्रोणाचार्य ने अपना वह वचन सत्य किया कि अर्जुन की समान कोई मेरा शिष्य न होगा ५६।५६ दुर्योधन और भीमसेन ने द्रोणाचार्य से गदायुद्ध सीखकर बड़ा अभ्यास किया अश्वत्थामा सब रहस्यों में सबसे अधिक हुआ नकुल और सहदेव के समान तलवार के चलाने में कोई न हुआ युधिष्ठिर रथ हांकने में सब से चतुर हुये अर्जुन सब बातों में पृथ्वीपर श्रेष्ठ विख्यात हुआ ६०।६२ द्रोणाचार्यने सबको शस्त्राभ्यास एकसाही सिखाया था परंतु बुद्धिबल और अस्त्राभ्यासके उत्साह से एक अर्जुन उन सबों में महारथी होगया ६३।६४ धृतराष्ट्र के सब पुत्रलोग भीमसेन के बल और अर्जुन के शस्त्राभ्यास को देखकर पांडवों से द्वेष करने लगे ६५ इसके पीछे द्रोणाचार्य ने शस्त्राभ्यास में परीक्षा करनेके लिये एकदिन एक काठकी बतक बनाकर एक वृक्षपर लगवा दी और सब शिष्योंको उसे दिखा कर बोले कि तुम सब अपने २ धनुषोंमें बाण लगाकर इस बतककी ओर लक्ष्य-भेदन करने को खड़े रहो जब हम कहें तभी बाण मारकर इसका शिर काट डालना ६६।६६ यह कहकर पहले द्रोणाचार्यने युधिष्ठिरसे कहा कि बाणको वृक्ष पर बैठी हुई बतककी ओर संधानकर जब मैं कहूं तब बाण छोड़ियो यह सुन कर युधिष्ठिरने वैसाही किया और दो घड़ीतक उसकी ओर धनुष तानेहुये खड़ा रहा फिर द्रोणाचार्य ने पूंछा कि तुझे बतक दिखाई देती है या नहीं युधिष्ठिर बोला हां महाराज दिखाई देती है दो घड़ी पीछे फिर पूंछा कि अब कहो तुझे मुझसमेत तेरे सब भाई और वृक्ष भी दिखाई देते हैं या नहीं युधिष्ठिर बोला हां महाराज सब दिखाई देतेहैं यह सुनकर द्रोणाचार्य बहुत अप्रसन्न हुये और बोले कि हट यह लक्ष्य तुझसे नहीं भिदेगा ७०।७५ इसके पीछे दुर्योधनादिक धृत-राष्ट्रके पुत्र और भीमादिक पांडव और अन्य देशोंके राजाओंको क्रम २ से बुला कर उक्त रीतिसे पूंछा और सबसे अप्रसन्न हो २ कर सबको हटादिया ७६।७७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्वित्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३२॥

एकसौतेंतीस का अध्याय।

शस्त्राभ्यास की परीक्षामें अर्जुन का लक्ष्य भेदना अर्थात् निशाना मारना और द्रोणाचार्य का उसको प्रसन्न होकर ब्रह्मशर नाम अस्त्र देना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे द्रोणाचार्य ने अर्जुन को बुलाकर हँसकर कहा कि यह लक्ष्यभेदन (निशाना मारना) तुमको करना चाहिये धनुर्बाण लगाकर पक्षीकी ओर धनुष तानकर दो घड़ीतक खड़ा रह जब में कहूं तब बाण छोड़ियो यह सुनकर अर्जुनने धनुष में बाण लगा लिया और दो घड़ीतक धनुषको पक्षीकी ओर ताने हुये खड़ा रहा उस समय द्रोणाचार्यने अर्जुनसे पूंछा कि तुझे वृक्ष और में और वृक्षका पक्षी दिखाई देता है या नहीं अर्जुन बोला कि महाराज केवल पक्षी दिखाई देता है आप और वृक्ष नहीं दीखते १।५ दोघड़ी के पीछे द्रोणाचार्य ने फिर प्रसन्न होकर पूंछा कि अब पक्षी दिखाई देता है या नहीं अर्जुन बोला कि महाराज अब तो सिवाय पक्षी की ग्रीवाके और कुछ दिखाई नहीं देता है ६।७ यह सुनकर द्रोणाचार्य ने कहा कि अब शीघ्र बाण छोड़दे विलम्ब मतकर अर्जुन ने यह सुनतेही बेधड़क होकर बाण छोड़ दिया और उससे उस बतक की ग्रीवा कटकर गिर पड़ी ८।९ यह देखकर द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न हुये और उसी समय से जान लिया कि अब राजा द्रुपद को हमने जीत लिया १० इसके पीछे एक दिन द्रोणाचार्य सब शिष्यों सहित गंगास्नान करने को गये उस समय द्रोणाचार्य की जांघको पानी के भीतर एक मगरने पकड़ली उसको देखकर द्रोणाचार्य ने सब शिष्यों से कहा कि इस मगरको मारकर मुझको छुटाओ ११।१२ यद्यपि उनको आप भी छूटने की सामर्थ्य थी उनकी बात को सुनतेही अर्जुनने पांच बाण मारकर उस ग्राहके पांच टूक करदिये और उसने मरकर उनकी जांघको छोड़दिया और दूसरे जितने शिष्य थे सब मारे डरके जहां तहां भाग गये अर्जुन का यह कर्म देखकर द्रोणाचार्य बहुत प्रसन्न हुये और उसको सब शिष्योंसे अधिक मानने लगे १४।१७ इसके पीछे द्रोणाचार्य ने अर्जुन को महाबलवान् और पात्र जानकर कहा कि हे अर्जुन अब हम तुझको ब्रह्मशरनाम अस्त्र प्रयोग संहारसहित देते हैं इस अस्त्र को तू मनुष्योंपर मत चलाइयो क्योंकि यह थोड़ा आधार पाने से जगत् को भस्म करदेगा हां जब कभी लड़ाईमें कोई बलवान् शत्रु आजावे तब इसको चलाइयो १८।२१ यह

सुनकर अर्जुन हाथ जोड़कर गुरु के सन्मुख खड़ा होगया और तथास्तु कहकर उस अस्त्र को गुरुसे लेलिया उसके लेने के पीछे गुरुने कहा कि हे अर्जुन ! पृथ्वीपर तेरे समान धनुर्धारी कोई न होगा २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणित्रयस्त्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३३॥

एकसौचौंतीस का अध्याय।

द्रोणाचार्यका धृतराष्ट्र से कहकर राजपुत्रों के शस्त्राभ्यास की परीक्षा के लिये रंगभूमि बनावना और नियत दिनमें वहां जाकर सब राजपुत्रों का अपना २ शस्त्राभ्यास दिखाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जब द्रोणाचार्य ने देखा कि धृतराष्ट्र के सब पुत्र और पांडव सब अस्त्र विद्या सीख चुके तब एक दिन राजा धृतराष्ट्र की सभा में जहां वाह्लीक, कृपाचार्य, सोमदत्त, भीष्म, विदुर और व्यासजी बैठे थे जाकर धृतराष्ट्र से बोले कि आपके सब पुत्र अब अस्त्रविद्या सीख चुके हैं और आपको अपना अभ्यास जो हमसे पाया है दिखाया चाहते हैं आप उनकी शस्त्रशिक्षा को देखिये १। ३ यह सुनकर धृतराष्ट्र बहुत प्रसन्न हुये और बोले कि आपने यह बड़ा अद्भुत कर्म किया है अब जिस दिन जिस घड़ी जिस स्थान पर जो जो विधान आपको चाहिये सो मुझसे कहिये हम भी नेत्रवाले मनुष्यों को आपके शिक्षा किये हुये अस्त्राभ्यास को दिखाया चाहते हैं ४। ६ धृतराष्ट्रने द्रोणाचार्य से यह कहकर विदुरजीको आज्ञादी कि तुम द्रोणाचार्यजी के साथ जाकर जो जो वह बतावें सो सो करो हमको यह बात बहुत प्रिय जान पड़ती है विदुरजी यह सुनकर तुरंत वहां से द्रोणाचार्य जी के साथ बाहर आये और पृथ्वी को देखने लगे उपरांत एक ऐसे स्थान पर जहां पृथ्वी सब बराबर थी नदी का किनारा था और वृक्ष घास अथवा झाड़ी झंकार कुछ न था वहां अच्छी तिथि और नक्षत्र में बलिकर्म कराया और समाज का डिण्डिमराव (डोंड़ी) फिरवाकर उस स्थान पर शास्त्रकी रीति से सुन्दर रंगभूमि बनवाई स्त्री और राजा और धनाढ्य और अन्य प्रजालोगोंके लिये विदुरजी ने यथायोग्य स्थान और ऊंचे नीचे मंच बनवाये और वहां अनेक २ प्रकार के अस्त्र शस्त्र रखवा दिये जब वह रंगभूमि बनचुकी तब उस दिनके आने पर जिस दिनके निमित्त डिण्डिमराव अर्थात् डोंड़ी पिटवाई थी राजा सुन्दर मोतियों की माला सुवर्ण के आभूषण और हरी मणियों को

पहिने हुये भीष्मजी कृपाचार्य और मंत्रियोंको आगे करके उस रंगभूमिमें आये और गांधारी कुंती और राजा के कुल की स्त्रियां भी अपनी २ दासियों सहित वहां आकर ऊंचे २ मंचों पर इस प्रकार से चढ़कर बैठगईं जैसे देवताओं की स्त्रियां सुमेरु पर्वत पर चढ़ती हैं और सम्पूर्ण पुरवासी और ब्राह्मण लोग राजपुत्रों के अस्त्राभ्यास को देखने के लिये वहां पर झुंड के झुंड आकर रंगभूमि में बैठगये उस समय वहां अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे और सभा कौतुकी मनुष्यों के कारण से समुद्रकी तरह चलायमान होने लगी ७। १८ इसके पीछे द्रोणाचार्यजी श्वेत माला जनेऊ और वस्त्र पहिने हुये श्वेत चन्दन लगाये उस सभा में अपने पुत्र के साथ आये और इस प्रकार से बैठ गये जैसे निर्मल आकाश में मंगल सहित चन्द्रमा दिखाई देता है उन्होंने आकर समय के आने पर क्षेत्रपूजा की और ब्राह्मणों ने मंगलरूपी मंत्र पढ़े इस कर्म के समाप्त होने पर द्रोणाचार्य की आज्ञा से युधिष्ठिरादिक सब शिष्य अपने अपने शस्त्र अस्त्रों को धारण करके रंगभूमि में गये और अपना अपना अस्त्राभ्यास दिखाने लगे १६। २४ बाणों के चलने पर बहुत मनुष्यों ने भय से अपने शिर नीचे को झुका लिये और बहुत से उनके कर्मों को आश्चर्य कर करके निर्भय देखते रहे पहिले उन सबों ने घोड़ों पर चढ़कर अनेक प्रकार से बाण लगाने की हस्तक्रिया दिखाई और अपने २ नामांकित बाणों से अनेक लक्ष्य अर्थात् निशानों को उड़ादिया उपरांत हाथी और रथ आदिपै बैठ बैठकर तिरछे ऊंचे और घूमते हुये निशानों के उड़ाने में बाण मारने की अदक्षिण, मंडल, जाना, आना आदि अनेक चालें दिखलाईं २५। २६ इसके पीछे तलवार और ढाल ले लेकर अनेक चालोंके प्रयोग करने लगे और अपनी अपनी चतुरता शोभा निडरता और शीघ्रता दिखाने लगे ३०। ३१ इसी अवसरमें भीमसेन और दुर्योधन अपनी अपनी गदा ले लेकर मत्तहाथियों के समान गर्जते हुये रंगभूमि पर गये और दहिने बायें मंडलों सहित गदायुद्ध की चालें दिखलाने लगे उन सबों के कर्मों को कुंती गांधारी से और विदुरजी धृतराष्ट्र से कहते जाते थे ३२। ३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुस्त्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३४॥

एकसौपेंतीस का अध्याय।

भीमसेन और दुर्योधनका गदायुद्ध की परीक्षा देना और अर्जुनके सब अस्त्रों में परीक्षा देकर अनेक लक्ष्य भेदनेकी कथा॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! दुर्योधन और भीमसेनके भयानक गदायुद्ध होनेपर वहां के मनुष्य पक्षपात के स्नेह मे दोप्रकार के होगये भीमसेनकी ओरवाले भीमसेनका और दुर्योधनके संगी दुर्योधनका नाम ले लेकर एक दूसरेसे प्रबल निर्बल देखकर यों पुकारने लगे हाय भीमसेन हाय दुर्योधन १।२ द्रोणाचार्य्य उनका यह हाल देखकर अपने पुत्रसे बोले कि तू जाकर इन दोनों का युद्ध बन्द करादे यह सुनकर अश्वत्थामा रंगभूमि में चलागया और क्रोधमे गदा उठाये हुये उन दोनों के बीचमें खड़ा होकर दोनोंका युद्ध बंद करादिया इसके पीछे द्रोणाचार्यने मेघके समान बजते हुये बाजोंको बंद करादिया और रंगभूमि में जाकर सबसे पुकारकर कहा कि तुम लोग अब अर्जुनका अस्त्राभ्यास देखो जो मुझको पुत्रसे भी अधिक प्यारा और विष्णुके समान पराक्रमी और शस्त्रवेत्ताहै ३।७ यह सुनकर सब मनुष्य अर्जुन को देखने लगे जो सोनेका कवच और बाणोंसे भरा हुआ तर्कस हाथोंकी अंगुलियों में चमड़े के मोजे पहिने हुये रंगभूमिमें सूर्य इन्द्रधनुष् बिजुली और संध्या रहित मेघकी समान खड़ा हुआ था उसको देखकर सब मनुष्य कहने लगे कि यह तो युधिष्ठिर है वह भीमसेनहै और इन दोनोंसे छोटा यह अर्जुन है यह सब शास्त्री धर्मात्मा शीलवान् और ज्ञानियों में सबसे श्रेष्ठ है कुन्ती यह सुनकर बहुत प्रसन्न हुई और उसके पयोधरोंसे दूधकी धार बहने लगी ८।१२ उससमय उस मनुष्यों के बड़े कोलाहलको सुनकर धृतराष्ट्रने विदुरजीसे पूछा कि रंगभूमि में यह आकाशको फाड़नेवाले बड़े शब्द के होने का क्या कारण है विदुरजी बोले कि राजा पांडुका अर्जुन नामी पुत्र अब परीक्षा देने को रंगभूमिमें गयाहै उसका यह शब्द है १४।१६ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोले कि आज में धन्यहूं कुन्ती के ये तीनों पुत्र अग्निके समान उत्पन्न हुये हैं १७ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस सभाके कोलाहलके शांत होने पर अर्जुन द्रोणाचार्य अपने गुरुको अस्त्रों की लाघवता दिखाने लगा पहले अग्निअस्त्र छोड़कर अग्नि उत्पन्न की फिर वारुणास्त्र छोड़कर पानी उत्पन्न करके उस अग्निको शांत किया फिर वायव्यास्त्रसे वायु और पर्जन्य अस्त्रसे

चारों ओर मेघ प्रकट करदिये फिर भौमास्त्र छोड़कर पृथ्वी में घुसगया और पर्वतास्त्र से अपना शरीर पर्वतके समान कर दिखाया इसके पीछे अन्तर्धान अस्त्रसे अन्तर्धान होगया १८। २० इस प्रकारसे उसने क्षणमें छोटा क्षण में बड़ा क्षणमें रथकी धुरीपर क्षणमें रथके भीतर और क्षणमें पृथ्वीके ऊपर खड़ा हो २ कर अनेक अस्त्रों की परीक्षा दी उपरांत बड़े सूक्ष्म और भारी लक्ष्य अर्थात् निशानों को बाणोंसे भेदा २१। २२ एक लोहेका शूकर बनवाकर भ्रामकयंत्र पर रखदिया गया अर्जुनने उस यंत्रपर घूमते हुये उस शूकर के मुखमें पांच बाण एकसे मारकर उसका घूमना बन्द करदिया और रस्सी के समान लम्बे और ऐंठे हुये गोविषाण अर्थात् गोसम्बन्धी सींगोंके छिद्रमें होकर अर्जुन ने २१ बाण निकाले इसप्रकार से अर्जुनने बहुतसे लक्ष्य भेदे और मण्डल बांध २ कर तलवार और गदायुद्धकी शिक्षा दिखाई २३। २५ जब अर्जुन परीक्षा देचुका और बाजे बजना और मनुष्योंके बोलनेका कोलाहल बन्द होगया तब रंगभूमि के मुखपर अपना बल दिखलानेके लिये भुजाओं पर ताल मारने का वज्रके समान शब्द सुनाई पड़ा उसको सुनते ही सब मनुष्य आश्चर्य से रंगभूमिके दरवाजेकी ओर देखने लगे और कहने लगे यह क्या हुआ पहाड़ फटताहै या पृथ्वी फटती है अथवा मेघ गर्जता है २६। २६ उससमय द्रोणाचार्य पांचों पांडवों सहित ऐसे शोभायमान देख पड़ते थे जैसे हस्तनक्षत्र के पांचों तारों सहित चन्द्रमा आकाश में दिखाई देता है और अश्वत्थामा और दुर्योधनके सब छोटे भाई दुर्योधन को घेरकर बैठगये और वह उनमें ऐसा दीखने लगा जैसे देवताओं में बैठा हुआ इन्द्र दीखताहै ३०। ३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पंचत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३५॥

एकसौछत्तीस का अध्याय।

कर्णका रंगभूमि में जाकर अपना अस्त्राभ्यास दिखाना और अर्जुन से द्वन्द्वयुद्ध मांगना और दुर्योधनको कर्णका अंग राज्याभिषेक करना॥

वैशंपायनजी बोले कि जब रंगभूमिमें से मनुष्य चलने लगे और कुछ अवकाश हुआ तब कुन्ती के कन्यापने में सूर्य के अंशसे उत्पन्न हुआ कर्ण नामी पुत्र आश्चर्य से आंखोंको प्रफुल्लित किये हुये उस सभामें आया उस समय वह स्वाभाविक कवच धारण किये हुये था शरीर पर्वत के समान

और मुख कुंडलों से प्रकाशमान होरहा था तलवार और धनुष लिये हुये वह सिंह और बड़े हाथियों की समान पराक्रमी सूर्य चन्द्रमा और अग्निके समान मालूम होता था उससे उसकी आभा उस समय ऊंचे सुवर्ण के तालके वृक्षके समान थी १।५ उसने रंगभूमिमें आतेही चारों ओर देख कृपाचार्य और द्रोणाचार्य को बड़े आदर से नमस्कार किया उसको देखकर सब मनुष्य चकित होगये और कहने लगे कि यह कौन वीर कहां से आया है उस समय कर्ण मेघके समान गर्जता हुआ बोला कि हे अर्जुन! जो काम तैंने इस समय किया है उससे अधिक करके हम मनुष्यों को दिखाते हैं यह सुन कर सब मनुष्य जहां के तहां खड़े रहगये और अर्जुन को लज्जा और क्रोध हुआ ६।१० इसके पीछे द्रोणाचार्य की आज्ञासे कर्णने वह सब कर्म जो अर्जुनने किया था करके सब मनुष्योंको दिखाया यह देखकर दुर्योधन ने भाइयों सहित प्रसन्न होकर कर्ण को छातीसे लगालिया और बोला कि तेरा आना अच्छा हुआ तू मान खण्डन करनेवाला है मेरे पास जो कुछ राज्य और संपत्ति है उसको जैसे चाहो वैसे भोग यह सुनकर कर्ण ने कहा कि तुम्हारी जो मित्रता हमारे साथ है वही सब कुछ है हम अब अर्जुन से द्वन्द्वयुद्ध करना चाहते हैं ११।१४ दुर्योधन बोला कि मेरे साथ रहकर जो इच्छा में आवे सो भोग भोगो और शत्रुओं के शिरपर पैर रक्खो १५ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कर्ण की उक्त बातों को सुनकर अर्जुन अपना अपमान समझकर बोला कि जो मनुष्य विना बुलाये आता है और विना पूंछे कुछ कहता है उसके जाने का जो लोक है उसी लोक को मैं तुझे अभी मारकर भेजता हूं १६।१७ यह सुनकर कर्ण बोला कि यह रंगभूमि सबको एकसी है इसमें तेरा क्या विशेष है जो बल में अधिक होता है वही राजा है और क्षत्री का धर्म भी बलही है इससे वृथाकी बातों के कहने से क्या होता है जो कुछ बल रखता है तो बाणों से बातकर अभी गुरु के सामने तेरा शिर काटे डालता हूं १८।१९ वैशंपायनजी बोले इसके पीछे गुरु से आज्ञा और भाइयों से प्यार किये जाने पर अर्जुन कर्ण से युद्ध करने को उठकर चला और कर्ण भी दुर्योधन से प्यार किये जाने पर धनुष्बाण लिये हुये युद्ध के लिये खड़ा होगया उस समय आकाश में बादल छागये और बिजली चमकने लगी और अर्जुन की प्रीति से इन्द्र उन दोनों का युद्ध वहां देखने को

आये इन्द्र को देखकर सूर्य भी वहां चले आये और बादलों के अंधेरे को दूर कर दिया उस समय यह सबने देखा कि जहां २ अर्जुन जाता था तहां २ उसपर बादल की छाया रहती थी और जहां २ कर्ण जाता था तहां २ उसपर सूर्य का प्रकाश रहता था जिधर अर्जुन खड़ा हुआ था उधर द्रोणाचार्य कृपाचार्य और भीष्मजी जाकर खड़े होगये और जिधर कर्ण खड़ा था उधर धृतराष्ट्र के सब पुत्र जा खड़े हुये उस समय सब रंगभूमि दो प्रकार की होगई और स्त्रियों में भी दो भाग होगये कुंती अपनेही उन दोनों पुत्रों को युद्ध करने को खड़े हुये देखकर मोहित होगई विदुरजी ने उसपर चन्दन का जल डालकर स्वस्थ किया और वह मन मारकर रहगई कुछ न करसकी २०। २७ उन दोनों को धनुष चढ़ाये हुये युद्ध के लिये उद्यत देखकर कृपाचार्य बोले कि हे कर्ण! अर्जुन कुंती का छोटा पुत्र और पांडु का बेटा है तू भी अपने माता पिता और कुल का नाम बतला उसको जानकर अर्जुन तेरे साथ युद्ध करेगा या न करेगा क्योंकि राजाओं के लड़के वृथाकुल समाचारवालों से द्वंद्वयुद्ध नहीं करते हैं २८। ३१ यह सुनके कर्ण लज्जामान होकर नीचे को शिर झुका के चुप होरहा उस समय दुर्योधन बोला कि हे कृपाचार्यजी! संसार में राजा तीन प्रकार के होते हैं एक कुलीन दूसरा शूरवीर और तीसरे सेनाधीश सो जो अर्जुन इसको अपनी समान न समझकर इससे युद्ध करना नहीं चाहता तो मैं अभी इसका राज्याभिषेक करता हूं ३२। ३४ वैशंपायनजी बोले कि दुर्योधन ने यह कहकर उसी क्षण सोने के कलश और फूल और खील आदि राज्याभिषेक की सामग्री मँगाकर कर्ण को सिंहासन पर बैठाया और मंत्र जाननेवाले ब्राह्मणों से उसका अंग राज्याभिषेक कराया और सबों ने जय शब्द उच्चारण किया ३५। ३६ यह देखकर कर्ण दुर्योधन से बोला कि इस राज्याभिषेक के कराने के बदले में मैं तुमको क्या दूं दुर्योधन बोला कि मैं तुमसे अत्यन्त मित्रता चाहता हूं ३७। ३८ कर्ण बोला कि ऐसाही होगा यह कहकर दोनों बड़े आनन्द से मिले ३९॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षट्त्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३६॥

एकसौसैंतीस का अध्याय।

कर्णको सूतपुत्र जानकर भीमसेन का हँसना और सूर्य अस्त होनेपर सब मनुष्यों का अपने २ घर चला जाना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कर्णका अभिषेक होने के पीछे वहां अधिरथनाम कर्ण का पिता सब अंग शिथिल कँपता हुआ और पसीने में डूबा हुआ पहुँचा कर्ण ने उसे देखकर उसके पैरों पर अपना शिर रखदिया और उसने पुत्र ऐसा कहकर शिरको उठाकर छाती से लगा लिया और अपने प्रेम के आंसुओं से उसके अभिषेकित शिरको सींचा १। ४ यह देखकर भीमसेन उसको सूतका बेटा जानकर हँसकर बोला कि तू अर्जुन से युद्ध में मारेजाने के योग्य नहीं है तू मनुष्यों में नीचहै तुझको अपने कुलके अनुसार दण्ड ग्रहण करना चाहिये तू अंगराज्य के भोगने के भी योग्य नहीं है क्योंकि कुत्ता कभी भी यज्ञमें भाग पाने के योग्य नहीं होसक्ता ५। ७ यह सुनकर क्रोधके मारे कर्ण के ओठ फड़कने लगे और वह श्वास भरकर आकाश में सूर्यकी ओर देखने लगा८ उस समय दुर्योधनने बड़े क्रोध से भाइयों के बीच में से उठकर कहा कि भीमसेन तुमको यह बात कहनी उचित नहीं है ९। १० क्षत्री वही है जो बलमें अधिक है क्षत्री और नदियों की उत्पत्ति कठिनता से जानी जाती है देखो अग्नि पानी से उत्पन्न हुआ है और सब जगत् में व्यापक है और वज्र दधीचि ऋषिकी हड्डियों से बना है और उससे बड़े २ बलवान् दैत्य मारे गये और कौशिकादिक बहुतसे मनुष्य क्षत्रियों से उत्पन्न हुये और फिर ब्राह्मण होगये और द्रोणाचार्य महाराज का जन्म द्रोणनाम यज्ञपात्र से और कृपाचार्य का शरसे हुआ है परंतु देखो कैसे अस्त्रशस्त्र आदिक सब विद्याओं के ज्ञाता हैं इनके सिवाय तुम्हारे जन्म का भी हाल हम जानते हैं तुम यह नहीं देखसकते कि कुंडल कवच पहिरे हुये सूर्य के समान तेजस्वी व्याघ्ररूप कर्णको हिरणीरूप माता भी कहीं जनसकती है अंगराज्य तो कहां रहा कर्ण पृथ्वी का राज्य करने के योग्य है ११। १७ और जो कोई मेरी इस बातको न सह सके वह रथपै चढ़कर हाथमें धनुष् बाण लेकर खड़ा होजावै यह सुनकर सब रंगभूमि में हाहाकार मचगया और साधुवाद की धुनिके साथ सूर्य अस्त होगये १८। १९ उस समय उस रंगभूमि से दुर्योधन कर्ण के हाथ में हाथ डाले हुये मसाल जलवा कर चलागया और भीष्मजी द्रोणाचार्य कृपाचार्य और पांडवोंसहित अपने २ डेरोंको गये २०। २१

और जो प्रजालोग वहां आये थे वे सबभी कोई अर्जुनकी कोई कर्ण की और कोई २ दुर्योधन की प्रशंसा करते हुये अपने २ घरोंको गये २२ कुंती कर्णको दिव्यलक्षणोंसे युक्त देखकर और पुत्र जानकर गुप्तप्रीति करने लगी २३ कर्णसे मित्रता होनेपर अर्जुनसे जो दुर्योधन को डर था वह जाता रहा और युधिष्ठिरने यह अनुमान किया कि कर्णकी बराबर दूसरा धनुषधारी संसारमें नहीं है उससमय कर्णने दुर्योधनको अनेक २ बातें कहकर प्रसन्न किया २४। २५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि सप्तत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३७॥

एकसौअड़तीस का अध्याय।

द्रोणाचार्य का सब कौरव और पांडवों से यह गुरुदक्षिणा मांगना कि हमको राजा द्रुपदको पकड़कर देदो इसपर सब कौरव और पांडवों को द्रुपद से युद्ध करने जाना और अर्जुन का द्रुपद को पकड़कर द्रोणाचार्य को देना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कुरु और पांडव दोनोंको अस्त्रविद्यामें अच्छीतरह निपुण देखकर द्रोणाचार्य ने एक दिन सबको बुलाया और कहा कि अब तुम सब मिलके हमको यह गुरुदक्षिणा दो कि राजा द्रुपदको पकड़ लाकर हमको देदो यह सुनकर सब कुरु और पांडव अपने २ रथों में सवार होकर द्रोणाचार्यके साथ होलिये और राजमार्गसे सेनाको लियेहुये पांचाल देशको मर्दतेहुये राजा द्रुपदके नगरमें पहुँचे और दुर्योधन, कर्ण, युयुत्सु, दुःशासन, विकर्ण, जलसंध, सुलोचन और अन्य २ कुमार यह कहने लगे कि पहिले हम युद्ध करेंगे १। ८ उनके आनेका हाल सुनकर राजा द्रुपद रथ पर चढ़कर भाइयों सहित बाणोंकी वर्षा करता हुआ नगरके बाहर निकल आया और कौरवभी उसे देखकर अपने रथोंपरसे उसपर बाण चलाने लगे ६। ११ वैशम्पायनजी बोले कि युद्ध प्रारम्भ होने के पहिले अर्जुन द्रोणाचार्य से यह कहकर कि द्रुपदको कौरव नहीं पकड़सक्ते हैं इनका अभिमान दूर होनेपर हम जाकर युद्ध करके पकड़कर लावेंगे नगरसे आधकोस उछीतरफ भाइयों सहित ठहर गया १२। १४ इसके पीछे राजा द्रुपद कौरवोंकी सेनामें घुसकर युद्ध करने लगा और अपने तीक्ष्ण बाणों से दुर्योधन कर्ण विकर्ण और २ राजपुत्रों को व्याकुल करदिया और सब सेनामें बनेठीकी तरह घूम २ सबके छक्के छुटादिये दुर्योधन, विकर्ण, सुबाहु, दीर्घलोचन और दुःशासन आदि ने भी क्रोध करके राजा द्रुपदको बाणों से छायदिया परन्तु राजा द्रुपद ने ऐसे तीक्ष्ण बाण मारे

कि सब कौरवलोग सेनासहित हृदय में हार मानगये उसी समय सब नगरवासी लट्ठ और मूशल आदि अनेक २ हथियार लेकर कौरवोंकी फौजसे सिंहनाद कर २ के लड़ने लगे उनके शब्द और धनुष की टंकारसे आकाश शब्दित होनेलगा थोड़ी देरतक उन दोनोंमें बड़ा युद्ध हुआ उपरान्त सब कौरव और कौरवोंकी सेनाके मनुष्य द्रुपदके बाण और नगरवासियोंके प्रहारोंसे व्याकुल होकर हाहाकार करतेहुये पाण्डवोंकी ओर भागे १५। २२ उनकी आर्तवाणी सुनकर अर्जुन प्रसन्न होगया और गुरुजी के चरणोंको छूकर रथपर बैठकर दिशाओंको शब्दित करता हुआ युद्ध करनेको वहांसे चलदिया चलते समय अर्जुनने युधिष्ठिरसे कहा कि आप युद्ध करने को मत चलिये भीमसेन सेनाके आगे रहेंगे और नकुल और सहदेव सेना की रक्षा करेंगे यह सुनकर भीमसेन सेनाके आगे होकर गदा हाथमें लिये हुये पांचाली सेनामें समुद्रमें मगरके समान घुसगया और हाथियों की सेनाके सम्मुख जाकर वज्ररूपी गदासे हाथियोंको मारने लगा वह हाथी भीमसेनकी गदाके प्रहारसे मर मरकर गिरनेलगे बहुतों के अंगसे लोहू चूने लगा बहुतों के माथे फटगये और बहुतों की टांगें टूटगईं इसके पीछे भीमसेन घोड़े रथ और प्यादे सबको मार २ कर गिराने लगा और वह सब उसकी गदाके प्रहारके भयसे इस प्रकार से फिरने लगे जैसे ग्वालोंकी लाठीके भयसे वनमें पशु फिरा करते हैं २३। ३० वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन तो इस प्रकारसे राजा द्रुपदकी सेनाको मारता रहा और अर्जुन द्रोणाचार्यका प्रिय करनेके लिये रथको बढ़ाकर राजा द्रुपदके सम्मुखगया और बाणोंकी वर्षा करके रथ हाथी प्यादे और सवारोंको मार २ कर गिराने लगा यह देख पांचाली सृंजयलोगोंने बड़े क्रोधसे बाण मार २ सिंहनाद कर करके अर्जुनका रथ चारों ओर से बाणोंसे छायदिया अर्जुन उनके सिंहनादको न सहसका और अपने तीक्ष्णबाणों की वर्षासे सबको मोहित करके भगादिया उस समय अर्जुन ने हाथको ऐसा लाघव किया कि बाण लेने और छोड़ने में अन्तर नहीं जाना जाता था ३१। ३६ यह देखकर सत्यजित राजा द्रुपदको साथ लेकर अर्जुनपर दौड़ा अर्जुनने उससमय बाणोंसे राजा द्रुपदको ढकदिया और उसकी सेनामें यह शब्द मचगया कि अर्जुन द्रुपदको इसप्रकारसे पकड़ा चाहताहै जैसे सिंह हाथियोंके बीचमें गजनाथको पकड़े ३७। ३६ यह देखकर सत्यजित द्रुपदकी रक्षाके लिये अर्जुनकी ओर दौड़ा और अर्जुन और

द्रुपद एक दूसरे की सेनाको मार मारकर भगाने लगे सत्यजितके पास आने पर अर्जुनने दश बाण मारकर उसके मर्मस्थानोंको छेदडाला उसने यह देख-कर आश्चर्य किया और सौबाण मारकर अर्जुनको ढकदिया अर्जुनने अपने धनुषकी प्रत्यञ्चाको और चढ़ालिया और तीक्ष्ण बाण मारकर सत्यजितका धनुष काट डाला सत्यजितने दूसरा धनुष लेकर अर्जुनको घोड़े रथ और सारथी सहित बाण मारकर व्याकुल किया अर्जुन इस बातको न सहसका और जल्दीसे अपने बाणोंसे सत्यजितका धनुष काटकर उसके रथके सारथी और घोड़े मारडाले इसके पीछे घोड़ोंके बारम्बार मारेजाने और धनुषके कटनेके कारण से सत्यजित अर्जुन के सम्मुख से लड़ना छोड़कर भागगया ४०।४७ यह देखकर राजा द्रुपद अर्जुनपर बाणों की वर्षा करता हुआ दौड़ा और अर्जुन ने उससे बड़ा युद्ध करके उसका धनुष और ध्वजा काट डाली और पांचबाणों से उसके रथके घोड़े और सारथी को मारकर धनुषबाण हाथसे छोड़ हाथमें तलवार लेकर राजा द्रुपद के पकड़नेके लिये उसके रथपर चढ़-गया और बड़ा सिंहनाद करके द्रुपदको पकड़लिया यह देखकर राजा द्रुपद की सब सेना भागगई और अर्जुन द्रुपदको पकड़ेहुये सेनाको अपना बल दिखलाने को सिंहनाद करता हुआ सेनाके बाहर आया ४८।५४ अर्जुन को देखकर सब कुमार राजा द्रुपदकी सेनाको मारनेलगे उस समय अर्जुन ने भीमसेन से कहा कि राजा द्रुपद राजाओं में श्रेष्ठ और हमारे कुलका सम्बन्धी है उसकी सेनाको अब मारने से क्या है चलो गुरु महाराज को गुरुदक्षिणा देवें यह सुनकर भीमसेनने युद्ध करना बन्द करदिया और दोनों ने द्रुपद को मन्त्रियों सहित लेजाकर गुरुजी के सम्मुख खड़ा करदिया ५५।५८ द्रोणाचार्य उसको उस प्रकार से अपने सम्मुख खड़ा देखकर बोले कि मैंने तेरे देशको आज मीड़कर जीतलिया है और तू जीता जी पकड़ा गया है अब कह कुछ पुरानी मित्रता का फल चाहता है या नहीं यह कहकर द्रोणा-चार्य बहुत हँसे और फिर कहा कि हम ब्राह्मण क्षमावान् हैं तू अपने प्राणों का भय मत करै और बालक अवस्था की मित्रता के कारण से फिर तुझ से मित्रता करना इस प्रबंध के साथ चाहताहूं कि गंगाके दक्षिण ओर के देशों में तू राज्य कर और उत्तर ओर के देशों में मैं राज्य करूंगा मैंने राज्यका यह प्रयत्न इस कारणसे किया है कि विना राज्यवाला राजाका मित्र नहीं हो

सक्ता जैसा कि तैंने मुझसे कहा था ५६। ६५ यह सुनकर राजा द्रुपद बोला कि पराक्रमी और महात्माओं के लिये यह कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है मैं भी प्रसन्नहूं और आपसे सदैव प्रीति चाहताहूं ६६ वैशम्पायनजी बोले कि राजा द्रुपदके ऐसे कहनेपर द्रोणाचार्य ने उसको छुड़ादिया और उसने भी आदरपूर्वक द्रोणाचार्य को आधा राज्य बांटदिया और उस दिनसे माकंदी और कांपिल्यनगरोंका राज्य जो गंगाके उत्तरतटपै है द्रोणाचार्यने किया और दक्षिणओर के सब देशोंका राज्य चर्मणवती नदी तक द्रुपदके पास रहा ६७। ६६ इसके पीछे द्रोणाचार्य अहिछत्रनाम नगरमें बसकर राज्य-शासन करने लगे और राजा द्रुपद अपनी हार ब्रह्मबलसे मानकर एकपुत्र होने के लिये फिरने लगा ७०। ७२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणिअष्टत्रिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३८ ॥

एकसौउन्तालीस का अध्याय।

द्रोणाचार्य का अर्जुन को ब्रह्मास्त्र देना और अर्जुनका बड़े बड़े राजाओं को युद्धमें जीतकर धन लाना और पांडवोंकी शूरता देखकर धृतराष्ट्र का चित्त उदास होना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! एकसाल बीतनेपर राजा धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को सूधा क्षमावान् दयावान् प्रजापालक और सुकर्मी देखकर युवराज करदिया और उसने अपने विनयादि गुण और प्रजाके समाधान से थोड़ेही दिनोंमें अपने पिताकी कीर्ति को छिपादिया और पिता से अधिक यशस्वी होगया १। ३ और भीमसेन तलवार और गदायुद्ध बलराम जी से सीखकर बड़ा प्रबल होगया ४। ५ और अर्जुन के समान क्षुर, नाराच, भल्लविपाठ और अनेकप्रकार के टेढ़े और सीधे बड़े और छोटे बाण आदिको जल्दी लेने और छोड़ने में और मुट्ठीमें दृढ़तासे पकड़ने में दूसरा मनुष्य न था इस बातको द्रोणाचार्य ने देखकर एकदिन कौरवोंकी सभामें अर्जुन को बुलाकर कहा कि अगस्त्यजी के शिष्य अग्निवेशनाम ऋषि हमारे गुरु थे उन्होंने हमको पात्र जानकर वज्रके समान ब्रह्मशरनाम अस्त्र यह कहकर दिया था कि यह अस्त्र पृथ्वी को भस्म करसक्ता है इसको तुम थोड़े और अल्प पराक्रमी मनुष्यों पर मत छोड़ना वही ब्रह्मास्त्र हम तुमको पात्र और तेरे समान दूसरेको न देखकर देते हैं तूभी मुनीश्वरकी आज्ञाके अन्यथा मत

करियो अब तू हमको सब कौरवों के सम्मुख गुरुदक्षिणा दे अर्जुन बोला बहुत श्रेष्ठ जो आज्ञा हो द्रोणाचार्यने कहा कि युद्धके प्राप्त होनेपर तू हमारे साथ युद्ध करियो यह सुनकर अर्जुनने युद्धकी प्रतिज्ञा की और गुरुजी के चरणों को छूकर उत्तर दिशाको चलागया ६। १३ और उसकी यह प्रशंसा समुद्र पर्यंत पृथ्वीपर फैलगई कि अर्जुनके समान धनुषयुद्ध गदायुद्ध खड्ग-युद्ध और रथयुद्धमें दूसरा मनुष्य नहीं है १४। १५ और सहदेव द्रोणाचार्य से नीति अच्छीतरह से पढ़कर भाइयोंके पास भाइयोंकी आज्ञामें रहने लगा और नकुल भी द्रोणाचार्य से सब विद्या सीखकर चित्रयोधीरथी विख्यात होगया १६। १७ अर्जुन ने उत्तरदिशा में जाकर सौवीरनाम राजाको जिस ने गन्धर्वों के उपद्रव में तीन वर्षतक यज्ञ किया था और जिसे राजा पांडु भी न जीत सका था युद्धमें जीतकर मारडाला १८। २० और दत्तामित्र, सुमित्र और सौवीरनाम राजाओंकोभी बाणयुद्धसे जीत करके यमपुर भेजदिया २१ इसके पीछे अर्जुन भीमसेन को अपनी सहायता के लिये लेजाकर पूर्व और दक्षिण दिशाओं को गया और वहां के सब राजाओं को जीतकर बहुतसा धन लाया पहिले इसी प्रकार राजा पांडु भी दूसरे राजाओं को जीतकर धन लाया था २२। २४ पाण्डवों की शूरता और धनुर्विद्या की निपुणता को देखकर धृतराष्ट्र का चित्त अकस्मात् पाण्डवों की ओर से बिगड़गया और उस चिन्ता में उसको रात्रिको नींद आना बन्द होगया २५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकोनचत्वारिंशत्यधिकशततमोऽध्यायः १३६॥

एकसौचालीस का अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र का अपने कणिक मंत्री से पांडवों के साथ विग्रह अथवा संधि करने का मंत्र पूछना और कणिकका धृतराष्ट्र से राजनीति धर्म कहना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा धृतराष्ट्र को पाण्डवों की ओर से चिन्ता होनेके पीछे एकदिन उसने अपने कणिकनाम मंत्रीको बुला-कर कहा कि पाण्डव दिनप्रति बढ़ते चलेजाते हैं मुझे उनको देख देखकर ईर्षा होती है इससे संधि और विग्रह का कारण निश्चय करने के लिये तुमको बु-लाया है कहो तुम्हारी समझ में क्या आता है १। ३ वैशम्पायनजी बोले कि कणिक राजा धृतराष्ट्र की बात सुनकर प्रसन्न होकर बोला कि मैं राजनीति के अनुसार आपसे कहता हूं आपको उसके अनुसार करना उचित है ४। ५

राजा को चाहिये कि हर समय दंड देने को उद्यत रहे अपने पराक्रम को प्रकट करके दिखाता रहे अपना भेद किसीको न दे दूसरेका भेद आप लेले सदैव ऐसी रीति से रहे कि उससे सब डरते रहें अपने छिद्रको शत्रु न देखने पावे शत्रुके छिद्र को आप देखले जिस दण्डके करने से सब काम सधते हों उसे कभी न भूले और अपने भेदको इस प्रकारसे छिपावे जैसे कछुआ अपने शरीर को छिपा लेता है ६। ८ कभी कोई काम अधूरा न छोड़े जो काम करे सो पूराही करके छोड़े और शत्रुको कभी शेष न छोड़े क्योंकि पैरका लगा हुआ कांटा समय पर दुःख अवश्य देताहै जो शत्रु अपकारक हो उसको अवश्य मार डाले और जो शत्रु बलवान् होय और विपत्ति पड़ने से भाग गया हो तो मिलने पर उसकोभी अवश्य मारडाले किसी कारण से न छोड़े और जो शत्रु निर्बल भी होय तो उसकोभी न छोड़े क्योंकि अग्निकी छोटीसी भी चिनगारी तृणका संयोग पाने से सब वनके वनको भस्म करदेती है ६। ११ और जो शत्रु अपने से बलवान् विशेष होवे तो अंधा और बहिरा बनकर समय देखा करे और अवसर पानेपर मारने से कभी न चूके जैसे बहेलिया हिरन के मारने को मृतकके समान होकर सोजाता है और समयपर मृगको मारडालता है १२ शत्रुको हर उपाय से मारना चाहिये और साम दाम दंड भेद आदि उपायों से अपने वशमें रखना चाहिये और जो शत्रु दीन होकरके भी शरण आया हो तो भी उसे न छोड़े क्योंकि शत्रुके मारने पर सब भय दूर होजाते हैं और शत्रुके रहने से किसी न किसी समय दुःख अवश्य होता है इससे शत्रु की जड़को सदैव काटा करे और समय मिलनेपर तीन पांच सात जितने शत्रुके पक्षके हों सबको नाशकरे क्योंकि जब वृक्षही जड़से कटगया फिर उसकी शाखा आदि जो उसके आश्रय हैं क्योंकर रह सकती हैं १३। १६ जिस राजाके छिद्रको देखनेवाला शत्रु होता है उसे रक्षित कभी न जानना चाहिये शत्रुसे सदैव डरना उचित है १७ अग्निहोत्र करके अथवा साधुओं का वेष बनाकर जिस प्रकार से हो शत्रुको अपना विश्वास कराकर मारडाले और अपनी फलसिद्धि करे १८। १६ जैसे वृक्ष की डालको झुकाकर फल तोड़ लेते हैं ऐसे ही आप शत्रु से नम्र होकर उसके वधरूपी फलको तोड़ने में चित्त लगाये रहे शत्रुकी सराहना करके शिर पर चढ़ाय ले और समय आनेपर ऐसे मारडाले जैसे पत्थर पर पटक देने से शिरका घड़ा फूट जाता है २० शत्रु चाहे दीन वचन भी बोले परन्तु उसपर

दया कभी करना उचित नहीं है अपकारी को मारना ही श्रेष्ठ है २१ साम दाम दण्ड भेद इन चारों उपायों में से किसी न किसी से शत्रु को अवश्य मारे २२ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोले कि शत्रु को इन चारों उपायों से क्योंकर मारना चाहिये २३ यह सुनकर कणिक बोला कि हम आपको वनके रहने-वाले एक शृगालका वृत्तांत सुनाते हैं किसी समय एक स्वार्थपंडित शृगालने एक व्याघ्र एक चूहा एक भेड़िया और एक न्योलेके साथ मित्रता की और वह उन चारों के साथ वनमें रहने लगा एक दिन उनके स्थान के निकट एक हिरन चरता हुआ चला आया उसको देखकर शृगाल उसको पकड़नेकी अपनी सामर्थ्य न देखकर व्याघ्र से बोला कि आपने इस हिरन के मारने को कईबार उपाय किया परन्तु आप इसे कभी न मार सके जो यह हमारा मित्र चूहा जाकर हिरन के पैरों को काटकर उसे लँगड़ा करदे तो आप अवश्य इसे पकड़लें और फिर हम सब आनन्द से बैठकर भोजन करें यह सुनकर चूहे ने हिरन के पैरों को सोते में कुछ एक काटडाला और उसके लंग करने के कारण से व्याघ्रने उसे तुरन्त पकड़ लिया और मारडाला २४। २९ यह देखकर शृगाल उस हिरन के पास जाबैठा और सबसे बोला कि मैं इसको रखा रहाहूं तुम सब जाकर स्नान करआवो तब भोजन करना यह सुनकर वह सब नदी को चले गये और शृगाल अपनी सूरत को चिन्तायुक्त बनाकर वहीं बैठा रहा ३०। ३१ इसके पीछे पहले व्याघ्र स्नान करके आया और शृगाल को उस अवस्था में देखकर बोला कि तू तो बुद्धिमानों में श्रेष्ठ और पंडित है शोच किस बात का कर रहा है आज हम सब मांस खाकर वनमें आनन्द-पूर्वक विहार करेंगे ३२। ३३ यह सुनकर शृगाल बोला कि इस समय मुझसे चूहे ने ऐसी बात कही है कि उसे सुनकर मुझे बड़ी ग्लानि होगई है और मेरा चित्त इस मृगके खानेको नहीं करताहै वह कहताहै कि सिंहके बलको धिक्कार है जो आज मेरी भुजाओं के बलसे मारे हुये हिरन को खाकर अपना पेट भरैगा यह सुनकर व्याघ्र बोला कि जो उसने यह कहा है तो मैं अपनेही पराक्रम से मारे हुये जीवों को खाऊंगा यह कहकर व्याघ्र जीवों के मारने को वनमें चला गया ३४। ३७ इसी अवसर में चूहा आया उसको देखकर शृगाल बोला कि भाई इस समय न्योला मुझ से यह कहता था कि मुझ को विषकासा मिला हुआ मृगका मांस अच्छा नहीं लगता है मैं तो चूहे को मारकर खाऊंगा यह

सुनकर चूहा भयभीत होकर बिल में घुसगया ३८। ४० उसके पीछे भेड़िया स्नान करके वहां आया उसको देखकर शृगाल बोला कि मित्र आज व्याघ्र न जाने किस बात से तुम पर बड़ा क्रोध कररहा है मुझको तुम्हारा कल्याण नहीं दीखता वह अब अपनी स्त्री सहित आयाही चाहता है जो कुछ तुम्हारे विचार में आवे सो करो यह सुनकर भेड़िया अपने शरीर को सिकोड़कर सिंह के डरसे वहांसे चल दिया ४१। ४३ उसके चलेजाने पर न्योला आया उसको देखकर शृगाल बोला कि हमसे आकर पहले युद्ध करो जब हमको तू लड़ाई में जीतले तब पेटभर के मांस खाइयो बिना जीते तुझको मांस खाने को नहीं मिलेगा यह सुनकर वह बोला कि तुम बड़े वीर हो तुमने सिंह चूहा और भेड़िये को लड़ाई में जीतकर भगा दिया है मेरी सामर्थ्य तुमसे लड़ने की नहीं है यह कहकर वहभी चला गया ४४। ४६ इतनी कथा सुनाकर कणिक बोला कि महाराज उन सबोंको इस प्रकारसे उस शृगाल ने ठगकर स्वतन्त्रता से बैठकर उस हिरन के मांस को भक्षण किया जो राजा इस प्रकार से आचरण करता है वहभी शृगाल की तरह स्वतन्त्रता से सुख भोगता है ४७। ४८ राजा को सदैव उचित है कि डरपोकने को डर दिखाकर शूरवीर को नम्रता से लोभी को द्रव्यसे और समान वा न्यून को पराक्रम से अपने वश में करे ४६ इसके सिवाय राजा को उचित है कि पुत्र मित्र भाई बाप अथवा गुरु जो कोई अपने शत्रु से जा मिले उसको मारडाले और शत्रुको सौगन्द अथवा द्रव्य या विष देकर जैसे बने मारडाले और जो गुरु अभिमानी हो और कार्य अकार्य का विचार न करता हो उसेभी कभी न छोड़े ५०। ५२ और शत्रुओं के बीचमें जो आप किसी बातपर क्रोधभी करे तो अक्रोधीसा बनकर हँसकर उत्तर दे शत्रुकी निन्दा तबतक कभी न करे जबतक उसको मार न डाले कभी उससे अप्रिय वचन न कहै और मारने पर कृपा करै शोच करै और रोवै शत्रु को शान्त वचनों से अपना विश्वास दिवावे और जब उसे मार्ग से विमुख देखे उसी समय में अपना प्रहार करै ५४। ५६ बड़ा अपराध करनेपर धर्ममार्ग पर चलनेवाले राजाका वह दोष इस प्रकार से छिपजाता है जैसे काली घटाओं से पहाड़ नहीं दीखता है ५७ राजा को उचित है कि शत्रुको मारकर उसके घरको जला दे और अधम नास्तिक और चोरोंको अपने राज्य में न बसने दे और जब शत्रु आवे तब उसको लेनेजाय और आसन देकर बैठावे और जो

धन देने की आवश्यकता हो तो धनभी दे दे और जब पूरा २ विश्वास होजावे तब समय पाकर मारडाले ५८। ५६ राजा को विश्वासी और विश्वासघाती किसीकाभी विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि विश्वासी की काटीहुई जड़ हरी नहीं होती है ६०। ६१ और दूत चाहे अपना हो चाहे पराया विना परीक्षा लिये न रखना चाहिये उनमें से जो पाखण्डी तपस्वी हों उनको शत्रुओं के देशों में वनों में क्रीड़ाके स्थानों में मन्दिरों में मद्य पीनेके स्थानों में बाजारों में बड़ी २ गलियोंमें सब तीर्थों में चबूतरों पर कुओंपर और जहां २ मनुष्य इकट्ठे होते हों उन सब स्थानों में विचारकर नियत करना चाहिये ६२। ६४ राजाको सबसे नम्रताके साथ और हँसकर बोलना उचित है परन्तु हृदय में कठोरता रक्खे और समयपर भयङ्कर कामभी करडाले ६५ जो राजा अपना वैभव चाहे उसे यह चार बातें करनी अवश्य हैं हाथ जोड़ना १ सौगन्दका खाना २ शान्त रहना ३ और चरण छूना ४। ६६ अर्थ धर्म और काम इन तीनोंमें तीन प्रकारकी पीड़ा होती हैं और तीनों के फलों में भी वही बात है परन्तु राजाको उचित है कि फलको तो शुभ जाने और पीड़ाको छोड़ दे धर्मात्मा अर्थी और कामी इन्हीं तीनों को पीड़ा होती है ६७। ६६ राजाको उचित है कि मन्त्र ऐसे ब्राह्मणों के साथ करै जो घमण्डी न हों शान्त स्वभाव और शुद्धात्मा होवें ७० और दीन आत्माका उद्धार कठिन अथवा सुलभ उपायों से जैसे होसके करै और समर्थ होने पर धर्मका आचरण करै ७१ मनुष्य को अपना कल्याणकारी मार्ग उस समय तक नहीं दीखता है जबतक उसपर कोई संकट नहीं पड़ता और संकट पड़ने पर जो उससे बचता है तो उसको उसका यथावत् ज्ञान होजाता है ७२ जो शत्रु तिरस्कृत बुद्धि होय तो उसको पहली कथा सुना २ कर शान्त करै और जो निर्बुद्धि होय तो उसको झूठा आदर करके शमन करै और जो पण्डित हो तो धन देकर प्रसन्न करै ७३ जो मनुष्य शत्रुसे मिलाप करके निश्शंक रहताहै उसकी गति ऐसी है जैसे वृक्षपर सोनेवाला मनुष्य नीचे गिरने पर जगता है ७४ अपने मन्त्रको कभी किसीसे कहना योग्य नहीं है शत्रुके मर्मोंको विना काटे और विना दारुण कर्म किये मनुष्य को मत्स्यघाती के सदृश लक्ष्मी नहीं मिलती है ७५। ७६ शत्रुकी सेना थकी मांदी भूंखी प्यासी कैसीही हो विना मारे न छोड़े और कोई किसीके कामको पूरा २ कभी न करै अपने हाथमें भी कुछ अवश्य रहने दे क्योंकि दीन दीनके पास कभी नहीं जाताहै और जिसका

काम निकल जाताहै वह फिर साथ कभी नहीं देताहै ७७।७८ वैभव चाहनेवालों को संग्रह और विग्रह दोनोंका यत्न ऐसे मनुष्योंसे कराना चाहिये जो उसको प्रकाश न करें और जो काम करे सो उत्साह और यत्नके साथ करे ७९ और जबतक उस कामका प्रारंभ न हो तबतक उसको कोई न जानने पावे ८० और जो किसी प्रकारका भय आनेवाला हो तो उसके दूर करनेका पहले से यत्न करे और भयके आपहुँचनेपर निडर होकर लड़े ८१ जो मनुष्य दंडसे वश किये हुये शत्रुपर अनुग्रह करता है वह उसी प्रकारसे पंचत्वको प्राप्त हो जाताहै जैसे खचरी गर्भ धारण करके मरजाती है ८२ जो काम आगे करना हो उसको पहिले से विचारले और बुद्धिसे विना विचारे कोई काम न करे ८३ ऐश्वर्य चाहनेवाले को हर कामका उत्साह देश काल और भाग्यको विचार कर यत्न-पूर्वक करना उचित है ८४। ८५ जो मनुष्य शत्रुको छोटा जानकर छोड़ देता है उसके दुःखकी जड़ें तालवृक्ष के समान बड़ी २ होजाती हैं और वह इसप्रकार से नाश होजाता है जैसे छोटीसी अग्निकी चिनगारीसे सब जंगलका जंगल भस्म होजाताहै ८६ शत्रु को देना कभी न चाहिये केवल आशाही पर रक्खे बहुत दिनोंका वायदा करदे और वायदे का समय आने पर बहाना करदे और अपना समय देखता रहे समय के आने पर कभी न चूके शत्रुको अवश्य मारडाले ८७। ८८ इससे हे राजा धृतराष्ट्र! पाण्डवादिक जिनको आप अपना शत्रु जानते हैं उनको नीति से अपने वशमें कीजिये वे बड़े शूरवीर हैं ऐसा काम करना चाहिये जिससे आप अपने को बचाये रहें और पीछे किसी बातका पछतावा न होवे ८९। ९२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कणिक धृतराष्ट्र से उक्त नीति कहकर अपने घरको चलागया और धृतराष्ट्र शोकमें मग्न होगये ९३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४०॥

एकसौइकतालीस का अध्याय।

पुरवासियों से युधिष्ठिर के राज्याभिषेक करानेकी सलाहको सुनकर दुर्योधन का खिन्नचित्त होकर धृतराष्ट्र से पांडवों को राज्य न मिलने का उपाय पूछना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे राजा धृतराष्ट्रकी आज्ञा से दुर्योधन कर्ण दुश्शासन और शकुनि इन चारों ने मिलकर पाण्डवों को

कुन्ती सहित जलानेकी सलाह की उस सलाह को विदुरजीने अपनी बुद्धि-बलसे जान लिया १। ३ और उनको उस बड़े भारी भय से भगाकर बचाना विचारकर एक बड़ी दृढ़ नाव जो वायुके वेग और पानीकी लहरों को सहसके लङ्गर सहित बनवाई और कुन्तीको बुलाकर कहा कि यह दुर्योधन कुरुवंश में बड़ा पापी और कुलघाती उत्पन्न हुआ है हमने उसकी रचीहुई मृत्यु की फांसी से बचने के लिये तुम सबके वास्ते यह नाव बनवाई है इसपर चढ़कर तुम सब चलेजाना ४। ७ कुन्ती यह सुनकर पुत्रोंसहित दुःखीहुई और उसी नावपर चढ़कर लाख के घरसे जलने से बचकर गंगाजी के पार होकर पुत्रों सहित चलीगई और लाखके घरमें एक निषादिनी अपने पांचों पुत्रोंसहित जो वहां आकर बसी थी वह और नीच महाम्लेच्छ पुरोचन जलकर मरगये ८। ११ वारणावत नगरके रहनेवाले यह देखकर बड़े दुःखी हुये और एक दूत भेजकर धृतराष्ट्र से यह कहला भेजा कि आपका मनोरथ अब पूरा हुआ जो आपने पाण्डवोंको जलवादिया यह सुनकर धृतराष्ट्र ने पुत्रों सहित पाण्डवों का बड़ा शोच किया और भीष्मजी सहित विदुरजीने उनकी प्रेतक्रिया कराई १२। १६ यह सुनकर राजा जनमेजय बोला कि महाराज मैं लाखके घरके जलने और पाण्डवों के बचने की कथा विस्तारपूर्वक सुना चाहता हूं धृतराष्ट्र आदि ने यह क्रूर मारणकर्म क्योंकर किया मुझको इसमें बड़ा आश्चर्य होता है १७। १८ यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले कि दुर्योधन भीमसेन का बल और अर्जुन की सिद्ध धनुर्विद्या को देखकर बड़ा म्लानचित्त रहनेलगा और कर्ण शकुनि की सलाह से पाण्डवों के मरने के अनेक उपाय करता रहा परन्तु पांडव विदुर जी के मतके अनुसार सब बातों को बराते चलेगये १६। २२ उसी समयमें सब पुरवासी पाण्डवों को गुणवान् देखकर सभा में जा जाकर उनकी प्रशंसा करनेलगे और जहां तहां चबूतरे आदि पर बैठ २ कर यह वार्तालाप करने लगे कि धृतराष्ट्र को अन्धे होने के कारण से पहलेही राज्य नहीं मिला था अब उसको राज्य क्योंकर मिल सक्ता है और भीष्मजी सत्यप्रतिज्ञ हैं वे राज्यको अब कभी ग्रहण न करेंगे इससे हम सब मिलकर आज चलकर पाण्डु के बड़े लड़के को जो धर्मात्मा कारुणिक और वृद्धोंकासा स्वभाव रखनेवाला है राज्य मिलने के लिये राज्याभिषेक करावें हमको निश्चय है कि वह भीष्मजी और पुत्रों सहित धृतराष्ट्र को बड़े मानसे रक्खेगा और उनके निमित्त

सब भोग नियत करदेगा २३ । २८ उन युधिष्ठिर के हितमें अनुरक्त पुरवासियों की बातोंको सुन २ कर दुर्योधन को बड़ा क्रोध और दुःख हुआ और ईर्षासे उन की बातोंको न सहकर धृतराष्ट्र के पास आया २६ । ३० और उनके चरणों को छूकर बोला कि महाराज मैं पुरवासियों की महाअशुभ बात सुन आयाहूं वह लोग भीष्मजी और आपका निरादर करके पाण्डवों को अपना राजा करना चाहते हैं और भीष्मजी का भी यही मतहै क्योंकि उन्होंने तो राज्य छोड़ही दिया है पुरवासी कहते हैं कि अपने गुणोंकी अधिकता से राजा पाण्डु को पहले राज्य मिला था अन्धे होनेके कारण से आपको नहीं मिला इस कारणसे अब पाण्डु के पुत्रों को क्रमसे राज्य मिलना चाहिये सो हे महाराज! ऐसा होनेसे हम सब राजवंश से हीन होने के कारण पुत्रों सहित बड़े दीन होजायँगे राजा न होने से हमारा कोई आदर न करैगा और पराये आधीन जीविका होजाने से बड़ा कष्ट पावेंगे इससे हे महाराज ! ऐसा उपाय कीजिये जिससे पांडव राजा न होने पावें जो आपको पहले राज्य मिला होता तो हम मनुष्यों के विपरीत होनेपर भी राज्य ले लेते ३१ । ३८ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वण्येकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४१ ॥

एकसौबयालीस का अध्याय।

दुर्योधन का कर्ण आदिसे सलाह करके पांडवों को वारणावत नगर में भेजने को धृतराष्ट्र से कहना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पुत्रकी उक्त बातों को सुनकर और कणिक की कही हुई राजनीति को स्मरण करके धर्माधर्म के विचार में द्विधाचित्त होकर राजा धृतराष्ट्र चुप होरहा और दुर्योधन एक ओर बैठकर कर्ण दुःशासन और शकुनि से सलाह करने लगा कुछ विलम्ब में फिर धृतराष्ट्र से कहा कि महाराज हमको पांडवों से बड़ा भय है इससे आपसे प्रार्थना है कि उनको अच्छे उपायों से यहां से निकालकर वारणावत नगर को भेज दीजिये यह सुनकर धृतराष्ट्र ने एक मुहूर्तमात्र विचार करके दुर्योधन से कहा १ । ४ कि राजा पांडु धर्मात्मा होने के कारण से सब जातिके मनुष्यों का प्यारा था और मुझे भी उससे अत्यन्त प्रेम था भोजनमात्र के सिवाय वह कुछ नहीं जानता था और राज्य को नित्य मेरे निवेदन करता था और जैसा वह था वैसेही गुणवान् धर्मात्मा और पुरवासियों के प्यारे उसके पुत्र हैं उनको हम

बलसे क्योंकर निकाल सक्ते हैं क्योंकि राज्य उनके बाप और दादेका है और सब मनुष्य उनकी सहाय पर हैं ५ । ८ राजा पांडुने सब मंत्री सेना के मनुष्य और सब पुरवासियों का पालन पोषण और सत्कार भलीप्रकार से किया था ऐसा न हो कि जो हम उनको यहांसे निकालें तो यह सबलोग मिलकर हम लोगों को मारें ६ । १० यह सुनकर दुर्योधन बोला कि सब खजाना मेरेही पास है मैं धन आदि के द्वारा सब मंत्री और पुरवासियों को अपने वशमें करलूंगा वह लोग फिर उत्पात नहीं करेंगे और आपकी सहायता करेंगे आप पांडवों को वारणावत नगरके भेजने का शीघ्र उपाय कीजिये जब सब राज्य मेरे वश में होजायगा तब हम उनको कुन्ती सहित फिर बुलालेंगे ११ । १४ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोला कि मेरे भी हृदय में यही अभिप्राय बना रहता है परन्तु पाप जानके मैंने इसको आजतक प्रकट नहीं किया था भीष्मजी विदुर द्रोणाचार्य कृपाचार्य और कुरुवंशीलोग जो हमारे बड़े अथवा बराबरके हैं वह पांडवों का वहां जाना स्वीकार नहीं करेंगे और बड़े शूरवीर होनेके कारण से हम उनको मारभी न सकेंगे और उनके साथ सब पुरवासी मरजायँगे १५।१८ दुर्योधन बोला कि भीष्मजी तो मध्यस्थ हैं अर्थात् दोनों को एकसा जानते हैं और द्रोणाचार्य का पुत्र मेरी ओर है इससे द्रोणाचार्य भी हमारी ही ओर रहेंगे और जिधर द्रोणाचार्य और उनके पुत्र होंगे उधरही कृपाचार्य भी रहेंगे क्योंकि कृपाचार्य अपने भानजे को कभी न छोड़ेंगे १६ । २० और विदुरजी प्रकटमें तो हमसे मिले हुये हैं परन्तु अन्तःकरण से पांडवों काही हित चाहते हैं सो एक मनुष्य हमारा कुछ नहीं करसक्ता है २१ इससे आप आजही उपाय करके पांडवों को यहांसे निकाल दीजिये और हमारे इस महान् शोक को जिसके कारण से रात्रिको निद्रा तक नहीं आती है दूर कीजिये २२ । २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४२ ॥

एकसौतेंतालीस का अध्याय।

धृतराष्ट्र का पांडवों को वारणावत नगरके जानेकी आज्ञा देना और पांडवों का सबसे मिलकर यात्रा करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे दुर्योधनने मंत्री आदि सब राजसम्बन्धी मनुष्यों को धन आदि दे देकर अपने वशमें करलिया एक दिन उन चतुर मंत्रियों ने धृतराष्ट्र की प्रेरणासे सभामें बैठकर वारणावत नगर

की बहुतसी शोभा वर्णन की और कहा कि उस नगर के पास एक शिवजी का रत्नजटित स्थान है वहां का मेला भी निकट आन पहुंचा है उसको सुन कर पांडवों का भी चित्त वहां जानेको हुआ उसी समय में धृतराष्ट्र ने युधिष्ठिर को बुलाकर कहा कि वारणावत नगर की नित्य २ मनुष्य आ २ कर शोभा वर्णन करते हैं जो तुम्हारा वहां जानेको चित्त है तो अच्छा है अपने भाई और माता सहित वहां चले जाओ थोड़े दिनों में फिर हस्तिनापुर को चले आना वहां पहुँचकर मनमानता धन और गऊ ब्राह्मणों को दान देना ॥१० यह सुन कर युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के अंतःकरण की बातको जानकर और अपने को असहाय देखकर बोला कि बहुत अच्छा और भीष्मजी विदुरजी द्रोणाचार्य कृपाचार्य सोमदत्त भूरिश्रवा बाह्लीक पुराने मंत्री तपस्वी ब्राह्मण गांधारी पुरोहित पुरवासी और कुरुकुलके सब वृद्ध मनुष्यों के पास क्रमसे जा २ कर सबसे विदा मांगी और सबसे कहा कि मैं धृतराष्ट्र की आज्ञा से सकुटुम्ब वारणावत नगर को जाताहूं आपलोग मुझको कल्याण होने के लिये आशीर्वाद दीजिये यह सुनकर सभोंने बड़ी प्रसन्नता से पांडवों को आशीर्वाद दिया कि तुम्हारा कल्याण होवे और पांडव वहां से मंगलाचार करके वारणावत नगर को चल दिये ११ । १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४३ ॥

एकसौचवालीस का अध्याय ।

दुर्योधन का अपने पुरोचन मंत्री को वारणावत में लाख का घर बनाने और उसमें पांडवोंको टिकाकर आग लगादेने की आज्ञा देकर भेजना और उसका वहां जाकर लाखका घर बनवाना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पांडवों के जानेपर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ और अपने पुरोचन नाम मंत्री को एकान्त में लेजाकर बोला कि यह संपूर्ण पृथ्वी जो मेरे अधीन है उसको तू सब अपनी जान तेरे सिवाय मेरा और कोई विश्वासी मनुष्य नहीं है और न कोई हितका करनेवाला है इससे तुमसे हम एक गुप्त मन्त्रको कहते हैं तुमको उस मंत्रका प्रकाश किसी से न करना चाहिये हम अपने शत्रु को निर्मूल किया चाहते हैं इससे जो हम कहें उसे तुमको करना उचित है पांडवों को धृतराष्ट्र हमारे पिताने वारणावत नगर को जानेकी आज्ञा दी है सो वे वहां विहार करने को गये हैं तुम भी

अभी बड़े शीघ्रगामी खच्चरों को रथमें जोतकर ऐसे सारथी को लेकर जाओ जो आजही तुमको वहां पहुँचा दे वहां जाकर जितना द्रव्य लगे लगाकर एक मकान उस नगर के निकट चौखना बनवाकर तैयार करो उस मकान की दीवारें घृत सन तेल राल और लाखको मट्टी में मिला २ कर बनवाना और ऊपर उसके खूब गहरी मट्टी पुतवा देना जिससे पांडव आदि कोई उस भेद को न जानसकें और अग्नि को प्रज्वलित करनेवाली चीजें उस मकान के चारों ओर रखवा देना और उस लाखके गृहको चारों ओरसे ऐसा चित्र विचित्र करदेना कि मनुष्य का चित्त उसमें ठहरने को किया करै जब उस स्थानपर पांडव पहुँचें तब उनको बड़े आदर से लेजाकर उनका विधिपूर्वक पूजन करना और सवारी और सेज आदि सब सुखके सामान वहां पांडवों के लिये कर देना उस मकान की रचना इस प्रकार से करना जिसमें कुन्ती के पुत्र उसके भेदको न जानने पावें जब पांडव कुन्ती सहित उस घर में वास करके कुछ कालतक विश्वासपूर्वक रहने लगें तब वायु को देखकर दरवाजे की ओर से अग्नि लगादीजो ऐसा करने से पांडव उस घरके साथ जलकर भस्म हो जायँगे और हमको कोई दोष न देगा १।१७ यह सुनकर पुरोचन ने दुर्योधन से गृह बनवाने की प्रतिज्ञा की और वहांसे बड़े शीघ्र चलनेवाले खच्चरों को रथमें जोतकर उसपर बैठकर वारणावत नगर में पहुँचा और लाखके गृहके बनाने की रचना प्रारंभ करके उक्त रीतिसे दुर्योधन के कहने के अनुसार गृह बनवाकर तैयार करादिया १८।१६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४४॥

एकसौपैंतालीस का अध्याय।

पांडवों का वारणावत नगर को चलना उनके साथ पुरवासियों का आना युधिष्ठिर का उनको लौटाना और विदुरजी का म्लेच्छभाषा में अग्निसे बचनेका उपाय बताना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पांडव अपने रथों में शीघ्रगामी घोड़ोंको जोतकर भीष्मजी द्रोणाचार्य कृपाचार्य धृतराष्ट्र आदि सब बड़े छोटे से यथायोग्य मिलकर रथों पर चढ़कर वारणावत नगर चलने लगे उनको जाते हुये देखकर सब मंत्री विदुरजी और पुरवासी शोक करतेहुये उनके पीछे २ होलिये १।५ उस समय कोई २ निर्भय ब्राह्मण उन पांडवों की उस दशाको देखकर कहने लगे कि धृतराष्ट्र की बुद्धि मंद होगई है और वह धर्म को नहीं

देखता है ये विचारे पापरहित पांडव पापकर्म करना नहीं विचारते हैं पिताका राज्य पानेके अधिकारी होने से धृतराष्ट्र इनको नहीं देख सक्ता है ६। ६ हम को बड़ा आश्चर्य यह है कि भीष्मजी इस अधर्म को कैसे देखते हैं यह बड़ी अनीति की बात है जो इनको नगरसे निकाल दिया है पहिले राजा शंतनु था उसके पीछे विचित्रवीर्यने राज्य किया उसके उपरांत राजा पांडु हमारा राजा हुआ वह पांडु मरगया है इससे धृतराष्ट्र इन बालकों को नहीं देख सक्ता है १०। १२ हम इस अनीति को नहीं चाहते हैं इससे हम सबभी युधिष्ठिर के साथ चलेंगे उनकी यह वार्तालाप सुनकर युधिष्ठिरने ध्यान करके कहा कि राजा धृतराष्ट्र हमारे पिता के समान हैं उनका कहना करना हमारा परमधर्म है तुम सब लोग हमारे मित्र हो अब हमको सबजने आशीर्वाद दे देकर घरको लौट जाओ जब हमारा कुछ काम आकर पड़े तब हमारा उपकार करना १३। १७ यह सुनकर सब पुरवासी राजा युधिष्ठिर को आशीर्वाद दे देकर अपने घरको लौटगये और उनके चले जानेपर विदुरजी ने जो सब भाषाओं को अच्छी तरहसे समझतेथे म्लेच्छभाषा में युधिष्ठिरसे कहा (युधिष्ठिरभी म्लेच्छ आदि सब भाषाओं को जानते थे) कि जो मनुष्य नीतिशास्त्र के अनुसार शत्रुके कपट को जानता है उसको आई हुई आपत्ति से बचने का उपाय करना उचित है और जो मनुष्य रात्रिमें छिपे हुये अग्निसम्बंधी पदार्थों के बनाये हुये गृहको पहिचान जाता है उसको शत्रु नहीं मारसक्ता और जो शत्रु अपने साथ रहे और अग्निसे मारना चाहे उससे बचने के लिये सुरंग की राहसे निकलजावै और वह अपने को सोते में न जलाने पावै जो कोई अपनी रक्षा इसप्रकार से करता है वह जी सक्ता है यह बातभी तुम्हारे समझने के योग्य है कि जिसका विवेक जाता रहता है उसको राह नहीं सूझती और जो शास्त्र नहीं जानता है उसको दिशा नहीं जानपड़ती है और जिसका धैर्य जाता रहता है उसकी बुद्धि जाती रहती है और जो शत्रु अपने को अग्निसम्बन्धी पदार्थों से बनेहुये गृहमें ठहरावे तो उससे बचने के निमित्त दूसरी राह ढूंढले १८। २५ मनुष्य को चाहिये कि फिरकर पहिले से राह देख रक्खे और रात्रिके समय में दिशाओं को नक्षत्रोंसे जानले एक समय पीड़ा सहनेपर फिर पीड़ा वैसी नहीं जानपड़ती है २६ युधिष्ठिर इन उक्त गूढ़ अर्थवाले वचनों को सुनकर विदुरजी से बोले कि मैं आपके अभिप्राय को

अच्छीतरह समझगया इसके पीछे विदुरजी पाण्डवों से मिलकर और प्रद-क्षिणा करके लौट आये २७।२८ उनके चले जानेपर कुन्तीने युधिष्ठिरके पास आकर पूंछा कि तुझसे और विदुरजी से क्या बातें हुई थीं जिसके उत्तर में तैंने कहा था कि अच्छा मेरी समझ में कोई बात नहीं आई जो कुछ दोष न हो तो मुझसे भी कहदे मैं भी उस बातको सुना चाहतीहूं २९।३१ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हमसे विदुरजीने गूढ़ बोली में यह समझाया था कि जगते रहना और मकान में अग्नि उठने पर राहको ढूंढ़कर निकल जाना सो मैंने उनको यह उत्तर दिया था कि आपकी गूढ़ बोलीके अभिप्रायको मैं जान गया ३२।३३ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे पाण्डव वहां से फाल्गुन कृष्णअष्टमी रोहिणी नक्षत्र में चलकर वारणावत नगर के समीप पहुँचे और वहांके मनुष्यों को देखा ३४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः १४५॥

एकसौछियालीस का अध्याय।

पाण्डवोंका वारणावत नगरमें पहुँचना पुरवासियों का उनका आदर सत्कार करना और पुरोचनका पाण्डवों को लाक्षागृह में टिकाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वारणावत नगरके वासी पाण्डवों का आना सुनकर वहांके प्रधान २ मनुष्य सहस्रों आदमियों की भीड़ लेकर अनेक सवारियों में बैठ बैठकर मंगलयुक्त नगर के बाहर शास्त्र की रीति से पाण्डवों को लेने के लिये आये और उनको घेर कर जयकार बोलकर और आशीर्वाद देकर बैठगये उस समय पाण्डव उन वारणावतवासियों में बैठेहुये ऐसे शोभायमान मालूम होते थे जैसे देवताओं में इन्द्र मालूम होता है १।४ पाण्डवों ने सब पुरवासियोंका बड़ा सत्कार किया और उन सबको साथ लिये हुये बड़ी धूमधाम से नगरके भीतर गये और वहांके सब तपस्वी ब्राह्मण नगर के अधिकारी शूरवीर और प्रधान प्रधान वैश्य और शूद्रोंके घर जा जाकर सब से मिले और सबसे पूजित होने के पीछे पुरोचनके साथ २ अपने वासस्थान को लौट आये पुरोचनने उनके लिये बड़े सत्कार से सम्पूर्ण भोजन और पीने की सामग्री और सवारी शय्या और आसन आदि आराम की चीजें इकट्ठी करदीं और पाण्डव वहां पुरवासी और पुरोचनसे सत्कृत रहनेलगे ५।१० दश दिनके पीछे पुरोचन उस अकल्याणी लाख के बनाये हुये घरके आरामों को

कह २ कर पाण्डवों से बोला कि उसी स्थानमें आप चलकर वास कीजिये यह सुनकर पाण्डव सब सामग्री सहित वहां से उठकर उस लाखके बनायेहुये गृहमें उठ गये ११ । १२ उस घरको देखकर युधिष्ठिर भीमसेन से बोले कि देखो यह सब गृह अग्निसम्बन्धी पदार्थों से बना है इसमें घी और लाख से मिली हुई चर्बीकी सुगन्ध प्रकट आरही है इसको बड़े विश्वासी मनुष्यों ने सन राल मूंज छिलके और बांस आदि को घी में बोर बोर कर मिट्टी में मिलाकर बनवाया है १३ । १५ यह पापी पुरोचन दुर्योधन की सलाहसे हमको जलाना चाहता है हमारे चचा विदुरजी हमसे बड़ा स्नेह करते हैं और बड़े बुद्धिमान् हैं उन्हों ने इन सब बातों को अपनी बुद्धिबल से जानकर इस गृहके सम्पूर्ण वृत्तान्त से मुझे चलते समय बोधित कर दिया था १६।१८ यह सुनकर भीमसेन बोले कि जो यह गृह अग्निसम्बन्धी पदार्थों का बना हुआ है तो चलकर वहीं रहिये जहां पहिले टिके थे १९ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हमको इस गृहके सब हालको छिपाकर यत्नपूर्वक सावधानीसे यहीं रहना उचित है क्योंकि पुरोचन दुर्योधन के मत में स्थित होकर निन्दा और अधर्म से नहीं डरता है जो उस को यह बात मालूम होगई कि हमलोग इस मकान के हाल को जानगये तो वह दुष्ट हम सबको हठ करके जला देगा २०।२२ और हमारे जलनेपर भीष्म जी कोप करें तो वह हमारे किस कामका है और जो भीष्मजी यह कहें कि यह राजाओं का धर्म है और कौरव कुलके मनुष्य क्रोध करें तो भी हमको क्या है २३ । २४ और जो हम लोग यहांसे कहीं को भागकर चले चलें तो दुर्योधन हमलोगों को दूतों से मरवा डालेगा २५ क्योंकि दुर्योधन के पास खजाना है और उसके पक्षपर बहुतसे मनुष्य हैं और हमलोग धनहीन और विना पक्षके हैं २६ इससे हम लोगों को सब को धोखा देकर गुप्त बसना उचित है २७ अहेर खेलने के बहानेसे भागने की सूधी राह पहिलेसे देख रक्खो और आज ही से आलस्य छोड़कर इसके भीतर कोई गुप्त राह ऐसी बनानी चाहिये जहां से हमलोग निकलकर चले जावें और हमारे भेद को पुरोचन या पुरवासी कोई न जान सकें २८ । ३० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकषट्चत्वारिंशोऽध्यायः १४६ ॥

एकसौसैंतालीस का अध्याय।

विदुरजीका पांडवों के पास एक खनिकका भेजना और उस खनिक का लाक्षागृहसे बाहर निकलने को सुरंग खोदना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे विदुरजीका भेजा हुआ एक मनुष्य पांडवों के पास वारणावत नगर में आया और उनसे गुप्त मिलकर बोला कि मैं खनिक हूं पृथ्वी खोदने के काम में बहुत निपुण हूं मुझको विदुरजी ने यह कहकर आपके पास भेजाहै कि तू जाकर ऐसा कामकर जिससे पांडवों का कल्याण होवे और विश्वास के लिये यह कहला भेजाहै कि हमने पांडवों से चलते समय कुछ गूढ़अर्थ की बातें कहीथीं सो पुरोचन कृष्णपक्षकी द्वादशीको दुर्योधन के कहने के अनुसार गृहके द्वार परसे तुम सबको जलाने के लिये आग लगावेगा सो अब आप जो कुछ मुझको आज्ञा करें सो मैं आपके कल्याण के लिये करूं १। ६ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि मैं तुमको अच्छी तरह जानताहूं तुम विदुरजी के परम मित्र हो और तुमसे विदुरजीका कोई हाल छिपा नहीं है तुम जैसे विदुरजी के हितू हो इसीप्रकार से हमारे भी हितकारी हो और हम भी जैसे विदुरजी के हैं वैसेही तुम्हारे हैं सो तुम हमको इस अग्नि के घरसे बचाने का कोई उपाय करो यह गृह दुर्योधन ने हमारे जलानेको पुरोचनसे बनवायाहै हम उसका इस समय में कुछ नहीं करसक्ते हैं क्योंकि वह धनवान् और पक्षसहित है इस गृहसे बाहर जानेको कोई और राह नहीं है विदुरजी ने इसको पहिले हीसे अपनी बुद्धिबलसे जानलिया था और हमको भी जतादिया था इससे जैसे विदुरजी ने हमारी रक्षा की है उसीप्रकार से तुमभी हमको इस अग्नि से ऐसा उपाय करके बचाओ जिससे पुरोचन को कुछ हाल मालूम न होवै ७। १५ यह सुनके वह खनिक युधिष्ठिरसे तथास्तु कहकर खाईको झाड़ने के बहाने से मिट्टी फेंक २ कर उस गृहके बाहरसे एक सुरंग खोदकर उसका छोटासा मुख गृहके भीतर निकालदिया और उस सुरंग के मुखोंपर पृथ्वी की बराबर पर किवाड़ लगादिये जिसमें पुरोचन कदापि भीतर गृहके आवै अथवा बाहर उस ओर को जाय तो उसको कुछ बात न जानपड़े पुरोचन उस गृहके द्वारपर सब शस्त्र लिये हुये रहा करता था १६। १८ पांडवों को यद्यपि लेशमात्र भी विश्वास न था और न उनका मन प्रसन्न था परन्तु वे दिनमें अहेर के बहाने से अपने भागने की राह ढूंढ़ते हुये इसप्रकार से रहते थे कि पुरोचन यह जानता था कि

पांडवों को मेरा बड़ा विश्वास है और सुखपूर्वक रहते हैं उनको किसी बातका किसीकी ओर से संदेह नहीं है और उस खनिकने भी ऐसी युक्ति से काम किया कि उसको सिवाय खनिकके किसीने और कुछ अनुभव नहीं किया १६।२१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकसप्तचत्वारिंशोऽध्यायः १४७ ॥

एकसौअरतालीस का अध्याय।

पांडवों का लाक्षागृह में आग लगाकर और पुरोचन को जलाकर सुरंग की राहसे निकल माता सहित वहां से चलदेना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जब पांडवोंको वहां बसते हुये एक वर्ष होगया तब पुरोचन यह जानकर कि पांडव प्रसन्न हैं और मेरे विश्वास परहैं बहुत हर्षित हुआ उसको प्रसन्न देखकर युधिष्ठिरने भीमसेन अर्जुन नकुल और सहदेव को बुलाकर कहा कि पुरोचन हमको धोखे से विश्वस्त जानकर प्रसन्नचित्तहै अब मेरा यह विचार है कि रात्रि को इस गृहमें आग लगाकर पुरोचन को जलाकर और छःजीवों को इस गृहमें डालकर सुरंगकी राह निकल चलो १। ४ उसी दिन रात्रिको कुंतीने भोजन दान देनेके बहाने से ब्राह्मणों को वहां रात्रि में बुलाया ब्राह्मणों की स्त्रियां भी वहां आईं और भोजन पान कर २ के अपने २ घरको चलीगईं ५। ६ उसी समय दैवकी इच्छा और कालकी प्रेरणा से वहांपर एक निषादिनि अपने पांचों पुत्रों सहित भोजन की इच्छा से चली आई और यथेच्छभोजन और मद्यपान करके मुरदे के समान वहीं पड़रही इसके पीछे जब रात्रि बहुत गई और सब मनुष्य सोगये तब वायु के चलनेपर भीमसेनने उस लाखके गृहमें उस स्थानसे अग्नि लगा दी जिस स्थान में पुरोचन सोता था और फिर उस स्थान के चारों ओर अग्नि लगाकर माता सहित सब पांडव सुरंग की राह से बाहर निकलकर चलदिये जब उस स्थान में बड़ी २ लपटें उठने लगीं और शब्द होने लगा तब सब पुरवासी जागउठे और उस गृह के चारों ओर खड़े होकर यह कह २ कर विलाप करने लगे कि इस दुष्ट पापी पुरोचन ने दुर्योधन की सलाह से पांडवों के साथ विश्वासघात करके उनको जलाया है और आपभी भाग्यवश से जलगया इस दुष्टने यह गृह अपने नाशके हेतुसेही बनवाया था ७।१७ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पांडव सुरंग से निकलकर अत्यंत दुःखी होकर चलदिये परन्तु नींद और भयके कारण से शीघ्र न चल सके उस समय भीमसेनने

माताको कंधेपर बिठालिया नकुल और सहदेवको गोदीमें लेलिया और युधिष्ठिर और अर्जुन को दोनों हाथों से उठाकर वहांसे पृथ्वी को रूंदता और अपने वक्षस्थल से वृक्षों को तोड़ता हुआ वायुके समान जल्दी चला १८। २२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकअष्टचत्वारिंशोऽध्यायः १४८॥

एकसौउनचास का अध्याय।

पाण्डवोंके पास विदुरजी के दूत का राह में आना और पाण्डवों को नावपर चढ़ाकर गंगाजी के पार उतार देना॥

वैशम्पायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! पाण्डव वहांसे गङ्गाके किनारे२ चलकर जब कुछ दूरपर पहुँचे तब उनको वह मनुष्य मिला जिसको विदुरजी ने वनका सङ्केत पाण्डवों से कहकर भेजा था उसने पाण्डवों को देखतेही वह नाव जो उसने विश्वस्त मनुष्यों से गंगाजी के किनारे पर बनवाई थी वह बड़ी दृढ़ वायु और जलकी लहरों को सहसक्ती थी दिखलाई और कहा कि मुझको विदुरजी ने आपके पास यह विश्वास के वचन कहकर भेजा है कि मनुष्य अग्नि से मारनेवाले शत्रुसे सुरंग की राह से निकलकर बचसक्ता है इस संकेतसे आप मुझको विदुरजी का भेजा हुआ जानिये और विदुरजी ने यह भी कहा है कि तुम युद्ध में कर्ण शकुनि और भाइयों सहित दुर्योधन को जीतोगे इसमें सन्देह नहीं है विदुरजी को दूतोंसे दुर्योधनका सब विचार मालूम होगया था इस कारण से उन्होंने मुझको यहां भेजा है अब आप इस नावमें बैठिये और निर्विघ्नता से गंगाजी के पार होकर चले जाइये ऐसा कहकर उस मनुष्य ने पाण्डवों को माता सहित नाव में बैठा लिया और उनसे कहा कि विदुरजी ने आपको बहुतसा प्यार कहकर यह भी कहला भेजा है कि गंगाजी को उतरकर बहुत सावधानी से जाना यह कहकर उसने पाण्डवों को गंगाजी के पार उतार दिया और उनको जयका आशीर्वाद देकर जैसे गया था फिर लौटआया और पाण्डव भी पार उतरकर विदुरजी को अपना सन्देशा भेजकर वहां से अलक्षित और गुप्तवेष धारण करके शीघ्र चलदिये १। १४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकैकोनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः १४९॥

एकसौपचास का अध्याय।

राजा धृतराष्ट्र को पाण्डवों के जल जाने का हाल सुनकर उनका कर्म करना और पाण्डवों को एक बड़े सघन वनमें पहुँचकर बड़ी चिन्ता करना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस रात्रिके बीतने पर पुरवासियों

ने उस लाख के घरके पास आकर अग्नि को बुझाया और पहिले पुरोचन के जलेहुये शरीर को देखकर बोले कि निस्सन्देह दुर्योधन पापी ने यह घर धृत-राष्ट्रकी आज्ञासे पाण्डवों के जलाने को बनवाया था धृतराष्ट्र ने अपने पुत्रको इस अधर्मके करने से नहीं रोंका हमलोगों को निश्चय है कि अब भीष्म द्रोणा-चार्य कृपाचार्य और सब कुरुवंशियों ने अपने धर्मको छोड़दिया है अब हमको उचित है कि धृतराष्ट्र को यह पत्र लिखकर भेज देवें कि तुमने पाण्डवों को जलादिया तुम्हारा बड़ा मनोरथ पूरा हुआ ऐसा कह २ कर वह पुरवासी पाण्डवों को ढूंढ़ने लगे और उस निषादिनी को पांचों पुत्रों सहित मराहुआ देखकर उनको पांडव जानकर बड़ा शोक करने लगे इसी अवसर में उस खनिकने विना जाने उस सुरंग को बंदकर दिया और पुरवासियों ने धृतराष्ट्र के पास जाकर पुरोचन मंत्री और कुंती सहित पांडवों के जल मरने का हाल कह सुनाया धृतराष्ट्र उस हाल को सुनकर विलाप करने लगा और बोला कि मेरा पांडु भाई आज मरा है अब जल्दी से सब मनुष्य वारणावत जाओ और धन लगाकर उनके नाम के बड़े बड़े स्थान बनवाओ और जो जो कुछ वस्तु कुंती सहित पांडवों के निमित्त करना चाहो सो सब करो यह कहकर धृतराष्ट्रने जाति के भाई बांधवों को बुलाकर पांडवों की जलक्रिया की उस समय सब मनुष्य अत्यन्त दुःखी होकर कोई युधिष्ठिर कोई भीम कोई अर्जुन कोई नकुल कोई सहदेव और कोई २ कुंती का नाम ले लेकर रोने लगे उनके मरनेका सब पुरवासियों ने बड़ा शोक किया और विदुरजी ने समय के अनुसार सब बातों को जानने के कारण से थोड़ा शोक किया १।१८ यहां तो यह सब क्रिया होती रही और वहां पांडव नावसे उतर कर नक्षत्रों से दिशा जानकर दक्षिण की ओर चलदिये और बड़े गहन वनमें पहुँचे उस समय नींद भूख और प्यास से अत्यन्त दुःखी होकर युधिष्ठिरने भीमसेन से कहा कि इससे विशेष और क्या कष्ट होगा कि हम इस गहन वनमें दिशा तक नहीं जानते हैं और न चल सकते हैं हमको नहीं मालूम कि दुष्ट पुरोचन जलगया या मरगया इस बात को सुनकर विना जाने हमारा भय दूर नहीं होसक्ता हे भीमसेन! तूही एक हम सबमें बलवान् है भाई! हम सबको पहिले की तरह ले चल यह सुनकर भीमसेनने माता और चारों भाइयों को पहिले की तरह उठालिया और वहांसे चलदिया १९।२९॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकपंचाशत्तमोऽध्यायः १५०॥

एकसौइक्यावन का अध्याय।

पांडवों का एक वनमें पहुँचकर भूंख प्यास के मारे पृथ्वी पर पड़ रहना भीमसेन का पानी लेने जाना और उन सबको पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखकर विलाप करना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन वहांसे भाइयों को लिये हुये राहके फल फूल सहित बड़े २ वृक्षोंको तोड़ता और ऊंची पृथ्वी को ठोकरों से बराबर करता हुआ मतवाले हाथी की तरह बड़ी शीघ्रतापूर्वक चला उसके चलने के वेगसे वृक्ष घूमते से दीखने लगे और ऐसी वायु चलने लगी जैसी ज्येष्ठ और आषाढ़ के महीनों में चलती है और जिस राहसे वह गया था उस राह में लता या वृक्ष कुछ न रहा १।४ उसके गरुड़ और वायुके समान चलने के वेगसे पांडव मूर्च्छित होगये और दुर्योधन के भयसे अनेक नदी और नाखों को अपनी भुजाओं के जोरसे पार होते और कूट कँगूरों को नांघते हुये संध्याके समय ऐसे वनमें पहुँचे जहां न फल थे न जल था और बड़े २ घोर जीव जन्तु रहते थे वहां पहुँचने पर छोटे बड़े वृक्षों की सघनता से महाअंधकार होगया और वायु बड़े वेग से चलने लगी उस समय पांडव प्यास निद्रा और थकावटके कारण से आगे न चलसके वहीं विना अन्न जल के पड़रहे कुन्ती प्याससे महाव्याकुल होगई और पुत्रोंसे पानी मांगा उसकी बातको सुनकर माताके स्नेहके कारणसे भीमसेनको बड़ा दुःख हुआ और उस वनमें एक बड़े रमणीक बड़के पेड़के नीचे उन सबको बैठाकर बोला कि इस ओर से सारसों के बोलनेका शब्द सुनाई देरहा है मेरी समझमें वहां पानी अवश्य होगा तुम सब यहीं बैठो मैं उस ओर पानी ढूंढ़ने जाता हूं ५।१७ इसके पीछे भीमसेन बड़े भाईकी आज्ञा पाकर उस ओरको गया और वहां एक सुंदर तालाब देखकर हर्षित हुआ भीमसेनने उस तालाबमें स्नान किये और जल पीकर वस्त्र को पानीमें भिगोकर वहांसे शीघ्र चला आया वह स्थान दो कोश पर था परंतु भीमसेन वायुके समान चलकर बहुत शीघ्र आन पहुँचा वहां आकर अपनी माता और भाइयों को पृथ्वीपर विना शय्या दुःख और शोकसे पड़े हुए और सर्प के समान श्वास लेतेहुये देखकर भीमसेन को बड़ा खेद हुआ और विलाप कर २ के कहने लगा १८।२१ कि अब इससे बढ़कर और क्या दुःख होगा कि मैं अपने भाई और माताको जो बड़ी उत्तम सेजोंपर महलों में सोते थे पृथ्वीपर पड़ेहुये इसप्रकार से सोते हुये देखता हूं

देखो यह हमारी माता विचित्रवीर्य की पुत्रवधू और राजा पांडु की भार्या जो वसुदेवजीकी बहिन और राजा कुन्तिभोजकी पुत्री है और सब लक्षणों से युक्त है जिसने धर्मराज इन्द्र और वायुसे हम सबको उत्पन्न किया है और उत्तम से उत्तम स्थानों में शय्यापर सोने के योग्य है अब इस विपत्ति में यहां पृथ्वी पर पड़ी हुई है ये युधिष्ठिर जो सब राजाओं के मुकुटमणि होने के योग्य हैं यह अर्जुन जिसकी समान संसार में और मनुष्य नहीं है और ये दोनों नकुल और सहदेव जो मनुष्यों में ऐसे सुन्दर और गुणवान् हैं जैसे देवताओं में अश्विनीकुमार हैं आज इस आपत्तिकाल में प्राकृत मनुष्यों की तरह पृथ्वी पर पड़े हुये हैं २२। ३१ जिस मनुष्यके स्वजाती कुलनाशक नहीं होते हैं वह मनुष्य ग्राम में अकेले वृक्षके समान सुखपूर्वक जीता है जिस ग्राम में एकही वृक्ष होता है और फलता फूलता है उस ग्राम में वह वृक्ष जातिवालों के न होने के कारण से पूजित बना रहता है और जिस मनुष्य के स्वजाती सब शूरवीर और धर्मात्मा होतेहैं तो वह मनुष्य भी सुखपूर्वक रहता है ३२।३४ और जो मनुष्य बलवान् और मित्र और भाई बांधवों की प्रसन्नता करने-वाले होते हैं वे परस्पर एक दूसरेके आश्रय रहकर वनमें एक साथ उत्पन्न हुये वृक्षोंकी तरह आनन्द से रहते हैं ३५ दुष्ट धृतराष्ट्र और उसके दुरात्मा पुत्रोंने हमको देश से निकालकर जलाना चाहा था देवाधीन बचकर अब यहां इस वृक्ष के नीचे आये हैं न जाने अब इस वनके क्लेशों को भोगते हुये कहां जायँगे ३६। ३७ हे दुष्ट, दुर्योधन! अब तू अपने अर्थ को पुष्ट करले तुझ पर देवता प्रसन्नहैं क्या करूं युधिष्ठिर मुझको तेरे वध करने की आज्ञा नहीं देते हैं नहीं तो तुझे मंत्री भाई और शकुनि सहित मारकर यमपुरी भेज देता युधिष्ठिरने अभी तेरे ऊपर क्रोध नहीं किया है नहीं तो तू क्या करसक्ता था ३८।४० इस प्रकारसे भीमसेन क्रोधित हो होकर हाथसे हाथ मलने लगा और क्रोधके शांत होने पर उन अपने दीनमन भाइयोंको पृथ्वीपर उसी प्रकार पड़े हुये देखकर विचार करनेलगा कि यहां से नगर थोड़ीही दूरपर जान पड़ता है और ये भाई सोरहे हैं जब इनकी थकावट उतर जायगी तब ये उठकर जल पीवेंगे ऐसा विचार करके भीमसेन आप जागता रहा और भाइयों को नहीं उठाया ४१। ४४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकैकपंचाशत्तमोऽध्यायः १५१॥

एकसौबावन का अध्याय।

पांडवोंको वनमें सोतेहुये हिडम्ब राक्षसका देखना उसका अपनी बहिनको उन्हें मारकर लानेके लिये भेजना और उसका भीमसेनपर कामासक्त होजाना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस वनमें जहांपर पांडव ठहरे थे वहांसे थोड़ी दूरपर शालके पेड़के ऊपर एक हिडम्ब नाम राक्षस रहता था वह राक्षस बड़ा क्रूर मनुष्योंके मांसका खानेवाला बड़ा पराक्रमी भयानक सूरत लम्बी २ जांघें लम्बा पेट मूछें और शिरके बाल लाल नेत्र डरावने और काले काले बड़े पेड़की बराबर गला कंधा और उस समय भूंखसे दुःखी था उसने दैव-इच्छा से उन पांडवों को देखा और मानुष गंधको सूंघकर अपने हाथों की उँगलियों से शिरके रूखे बालों को खुजाता जँभाई लेता और कुछ कांपता हुआ अपनी बहिन से बोला कि इस समय मुझको इस वनमें बड़ी मानुषगंध आरही है देखतो ये कौन मनुष्य यहां सोरहे हैं इनको देख २ कर मेरी जीभ लफलफाती है यह मनुष्यमांस मुझको आज बहुत दिनों में मिला है आज मैं अपनी तीक्ष्ण डाढ़ और दांतों से बड़े स्वादवाले इस मांस को खाऊंगा और अच्छा २ नवीन रुधिर पीऊंगा तू जा और इनको मारकर ले आ यहां तुझ को किसी प्रकार का डर नहीं है आज हम तुम दोनों इनके मांसको खाकर प्रसन्न होंगे और ताल दे देकर नाचेंगे १। १३ उस राक्षस की हिडंबा नाम बहिन उसकी बातको सुनकर उस स्थान पर गई जहां पांडव सोरहे थे और कुंती सहित चारों भाइयों को सोते हुये और भीमसेन को जागते हुये देखकर भीमसेन के दिव्यस्वरूप पर कामासक्त होकर विचार करने लगी कि यह पुरुषसिंह तेजस्वी महाबाहु कमलाक्ष और युवान मेरे साथ विवाह करने के योग्य है मैं अपने भाई का बताया हुआ क्रूरकर्म न करूंगी मेरा तो यह पति होचुका भाई का स्नेह पतिके स्नेह से विशेष नहीं होताहै और इसके मारनेसे मेरे भाई की तृप्ति एक क्षणभर के लिये होजायगी और न मारने से मैं इसके साथ आनन्दपूर्वक सदैव रमण करूंगी १४। १५ यह विचार कर उस राक्षसी ने अपना स्वरूप मनुष्यों कासा परमसुन्दर उत्तम २ वस्त्र और गहने पहिरे हुये बना लिया और मन्द २ मुसक्याती हुई भीमसेनके पास जाकर बोली कि तू कौन है कहां से आया है और ये देवताओं के समान पुरुष कौन सो रहे हैं और यह सुन्दर स्त्री जो इसप्रकार से विश्वस्त होकर सो रही है जैसे कोई घर

में सोताहै तेरी कौनहै यह इस बातको नहीं जानती है कि यह गहन वन हिडंब नाम राक्षस का है में उसकी बहिन हूं उसने मुझे तुम्हारा मांस भक्षण करने के लिये तुम सबको मारनेके लिये भेजा है परन्तु अब में तेरे सुन्दर स्वरूपको देखकर सिवाय तेरे दूसरे से अपना विवाह करना नहीं चाहती हूं इससे अब तुझको जो कुछ उचित जानपड़े सो कर में कामार्त होकर तुझको मनसे चाहती हूं तुझे भी मुझसे प्रीति करना उचित है में तुम्हारी सबकी इस मनुष्यभक्षी राक्षस से रक्षा करूंगी और हम तुम दोनों पहाड़ों की कन्दराओं में रहेंगे में आकाश में जहां चाहूं तहां जासक्ती हूं तुझको रमणीक २ स्थानों में लेजाकर तेरे साथ विहार करूंगी २० । २६ यह सुनकर भीमसेन बोले कि ऐसा कौन अधर्मी होगा जो सुखसे सोती हुई माता और बड़े भाई को राक्षस के खाने के लिये छोड़कर कामासक्त होकर तेरे साथ जायगा ३० । ३१ यह सुनकर वह राक्षसी बोली कि अच्छा तू इन सबको जगादे में तेरी इच्छा के अनुसार इनको राक्षस से बचाऊंगी ३२ भीमसेन बोला कि में तेरे भाई के भय से सुखनींद से सोतेहुये भाई और माताको नहीं जगा सक्ताहूं राक्षस गंधर्व मनुष्य और यक्ष आदि कोई मेरे पराक्रम को नहीं सहसक्ता है तेरे मनमें आवे सो कर चाहे जा चाहे रह चाहे अपने भाई को भेजदे ३३ । ३५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकद्विपंचाशत्तमोऽध्यायः १५२ ॥

एकसौतिरपन का अध्याय।

हिडम्ब दैत्य का अपनी बहिन को देरका गया हुआ जानकर पांडवों के मारने को आप आना और भीमसेन से उसका युद्ध होना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह हिडम्ब नाम राक्षस अपनी बहिन को देर की गई हुई जानकर उस शालवृक्षसे उतरकर बड़ा भयानक वेष बनाये लाल लाल नेत्र किये हुये पांडवों के पास जाने को चला उसको आते हुये देखकर हिडम्बा ने डरकर भीमसेन से कहा कि देखो मेरा भाई क्रोध भरा हुआ बड़ी भयानक सूरत बनायेहुये आरहा है में खेचरी हूं और राक्षसों कासा बल रखती हूं इससे तू शीघ्र अपने भाइयों और माताको जगादे में उन सबको और तुझको अपनी पीठपर चढ़ाकर आकाश मार्ग से भगा ले चलूंगी १।६ यह सुनकर भीमसेन बोला कि तू डरे मत यह एक अकेला राक्षस क्या है जो बहुतसे भी राक्षस होवें तो भी मेरा कुछ नहीं करसक्ते हैं तेरे देखते देखते

में इसको मारडालूंगा यह मेरा प्रहार नहीं सह सकैगा मेरी दोनों भुजा हाथी की सूंड़ और परिघ के समान दोनों जांघें और बड़ी दृढ़ छाती को देख मुझे मनुष्य जानकर यह मत समझ कि यह कुछ न करसकेगा मेरा इन्द्र के तुल्य पराक्रम तुझको अभी मालूम होजायगा ७। १० यह सुनकर हिडम्बा बोली कि तुझ देवस्वरूप को में ऐसा नहीं समझती हूं परन्तु मैंने इसलिये तुझसे यह बात कही थी कि मनुष्य राक्षसों के पराक्रम से सदैव डरा करते हैं ११ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसी अवसर में वह राक्षस भी निकट आगया था भीमसेन की बातों को सुनकर और अपनी बहिन को अत्यन्त सुन्दर स्त्री रूप धारण किये हुये उत्तम २ वस्त्र आभूषण पहिरे हुये परममनोहर छवि बनाये कामासक्त होकर भीमसेन के सन्मुख खड़े हुये देखकर बहिन की ओर से शंका करके बड़े क्रोध से लाल २ आंखें करके बोला कि ऐसा कौन है जो मेरे भोजन में विघ्न कर सके अरी हिडम्बा! तू मेरे क्रोध को भूलकर निडर होगई और मेरा अप्रिय करके मनुष्य को चाहने लगी तुझको धिक्कार है तैंने राक्षसोंके कुलको कलंक लगाया अब तैंने जिनके बलके भरोसे पर ऐसा किया है उन सबको और तुझको विना मारे नहीं छोडूंगा यह कहकर वह राक्षस दांत पीसता हुआ हिडम्बा की ओर मारने को दौड़ा १२। २० यह देखकर भीमसेन ने उस राक्षस को डपटा और हँसकर कहा कि खड़ा रह सोतेहुये मनुष्यों को बहुतसा चिल्लाकर जगाने से क्या प्रयोजन है तू मेरे सन्मुख आकर अपना बल प्रकट कर स्त्रीपर कोई अपकार करनेपरभी हाथ नहीं उठाता है इसको तैंने हमलोगों के मारने के लिये भेजा था और यह यहां आकर मुझे चाहने लगी इसमें इसका कुछ दोष नहीं है और न ऐसा करने से इसने कुछ तेरा अपराध कियाहै क्योंकि इसने यह कर्म कामदेव के वश में होने से किया है कुछ अपनी इच्छा से नहीं कियाहै इससे तुझको इसकी निंदा करना उचित नहीं है मेरे होतेहुये तुझे स्त्रीपर हाथ उठाना उचित नहीं है तू भी अकेला है और में भी अकेला हूं मुझसे आकर युद्ध कर अभी तेरे शिर को इसप्रकार से पीसे डालता हूं जैसे हाथी के पैर के नीचे दबने से चूरा होजाताहै तेरे मारे जानेपर तेरे शरीरको वनके जीव घसीटे घसीटे फिरैंगे आज तुझे मारकर इस वनको में राक्षस रहित करदूंगा और ऐसा होनेपर मनुष्य यहां निर्भय होकर फिरैंगे किसी को तेरा डर नहीं रहैगा और तेरी बहिनके देखते हुये में आज

यहां तुझको ऐसे खींचूंगा जैसे बड़े हाथीको सिंह खींचता है २१। ३३ यह सुनकर वह राक्षस बोला कि वृथा गर्जनेसे क्या होता है जो तू अपनेको बली समझताहै तो आकर मुझसे लड़ और अपने बलको प्रकटकर अभी तुझको मालूम होजायगा कि अधिक बली कौन है तू अप्रिय वचन बोलता है इससे पहिले तुझीको मारूंगा इनको सोनेदे तुझे मारकर इनको भी मारूंगा और तरा रुधिर पीकर इस अपनी बहिनको जिसने मेरा बड़ा अप्रिय कियाहै न छोड़ूंगा ३४।३७ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह राक्षस इस प्रकारसे कहकर क्रोधित होकर भीमसेन की ओर भुजा उठाकर दौड़ा भीमसेन ने उसकी भुजा पकड़ली और उसे उस जगहसे आठ धनुष की दूरीपर इस प्रकार से खींच लेगया जैसे सिंह नीच मृगको खींच लेजाय ३८। ४० उस समय वह राक्षस क्रोधित होकर भीमसेनसे चिपटगया और बड़ा घोर शब्द करनेलगा भीमसेन उसको पकड़कर और दूरपर इस प्रयोजनसे खींच लेगया कि उसकी चिल्लाहटसे भाई और माता न जागपड़ें ४१। ४२ और उन दोनोंने बड़े २ वृक्षोंको तोड़लिया और आपसमें बड़े पराक्रम से एक दूसरेसे लड़नेलगे उनके लड़नेके शब्दसे भीमसेनके भाई और माता जागउठे और अपने सामने हिडंबा को खड़ी हुई देखा ४३। ४५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकत्रिपंचाशत्तमोऽध्यायः १५३॥

एकसौचौवन का अध्याय।

भीमसेनका युद्ध करके हिडम्ब राक्षसको मारना और सब पांडवोंके वहांसे चलनेपर हिडम्बा का उनके साथ चलना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! हिडम्बाके सुन्दर स्वरूपको देखकर माता सहित चारोंभाई चकित होगये और कुंतीने उस समय उससे पूंछा कि तू देवताओं की कन्याके समान कौनहै कहांसे आई है और क्या तेरा काम है तू इस वनकी देवताहै या अप्सरा जो कुछ तेरा काम हो सो मुझसे कह १।४ यह सुनकर हिडम्बा बोली कि यह वन हिडम्ब राक्षसका है और मैं उसकी बहिन हूं हिडम्बने मुझे तुम सबको मारकर लानेके लिये भेजा था जब मैं यहां आई तब मैं तुम्हारेपुत्रके सुन्दर स्वरूपको देखकर कामासक्त होगई और उसको मैंने अपना पति मनसे संकल्प करके उसके लेजानेका बहुत सा उपाय किया परंतु लेजा न सकी इतनेमें मुझे देरसे आईहुई जानकर मेरा भाई जो मनुष्योंको खाताहै आप

ही यहां चलाआया तुम्हारा पुत्र और मेरा पति उसको यहांसे खैंचकर दूर लेगया है वहां वे दोनों आपस में बड़ा पराक्रम कर २ के युद्ध कररहे हैं उन दोनों नर राक्षसों के युद्धको देखो ५। १२ यह सुनकर युधिष्ठिर अर्जुन नकुल और सहदेव उठकर दौड़े और वहां पहुँचे जहां वे दोनों सिंहके समान बलवान् दो पहाड़ोंकी तरह एक दूसरेको खैंच२कर बड़े पराक्रम से युद्ध कररहे थे उन दोनों के परस्पर खैंचाखैंची से धूलके बादल छायगये थे और दोनों का अंग धूलसे भरा हुआ था १३। १६ उस समय अर्जुन भीमसेनको उस राक्षससे क्लिश्यमान देखकर हँसता हुआ बोला कि हे भीमसेन ! तुम डरो मत इस राक्षससे निर्भय होकर युद्ध करो हम तुम्हारी सहायता के लिये आनपहुँचे हैं अभी इसे मारे डालते हैं हम सब यह नहीं जानते थे कि तुम राक्षससे युद्ध कररहे हो १७।१६ यह सुनकर भीमसेन बोला कि तू खड़ाहुआ देखकर अपने चित्तको मत भ्रमावे मेरी भुजाओं के बीचमें आकर यह किसी प्रकार नहीं बचसक्ता है तब अर्जुन ने कहा कि इस राक्षस के जीता रखने से कुछ प्रयोजन नहीं है हमको तो यहां रहनाही नहीं है देखो अब अरुणोदय का समय आगया है प्रातःकाल और सायंकाल के रौद्र मुहूर्त में राक्षस प्रबल हुआ करते हैं और अनेक प्रकार से माया करते हैं इससे हे भीमसेन ! अब इसके साथ बहुत क्रीड़ा मत करो अपनी भुजाके बल से इसे शीघ्र मारडालो २०। २३ वैशम्पायनजी बोले भीमसेन अर्जुन की बातको सुनकर क्रोधसे जाज्वल्यमान होगया और वह रौद्रस्वरूप अपना धारण करके जो वायु संसार के क्षय होने के समय धारण करती है उस राक्षस को उठाकर घुमानेलगा और बोला कि अरे अधम ! तू वृथा मांस खा खाकर लम्बा और पुष्ट हुआ है क्या अब तू नहीं मरेगा मैं अब ऐसाही करूंगा जिसमें यह वन अकंटक होजावे और फिर कोई मनुष्यों को न खाय २४। २७ उस समय अर्जुन ने फिर भीमसेन से कहा कि जो तुमको इसका मारना भार दीखताहै तो तुम इसको छोड़कर सँहतावो मैं अभी मारे डालता हूं यह सुनकर भीमसेन अत्यन्त क्रोधसे उस राक्षसको पृथ्वीपर डालकर पशु कीसी मार मारने लगा और वह राक्षस भयंकर शब्द से चिल्लाने लगा उस समय भीमसेन ने बलसे उस राक्षस के हाथों को पैरसे दबाकर बीचमें से दो करडाले और वह राक्षस मरगया उसको मराहुआ देखकर सब पांडव प्रसन्न हुये और सब भाइयों ने भीमसेन का सत्कार किया उपरान्त अर्जुन ने

भीमसेनसे कहा कि यहां कोई नगर निकट जानपड़ता है वहां सबजने चलो इस वनमें रहना अच्छा नहीं है यह सुनकर सब भाइयों ने वहांसे नगरको चलनेका सम्मत दिया और माता सहित वहां से चल दिये उनके साथ २ हिडम्बा राक्षसी भी चलने लगी २८ । ३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकचतुःपंचाशत्तमोऽध्यायः १५४ ॥

एकसौपचपन का अध्याय ।

भीमसेन का हिडम्बा राक्षसी के साथ अनेक स्थानों में जाकर विहार करना और उसके घटोत्कच नामी पुत्र उत्पन्न होना ॥

भीमसेन हिडम्बाको अपने साथ आते हुये देखकर बोला कि अरे राक्षसी ! तू अनेक २ प्रकारकी मोहनी डाल २ कर अपने भाई का बदला लेना चाहती है इससे तू भी वहीं जा जहां तेरा भाई गया है यह देखकर युधिष्ठिर बोले कि तुझे धर्म न छोड़ना चाहिये जो क्रोध भी होवे तो भी स्त्री को मारना उचित नहीं है इसका भाई हम सबको मारने की इच्छा से आया था उसको तैंने मारडाला अब यह राक्षसी क्रोध भी करै तो हमारा क्या करसक्री है १।२ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे हिडम्बा कुंती और युधिष्ठिर को प्रणाम करके आंखों में आंसू भरकर हाथ जोड़कर बोली कि हे माता ! तुम जानती हो कि कामदेवसे स्त्रियों को कितना दुःख होता है यह दुःख मुझको भीमसेन के कारण से हुआ है और समय न होने के कारण से उस दुःखको मैं अबतक सहती रही अब वह समय निवृत्त हुआ और सुखका समय आया है देखो मैंने अपने भाई बन्धु और जातिवालों को छोड़कर अनुराग से तुम्हारे पुत्रको अपना पति संकल्प करलिया जो तुम या तुम्हारा पुत्र मुझको अंगीकार न करोगे तो मैं तुरन्त प्राण छोड़दूंगी इससे मेरे ऊपर कृपा करके मुझे अपनी आज्ञाकारी अथवा मूढ़भक्त पुत्रवधू जानकर इस अपने पुत्रको मेरे साथ करदो मैं इसे लेजाकर इच्छा के अनुसार भोग करके फिर इसे लेआऊँगी मेरे ऊपर विश्वास रक्खो और जिस समय तुमको कोई विषम और दुर्गम स्थान मिले उस समय मुझको तुम याद करना मैं तुरन्त वहां पहुँचकर अपनी पीठपर तुम सबको चढ़ाकर ले चलूंगी परन्तु तुम ऐसा करो कि भीमसेन मेरे साथ प्रीतिपूर्वक चला चले ४।१२ आपत्तिकाल में जिस प्रकार से प्राण रहैं उसी प्रकार से रखना उचित है और धर्मपर चलनेवाले मनुष्यको सब दुःख सह कर

धर्म रखना चाहिये जो कोई अपने धर्मको आपत्तिकाल में रखता है वह धर्मा-त्माओंमें श्रेष्ठ कहलाता है आपत्तिही धर्मात्माओं के धर्म का बाधक है प्राण को धारण करनेवाला और देनेवाला पुण्यही है इससे मनुष्य धर्म के आचरण के निमित्त जो जो कर्म करता है उसके उस कर्म की कोई निन्दा नहीं करता है १३। १५ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हिडम्बा! तू सच कहती है परन्तु तुझको भी अपनी बात पर सत्य से रहना उचित है भीमसेन को तू प्रातः-काल ले जायाकर और सन्ध्या होने के पहिले हमारे पास पहुँचा दिया कर रात्रि में यह तेरे पास नहीं रहेगा दिनभर मनमानता विहार इसके साथ क-रियो १६। १८ वैशंपायनजी बोले भीमसेन ने उस बात को अंगीकार करके कहा कि मैं तेरे साथ उस समय तक जाया करूंगा जिस समय तक तेरे पुत्र उत्पन्न होगा उपरान्त नहीं जाऊंगा यह सुनकर हिडम्बा सम्पूर्ण उक्त बातों को अंगीकार करके भीमसेन को लेकर वहां से आकाश मार्ग पहाड़ों के द्वारा रमणीक २ शिखरों और रमणीक २ स्थानों में जहां मृग और सुंदर सुंदर पक्षी रहते थे पहुँची और अपना स्वरूप बड़ा सुंदर धारण करके भीमसेन के साथ रमण करने लगी वह राक्षसी नित्य नवीन स्थानों में नवीन २ सुन्दर स्वरूप धारण कर करके भीमसेन को आनन्द देती थी कभी फूले हुये सुन्दर वनों में ले जाती कभी पहाड़ों के ऊपर जहां पृथ्वी बराबर होती तहां जाती कभी कमल फूले हुये तालाबों के किनारोंपर ले पहुँचती कभी उन नदियों के द्वीपों में जाती जिनकी बालू वैडूर्यमणि के समान और जल बड़े सुन्दर और पवित्र हैं कभी पहाड़ी नदियों पर जा पहुँचती कभी हिमालयकी कुंजों और गुफाओं में जाती कभी शाल और पल्लव वृक्षोंके वनों में विहार करती कभी देवताओं के वनों को जाती कभी तापस और गुह्यकों के स्थान पर पहुँचती और कभी २ रमणीक मानसरोवर पर जाकर विहार करती थी १६। २६ थोड़े काल में उस राक्षसी के भीमसेन से एक पुत्र उत्पन्न हुआ वह पुत्र बड़ा परा-क्रमी बड़ा बानेत बुद्धिमान् महामायावी शत्रुओं को दमन करने वाला भयानक वेषधारी था उसकी आंखें डरावनी मुख बड़ा कान खड़े हुये बोली भयंकर ओठ लाल लाल डाढ़ें पैनी बाहें लम्बी लम्बी शरीर बड़ा भारी नाक लम्बी छाती चौड़ी और घोंटू टेढ़े व ऊंचे थे वह मनुष्य से उत्पन्न हुआ था परन्तु उसका सब शरीर अमानुषी था और ऐसा प्रतापी था कि पिशाच राक्षसों से

भी बढ़गया ३० । ३४ राक्षसी जिस समय गर्भ धारण करती हैं उसी समय उनके बालक उत्पन्न होजाता है और उनका बालक भी रूपवान् और इच्छानुसार रूप धारण करसक्ता है सो उस राक्षसीका वह बालक युवा स्वरूप धारण करके आया और पिता माताके चरणोंमें नमस्कार करनेलगा वह उसको देखकर प्रसन्न हुये और उन्होंने शिर घटके समान होने और शिरपर बाल न होने के कारण से उसका नाम घटोत्कच रक्खा ३५ । ३८ घटोत्कच ने पाण्डवों से बड़ी प्रीति करी यह कहकर उत्तर दिशा को चलागया कि जब तुम मुझको याद करोगे तभी मैं आकर तुम्हारा जो काम होगा सो करूंगा और हिडम्बा भी यह कहकर अपने स्थान को चलीगई कि आपने मेरे साथ रहने का निबन्ध पुत्रके उत्पन्न होने ही तक किया था सो पूरा हुआ ३९ । ४१ इस घटोत्कच को इन्द्रने कर्णको शक्ति देनेके कारण से कर्ण का प्रतियोद्धा उत्पन्न किया था ४२॥

इति श्री भाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकपंचपंचाशत्तमोऽध्यायः १५५ ॥

एकसौछप्पन का अध्याय।

पांडवों के चलने पर व्यासजी का राहमें मिलना और पांडवों को एकचक्रापुरी नाम नगर में बसाकर आप चलेजाना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पांडव उस वनसे अहेर खेलते हुये मत्स्य, त्रिगर्त, पांचाल और कीचक आदि देशों के रमणीक स्थान वन और नदियों को देखते हुये तपस्वियोंकासा स्वरूप बनाकर जटा रखाये हुये मृगचर्म और वृक्षोंकी छालके वस्त्र धारण किये हुये माता सहित आगे चले कभी माताको गोद चढ़ालेते थे और कभी जैसे इच्छा होती थी वैसे चलतेथे १।४ कुछ दूर आगे जाकर उन वेद और शास्त्र जाननेवाले पांडवोंने अपने पितामह व्यास जी को देखा उनको देखकर सब पांडव माता सहित दण्डवत् करके हाथ जोड़े हुये उनके सन्मुख खड़े होगये ५ । ६ व्यासजी उनको देखकर बोले कि हमको तुम्हारा यह दुःख पहिलेहीसे मालूम था धृतराष्ट्रके पुत्रोंने अधर्म से तुम सबको देशसे निकाला है परन्तु तुम विषाद मत करो इस सब दुःखका परिणाम सुख होगा ७।८ यद्यपि तुम और धृतराष्ट्रके पुत्र मेरे समान हो परंतु मनुष्य दीन बालकोंपर स्नेह करते हैं इसकारणसे अब मुझको तुमसे अधिक स्नेहहै ९ और उस स्नेहही के कारणसे मैं तुम्हारे लिये कुछ हित करना चाहता हूं इससे तुम अब इस रमणीक एकचक्रापुरी नाम नगरमें गुप्त होकर रहो और जबतक हम

न आवें तबतक यहांसे और कहीं को न जाना इस प्रकारसे व्यासजी पांडवों को धीरज देकर कुन्तीसे बोले कि हे पुत्री ! यह तेरा युधिष्ठिर नामी पुत्र बड़ा धर्मात्मा और प्रतापी है थोड़े कालमें यह अर्जुन और भीमसेन की सहायता से सागरान्त संपूर्ण पृथ्वी जीतकर राज्य करैगा और सब राजा इसके आधीन रहैंगे और ये बड़े २ राजसूय आदि यज्ञोंको करके सुखपूर्वक अपने बाप दादे के राज्य को भोगेगा और सब मनुष्यों पर कृपा करके सबका पालन करैगा और माद्रीके पुत्र तेरी और युधिष्ठिरकी आज्ञामें रहकर सुखपूर्वक रहैंगे १०।१६ वैशम्पायनजी बोले व्यासजी ने पांडवों को उस नगर में एक ब्राह्मण के घरमें बसाकर युधिष्ठिरसे कहा कि एक महीने तक तुम यहां मेरी बाट देखना मैं देशकालको समझकर फिर आऊंगा यह सुनकर सब पांडवों ने हाथ जोड़कर कहा कि महाराज बहुत अच्छा इसकेपीछे व्यासजी वहांसे चलेगये १७।१९॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकषट्पंचाशत्तमोऽध्यायः १५६॥

एकसौसत्तावन का अध्याय।

ब्राह्मणके दुःखको देखकर कुन्तीका दया करके भीमसेनसे उसका दुःख दूर करनेको कहना और भीमसेनका उसको अंगीकार करना॥

इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय बोले कि पांडवोंने एकचक्रापुरी नाम नगर में बसकर क्या किया वैशम्पायनजी बोले पांडव उस ब्राह्मण के घर में रहनेलगे और नित्य वहांके वन तालाब और रमणीक स्थानोंमें जाकर विहार करनेलगे दिन में सब भाई जाकर भिक्षा मांग लाते और सब भीख कुन्ती को लाकर दे देते कुन्ती उस सब भीख के दो भाग करती एक भागमें कुन्ती और युधिष्ठिर आदि चारों भाई खाते और एकभाग भीमसेन खाता था उनके गुणोंको देख २ कर वहांके पुरवासी उनसे बहुत प्रीति करनेलगे और उन्होंने इसीप्रकार से वहांपर बहुत दिनोंतक वास किया एक दिन ऐसा हुआ कि चारों भाई तो भीख मांगने चले गये और भीमसेन माता के पास रहगया उस दिन कुन्तीने उस ब्राह्मणके घरके मनुष्योंको जिसके घरमें पांडव रहते थे बड़े दुःखसे विलाप करते हुये देखा और अपने दया और साधु स्वभावके कारण से उनके विलाप को सुनकर बड़े दुःखसे भीमसेन से बोली १।११ कि हमने इस ब्राह्मणके घर में रहकर बड़ा सुख पायाहै मुझको यह चिंता नित्य रहती है कि इस ब्राह्मणसे क्या उपकार करें क्योंकि पुरुष उनहीं को कहते हैं जो जिससे सुख पावैं उसके

साथ भी उसके उपकार से बढ़कर उपकार करें अब इस ब्राह्मणको कोई दुःख प्राप्त हुआहै सो मैं चाहतीहूं कि इस दुःखमें इसका कुछ उपकार किया जावे यह सुनकर भीमसेन बोला कि तू बता इसको क्या दुःख है जो मेरे करने के योग्य कष्टसे भी होगा वह अवश्य मैं दूर करूंगा १२। १६ वैशम्पायनजी बोले कि भीमसेनके उक्त प्रकार से कहनेपर उस ब्राह्मण के घरमें फिर रोनेका बड़ा भारी शब्द उठा उसको सुनकर कुन्ती उस ब्राह्मणके घरमें चलीगई और देखती क्या है कि वह ब्राह्मण उसकी स्त्री पुत्र और पुत्री चारों नीचेको मुख कियेहुये रोरहे हैं १७। १८ उस समय ब्राह्मण बोला कि इस संसार में असार अनर्थक दुःख मूल पराधीन और अप्रिय भोगनेवाले मनुष्यके जीनेको धिक्कारहै जीना परम दुःख और परम ज्वररूपहै और जीने में दुःख निश्चय भोगना पड़ता है इसमें आत्माही अर्थ धर्म और कामका भोग करताहै और इनके न होनेपर आत्माही को दुःख होताहै कोई मोक्षको बड़ा कहते हैं सो वह मोक्ष कहांहै अर्थ प्राप्त करने में मनुष्यको नरकही प्राप्त होताहै २०। २३ जो मनुष्य अर्थ चाहता है उसको बड़ा दुःख होताहै और जब वह अर्थ मिलजाता है तब उससे भी अधिक दुःख होता है और जो कोई अर्थमें अनुराग रखता है उसको अर्थके वियोग में बड़ा दुःख होता है मुझको ऐसा कोई उपाय नहीं दीखता जिससे इस दुःख से बचूं और न कोई स्थान ऐसा मालूम होताहै जहां कुटुम्ब सहित भागजाऊं मैंने तो पहिलेही कहा था कि यहां से कहीं को भाग चलो परन्तु हे ब्राह्मणी! तूने मेरी बातको नहीं माना यही कहती रही कि मैं यहां उत्पन्न हुई हूं और इतनी बड़ी हुई हूं मेरा पिता भी यहां कभी २ चला आता है यहांसे कहां चलोगे सो तेरी मा और बाप दोनों मरगये थे और भाई बन्धु भी कोई नहीं रहा था न जाने तूने क्या समझकर मेरी बात नहीं मानी जो अब यहां रहने से बन्धुके नाश होनेका समय आगया और मेरे लिये परमदुःख होगया २४। २६ इससे हम हीं अब जाकर मरेंगे क्योंकि बन्धुको छोड़कर जीना व्यर्थ है तेरे साथ मेरा विवाह माता पिताने वेदके मंत्रों से किया है और तू कुलीन, शीलवान्, पुत्र उत्पन्न करनेवाली, पतिव्रता, प्रिय बोलनेवाली, आज्ञाकारी, धर्मचारिणी, जितेन्द्रिय, परमगतिके देनेवाली और गृहस्थाश्रम के सुखकी मूल है तुझको तो मैं छोड़ही नहीं सक्ता हूं फिर अपने पुत्रको जो अभी बालकही है क्योंकर त्याग करसक्ता हूं ३०। ३४ और पुत्रीके होने से पित्रोंको दौहित्र सम्बन्धी लोक

प्राप्त होते हैं उसको भी मैं क्योंकर छोड़ सक्ता बहुत से मनुष्य पुत्र को अधिक चाहते हैं परन्तु मैं दोनों को बराबर जानता हूं भला ऐसी पुत्रीको जिसके संतान होनेसे दौहित्र सम्बन्धी लोक मिलें मैं क्योंकर छोड़सक्ता हूं ३५। ३७ जो मैं अपने शरीरको छोड़दूं तो भी मुझे परलोक में दुःख होगा क्योंकि मेरे न होने से ये बच्चे न जीवेंगे ३८ अब मैं इस दुःखरूपी सागर में पड़ा हुआ हूं कि इनमें से किसीको छोड़ नहीं सक्ता और आप मरता हूं तो ये सब नहीं जी सक्के इस दुःख से पार होना कठिनहै अहो धिक्कार है न जाने आज हम सबकी क्या गति होगी मेरा मरनाही सबके साथमें श्रेष्ठ है ३६। ४० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकसप्तपंचाशत्तमोऽध्यायः १५७ ॥

एकसौअट्ठावनका अध्याय।

ब्राह्मणकी स्त्रीका ब्राह्मणको समझाकर दैत्यके पास जानेको आज्ञामांगना और ब्राह्मण का स्त्रीको हृदयसे लगाकर रोना ॥

जब ब्राह्मणने उक्त रीतिसे कह २ कर विलाप किया तब उसकी स्त्री उससे बोली कि आप विद्यावान् होकर प्राकृत मनुष्यों के तुल्य इतना संताप करते हैं इस संसार में जो कोई उत्पन्न हुआ है एक दिन अवश्य मरेगा अवश्य होनेवाले पदार्थके लिये शोच करना पण्डितों का काम नहीं है १। २ मनुष्य स्त्री पुत्र और पुत्री को अपनी देहही के सुख के लिये चाहता है इससे अब आप अपने मनके दुःखको छोड़ दीजिये मैंही वहां जाऊंगी ३ पतिके अर्थ प्राण देना स्त्रीका परमधर्म है और इस कर्म के करने से आपको इसलोक में यश और परलोक में अक्षय पुण्य होगा ४। ५ इसके सिवाय जिसलिये मनुष्य स्त्री को चाहते हैं वह भी धर्म में करचुकी हूं अर्थात् एक पुत्र और पुत्री आपके विद्यमान हैं इनको आप अच्छी तरह पालसकेंगे और मैं आपके विना पालन नहीं करसकूंगी और न ये बालक आपके विना रहसक्के हैं विधवा और अनाथ होनेपर मैं इन लड़कोंका पालन सुमार्गके साथ न कर सकूंगी क्योंकि जो मनुष्य कलंकी और अपने सम्बन्धके योग्य नहीं हैं वे जो इस कन्या को मांगेंगे तो मैं आपके विना ऐसे मनुष्यों से अपनेको क्योंकर रक्षा करूंगी और जैसे पृथ्वी पर गिरे हुये मांसको सब पक्षी खाने की इच्छा किया करते हैं इसीप्रकार से पतिहीन स्त्री को भी सब मनुष्य चाहा करते हैं उनके बहकाने और प्रार्थना करनेपर मैं सज्जनों के चलाये हुये मार्ग में न रह

सकूंगी ६।१३ और जब मेरी यह गति होगी तो मैं इस पुत्रीको बाप दादे की मर्यादापर क्योंकर चलाऊंगी १४ और अनाथ होने से इस लड़के को आप के सदृश विद्या न पढ़ासकूंगी दुष्टलोग मेरा निरादर करेंगे और आप की इस पुत्री को मांगेंगे और जो मैं उनको इस पुत्रीको देने में निषेध करूंगी तो वे बरजोरी करके लेलेंगे ऐसे समय में आपके पुत्रको कुलके विपरीत चलते और पुत्री को दुष्टों के वशमें देखकर निस्संदेह मैं मरजाऊंगी १५। १६ और मेरे आपके दोनोंके न होनेपर ये बालक भी विना जलके मछली के समान मरजायेंगे इसप्रकार से हे महाराज ! आपके विना हम तीनों में से कोई भी न बचेंगे इससे आप मुझे त्यागदें इसके सिवाय धर्म जाननेवाले मनुष्य कहते हैं कि पुत्रवती स्त्रीका पतिसे पहले मरना बड़े भाग्यकी बात है मैं आपके अर्थ अपने प्राण पुत्र पुत्री और भाई बन्धु सब छोड़ती हूं स्त्रीका दान यज्ञ और व्रत यही है कि अपने पतिका हित करे मेरा यह कर्म आपके हित और कुलकी रक्षाके लिये है इसको सब श्रेष्ठ मनुष्य मानते हैं मित्र पुत्र धन और दारा इनको विपत्ति के दूर करने का हित करना उचित है आपत्ति में धनकी रक्षा करना और धनसे स्त्री की रक्षा और स्त्री और धनसे अपनी रक्षा करना मनुष्य को उचित है २०। २७ और दृष्ट और अदृष्ट फल मिलनेके लिये स्त्री पुत्र धन और गृहका विधान करना सर्वथा योग्य है और एक ओर सब कुल और दूसरी ओर अपनी आत्माको रखकर मनुष्य तोले तो सब कुल अपनी आत्मा के समान कभी न होगा इससे इस कामको आप मेरे द्वारा होने दीजिये आप मुझको आज्ञा दीजिये और आप इन लड़कों को पालिये २८।३० धर्मज्ञों ने स्त्री को अवध्य और राक्षसों को धर्म जानने वाला कहा है इस से मैं जानती हूं कि वह राक्षस भी मुझको नहीं मारेगा पुरुषका वध वहां जानेपर निश्चय होता है परन्तु स्त्री के वध में संशय है इससे आप मुझको वहां जानेकी आज्ञा दीजिये और मैंने सुन्दर २ भोग भोग लिये हैं और धर्म भी अच्छीतरह करचुकी हूं और मेरे संतान भी है इस कारण से मुझको मरना दुःख नहीं देगा ३१। ३३ मैं अब वृद्ध हुई और संतानवाली हूं इससे आप के इस हितको करना मैंने विचारा है आप जो मेरे पीछे दूसरी स्त्री से भी विवाह करलेंगे तो भी आपका धर्म रहेगा पुरुष को बहुतसी स्त्रियों के साथ भी विवाह करने से कोई अधर्म नहीं होता है और स्त्री जो एक पति से

दूसराभी करे तो वह पतित होजाती है ३४। ३६ इससे आप वहां न जाइये यहां रहकर अपने कुल और लड़कों की रक्षा कीजिये वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह ब्राह्मण अपनी स्त्रीकी उक्त बातों को सुनकर स्त्रीको हृदय से लगाकर रोने लगा ३७। ३८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकाष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः १५८॥

एकसौउनसठ का अध्याय।

ब्राह्मण की कन्याका मा बापको समझाकर यह कहना कि राक्षस के पास मुझे भेजदो॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उन दोनों स्त्री पतिको अत्यन्त दुःखी देखकर उनकी कन्या बोली कि तुम दोनों अनाथकी तरह क्यों रोते हो मैं कहूं सो करो मैं धर्म के अनुसार तुम दोनों से त्याज्य हूं इससे आप मुझको त्याग करके सबकी रक्षा कीजिये संतान इसी निमित्त होती है कि मा बाप को तारे सो इस दुःखरूपी समुद्र से आप मुझको वहां भेजकर तर जाइये १।४ पुत्र पितरोंको नरक से तारता है और इसी निमित्त कन्या के दौहित्र का भी होना चाहते हैं सो मैं आपही आपका जीवन रखकर आपको तारूंगी यह मेरा छोटा भाई अभी बालक है आपके मरनेपर यह भी मर जायगा और तुम्हारे दोनों के मरनेपर पितरोंका पिण्डदान लुप्त होजायगा और पिता माता और भाई के न होनेपर मैं भी दीन होकर दुर्गति से मर जाऊंगी इससे जो आप बने रहेंगे तो मेरी मा और भाई और पितरों का पिण्डदान बना रहैगा ५। १० पुरुष की स्त्री सखा और पुत्र आत्मा और पुत्री दुःखरूप होती है इससे मुझे त्याग करके अपनी रक्षा कीजिये ११ आपके विना मैं अनाथ होकर दुःखसे जहां तहां फिरा करूंगी और तुमको तारने से मुझे बड़ा पद और सुख मिलैगा तुम्हारे त्यागने पर मुझको बड़ा दुःख होगा इससे धर्म और संतान के निमित्त आप मुझको त्याग दीजिये और आप रहकर सबकी रक्षा कीजिये इस समय में आपको मेरा कहना करना अवश्य है क्योंकि आपके मरने पर मैं इधर उधर कुत्तेकी तरह अन्न मांगती फिरूंगी यद्यपि यह बात है कि इस प्रकार से कन्या-दान करने में अर्थात् राक्षस को खाने के लिये देने में देवता और पितरों का हित न होगा परन्तु देवता और पितृलोग आपके दिये हुये जलदानसे प्रसन्न होंगे १२। १६ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस कन्याकी इस प्रकार से बहुत सी बातें सुनकर मा और बाप दोनों कन्या सहित विलाप

करने लगे उस समय उस ब्राह्मणका छोटा लड़का हँसता हुआ वहां गया और मा बाप और बहिन के पास जाकर एक२ से मधुर बालअवस्था की बोली में बोला कि अरी अम्मा ! अरी भैना ! रोवे मत मेरे हाथमें यह तिनका है मैं इस तिनके से उस मनुष्यभक्षी राक्षस को मारडालूंगा उसकी बातको सुनकर सब हँसपड़े और कुन्तीभी प्रसन्न होकर सहायता करनेका समय जानकर उनके पास चलीगई और मृतक में जीवदान देनेके समान बोली १७। २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकैकोनषष्टितमोऽध्यायः १५९॥

एकसौसाठ का अध्याय।

कुंतीका ब्राह्मण से दुःखका कारण पूछना और ब्राह्मणका बक नाम दैत्यको खानेको भोजन और एक मनुष्य बारी बारी से दिये जानेका हाल कहना॥

कुन्ती बोली हे ब्राह्मण! इस तुम्हारे दुःखकी जड़ क्या है मुझसे कहो मैं उसके उखाड़ने का उपाय करूं यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि अच्छे मनुष्यों की यही बात है कि दूसरे के दुःखमें सहायता करें परन्तु मेरा दुःख मनुष्य के दूर करने के योग्य नहीं है इस नगरके पास एक बक नाम राक्षस बड़ा पराक्रमी और इस देशका स्वामी रहता है वह इस देशकी शत्रुओं से रक्षा करता है और मनुष्यों का मांस खाता है उसके कारण से हमको किसी प्राणीमात्र का यहां भय नहीं है उसको १२ मन चावल २ भैंसे भोजन के लिये देने पड़ते हैं और एक मनुष्य जो उसके भोजन को लेकर जाताहै उसको भी वह मारकर खाजाता है नगर से हरएक मनुष्य के घरसे एक २ मनुष्य बारी २ से जाता है और वह बारी कई वर्षोंमें आकर पड़ती है और जो कोई मनुष्य इस बात से बचनेका उपाय करता है उसको वह राक्षस परिवार सहित मारकर खाजाताहै १। ८ यहां का राजा वेत्रकीप नाम स्थान में रहता है वह मन्दबुद्धि इससे अपने मनुष्यों को बचानेका कुछ उपाय नहीं करता है इस दुर्बल और नीच राजा के राज्य में बसने का यह फल है ब्राह्मण सदैव पक्षियों की तरह स्वच्छन्दचारी होते हैं और अच्छा राजा स्त्री और धन जो सुखका मूलहै देखकर बसते हैं सो हमने इसके विपरीत किया है इससे हमपरभी यह दुःख आनकर पड़ा है अब हमारी बारी है और हमें उस राक्षस को भोजन और एक मनुष्य देना उचितहै ९। १४ इतना धन नहीं है जो किसी मनुष्य को मोल लेकर भेजदें और घरके आदमियों मेंसे किसीको दिया नहीं जाता है इससे अब उस राक्षस से बचनेका कोई

उपाय न देखकर मैं महादुःखरूपी समुद्र में पड़ा हुआ हूं मैंने यह विचारलिया है कि मैं सकुटुंब उस राक्षस के पास जाऊंगा और वह राक्षस हम सबको मारकर खाजायगा १५। १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकषष्टितमोऽध्यायः १६०॥

एकसौइकसठ का अध्याय।

ब्राह्मणका दुःख सुनकर कुन्तीका राक्षस को भोजन लेजाने के लिये भीमसेन को भेजने का वादा करना॥

यह सुनकर कुन्ती बोली तुम इस विषाद को छोड़दो मैंने इसका उपाय सोच लियाहै तेरे एक पुत्र और एक पुत्री है तू वहां मत जाय और न अपनी स्त्री आदि किसी को भेज मेरे पांच पुत्र हैं उनमें से मैं एकको उस राक्षसका भोजन लेकर भेजदूंगी यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि मैं अपने जीने के लिये अपने यहां आये हुये अतिथि ब्राह्मण को कभी नहीं भेजूंगा यह बात अधर्मी और अकुलीन मनुष्यों में भी नहीं होती है १। ४ ब्राह्मण के लिये मुझे अपने प्राण और पुत्र आदिको भी देने में निषेध नहीं है ब्राह्मण और अपने संबंधियों से अपना मरना अच्छा है ब्राह्मण के मरने का बड़ा पाप है उसके दूर करने का कोई उपाय नहीं है ५। ६ ब्राह्मण के वधसे तो अपना वध होना अच्छा है क्योंकि मैं अपना वध अपने आप नहीं चाहता हूं मुझे तो दूसरा मारेगा उसमें मुझको कुछ पाप नहीं है ७। ८ घर में आये हुये ब्राह्मण को जान बूझकर वध करवाना बड़ा नीच और निंदित कर्म है उस पाप के दूर करनेका कोई उपाय नहीं है ९। १० और महात्माओं का यह मत है कि नीच और निंदित कर्म कभी नहीं करना चाहिये ११ इससे मैं ब्राह्मण के मरवाने को कभी नहीं कहूंगा और आपही स्त्री सहित मरजाऊंगा १२ यह सुनकर कुन्ती बोली कि मेरी समझ में भी ब्राह्मणकी सदैव रक्षाही करना चाहिये और पुत्र जो सौ भी होयँ तो भी उनमें से कोई कुप्यारा नहीं होसक्ता परन्तु मैंने जो अपने पुत्रके भेजने को कहा है उसका कारण यह है कि मेरे पुत्रको वह राक्षस नहीं मारसक्ता है क्योंकि वह पराक्रमी तेजस्वी और मंत्रवेत्ता है मेरी समझसे मेरा पुत्र उस राक्षसके भोजनको पहुँचादेगा और इस विपत्ति से तुम सबको छुड़ावेगा १३। १५ मेरे इस पुत्रने पहिले बहुत से राक्षसों को मारकर यमलोक में पहुँचाया है इससे तुम किसी बातका भय मत करो और

इस बातको भी किसी के सन्मुख मत कहना नहीं तो विद्यार्थी लोग आश्चर्य से मेरे पुत्रोंको दुःख देंगे १६। १७ क्योंकि विना गुरुकी आज्ञाके जो कोई मनुष्य विद्या दूसरे को दे देता है वह विद्या पानेवाला उस विद्यामें यथावत् काम नहीं करसक्ता १८ यह सुनकर उस ब्राह्मण ने स्त्री सहित प्रसन्न होकर कुन्तीका बड़े आदर से पूजन किया और उसके साथ भीमसेन के पास जाकर कहा कि हमारे इस कार्य में आप हमारी सहायता कीजिये यह सुनकर भीमसेन बोला कि तथास्तु अर्थात् हम ऐसाही करेंगे १६। २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकैकषष्टितमोऽध्यायः १६१ ॥

एकसौबासठ का अध्याय।

युधिष्ठिरका यह सुनकर कि भीमसेन राक्षस के लिये भोजन लेजायगा कुंती से दुःखी होकर कहना और कुंती को उसे धर्म समझाना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन के उस काम को करने की प्रतिज्ञा करने पर चारों पांडव बाहर से भिक्षा मांगकर आनपहुँचे और भीमसेन के आकार को देखकर उनमें से युधिष्ठिरने कुंतीको एकांत में लेजाकर पूछा कि आज भीमसेन तेरी सलाह से क्या करना चाहता है १। ३ यह सुन कर कुंती बोली आज यह मेरी आज्ञा से इस नगरकी मोक्ष और इस ब्राह्मणकी प्राणरक्षा के निमित्त एक बड़ा काम करेगा ४ युधिष्ठिर बोले कि तूने यह दुष्कर साहस किया है पुत्रका त्याग करना कोई भी अच्छा कहता है तुमने दूसरेके पुत्रके लिये अपने पुत्रका त्याग करदिया तेरा यह काम लोक और वेद विरुद्ध है ५। ६ जिसकी भुजाके बलके आश्रय होकर हम रात्रिको सुखसे सोते हैं और गये हुये राज्य को फिर लिया चाहते हैं और जिसके पराक्रम को देखकर दुर्योधन को रात्रि में नींद नहीं पड़ती है और जिसकी शूरता से पुरोचन मारागया और हम सब लाखके घर और दुष्ट राक्षसों से बचकर आये और जिसके वीर्य से हम सब धृतराष्ट्रके पुत्रों को मारकर सब धन और राज्य लिया चाहते हैं उसको तू ऐसे २ कामों के लिये भेजना चाहती है दुःखके कारण से तेरी बुद्धि जाती रही है ७। ११ यह सुनकर कुन्ती बोली कि तुझको भीमसेन में पूर्ण विश्वास करना चाहिये मैंने यह काम बुद्धिकी मन्दताके कारण से नहीं किया किन्तु केवल ब्राह्मण का उपकार जानकर किया है क्योंकि हम सब धृतराष्ट्रके पुत्रों से छिपकर उसके घरमें सुखपूर्वक बसे हैं हमे भी उस ब्राह्मणके साथ उसके

उपकारसे बड़ा उपकार करना उचित है वारणावतसे तुम सबको लाने के समय और हिडम्ब राक्षसको मारने के समय से मुझे भीमसेन का पूर्ण विश्वासहै भीमसेन की भुजाका बल दशसहस्र हाथियों की बराबरहै और उसकी बराबर दूसरा पराक्रमी नहीं है वह अकेला चक्रवर्ती राजाको जीतसक्ताहै जब यह बालकही था तब पहाड़पर एकदिन मेरीगोदमें से एक पत्थरपर गिरपड़ा था सो उसके गिरने से वह पत्थर टुकड़े २ होगया था मुझको भीमसेनके बलका तभी से निश्चय है और इसी कारण से मैंने ब्राह्मणके उपकार करने को और अपना धर्म जान कर उसे ऐसा काम करने की आज्ञा दी है कुछ लोभ मोह और अज्ञान से ऐसा नहीं किया है क्षत्रियको ब्राह्मणकी सहायता करना बड़ा धर्म है ऐसा करने से क्षत्रियको सद्गति प्राप्त होती है क्षत्रियकी मोक्ष क्षत्रियही उसको रण में मार कर करता है और क्षत्रिय वैश्यकी रक्षा करने से शुभ लोक और संसार में यश पाता है और जो क्षत्रिय राजा शरण आये हुये शूद्रकी रक्षा करता है उसका जन्म अच्छे कुलमें होता है और संसार में सबका मान्य रहता है मैंने यह धर्म पहिले व्यासजी से सुना था इस कारणसे इस धर्मको करनाही उचितहै १२।२६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शतात्रिकाद्विषष्टितमोऽध्यायः १६२ ॥

एकसौतिरसठ का अध्याय।

भीमसेन का वक राक्षसके लिये भोजन लेकर वनमें जाना और उससे युद्ध करके उसे मारडालना ॥

यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि हे माता! जो तूने ब्राह्मण पर दया करके धर्मके अनुसार भीमसेन को राक्षसके मारने को आज्ञा दी है सो बहुत योग्य काम किया है निश्चय भीमसेन उस राक्षसको मारकर आवेगा परंतु उस ब्राह्मणसे कहकर ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे इस बातको कोई न जाने १।३ वैशम्पायनजी बोले इसके पीछे भीमसेन उस राक्षस के भोजन को लेकर वहां से रात्रि व्यतीत होनेपर उस वनमें गया जहां वह राक्षस रहता था और वहां बैठकर अन्न भोजन करने लगा और उस राक्षसका नाम ले लेकर पुकारने लगा ४।५ भीमसेनकी बोलीको सुनकर वह राक्षस जिसका शरीर बड़ा लम्बा चौड़ा आंखें लाल लाल भयंकर सूरत मूछें और शिरके बाल रक्त मुख कानों तक फटा हुआ कान खड़े हुये भौं के ऊपर तीन रेखा और अत्यन्त भीम था क्रोधसे दांतोंको पीसता और पृथ्वीको कांड़ता सा वहां आपहुँचा और भीमसेन

को खाते हुये देखकर बड़े क्रोध से बोला कि यह कौन मनुष्य यहां मरने को आया है जो मेरे देखते हुये मेरे लिये आये हुये अन्नको खारहा है यह सुन कर भीमसेन ने हँसकर मुँह फेर लिया और उस राक्षस का अनादर करके भोजन करता रहा तब वह राक्षस भयानक बोली बोलकर दोनों हाथों को उठा कर भीमसेन को मारने दौड़ा ६। १२ इसपर भी भीमसेन ने उस राक्षसको कुछ न समझा और भोजन करता रहा १३ उस समय राक्षसने पीछेसे आकर भीमसेन की पीठ में अपने दोनों हाथ मारे भीमसेन ने उसे कुछभी नहीं गिना और भोजन करता रहा इसपर वह राक्षस एक वृक्षको तोड़कर भीमसेन को मारने दौड़ा तब तो भीमसेन ने उस बचे हुये अन्नको खाकर जल्दी से आचमन कर लिया और उस राक्षस से लड़ने को खड़ा होगया और उस राक्षस के फेंके हुये वृक्षको हँसकर अपने बायें हाथ से पकड़ लिया १४। १८ इसके पीछे वह दोनों वृक्ष उखाड़ २ कर एक दूसरे से लड़ने लगे उनके युद्ध से वहां कोई वृक्ष बाकी नहीं रहा तब राक्षस ने भीमसेनको अपना नाम सुनाया और उसके पास जाकर उसे पकड़ लिया १६। २१ भीमसेन उसे पकड़ कर खींच लेगया और वह राक्षस भी बलसे खींचते २ श्रमित होगया उनकी खेंचा खेंचीसे सब वृक्ष चूर्ण होगये और पृथ्वी कांपनेसी लगी २२। २४ जब भीमसेनने देखा कि राक्षस थकगया है तब उसे उठाकर देमारा और उसकी पीठ पर अपना घोंटू रख २ दहिने हाथ से उसके कंधे और भुजा पकड़कर बायां हाथ उसकी कमरपर लगाकर बीचमें से दो करडाला तब उस राक्षस के मुख से लोहू बहनेलगा २५। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकत्रिषष्टितमोऽध्यायः १६३॥

एकसौचौंसठ का अध्याय।

बकदैत्यके मारनेका वृत्तान्त सुनकर सब नगरवासियों का आनन्द करना और ब्राह्मणों की पूजा करना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह राक्षस फिर बड़ा रौरव शब्द करके मरगया उसके शब्दको सुनकर उस राक्षसके कुटुम्बी और नौकरलोग वहां दौड़े हुये आये और भीमसेन के हाथसे बकराक्षस को मरा हुआ देखकर भीमसेन के डरके मारे कांपनेलगे उनको कांपते हुये देखकर भीमसेन ने कहा कि तुम अपने प्राणों का भय मत करो मेरे सामने सौगन्द खाओ कि आज

पीछे हम कभी मनुष्यों को नहीं मारेंगे यह सुनकर राक्षसोंने सौगन्द खाई और वहांसे डरके मारे जहां तहांको भाग गये और उस नगरके रहनेवालों का सब भय दूर होगया इसके पीछे भीमसेन उस मरे हुये राक्षस को उठाकर नगर के द्वारपर रखकर अनजानता हुआ उसी ब्राह्मणके घर चलागया और युधिष्ठिर से सब वृत्तान्त कह सुनाया जब प्रातःकाल होगया तब नगरके लोग बाहर निकले और उस राक्षसको मरा हुआ देखकर बहुत प्रसन्न हुये और नगर में जाकर सब वृत्तांत कहा उसके मरने के हालको सुनकर सब छोटे बड़े वृद्ध बालक और स्त्री आदि सहस्रों नगरवासी उस मरे हुये राक्षसके देखने को गये और उस अमानुष कर्म को देखकर आश्चर्य कर २ के सबके सब अपने देवी देवताओं को मनाने लगे फिर उस ब्राह्मण की बारी को जानकर सब लोग उसके पास आये और पूछने लगे कि कहो तो बक कैसे मारा गया वह ब्राह्मण पांडवों को छिपाकर बोला कि राज्यसे भोजन पहुँचाने की आज्ञा मिलने पर में कुटुम्ब सहित रोरहा था इसमें एक मंत्रसिद्ध ब्राह्मणने मुझपर दया करके मेरा हाल पूछा और मेरे और सब नगरके कष्टको मुझसे सुनकर कहने लगा कि तुम रोवो मत उस राक्षसको हम भोजन पहुँचादेंगे वह हमारा कुछ नहीं करसक्ता है इसके पीछे वह ब्राह्मण समय आनेपर उसके भोजन को लेकर वहां चला गया हम जानते हैं कि यह हम सबका हित उसीने किया है यह सुनके उस नगरके रहनेवाले चारों वर्णों ने बड़ा आश्चर्य और आनन्द किया और ब्राह्मणों की पूजा की १। २० उस राक्षस के देखने को वहां सब देश के मनुष्य आये और पाण्डव उसी ब्राह्मणके घरमें रहा किये २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकचतुष्पष्टितमोऽध्यायः १६४॥

एकसौपैंसठ का अध्याय।

उस ब्राह्मण के घर पर एक अतिथि ब्राह्मणका आना और उससे अनेक इतिहास सुनकर पांडवोंका उससे द्रौपदी आदि की उत्पत्तिका हाल पूछना॥

इतनी कथा सुनकर जनमेजय ने पूछा कि महाराज पांडवों ने बक राक्षस को मारकर फिर क्या किया यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले पांडव उस राक्षस को मारकर वेद और उपनिषदों को पढ़ते हुये उस ब्राह्मण के घर में रहते रहे कुछदिनों में उस ब्राह्मणके घर एक बड़ा व्रत करनेवाला तपस्वी ब्राह्मण आया उस ब्राह्मणने अतिथि जानकर बड़े आदर से उसे अपने घर में टिकाया १।४

उसने वहां अनेक देश तीर्थ और नदियों की कथा वर्णन की उस कथा को पांडव भी कुन्ती सहित सुना किये कथा के अन्त में उसने राजा द्रुपद के शिखण्डी और धृष्टद्युम्न के उत्पन्न होने और द्रौपदी नाम कन्या के यज्ञ की अग्नि से प्रकट होनेकी कथा भी सुनाई और यह भी कहा कि अब द्रौपदी का स्वयम्वर है यह सुनकर पांडवों ने आश्चर्य किया और उस ब्राह्मणसे पूछा कि महाराज इन सबके यज्ञसे उत्पन्न होनेकी कथा विस्तारपूर्वक सुनाइये और यह भी कहिये कि धृष्टद्युम्न ने द्रोणाचार्य से बाणविद्या कैसे सीखी और द्रुपद और द्रोणाचार्य की मित्रता क्योंकर टूटी यह सुनकर वह ब्राह्मण कहने लगा ५। १२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकपंचषष्टितमोऽध्यायः १६५॥

एकसौछांछठ का अध्याय।

ब्राह्मणका पांडवों से द्रोणकी उत्पत्ति अस्त्रविद्या सीखने द्रुपद से विरोध होने और द्रुपद को जीतकर आधा राज्य ले लेनेकी कथा कहना॥

हरद्वार में एक भरद्वाज नाम बड़ा तपस्वी और ज्ञानी ऋषि रहता था एक दिन वह गंगाजी में स्नान करने को गया वहां उससे पहिले से आई हुई घृताची नाम अप्सरा गंगाजी में स्नानकर रही थी दैवयोगसे उस अप्सरा के वस्त्र हवासे उड़गये और वह नंगी होगई उसको देखकर भरद्वाज ऋषि उस पर कामासक्त होगये और उनका अमोघ वीर्य जो बहुत कालसे रुका हुआ था गिरपड़ा ऋषिने उस वीर्यको द्रोणनाम यज्ञपात्र में रखलिया और उससे द्रोण नामी पुत्र उत्पन्न हुआ पांचाल देश का पृषत नाम राजा भरद्वाज का मित्रथा और उसके भी द्रुपद नाम एक पुत्र था १। ६ वह द्रुपद भरद्वाजजी के आश्रम में नित्य जाकर द्रोणके साथ खेला करता था और विद्या पढ़ा करता था इसके पीछे राजा पृषत के मरने पर द्रुपद पांचाल देश का राजा होगया और द्रोण यह सुनकर कि परशुरामजी ब्राह्मणों को धन बांटते हैं परशुरामजी के पास चलागया और उनसे धन मांगा उसको देखकर परशुरामजी बोले कि मेरे पास अब कुछ नहीं रहा है सब धन ब्राह्मणों को दे चुका हूं केवल शरीर और अस्त्र रह गये हैं इनमें से जिसको तू चाहे दे दूं द्रोण बोला कि अच्छा महाराज आप मुझको प्रयोग संहार और रहस्यसहित सब अस्त्र दे दीजिये यह सुनकर परशुरामजी ने सम्पूर्ण अस्त्र द्रोणको सिखा दिये और द्रोण उनको और बड़े मान्य

अस्त्र ब्रह्मास्त्र को पाकर सब मनुष्यों में उत्तम होगया ७। १३ द्रोण फिर वहांसे अस्त्र सीखकर द्रुपद के पास गया और उससे मिलकर कहा कि हे राजन्! मैं तेरा मित्र हूं मुझको पहिंचान यह सुनकर द्रुपद बोला कि कुपढ़ व वेदपारग रथी अरथी राजा और जो राजा नहीं आपस में कभी मित्र नहीं होते हैं तू पुरानी मित्रता की क्या बात कहता है यह सुनकर द्रोण उसके लिये मनमें कुछ विचार करके कुरुओंके हस्तिनापुर नाम नगरमें चलागया वहां भीष्मने उसका बड़ा आदर सत्कार करके और बहुतसा धन देकर टिकाया और अपने पौत्रों को अस्त्र आदि विद्या सिखाने के लिये सौंप दिया जब वह अर्जुन आदि सब भीष्म के पौत्र अस्त्रविद्या सीख चुके तब द्रोणने उन सबको बुलाकर कहा कि तुम सब मिलकर हमको गुरुदक्षिणा दो यह सुनकर अर्जुन आदि शिष्य बोले कि महाराज जो गुरुदक्षिणा आप मांगें सो हम आपको दें यह सुनकर द्रोण बोला कि हमको द्रुपदका राज्य छीनकर दे दो यह सुनकर सब शिष्य द्रोण के साथ होलिये और लड़ाई में पांडवों ने द्रुपद को मंत्रियों सहित जीत कर पकड़ लिया और द्रोण के सन्मुख ले आये उसको देखकर द्रोण बोला कि यद्यपि तू मित्रता के योग्य नहीं है परन्तु मैं अब भी तुझसे मित्रता चाहता हूं गंगाजीके दक्षिण ओर के देशमें तू राज्यकर और उत्तर ओर के देशोंका राज्य मुझे देदे यह सुनकर द्रुपदने मित्रता अंगीकार की और आधा राज्य द्रोणको देकर वहांसे घरको चला आया और द्रोणभी अपने स्थानको गया १४। २७ राजा द्रुपदके हृदय से वह असत्कार दूर नहीं हुआ और वह उसके शोच में दिन २ दुर्बल होनेलगा २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्व्वणि शताधिकषट्षष्टितमोऽध्यायः १६६॥

एकसौसरसठ का अध्याय।

राजा द्रुपदका याज और उपयाजनाम ऋषियों से पुत्रहोने के निमित्त यज्ञ करना और उस यज्ञकी अग्निसे धृष्टद्युम्न और द्रौपदीका प्रकट होना॥

ब्राह्मण बोला कि इसके पीछे राजा द्रुपद अपने अपमान से चित्तमें बड़ा क्रोधित हुआ और द्रोणाचार्य के प्रभाव को जानकर क्षत्रिय होनेपर भी अपनी सामर्थ्य बदला लेने को न देखकर श्रेष्ठ संतान उत्पन्न होने के निमित्त शोक और चिन्तामें मग्न होकर उत्तम तपस्वी ब्राह्मणको ढूंढ़ने के लिये ब्राह्मणों के आश्रम में घूमनेलगा १। ४ कुछ दिनों में वह यमुना और गंगातटवासी

ऋषियोंके आश्रम में घूमता हुआ याज और उपयाज नाम दो ऋषियों के आश्रममें पहुँचा वे दोनों ब्राह्मण संशितव्रत, शाम्यन्त, संहितापाठी, ब्रह्मज्ञानी, सूर्यभक्त, सब ऋषियों में उत्तम और काश्यपगोत्री थे ५। ८ द्रुपदने उनके ब्रह्मबलको जानकर अपनी मनोकामना के पाने के लिये उनका निमंत्रण किया और बड़ी शुश्रूषा के साथ उनकी विधिपूर्वक पूजा कर चरणों में अपना शिर रखके उपयाज को एकान्त में लेजाकर हाथ जोड़कर कहा कि महाराज! कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे मेरे द्रोणको मारनेवाला पुत्र होवे मैं आपको अर्बुद गाय दूंगा अथवा और जो कुछ आपके मनकी अभिलाषा होगी सो पूरी करूंगा इसमें कुछ संदेह नहीं है ९। १२ यह सुनकर उपयाज बोला कि हमसे यह काम नहीं होसक्ता इसपर द्रुपद उसकी सेवा करतारहा और जब एकवर्ष बीतगया तब उपयाज ने एक दिन उससे कहा कि मेरा बड़ा भाई याज नामी है तुम उसके पास जाओ वह लोभी है लोभके कारण से तुमको यज्ञ कराकर तुम्हारे मनकी इच्छाको पूरी करेगा मैं उसको लोभी तबसे जानताहूं जबसे उसने वनमें फिरते हुये पृथ्वीपर पड़े हुये फलको शुद्धाशुद्ध बिना विचारे उठालिया और गुरुके यहां संहिता पढ़ने के समय जूंठी भीखको अन्नके गुण वर्णन कर २ के खालिया यह सुनकर राजा द्रुपद अपने कामको जानकर उपयाज के आश्रम से याज के आश्रम को गया और उनकी पूजा करके बोला १३। २१ कि महाराज! मैं द्रोणाचार्य से अपना वैर लेना चाहता हूं वह कुरुओं का आचार्य बड़ा ब्रह्मज्ञानी ब्रह्मबलका रखने वाला ब्रह्मास्त्रका ज्ञाता बड़ा बाणैत और परशुरामजी के समान शूरवीर है उसके समान कोई क्षत्रिय पृथ्वीपर नहीं है उसके बाणों के जालसे कोई जीता नहीं बचसक्ता है उसका धनुष छः हाथकासा दीखता है और क्षत्रिय ब्राह्मण दोनोंके तेजको रखनेके कारणसे युद्धमें जलती हुई अग्निके समान दीखताहै इससे मैं आपके ब्रह्मतेज को द्रोणाचार्य के क्षत्रिय और ब्रह्मतेजसे अधिक समझकर आपकी शरण आया हूं सो महाराज! आप कृपा करके ऐसा कर्म कराइये जिससे मेरे युद्ध में दुर्जय और द्रोणका मारनेवाला पुत्र उत्पन्न हो मैं आपको अर्बुद गाय दक्षिणामें दूंगा २२। ३० यह सुनकर याज ने यज्ञ कराकर द्रोणाचार्य के नाश करने के लिये पुत्र उत्पन्न करने की प्रतिज्ञा की और उपयाजको भी बुलाकर यज्ञ कराने के लिये उपस्थित किया इसके पीछे उपयाजने राजा से

पुत्र उत्पन्न होने के लिये श्रौताग्नि साध्याकर्म का वर्णन किया और कहा कि इस कर्मके करने से तुम्हारे जैसा पुत्र चाहते हो वैसाही होगा यह सुनकर राजा द्रुपदने द्रोणको मारनेवाले पुत्रका संकल्प मनमें करके यज्ञकी सब सामग्री मँगाकर यज्ञ किया जब होम होचुका तब याजने रानीको बुलाकर कहा कि यहां आ तेरे एक पुत्र और एक पुत्री होगी यह सुनकर रानी बोली कि महाराज ! में रजस्वला होने से दूषित हूं पुत्र के निमित्त किसी वस्तुको स्पर्श नहीं करसक्ती हूं आप मेरे हित की बात करिये यह सुनकर याज बोला कि यह हव्य जो पुत्रकी उत्पत्ति के लिये मैंने कल्पित किया है और उपयाजने मंत्रित कियाहै व्यर्थ नहीं होसक्ता इससे अवश्य एक पुत्र और एक पुत्री उत्पन्न होंगे तू जा चाहै ठहर यह कहकर याजने उस हव्यको यज्ञकुंडकी अग्निमें डालदिया डालतेही उस कुंडमें से एक कुमार देव भयानक स्वरूप किरीट मुकुट पहिने हाथ में धनुष और तलवार लिये हुये प्रकट हुआ और निकलकर रथ में बैठगया उसको देखकर सब पांचालदेशके मनुष्य प्रसन्न होकर जय २ करनेलगे और यह आकाशवाणी हुई कि यह पुत्र द्रुपदके शोकको दूर करनेवाला और द्रोणाचार्यका नाश करनेवाला हुआ है ३१। ४३ इसके पीछे उसी यज्ञ-कुंड से एक कन्या प्रकट हुई वह कन्या सुभगा, दर्शनीय, विशालनेत्रा, घूंघर-वाले बाल, नख उठेहुये और लाल लाल भौंहैं बड़ी सुंदर, पयोधर कठिन और उठेहुये देवकन्याओं की सी छवि रखनेवाली थी उसके शरीरमें नीले कमलों के समान एककोश से गंध आती थी स्वरूपमें उसके समान दूसरी स्त्री पृथ्वी पर न थी उसके प्रकट होतेही आकाशवाणी हुई कि यह संसार में सब स्त्रियों से श्रेष्ठ होगी इससे देवताओं के काम निकलेंगे और इसके कारणसे कुरुओं को बड़ा भय और क्षत्रियोंका नाश होगा यह आकाशवाणी सुनकर सब पांचालदेश के मनुष्य बहुत प्रसन्न हुये उस समय रानी ने याजकी शरण जाकर कहा कि ये दोनों मेरे सिवाय दूसरी स्त्रीको अपनी माता न जाने यह सुनकर याज बोले कि ऐसाही होगा इसके उपरांत याजआदि ब्राह्मणों ने उन दोनोंके नाम रक्खे धृष्ट और कुण्डल कवच रूपधनके साथ उत्पन्न होने के कारणसे उस लड़के का नाम धृष्टद्युम्न रक्खा और कृष्णवर्ण होने के कारण से कन्याका नाम कृष्णा रक्खा ४४। ५४ इस प्रकार से राजा द्रुपद के एक कन्या और एक पुत्र यज्ञसे उत्पन्न हुये राजा द्रुपद उनको घर लेगया और द्रोणाचार्य ने भावी

को अमिट जानकर अपने यश के लिये धृष्टद्युम्नको बाणविद्या सिखाई॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकसप्तषष्टितमोऽध्यायः १६७॥

एकसौअरसठ का अध्याय।

उक्त कथाको सुनकर पांडवों का पांचालदेश को चलने की सलाह करना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कुन्ती के पुत्र पूर्व वृत्तांत सुनकर शल्यविद्ध के समान होकर द्रौपदी के स्वयंवरमें जानेको उपस्थित होगये उनके मनको द्रौपदी में लगाहुआ देखकर कुन्ती ने युधिष्ठिर से कहा कि इस ब्राह्मण के घरमें सुखपूर्वक बसतेहुये अब बहुत दिन होगये और यहां के वन बाग आदि सब रमणीक स्थान कई २ बार देखचुके अब यहां मन नहीं लगता है और भिक्षा भी यहां अच्छी तरह नहीं मिलती है और एक स्थानपर बहुत दिनोंतक रहना भी अच्छा नहीं है इससे जो तेरी इच्छाहो तो हम सब यहांसे पांचाल-देशको चलें वह देश भी बड़ा रमणीक सुनाजाता है और वहां भिक्षा भी अच्छी मिलती है और वहांका यज्ञसेन नाम राजा भी ब्रह्मण्य है १।८ यह सुन-कर युधिष्ठिर बोले कि मेरी भी यही इच्छा है परन्तु भाइयों के मनका हाल नहीं जानता हूं ९ वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! कुन्ती ने इसके पीछे भीम-सेन अर्जुन नकुल और सहदेव से भी उक्तरीति से पूछा उन्होंने भी युधिष्ठिरकी तरह उत्तर दिया तबतो कुन्ती उस ब्राह्मणसे पूछकर पुत्रों सहित राजा द्रुपद के नगर को चलदी १०।११॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकाष्टषष्टितमोऽध्यायः १६८॥

एकसौउनहत्तर का अध्याय।

व्यासजी का पांडवों के पास आना और द्रौपदी के पूर्वजन्म का हाल कहकर
यह उपदेश करके चले जाना कि तुम पांचो का विवाह द्रौपदी से होगा
सो तुम पांचालदेश को चले जाओ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब पांडव वहां से चलनेको हुये थे उसी समय वहां व्यासजी अपने कहने के अनुसार आये उनको देखकर सब पांडव हाथ जोड़कर खड़े होगये और उनको आदरपूर्वक बैठाया और आप भी उनकी आज्ञा से उनके समीप बैठगये उस समय व्यासजी बोले कि तुम धर्म पर चलते हो धर्म जाननेवाले ब्राह्मण अभी तुम्हारा पूजन करते हैं यह कहकर व्यासजी ने बहुतसी सुन्दर कथायें पांडवोंको सुनाईं उपरान्त यह बोले

कि तपोवन में एक ऋषिकी परमसुंदरी कन्या थी उसका विवाह तो होगया था परंतु कर्मानुसार राँड़ होने के कारण से पतिके मुखको नहीं देखा था इस कारण से उसने बड़ा उग्र तप करके महादेवजी को प्रसन्न किया जब महादेवजी ने उसके पास आकर वर मांगने को कहा तब वह बोली कि मैं सुंदर गुणवान् पति चाहती हूं महादेवजी बोले कि अच्छा तेरे पांचपति बड़े पराक्रमी गुणवान् और प्रतापी होंगे यह सुनकर वह बोली महाराज! मैं तो एकही पति चाहती हूं तब महादेवजी ने कहा कि तैंने मुझसे पांचबार यह कहा कि पति दीजिये इस से हमने तुझको पांच पति मिलने का वरदान दिया अब यह अन्यथा नहीं होसक्ता इस शरीर को छोड़कर दूसरे जन्म में तुझको पांच पति मिलेंगे सो वह कन्या अब राजा द्रुपद के यहां यज्ञअग्निसे प्रकट हुई है और उसका विवाह तुम पांचो से होनेवालाहै इससे तुम पांचो भाई पांचालदेश को चले जाओ उसके साथ विवाह होनेपर तुमको बड़ा सुख होगा यह कहकर व्यासजी सबसे पूछ-कर वहां से चलेगये १। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकैकोनसप्ततितमोऽध्यायः १६९॥

एकसौसत्तर का अध्याय।

पांडवों का पांचालदेश को चलना और राह में अर्जुन से अंगारपर्णनाम गंधर्व से युद्धहोना और अर्जुन का उसको मारना और उसकी स्त्री के कहने से उसे जीता छोड़ देना और उसका अर्जुन से मित्रता करना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! व्यासजी के चलेजाने पर पाण्डव प्रसन्न मन होकर माता को आगे करके वहां से उत्तर की ओर चल दिये और सोमाश्रयायण नाम तीर्थ में पहुँचे और वहां से गंगा के किनारे २ रात्रिके अंधकार में आगे चले अर्जुन राह दिखलाने को जलती हुई लकड़ी हाथ में लेकर आगे २ हो लिया उसी समय वहां गंगाजी में कोई गंधर्व स्त्रियों सहित एकांत में जलक्रीड़ा कररहा था अर्जुन आदि के आनेका शब्द सुनकर क्रोधमें भरगया और धनुषको टंकारकर बोला कि ८० लव रात्रि बीतनेपर यक्ष गन्धर्व और राक्षसों के घूमने का समय आजाता है यह समय मनुष्यों के घूमनेका नहीं है और जो अज्ञानी मनुष्य उससमय घूमने निकलते हैं उनको हम और राक्षस पकड़लेते हैं इसीकारण से रात्रि में नदीपर जाना निषेध है और मनुष्यकी तो किनमें गिनती है बलवान् राजा भी नहीं जासक्ता

हे दूर ठहरे रहो इधर मत आवो क्या तुम मुझको नहीं जानते हो में अंगारपर्ण नाम गंधर्व हूं में बड़ा पराक्रमी मानी ईर्षी और कुबेरका मित्र हूं यह वन मेरा अंगारपर्ण नाम से विख्यात है यहीं गंगातट पर मेरे रहने का विचित्र स्थान बनाहुआ है यहां देवता राक्षस आदि किसीकी सामर्थ्य नहीं है तुम यहां कैसे चले आते हो १। १४ यह सुनकर अर्जुन बोला कि समुद्र हिमालय और गंगाजी पर जाने के लिये रात्रि दिन सन्ध्या सवेरे किसी समय जाने न जानेका बंधन नहीं है और न कोई भुक्त अभुक्त काल इसके वास्ते नियत है हम भी सामर्थ्यहीन नहीं हैं तुझको इस कुसमय पर भी धर्षण करसक्ते हैं वह मनुष्य दुर्बल होंगे जो तुझसे डरकर चलेगये होंगे गंगा, यमुना, सरस्वती, वितस्था, सरयू, गोमती और गंडकी ये सातों नदियां पवित्र हैं इनके जलके स्पर्शसे पाप दूर होजाते हैं इनमें गंगाजी तो अलकनंदा नामसे स्वर्ग में वैतरणी नामसे पितृलोकमें और गंगा नामसे मृत्युलोकमें विख्यात हैं और तीनों लोकों को पवित्र करती हैं हमने यह व्यासजी से सुना है सो तू स्वर्गदाता गंगाके किनारेपर आने से हमको क्यों नाहीं करताहै यह सनातनका धर्म है हम तेरे कहने से गंगापर आनेको रुक नहीं सक्ते १५।२३ वैशंपायनजी बोले अंगारपर्ण ने यह सुनकर क्रोध से विषधर सर्पो के समान अर्जुन पर बाण फेंके अर्जुन ने उन सबको उल्मुक अर्थात् मशाल को घुमा घुमाकर व्यर्थ कर दिया और अंगारपर्ण से कहा कि में अस्त्र जाननेवाला क्षत्री हूं मुझको तुझ से किसी प्रकार का भय नहीं लगता है परंतु गंधर्व मनुष्यों से अधिक होते हैं इससे में तुझ से अस्त्रों से युद्ध करूंगा तू छल से युद्ध करना छोड़ दे में तेरे ऊपर आग्नेयअस्त्र छोड़ता हूं यह अस्त्र बृहस्पतिजी ने अग्निवेश ऋषि को दिया था उन्होंने मेरे गुरु को दिया और मैंने गुरु महाराजसे पाया है वैशंपायनजी बोले अर्जुन ने यह कहकर वह दीप्त आग्नेय अस्त्र क्रोधित होकर उस गंधर्व के ऊपर छोड़ दिया उस अस्त्र से उस गंधर्व का रथ जल गया और वह गंधर्व झुलसकर अचेत होकर नीचे को मुँह किये हुये गिर पड़ा अर्जुन उसके बाल पकड़कर उसको उसी अवस्थामें भाइयोंके पास खींचलाया २४।३२ यह देखकर उस गंधर्वकी कुंभीनसी नाम स्त्री युधिष्ठिरके शरण गई और विनयपूर्वक बोली कि महाराज ! यह मेरा पतिहै मेरी रक्षा करो मेरे पतिको कृपा करके छोड़ दो में तुम्हारे शरण आई हूं यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि हे अर्जुन !

यह गंधर्व रण में हारा हुआ यशहीन है और इसकी स्त्री दीन होकर इसका जीवदान मांगती है इससे इसके मारने में अब कुछ सुयश नहीं है अब इसे छोड़ दो यह सुनकर अर्जुन ने उसको छोड़ दिया और कहा कि जाओ अब हमने तुझे युधिष्ठिर के कहने से जीता छोड़ा और अभय किया ३३। ३६ यह सुनकर गंधर्व बोला कि मैं आज से अपना नाम अंगारपर्ण न बताऊंगा और न अपने बल और नाम की सभा में बड़ाई करूंगा यह अच्छा हुआ जो तुम ऐसे मित्र मुझको मिले मैं अब अर्जुन को गंधर्वीमाया सिखाना चाहता हूं अर्जुन ने मेरे चित्ररथ को दग्ध कर दिया इससे आज से अपने को चित्ररथी न कहूंगा दग्धरथी कहा करूंगा मैंने गंधर्वीमाया तपस्या करके पाई है वह माया आज मैं अपने प्राणदाता अर्जुन को बताऊंगा क्योंकि जो मनुष्य शत्रु को रण में जीत कर जीता छोड़ देता है वह सब कल्याणोंके योग्य होता है ३७। ४१ यह विद्या मनुजीने चन्द्रमाको दी थी चन्द्रमाने विश्वावसुको दी और विश्वावसु से मैंने पाई है अल्पपराक्रमी मनुष्यों को देने से यह नष्ट होजाती है इस विद्यामें यह पराक्रमहै कि जो कुछ कोई देखना चाहै उसे आंख से देख सक्ता है और एक पांव से खड़े होकर छःमहीने तपस्या करने के विना यह विद्या सफल नहीं होती है परन्तु मैं तुमको सब प्रकार से योग्य देखकर विना इस व्रतके कियेभी इस विद्याको दूंगा इसी विद्या के कारणसे हम अदृश्य को देख व आकाश में चलसक्ते हैं और मनुष्यों से अधिक होकर देवताओं के तुल्य हैं सो हे अर्जुन ! मैं तुझको और तेरे भाइयों को पृथक् २ गन्धर्वोंके देश में उत्पन्न हुये सौ सौ घोड़े दूंगा ये घोड़े मनके वेग की समान चलने वाले और देवता और गंधर्वों की सवारीके हैं न वे कभी वृद्ध होते न चलनेमें थकते और अस्त्रों से मरनेपर फिर जी उठते हैं ४२। ४८ पहिले समयमें इन्द्र का वज्र वृत्रासुर के शिरपर मारने से टुकड़े २ होगया था देवताओं ने उन टुकड़ों को इकट्ठा करके उनमें सब जगत्के भाग लगा दिये इसीसे ब्राह्मण के हाथ में क्षत्री के रथमें वैश्यके दान में और शूद्रके कर्मों में वज्रका अंश रहता है सो क्षत्री के रथ में घोड़ा मुख्य गिना जाता है उसीमें वज्रका अंश होता है इससे हे अर्जुन ! ये गंधर्वदेश के घोड़े जो इच्छा के अनुसार चलते और ठहर जाते हैं तुम्हारी सब कामनाओं को पूरा करेंगे ४९। ५३ यह सुनकर अर्जुन बोला कि तू हमको प्रीति अथवा भयके कारणसे जो धन या विद्या या शास्त्र

देना चाहता है उसे लेना हम अच्छा नहीं जानते यह सुनकर गंधर्व बोला कि बड़े मनुष्यों का संग मिलने से प्रीति अवश्य होजाती है और मैं तो अपने प्राणदान की प्रीति से तुमको यह विद्या देता हूं और तुमसे भी आग्नेय अस्त्र लेना चाहता हूं तुमको प्रतिदान देना अवश्य उचित है ५४।५६ यह सुनकर अर्जुन बोला कि हम तुमको अस्त्र देकर घोड़े लेंगे और तुमसे मित्रता करेंगे परन्तु यह तो कहो कि तुमने हम वेद जाननेवालों को रात्रि में आते हुये देखकर क्यों रोका ५७। ५८ गन्धर्व बोला कि तुम अग्नि रहित थे और होम भी तुमने नहीं किया था और न तुम्हारे आगे कोई ब्राह्मण था इससे हम ने तुमको रोका था हमने तुम्हारे कुरुकुल के पूर्व पुरुषाओं का यश यक्ष राक्षस गन्धर्व उरग दानव और नारदादि ऋषियों से सुना है और आप भी पृथ्वीपर घूमकर उनके प्रभाव को देखा है हम तुम्हारे द्रोणाचार्य गुरु को भी जानते हैं वह वेद और धनुर्वेदमें सब प्राणियोंसे श्रेष्ठ है और मैं यह भी जानता हूं कि तुम सब पांडव हो और धर्म वायु इन्द्र और अश्विनीकुमार देवताओं के अंशसे उत्पन्न हुये हो और सबभाई महात्मा शूरवीर और सुव्रती हो इन सब बातों को हम जानते थे परन्तु जब बलवान् पुरुष स्त्री के साथ होता है और उस समय कोई और मनुष्य आजाता है तब वह क्षमा नहीं कर सक्ता इसके सिवाय रात्रि में हमारा बल अधिक भी होजाता है इससे हमने स्त्री के साथ होने से तुमपर क्रोध किया था और तुमको रोका था ५६। ६८ हे तापत्य! तुमने जो हमको युद्धमें जीता है उसका कारण यह है कि तुम ब्रह्मचारी हो ब्रह्मचर्य रहना बड़ा धर्म है जो कोई और क्षत्रिय स्त्रीवाला अथवा कामासक्त रात्रिमें हमसे युद्ध करता तो जीता कभी न बचता हां कामासक्त और स्त्रीवाला क्षत्री एक प्रकारसे निशाचरों को जीत सक्ता है कि अपने आगे २ पुरोहित को करले इसीकारण से राजाओं को पुरोहित का करना अवश्य है और पुरोहित ऐसा ब्राह्मण किया जावे जो जितेन्द्रिय वेदपाठी वेदके सब अंगों का जाननेवाला पवित्र सत्यवादी धर्मात्मा और शुद्ध अंतःकरण हो जिस राजा का पुरोहित धर्म जाननेवाला शीलवान् पवित्र और श्रेष्ठ होता है उसको युद्ध में जय और मरनेपर स्वर्गवास अवश्य मिलता है ६६।७५ राजाको अलब्ध वस्तुके पाने और लब्ध वस्तु की रक्षाके लिये पुरोहित करना अवश्य चाहिये और ऐश्वर्य की रक्षा और पृथ्वी के जीतने के लिये पुरोहित का मत लेना

श्रेष्ठ होता है कोई राजा अपनी शूरता और कुलके कारण से ब्राह्मण रहित होनेपर जय नहीं पासक्ता है और ब्राह्मणके होने से राज्य बहुत दिनों तक बना रहता है ७६। ७६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकसप्ततितमोऽध्यायः १७०॥

एकसौइकहत्तर का अध्याय।

अर्जुनका गंधर्व से अपने तापत्य होनेका कारण पूछना और गंधर्वका राजा संवरण और सूर्यकी पुत्री तपतीकी उत्पत्ति और तपतीपर संवरण के आसक्त होनेकी कथा कहना॥

अर्जुन बोले कि हे गन्धर्व! तुमने हमसे तापत्य २ कहा इसका क्या कारण है हम तो कौन्तेय हैं तुम हमको तापत्य कैसे कहते हो हम इस बातको जानना चाहते हैं वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! गंधर्व अर्जुनकी बातको सुनकर पूर्व वृत्तान्त सुनानेलगा कि हे अर्जुन! तुम मेरे गुरु हो मैं तुम्हारे तापत्य होनेकी कथा यथावत् सुनाता हूं १। ५ उन सूर्य देवताकी जिनके प्रकाश से तीनों लोकमें उजेला होता है एक तपती नाम पुत्री थी वह सावित्री से छोटी और तपस्विनी थी और स्वरूप उसका ऐसा सुन्दर था कि ऐसा स्वरूप किसी देवी आसुरी यक्षी राक्षसी अप्सरा और गंधर्वीका न था सब अंग उसका सुडौल और निर्दोष था नेत्र काले और बड़े २ थे और वह सुन्दर साध्वी और प्रकाशमान थी ६। ६ सूर्य ने उसका विवाह करनेको तीनोंलोकमें वर ढूंढ़ा परन्तु उसके सदृश किसीको न पाकर बड़ा उद्विग्न चित्त हुआ इसी अवसरमें कुरुवंश के राजा ऋक्षके बलवान् संवरण नाम पुत्रने सूर्य का आराधन किया और सूर्य उसकी भक्ति उपवास पवित्रता सावधानता निरहंकारता नियम विधिपूर्वक पूजा कृतज्ञता और धर्म से प्रसन्न हुये और उसके अत्यन्त सुन्दर स्वरूपवान् होने से उसको तपतीके योग्य वर जाना और उसका विवाह तपती से करना चाहा १०। १७ वह संवरण राजा पृथ्वीपर ऐसाही तेजधारी था जैसे सूर्य आकाशमें है ब्राह्मणके सिवाय सब प्रजा उसका पूजन उसी प्रकारसे करती थी जैसे ब्रह्मवादी सूर्यका आराधन करते हैं वह राजा कांतिमें चन्द्रमा और तेज में सूर्य से भी अधिक था सूर्यने उसके गुणोंको देखकर तपती का विवाह उसके साथ करनेको निश्चय विचार कर लिया एक समय वह राजा उपवन और पर्वतों में अहेर खेलने को गया १८। २१ उसका घोड़ा पहाड़ों

में थकगया और भूखा प्यासा होनेके कारणसे मरगया तब राजा वहांसे पैदल चला थोड़ी दूर चलकर उसने उस पहाड़पर अकेली एक कन्याको देखा उस कन्याके नेत्र बड़े २ थे राजा उसे देखकर खड़ा होरहा और विचार करने लगा कि यह यातो लक्ष्मी है या सूर्य से गिरा हुआ तेज है उस कन्या का तेज अग्निके समान और शरीर चन्द्रमा के समान निर्मल था और उसके सुवर्ण की सी प्रभावाले शरीर से वह पहाड़ वृक्ष और अनेक प्रकार की लताओं सहित सुनहरी सा दीखनेलगा उसकी सुन्दरता की फांसी ने राजा के नेत्र और मनको ऐसा बांधलिया कि राजा वहां से हिल न सका और उसको देख २ कर अपने नेत्रोंको सफल जानकर कहने लगा कि तीनोंलोकमें इस स्त्रीकी बराबर सुन्दर स्त्री कोई नहीं है विधाताने देवता और मनुष्य आदि सब जीवोंकी सुन्दरता को मथकर इस परमसुन्दरी स्त्री को बनाया है २२ । ३२ इस प्रकारसे राजा उस कन्याको असदृशी जानकर कामाग्निसे पीड़ित होकर आसक्त होगया और कुछ देर चिन्ता करके बोला कि हे सुन्दरि ! तू कौन है किसकी बेटी है और इस निर्जनवनमें क्यों अकेली फिरती है तेरा अंग निर्दोष है और जो गहने तू पहर रही है उन गहनों की भी तू गहनाहै मैं तेरे सदृश देवी आसुरी यक्षी राक्षसी नागकन्या गंधर्वी और मानुषी किसी को नहीं समझता हूं मेरी जान में आजतक जितनी स्त्रियां मैंने देखी और सुनी हैं उनमें तेरे सदृश कोई नहीं है हे प्यारी ! तेरे चन्द्रमुखको देखकर मुझको कामदेवने बहुत सताया है यह सुन कर वह कन्या कुछ न बोली और बादलों में बिजलीके समान वहीं अंतर्धान होगई और राजाको रोताहुआ छोड़गई ३३।४२ राजा उसके अंतर्धान होनेपर मोहित होगया और विलाप करता हुआ चारों ओर उस वनमें उसको ढूंढ़ने लगा और उसको वहां कहीं न पाकर बड़ा दुःखी हुआ ४३ । ४४ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकैकसप्ततितमोऽध्यायः १७१ ॥

एकसौबहत्तर का अध्याय।

तपतीके वियोग में राजा संवरणका मूर्च्छित होजाना उसकी यह दशा देखकर तपतीका राजाको आकर दर्शन देना और उससे कहना जो तू मुझे चाहता है तो सूर्य का आराधन कर ॥

गंधर्व बोला हे अर्जुन ! राजा संवरण इसके पीछे उसके वियोग में मोहित

होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा उसकी यह दशा देखकर उस सुन्दरी कन्या ने फिर राजाको अपना दर्शन दिया और अत्यंत मधुरवाणी से हँसती हुई बोली कि हे राजा ! तुम पृथ्वीपर विख्यात हो तुम को ऐसा मोह करना उचित नहीं है अब तुम उठखड़े हो राजा उसकी मधुरवाणी सुनकर और उसको अपने सन्मुख खड़ीहुई देखकर उसके सुन्दर स्वरूप को देखनेलगा और कामाग्नि से हतचेत होकर बोला कि हे सुन्दरि ! तुझको मुझसे प्रीति करना उचित है जो तू ऐसा न करैगी तो कामदेव के तीक्ष्णबाणों से मेरे प्राण नहीं बचेंगे मुझको कामदेवरूपी महासर्पने डस रक्खा है इससे ये प्राण अब तेरेही आधीन हैं विना तेरी कृपा मैं किसी प्रकार नहीं जीसक्ता हूं इससे हे सुन्दरि ! मुझे अपना भक्त जानकर मेरे ऊपर कृपाकर मेरा चित्त तेरी सुन्दरता को देखकर अत्यन्त चलायमान होरहा है तुझको मुझे छोड़ना उचित नहीं है तुझे देखकर अब मेरा मन दूसरी स्त्रीको किंचित्मात्र भी नहीं चाहता है मेरा प्रेम तुझसे अत्यंत होगयाहै तूभी मुझसे प्रेम कर मैं कामाग्निसे बड़ा दुःखी होरहा हूं कामाग्निसे जलतेहुये मेरे शरीरको अपने प्रेमरूपी जलसे ठंढाकर सब विवाहों में गंधर्व विवाह सब से श्रेष्ठ है इससे हे सुन्दरि ! गंधर्व विवाह द्वारा अपना आत्मदान देकर कामदेवके प्रचंड बाणों से मुझे बचा ले १ । १८ यह सुनकर वह कन्या बोली कि हे राजा ! मैं कन्याहूं और स्वाधीन नहीं हूं जो तू ऐसी ही मेरी प्रीति करताहै तो मेरे पितासे मुझको मांगले हम दोनों परस्पर विकल हैं जैसे मुझे देखकर तुम्हारा मन मोहित होगया है इसी प्रकारसे मेराभी मन तुझको देखकर मोहित है परन्तु क्या करूं पिताके भयसे तेरे पास नहीं आसक्ती हूं भला ऐसी कौन कन्या होगी जो पति नहीं चाहती होगी इससे तू नियम व्रत और नमस्कार करके मेरे पिता सूर्यसे जाकर मुझे मांगले जो मेरा पिता मुझे तुझको देदेगा तो मैं निरंतर तेरी पत्नी होकर रहूंगी मैं सावित्री से छोटी तपती नाम सूर्यकी पुत्री हूं १६ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकद्विसप्ततितमोऽध्यायः १७२ ॥

एकसौतिहत्तर का अध्याय।

राजा संवरणका वशिष्ठजी को याद करना और वशिष्ठजी का आना और सूर्य के पास जाकर तपतीको लाकर उसका विवाह राजा संवरणसे होना और राजाका तपती से वनमें विहार करना ॥

गन्धर्व बोला कि हे अर्जुन ! वह कन्या राजा से उक्त रीतिसे कहकर फिर

आकाशमें चलीगई और राजा फिर मोहित होकर पृथ्वीपर गिरपड़ा उसी अवसरमें वहां उस राजाका मंत्री सेनासहित राजाको ढूँढ़ता हुआ आन पहुँचा और उस महापराक्रमी राजा को संज्ञारहित पृथ्वी पर पड़ा हुआ देखकर तुरन्त उसके पास चलाआया और स्नेह से पिता पुत्रके समान उसको पृथ्वी से उठालिया १। ५ और शोचको छोड़ उससे बोला कि हे राजा! अब किसी बातका भय मत करो तुम्हारा कल्याण हो ६। ७ यह कहकर वह बुद्धिमान् वृद्ध मंत्री यह समझा कि राजा भूख और प्यासके मारे थकगया है ऐसा जानकर वह ठंढे पानी से उसके मुख और शिरको सींचनेलगा और कमलों का मुकुट बनाकर राजाके शिर पर धरा वह मुकुट धरतेही सुन्दगया इसके पीछे जब वह सचेत हुआ तब उसने उस मंत्रीको वहां रहनेदिया और सब सेनाको बिदा करदिया वह सेना राजाकी आज्ञा पाकर वहां से चलीगई और राजा वहां खड़ा होकर पवित्रतासे ऊँचेको मुख करके सूर्य की आराधना करनेलगा उससमय राजाने अपने पुरोहित वशिष्ठ ऋषिको अपने मन में ध्यान किया वशिष्ठजी अपने दिव्यचक्षु से राजाका मन तपती के स्वरूपपर हराहुआ जानकर बारहवें दिन वहां आन पहुँचे और आकर राजाका ८। १६ कार्य करनेको उसके देखते २ आकाशमार्गसे सूर्य के पास गये और हाथजोड़कर खड़े होकर सूर्यदेवता से बोले कि मैं वशिष्ठ हूं सूर्य उनको देखकर बोले कि बहुत अच्छा आपका आना शुभ हो कहो क्या चाहते हो मैं तुम्हारी दुष्कर भी जो मनोकामना होगी उसेभी पूरी करूंगा यह सुनकर वशिष्ठजी उनको नमस्कार करके बोले कि महाराज! मैं आपकी तपती कन्याको जो सावित्री से छोटी है राजा संवरण के लिये मांगने आया हूं यह राजा बड़ा बुद्धिमान् धर्मात्मा और कीर्तिमान् है और आपकी पुत्रीसे विवाह के योग्यहै १७। २३ यह सुनकर सूर्य उस कन्याको देना विचारकर बोले कि राजा संवरण राजाओं में श्रेष्ठ है और आप ऋषियों में उत्तम हैं और तपती स्त्रियों में असदृशी है इससे मुझको दान करने में कोई शंका नहीं है २४। २५ यह कहकर सूर्य ने तपतीको संवरण को देनेके लिये वशिष्ठजी के साथ करदिया और वशिष्ठ जी उसे लेकर राजाके पास आये राजा उस कन्या को वशिष्ठजी के साथ आतीहुई देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ वह कन्या बिजुली के समान प्रकाश करती हुई आकाशमार्ग में बड़ी शोभायमान देखपड़ती थी वशिष्ठजी आकाश से

बारहवें दिन उस कन्या को लिये हुये वहां आनपहुँचे २६।३१ इस प्रकार से राजा संवरण ने वशिष्ठजी के तेज और सूर्य के आराधन से तपती को पाकर उसका पाणिग्रहण विधि के अनुसार उसी वनमें किया और वशिष्ठजी से आज्ञा लेकर उसी वन में रहना अंगीकार करके तपती के साथ बड़े आनन्द से विहार किया और उस मंत्री को आज्ञा दी कि तू इस वन में उपवन सहित नगर का प्रबंध कर राजा तपती के साथ वहां रहने लगा और उसको बारहवर्ष वहीं बीत गये इन्द्र ने उसके राज्य में बारहवर्ष तक वर्षा नहीं की और अकाल के कारण से उसकी सब प्रजा नाश होगई बहुत से मनुष्य पृथ्वी में कोई वस्तु उत्पन्न न होने से भूखके मारे इधर उधर भाग गये सब प्रकार की मर्यादाओं को छोड़कर उदरपोषण करनेलगे और बहुतसे मरकर यमपुरी को चलेगये इस बात को देखकर वशिष्ठजी महाराज ने अपने तपोबलसे उसके संपूर्ण राज्य में वर्षा कराई और वनमें जाकर उस राजा को तपती सहित नगर में लेआये ३२।४५ उस राजा के नगर में आतेही इन्द्र फिर पूर्ववत् वर्षा करनेलगा और संपूर्ण पदार्थों के उत्पन्न होने के कारण से सब प्रजा फिर ज्यों की त्यों होगई और आनन्दपूर्वक वास करने लगी इसके पीछे राजा ने तपती को साथ लेकर बारह वर्षतक यज्ञ इस प्रकार से किया जैसे इन्द्र शची को साथ लेकर करै ४६।४८ इतनी कथा सुनाकर गंधर्व बोला हे अर्जुन! वह तपती तुम्हारी पहली पुरखा थी इसकारण से मैंने तुम्हें तापत्य कहा ४९।५० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकत्रिसप्ततितमोऽध्यायः १७३॥

एकसौचौहत्तर का अध्याय।

गंधर्व का अर्जुन से वशिष्ठ जी का संक्षेप वृत्तान्त कहना और किसी अच्छे ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाने का उपदेश करना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन उस गंधर्व से पूर्वोक्त वृत्तांत सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसका मुख चन्द्रमा के समान चमकने लगा और वशिष्ठजी के तपोबल के वृत्तान्त को सुनकर आश्चर्य में आकर बोला कि हमारे पुरखाओं के पुरोहित श्रीवशिष्ठजी महाराज कौन थे यह सुनकर गन्धर्व बोला कि वशिष्ठजी ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र और अरुन्धती के पति थे उन्होंने अपने तपके प्रभाव से काम और क्रोध को ऐसा जीता था कि वह उनके पैर दाबा करते थे विश्वामित्र ने बड़ा भारी उनका अपराध किया

था परन्तु उन्हों ने सब प्रकार से समर्थ होने पर भी विश्वामित्र के वंश का नाश नहीं किया यद्यपि पुत्रों के शोकसे दुःखी हुये परन्तु विश्वामित्र का नाश करने को कोई कर्म नहीं किया और अपने मरे हुये पुत्रों को यमपुरी से लाने को भी समर्थ थे परन्तु उन्होंने समुद्र के समान कालकी मर्यादा को उल्लंघन नहीं किया इक्ष्वाकुवंशी राजाओं ने वशिष्ठजी को अपना पुरोहित बनाकर बड़े यज्ञ किये और सम्पूर्ण पृथ्वी विजय की और वशिष्ठ जी ने भी उन राजाओं को इसप्रकार से यज्ञ कराये जैसे बृहस्पति इन्द्र को कराते हैं १।११ हे अर्जुन! इस कारण से तुमको भी कोई धर्मात्मा वेद जाननेवाला और गुणवान् ब्राह्मण पुरोहित करने के लिये ढूंढ़ना चाहिये राज्यको जीतनेकी इच्छा करनेवाले क्षत्री को पुरोहित करना अवश्य है और जब पृथ्वी जीतनेको चले तब पुरोहित को आगे करले ऐसा करने से राजा की जय होती है १२।१४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकचतुःसप्ततितमोऽध्यायः १७४॥

एकसौपचहत्तर का अध्याय।

वशिष्ठजी का विश्वामित्र को मंत्री और सेना सहित निमंत्रण करके नन्दिनी गायके प्रभाव से अलभ्य पदार्थ भोजन कराना विश्वामित्र का उस गाय को बलसे ले जाना और गायके न जाने और म्लेच्छों को उत्पन्न करके विश्वामित्र की सेना को मारने और विश्वामित्र का राज्य छोड़कर तपस्या करने और ब्राह्मण भाव पाने की कथा॥

अर्जुन बोला कि हे गन्धर्व! विश्वामित्र और वशिष्ठजी के वैर करने का वृत्तान्त हमको विस्तारपूर्वक सुनाओ यह सुनकर गंधर्व बोला कि यह पुराना वृत्तान्त है मैं उसको तुम्हें ठीक २ सुनाता हूं कान्यकुब्ज देश में एक राजा गाधिनामी कुशिका पुत्र था उसके विश्वामित्र नामी बड़ा पराक्रमी और बड़ी सेना रखनेवाला पुत्र हुआ एक समय वह राजा अहेर खेलनेको ऐसे वनमें गया जहां बहुत थोड़ा जल था बहुत से मृग और वाराहों को मारनेपर श्रम और प्यास से दुःखी होकर वह वशिष्ठजी के आश्रम में पहुँचा वशिष्ठजी ने उसे देखकर उसका बड़ा आदर किया और पाद्य अर्घ्य आचमन आदिसे उसकी पूजा करके कन्द मूल फल आदि भोजन के लिये और सेनासहित उसका निमन्त्रण करके अपनी कामधेनु नाम गऊ के द्वारा जो सब कामनाओं की देनेवाली थी उन सबको ग्राम और वन के सम्पूर्ण पदार्थ औषधी, दुग्ध, अमृतके तुल्य षट्रस, अच्छे २ भोजन, पीने की सुन्दर २ चीजें, अनेक प्रकार के भक्ष्य,

अमृतके समान चाटने के पदार्थ, चूसनेवाली वस्तु, बड़े मोलके रत्न और अनेक२ प्रकारके वस्त्र देकर सबका आदर किया राजा अपने मन्त्री और सेनासहित उन पदार्थों को खाकर और रत्न वस्त्र आदिकों को लेकर तृप्त होगया और उस गऊको जिसके शिर ग्रीवा आदि छै अंग ऊंचे, ललाट कान और नेत्र मोटे, पार्श्व और घोंटू सुन्दर, स्तन बड़े २ सब शरीर बहुत सुडौल बना हुआ, नोकीले कान, शोभायमान पूंछ, सुन्दर सींग, मोटा लम्बा शिर ग्रीवा और सब अंग मनोहरथे देखकर विस्मित हुआ और उस गऊकी बहुत प्रशंसा करके वशिष्ठजी से बोला कि महाराज इस गाय को आप मुझे दे दीजिये और इसके बदले में मुझसे अर्बुद गाय अथवा मेरा सम्पूर्ण राज्य लेकर भोगिये यह सुनकर वशिष्ठ जी बोले कि यह गाय नन्दिनी है और देवता पितर अतिथि और यज्ञके काम की है इसको हम तेरे सम्पूर्ण राज्य के बदले में भी नहीं देसक्ते १।१७ यह सुनकर विश्वामित्र बोला कि तुम वेदपाठी और तपस्वी बलहीन ब्राह्मण हो और मैं बलवान् क्षत्री हूं जो तुम अर्बुद गायके बदलेमें मुझे इस गायको नहीं दोगे तो मैं बलसे गाय को छीनकर लेजाऊंगा यह सुनकर वशिष्ठजी बोले कि अच्छा जो तू बलवान् क्षत्री है तो विचार मत करे जैसे तुझसे बने गायको ले जा यह सुनकर विश्वामित्रने उस गायको खुलवा लिया और कोड़ा मार मार कर ले जानेलगा परन्तु वह गाय ताड़ना पर भी वहांसे नहीं गई और ऊंचेको मुँह उठाये हुये रम्भाती हुई वशिष्ठजीके सन्मुख जा खड़ी हुई यह देखकर वशिष्ठजी बोले कि मैं तेरे रम्भानेके शब्दको सुनताहूं परंतु मैं क्या करूं विश्वामित्र तुझको बलसे लिये जाताहै इसमें मेरा कुछ वश नहींहै मैं तो क्षमावान् ब्राह्मण हूं १८।२४ यह सुनकर वह गाय वशिष्ठजी से विश्वामित्र और उसकी सेनासे अत्यंत भयभीत होकर बोली कि महाराज मुझ रंभाती हुई और कोड़ोंसे पिटती हुई को आप अनाथकी तरह क्यों त्यागते हैं गंधर्व बोला हे अर्जुन! वशिष्ठजी उस गायके पीछे जाने और पुकारने पर भी चलायमान नहीं हुये और बोले कि क्षत्रियोंका बल बलही है और ब्राह्मणोंका बल केवल क्षमा है इससे मैं क्षमा नहीं छोड़ सक्ता हूं तुझे दीखे सो कर यह सुनकर वह गाय बोली कि महाराज क्या आपने मुझे त्याग दिया है जो ऐसा कहते हो जो आपने मुझे त्यागा नहीं है तो बलसे मुझे कोई नहीं लेजासक्ता है वशिष्ठजी बोले कि मैं तुझको त्यागता नहीं हूं जो तू रहनेकी सामर्थ्य रखती है तो रह

देख ये मनुष्य तेरे इस बछड़े को मोटी रस्सी से बांधकर लिये जाते हैं गन्धर्व बोला हे अर्जुन! उस गौने वशिष्ठजीकी यह बात सुनकर शिर और कान ऊंचे को करके रौद्रस्वरूपहो लाल २ नेत्र करके बादलकी गरजके समान रंभा-कर विश्वामित्रकी सब सेना को डरा दिया और चारोंओर दौड़ २ कर सींगों से मार २ कर दूर भगा दिया और क्रोध कर २ के अपनी पूंछसे अंगारे वर्षाये जिसके कारण से विश्वामित्रकी सेना जलने लगी उस समय उस गाय ने अपनी पूंछ से पल्हव, ऐनसे द्राव्ड़ और शक, योनिसे यवन, गोबर से शवर, पार्श्वसे पौण्ड्र, किरात, यवन, सिंहल, बर्बर और खस और फेनसे चिबुक, पुलिंग, चीनी, हूंणके रल और बहुत प्रकार के म्लेच्छ उत्पन्न किये वे म्लेच्छ नानाप्रकारके आयुध ले लेकर क्रोध कर २ के विश्वामित्र की सेना से युद्ध करनेलगे एक २ योधा पांच २ सात २ से लड़ने लगा और विश्वामित्रके देखते २ वह सब सेना म्लेच्छों से ताड़ित और भयभीत होकर भागने लगी म्लेच्छोंने बाणों से उस सेना को अधमरी करडाला और वह चिल्लाती पुकारती हुई विना किसी रक्षक के तीन योजन तक भागती चली गई विश्वा-मित्र कुछ न कर सका दीन होकर देखता रहा और उस ब्रह्मतेज से प्रकट आश्चर्य को देखकर अपने क्षत्रीबल से विरक्त होकर कहने लगा कि क्षत्री के बलको धिकार है ब्रह्मतेज का बलही केवल बल है और अबलको निश्चय तपकाही बड़ा बल है २५। ४४ यह कहकर विश्वामित्र ने सब राज्य लक्ष्मी और भोगों को छोड़दिया और तप करने लगा उसके कठिन तप से सब लोक तृप्त होगये और उसने ब्राह्मणभाव पाकर इन्द्रके साथ सोम पान किया ४५।४७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकपञ्चसप्ततितमोऽध्यायः १७५॥

एकसौछिहत्तर का अध्याय।

विश्वामित्र का कल्माषपाद नाम राजा से जो शापसे राक्षस होगया था वशिष्ठजीके सौ पुत्रों को मरवाने और वशिष्ठजी का क्रोधकरके अपने मरने का उपाय करने की कथा॥

गंधर्व बोला हे अर्जुन! इक्ष्वाकुवंश में एक कल्माषपाद नाम बड़ा तेजस्वी राजा था वह राजा एक दिन वनमें अहेर मारने को गया और मृग वाराह आदि बहुत से वनके जीवों को मारकर थकजाने के कारण से घरको लौटा राहमें एक ऐसा मार्ग मिला कि वहां केवल एक आदमी के निकलने की राह थी राजा

उसी राह पर चलाजाता था थोड़ी दूर पर उसको दूसरी ओर से आता हुआ शक्ति नाम वशिष्ठजी का सौ पुत्रों में सब से बड़ा पुत्र मिला वह बड़ा महात्मा और तपस्वी था राजा भूख प्यास और थकावट से दुःखी होकर उस राह पर चला गया जब वशिष्ठजीके पुत्रके समीप पहुँचा तब वह बोला कि राह छोड़दो हमको जाने दो यह सुनकर वशिष्ठजी का पुत्र बोला कि तुम भी राह में से हटजाओ हमको जाने दो यह सनातन धर्म है राजाओं को ब्राह्मणों का मार्ग देना अवश्य उचित है वे दोनों इस प्रकार से एक दूसरे को हटाते रहे परन्तु न वशिष्ठजी का पुत्र हटा न राजा ने राह दी इसके पीछे राजा ने क्रोध करके वशिष्ठजी के पुत्र के राक्षस की तरह कोड़ा मारा वशिष्ठजी के पुत्रने उस कोड़े के लगने से मूर्च्छित और क्रोधित होकर यह शाप दिया कि तू नीच राजा है तैंने राक्षस के समान होकर मुझ तपस्वी को मारा है इससे तू मनुष्य-भक्षी राक्षस आज से होजा और पृथ्वी पर फिराकर उसी अवसर में वहां विश्वामित्र ऋषि जो उस राजा को अपना यजमान किया चाहते थे पिछले वैर भाव से गुप्त स्वरूप धारण करके आये और उन दोनों के विवाद को देखकर और उसको वशिष्ठजी का पुत्र बड़ा तेजस्वी और तपस्वी जानकर वहां से अन्तर्धान हो गये राजा फिर वशिष्ठजी के पुत्र को प्रसन्न करने की इच्छासे उसकी शरणागत जाकर स्तुति करने लगा उस समय विश्वामित्र ने अपना प्रिय काम करनेकी इच्छासे किंकरनाम राक्षसको मन्त्रबलसे आज्ञा दी कि तू राजाके शरीरमें प्रवेश कर उस राक्षसने विश्वामित्रके मंत्रबल और उस ब्रह्मऋषिके शापसे वैसाही किया विश्वामित्र यह काम करके कहीं अंतको चलेगये और वह राजा राक्षसके शरीर में प्रवेश करनेपर अचेतसा होगया और वहांसे घरको चला राहमें किसी भूखे ब्राह्मणने उससे मांससहित भोजन मांगा राजाने उससे कहा कि तुम यहीं ठहरो मैं अभी लौटकर आताहूं तुमको इच्छानुसार भोजन कराऊंगा यह सुनकर वह ब्राह्मण वहीं बैठारहा १।२६ और राजा सुखपूर्वक अपने महलमें पहुँचा जब आधीरात हुई तब राजाको उस ब्राह्मण से प्रतिज्ञा करनेकी याद आई उसने उसी समय रसोइयेको बुलाकर कहा कि फलानी जगहपर ब्राह्मण बैठाहुआ मेरी राह देख रहा होगा तू मांस और अन्न लेजाकर उसको भोजनके लिये देआ रसोइया यह सुनकर मांस ढूंढ़नेलगा परन्तु उसको मांस कहीं नहीं मिला तब वह राजाके पास जाकर बोला कि

महाराज मांस तो नहीं मिलताहै यह सुनकर राजाने राक्षस से आविष्ट होने के कारण से कहा कि आदमीका मांस बनाकर लेजा यह सुनकर रसोइया जीव बधिक अर्थात् कसाइयोंके स्थानपर गया और वहां से नरमांस लाकर और उसे अच्छे प्रकारसे बनाकर अन्नसहित उस तपस्वी ब्राह्मण को देनेके लिये लेगया वह तपस्वी ब्राह्मण अपनी दिव्यदृष्टिसे इस बातको जानगया और बोला कि उस नीच राजाने मुझे अभोज्य अन्नदान किया है इससे ऐसे पदार्थ के खाने की उसीकी बुद्धि होगी और जैसा शक्तिने कहा है वैसाही यह नरमांसभक्षी भयंकर राक्षस होकर पृथ्वीपर फिरेगा २७ । ३६ इसके पीछे वह राजा दो ऋषियों से शाप दियेजानेपर बुद्धिरहित होगया और थोड़ेही कालमें हृदय में प्रवेश कियेहुये राक्षससे हारकर राक्षसी स्वभाव धारण कर लिया एक दिन राजा शक्ति-ऋषिको पाकर बोला कि तुमने मुझे शाप देकर राक्षस बनाया है इससे मैं पहिले तुमहीको खाताहूं यह कहकर उसने शक्तिऋषिको मार डाला और जैसे सिंह पशुओंको मारकर खाजाताहै उसी प्रकार से उसको खागया इसके पीछे विश्वामित्र ने यह देखकर उस राक्षस राजाको बारम्बार आज्ञा दी कि वशिष्ठजी के सब पुत्रोंको मारकर खाजा और उस नीचने वैसाही किया और सिंहकी तरह वशिष्ठजी के सौ पुत्रोंको मारकर खागया वशिष्ठजी उस हालको सुनकर अत्यंत शोक में मग्न होगये और विश्वामित्र का नाश करना न विचारकर अपना मरना अंगीकार किया और मेरुपर्वतके बड़े ऊंचे शिखरपर जाकर वहांसे अपनेको नीचे गिरादिया परंतु वह पहाड़की शिला उनके लिये रुई होगई और वह नहीं मरे इसके पीछे वह अग्नि में जलजाना विचारकर वनमें एक स्थानपर लगीहुई अग्नि में घुसगये परंतु उनके जातेही वह अग्नि शान्त होगई यह देखकर वशिष्ठजी बहुत खिन्नचित्त हुये और अपनी ग्रीवामें भारी शिला बांधकर समुद्र में गिरपड़े समुद्रने उनको लहरों से किनारे पर डालदिया यह देखकर वशिष्ठजी बहुत दुःखी होकर अपने आश्रम को चलेआये ३७ । ४६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकषट्सप्ततितमोऽध्यायः १७६ ॥

एकसौसतत्तर का अध्याय।

वशिष्ठजीका अपने मरनेके लिये अनेक उपाय करना परन्तु किसी उपाय से न मरनेके कारणसे अपने आश्रम को आना मार्ग में अपनी पुत्रवधूको गर्भ होनेका हाल जानकर मरनेसे निवृत्त होना राजा कल्माषपादको शापसे छुड़ाना और उसको एक पुत्र देना ॥

गन्धर्व बोला कि हे अर्जुन! वशिष्ठजी अपने आश्रममें पहुँचकर वहां अपने पुत्रोंको न देखकर बहुत दुःखी हुये और फिर अपना मरना विचारकर वहां से चलकर एक नदी के किनारे पहुँचे वह नदी उस समय बहुत चढ़ीहुई थी और अपनी लहरों से अपने तटस्थ वृक्षों को उखाड़ उखाड़ कर बहाये लिये जातीथी वशिष्ठजी उसके प्रवाहको देखकर अपने सब अंगोंको रस्सियों से कस-कर डूबनेको उसमें गिरपड़े परन्तु उस नदीने मुनीश्वरके सब बन्धन खोलडाले और उनको सूखे स्थान में बहाकर फेंक दिया वशिष्ठजी वहां से उतरआये और पाशों को खोलने के कारण से उस नदीका नाम विपाशा रक्खा वहां से वशिष्ठजी अनेक पहाड़ नदी और तालावोंपर घूमतेहुये हैमवती नदी के किनारे पहुँचे जहां बड़े २ ग्राह रहते थे वशिष्ठजी उसमें मरनेको गिरपड़े परन्तु वह नदी उनको अग्नितुल्य ब्राह्मण विचारकर शतधा होकर बहने लगी इसी कारण से उस नदी का नाम शतद्रू विख्यात हुआ वशिष्ठजी अपने को उस नदी में भी स्थल में खड़ा हुआ देखकर दुःखी हुये और यह कहकर कि मैं मरनेको भी समर्थ नहीं हूं अपने आश्रम को लौट आये १। १० राहमें जिस समय वशिष्ठजी अनेक देश और पहाड़ोंपर घूमतेहुये अपने आश्रम के निकट पहुँचे उनके बड़े पुत्र शक्तिकी अदृश्यन्ती नाम स्त्री मिली वह उनके पीछे २ होली वशिष्ठजी ने पूछा कि मेरे पीछे कौन आता है वह बोली कि महाराज मैं अदृश्यन्ती नाम आपके शक्तिनाम बड़े पुत्रकी वधूहूं यह सुनकर वशिष्ठजी बोले कि हे पुत्री! यह वेदका अंगोंसहित पाठ कौन करता है ऐसा पाठ तो हमारा शक्तिनामी पुत्रही करता था अदृश्यन्ती बोली कि महाराज यह शक्ति का गर्भ है उसको पाठ करते हुये मेरी कोख में बारह वर्ष होचुके हैं वशिष्ठजी यह सुनकर प्रसन्न हुये और यह जानकर कि हमारे अभी संतान है अपने मरने से चित्त से निवृत्त हुये वहां से आगे चले थोड़ी दूर पर उनको विजन वनमें कल्माषपाद नाम राक्षस बैठाहुआ मिला वह वशिष्ठजी को पुत्रवधू के साथ आतेहुये देखकर क्रोधकरके उनको खाने को दौड़ा उसको देखकर अदृश्यन्ती

अत्यन्त भयभीत होगई और वशिष्ठजी से बोली कि महाराज देखिये यह मृत्यु के समान भयानक राक्षस दंडा उठाये हुये हम दोनों को भक्षण करने की इच्छा से चला आता है इससे मेरी रक्षा कीजिये आपके सिवाय इससे और कौन मुझे बचा सक्ता है आप सब वेद जाननेवालों में श्रेष्ठ हैं ११। २१ यह सुनकर वशिष्ठजी बोले कि हे पुत्री ! तू डरे मत यह राक्षस नहीं है यह राजा कल्माषपाद है शापके कारण से भयंकर स्वरूप किये हुये इस वनमें रहता है इसके पीछे जब वह राक्षस वशिष्ठजीके निकट पहुँचा तब वशिष्ठजी ने हुंकार से उस राक्षस को रोक दिया और उसपर मंत्रयुक्त जल छिड़ककर उसको शाप से छुटा दिया वह राजा इस प्रकार से वशिष्ठजी की कृपा से बारह वर्ष पीछे उस शाप से छूटकर शरीर में से राक्षस के चलेजाने के कारण ज्ञानयुक्त होगया और वशिष्ठजी के सन्मुख अपने दोनों हाथों को जोड़कर खड़ा होकर बोला कि महाराज मैं आपका यजमान और सुदास का पुत्र हूं जो कुछ मेरे लिये आज्ञा हो सो मैं करूं वशिष्ठजी बोले कि जो इस समय ऐसा ही होनहार था अपने राज्यका प्रबन्ध कर और ब्राह्मण का अपमान कभी मत करियो यह सुनकर वह राजा बोला कि बहुत अच्छा महाराज जैसा आप कहते हैं वैसाही करूंगा अब से ब्राह्मणों का अपमान तो क्या नित्य ब्राह्मणों की पूजा किया करूंगा परन्तु महाराज मैं इक्ष्वाकुवंश से आपके द्वारा अऋणी होना चाहता हूं इससे आप मुझको मेरे वंशका बढ़ानेवाला एक पुत्र दीजिये गंधर्व बोला हे अर्जुन ! वशिष्ठजी यह सुनकर बोले कि अच्छा मैं तुझे पुत्र दूंगा और समय के आने पर उसके साथ २ अयोध्यापुरी को चले गये २२। ३५ अयोध्यावासी लोग उस राजा का आना बहुत दिनों पीछे जानकर उसकी आगौनी को आये और उसे वशिष्ठ पुरोहित सहित आया हुआ जानकर बहुत प्रसन्न हुये उस राजा के अयोध्यापुरी जानेपर वह पुरी ऐसी शोभायमान होगई जैसे शरदृऋतु में चन्द्रमा के उदय होने से आकाश सुशोभित होजाता है और उसमें तुष्ट पुष्ट मनुष्य बसने लगे और नगर में सब मार्गोंपर जल छिड़क जानेके कारण से और पताका ध्वजाओं के लगाने से अत्यन्त शोभा होगई राजा प्रसन्न हुआ इसके पीछे राजा की रानी राजाकी आज्ञा से वशिष्ठजी के पास गई वशिष्ठजी ने उसके साथ विधि के अनुसार संग किया और जब उसके गर्भ रहगया तब वहां से वशिष्ठजी राजा से आदरपूर्वक बिदा होकर अपने घरको आये जब

रानी को गर्भधारण किये हुये बारह वर्ष होगये और उसके पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ तब रानी ने अपनी कोख पत्थर से लेकर कूटी और कूटने से उसके पुत्र उत्पन्न हुआ राजाने उसका नाम अश्मक रक्खा और उसने पौदन्य नाम पुर बसाया ३६। ४६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकसप्तसप्ततितमोऽध्यायः १७७॥

एकसौअठत्तर का अध्याय।

वशिष्ठजी के पौत्र उत्पन्न होना और बड़ा होनेपर अपने पिताका मरण राक्षस से सुनकर क्रोधसे सम्पूर्ण लोकों के नाश करनेकी इच्छा करना और वशिष्ठजी का उससे भार्गवों के नाश होनेका एक इतिहास कहना॥

गन्धर्व बोला हे अर्जुन! वशिष्ठजी के आश्रम आने पर उनकी पुत्रवधू अदृश्यन्ती के अपने बाप के समान पुत्र हुआ वशिष्ठजी ने उस अपने पौत्र के जातकर्म आदि संस्कार किये और उसका नाम पराशर इस कारण से रक्खा कि उसके गर्भ में होनेका हाल सुनकर वशिष्ठजी अपने प्राण त्याग करने की इच्छा से निवृत्त हुये थे वह बालक वशिष्ठजी ही को अपना पिता समझता था और सब बर्ताव पिता के समान करता था एक समय उसने अपनी अदृश्यन्ती माता के सामने वशिष्ठजी को पिता कहकर पुकारा उसकी मीठी बोली को सुनकर अदृश्यन्ती आखों में आंसू भरलाई और उससे बोली कि बेटा तेरे पिता को तो राक्षसने वनमें खालिया वशिष्ठजी तो तेरे पितामह अर्थात् बाबा हैं तू इनको तात कहके मत पुकाराकर यह सुनकर पराशर को बड़ा क्रोध हुआ और उसने सम्पूर्ण लोकको नाश करना विचारा वशिष्ठजी जो ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ थे उसके अभिप्राय को जान गये और उसे उस उक्त उपद्रव करने से निवृत्त करने के लिये बोले कि सुन कृतवीर्य नाम एक बड़ा श्रेष्ठ राजाथा उसके पुरोहित भार्गव लोग थे उस राजा ने उस भार्गवों से सोमयज्ञ कराये और उन को बहुत धन देकर तृप्त किया फिर वह राजा मरकर स्वर्गवासी हुआ और उस की गद्दीवाले पिछले राजाओं को किसी समय धनकी आवश्यकता हुई उस समय वह राजालोग यह जानकर कि भार्गवों के पास बड़ी द्रव्य है उनके पास धन मांगने को गये बहुत से भार्गवों ने तो उन राजाओं को धन दे दिया और बहुतों ने उनके भयसे पृथ्वी में गाड़ दिया और किसीने ब्राह्मणों को दान करादिया इसके पीछे किसी राजाने पृथ्वी खुदवाई और एक भार्गवके घर में

पृथ्वी खुदवानेपर बहुतसा धन मिला उसको देखकर सब राजाओंने भार्गवोंपर बड़ा क्रोध किया और शरणागत होनेपर भी उन सबको बाणों से मारडाला और पृथ्वीपर घूम २ कर यहां तक किया कि भार्गव का गर्भतक न रहने दिया १। १६ ऐसा होनेपर भार्गवकुलकी स्त्रियां हिमाचल पर्वत पर चली गईं उनमें एक स्त्री वामोरु नाम थी उसने अपने पतिके कुलकी रक्षा करने के लिये क्षत्रियों के भयसे अपने गर्भ को बाईं जांघ में रक्खा था वह गर्भ बड़ा तेजस्वी था इसके पीछे किसी ब्राह्मणी ने भय से क्षत्रियों के पास जाकर कहदिया कि अमुक ब्राह्मणी को गर्भ है क्षत्री यह सुनकर उस गर्भ को भी नाश करने को वहां गये और उस ब्राह्मणी के तेज को देखा उस समय वह तेजस्वी गर्भ जांघको फाड़कर दोपहर के सूर्य के समान चमकता हुआ बाहर निकल आया उसके तेज के चकाचौंध से उन सब क्षत्रियों की दृष्टि जाती रही और वे अन्धे होजाने के कारण से पहाड़ों में इधर उधर टकराते हुये फिर दृष्टि मिलने के लिये उस ब्राह्मणी की शरण गये और उससे दुःखी और विनीत होकर बोले कि हे माता! जो तू कृपा करे तो हम सब अधर्मी घरको चले जावें हम सब अपराधी अब तेरी शरणागत हैं तू पुत्रसहित हम सब पर कृपा कर और हमको दृष्टि देकर हमारी रक्षा कर २०। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकअष्टसप्ततितमोऽध्यायः १७८॥

एकसौउन्नासी का अध्याय।

भार्गवों के वंश में एक बड़े तेजस्वी पुत्रका उत्पन्न होना उसका तपस्या करके सब लोकों को नाश करने की इच्छा करना और पितृलोक से उसके पितरों का आकर उसको समझाना॥

उन राजाओं की बिनती को सुनकर वह ब्राह्मणी बोली कि मैं तुम लोगों से प्रसन्न हूं परन्तु यह घोंटू से उत्पन्न हुआ मेरा पुत्र तुमसे अप्रसन्न है इसने ही अपने बांधवों को तुम्हारे हाथों से मारेगये जानकर तुमको क्रोधसे अन्धा कर दिया है जब तुम लोग सब भार्गवों को मारकर गर्भ का भी नाश करने लगे तब मैंने इसको अपने ऊरुमें रखकर सौ वर्ष तक इसकी रक्षा की गर्भ में ही इसको संपूर्ण वेद प्राप्त होगये अब यह प्रकट दीखता है यह बालक तुम सबको अपने पुरखों का बदला लेने के लिये अवश्य मारेगा और इसी से इसने तुम सबको अन्धा करदिया है इससे जो तुम अपना कल्याण चाहो तो इसकी स्तुति करो

यही तुम्हारी दृष्टि देसक्ता है १ । ६ यह सुनकर वह सब राजा लोग हाथ जोड़ २ कर उसके सन्मुख खड़े होगये और बोले कि महाराज हम दीनों पर कृपा कीजिये यह सुनकर उसने उनपर कृपा की और वह सब फिर नेत्र पाकर अपने २ घरों को चले गये उस बालक का नाम इस संसार में ऊरुसे उत्पन्न होने के कारण से और्व विख्यात हुआ उसने अपने कुटुम्बियों के नाश होने का वृत्तान्त जानकर बदला लेने को बड़ी उग्र तपस्या की और संपूर्ण लोकों को नाश करना चाहा उसकी तपस्या से देवता असुर और मनुष्यों सहित संपूर्ण लोक तृप्त होगये तब उसके मनकी वृत्तिको जानकर उसके पितर पितृलोक से आये और उससे कहने लगे कि हे पुत्र! तेरे तपके प्रभाव को सब जानते हैं अब तू अपने क्रोधको शान्त कर और लोकों पर कृपा कर हम सब बड़ी आयु होने के कारण संसार में रहतेरहते दुःखी होगये थे और अपने आप अपना नाश क्षत्रियों के हाथ से चाहते थे और जो धन हमारे मकानों में खोदने से निकला था वह हमने आपही क्षत्रियों से वैर करने के लिये गाड़ दिया था हमको धनकी कुछ इच्छा न थी हमारे धनाध्यक्षोंनेही वह धन लेलिया हमको तो स्वर्ग की चाहना थी हमने यह उपाय इसलिये किया था कि हमको अपने आप मरने का कोई उपाय नहीं दीखता था जो मनुष्य आत्महत्या करता है उसकी सद्गति नहीं होती इससे हमने आपको अपने हाथ से नहीं मारा हे पुत्र! तैंने जो विचार किया है वह हमारा प्रिय नहीं है इससे तू उस पाप के करने से अपने मन को रोक और लोक और क्षत्रियों को न मारकर तप और तेज़ में दोष लगानेवाले क्रोध को छोड़दे ७ । २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकनवसप्ततितमोऽध्यायः १७९ ॥

एकसौअस्सी का अध्याय।

और्वका पितरों के समझाने पर लोकों को नाश करने की इच्छा से निवृत्त होना और अधर्म समझकर प्रतिज्ञा रहने का उपाय पूछना पितरों का उसको उपाय बताकर उसके क्रोध को शान्त करना और वशिष्ठजी का पराशर को इसी दृष्टांतपर लोकों को न नाश करने का उपदेश करना ॥

पितरों के पूर्वोक्त उपदेश को सुनकर और्व बोला कि मैंने क्रोध करके जो प्रतिज्ञा लोकों के नाश करने की की थी वह कैसे पूरी होगी मैं अपनी प्रतिज्ञा झूंठ नहीं करसक्ताहूं ऐसा करने से क्रोध मेरे अंगको इस प्रकार से भस्म करदेगा

जैसे अग्नि काष्ठको करदेती है जो मनुष्य कारण सहित क्रोधको क्षमा करता है वह अर्थ धर्म और कामकी रक्षा नहीं करसक्ता है राजाओं का धर्म तो नीचों को दण्ड देना और श्रेष्ठों की रक्षा करना है इन नीच क्षत्रियों ने भार्गवों का यहां तक नाश किया कि गर्भतक न छोड़ा में भी जब माता की जंघा में गर्भ में वास कर रहा था उस समय वह नीच क्षत्री मेरे मारने को भी आये और मैंने उस समय माताओं के रोने और पुकारने का शब्द सुनकर क्रोध करके यह प्रतिज्ञा की थी कि क्षत्रियों ने सम्पूर्ण भार्गवों के गर्भ गिरा २ दिये और उस भयसे संसार में उनको किसी ने नहीं बचाया तब मेरी माताने मुझको जांघमें रखलिया जब तक कोई संसार में पापका निषेध करनेवाला नहीं होता है तब तक संसारमें सब मनुष्य पापकर्म करते हैं और जब पापकर्म का निषेध करनेवाला होता है तब कोई पाप नहीं करताहै जो मनुष्य समर्थ होने पर पापी को दण्ड नहीं देता है वह भी पापका भागी होता है मेरे कुटुम्बियों की समर्थ राजा और ईश्वरोंने भी रक्षा नहीं की इससे मैं सब लोकों पर क्रुद्धहूं और आपलोगों के वचनका यथावत पालन नहीं करसक्ताहूं ११।१३ क्योंकि मैं इन सबको दंड देनेकी सामर्थ्य रखताहूं जो मैं इनको दण्ड न दूं तो मैंभी पापका भागीहूंगा और मेरे क्रोध की अग्नि जो सब लोकों को जलाने के लिये प्रज्वलित होरही है रोकने पर मुझकोही जला देगी मैं जानताहूं कि आप सब लोग इन लोकों का हित चाहते हैं परंतु अब ऐसा विधान कहिये जिससे मेरा और लोकों का दोनों का कल्याण होवे यह सुनकर पितृ बोले कि तेरा कल्याण होगा तू अपने क्रोधकी अग्नि को जो सब लोकोंको जलाना चाहती है जलमें छोड़दे क्योंकि सब लोक जलमय कहे हैं ऐसा करनेसे तेरी प्रतिज्ञा भी रहजायगी और संसार का नाश न होगा १४।२० यह सुनकर और्वने अपने क्रोधकी अग्निको समुद्रमें छोड़दिया वह अग्नि बड़वामुख होकर समुद्रके जल को सोखने लगी इस बात को वेदके जाननेवाले जानते हैं इससे हे पराशर! तू भी लोकोंके नाश करनेकी इच्छा मत करे परलोकसंबंधी काम कर २१ । २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकाशीतितमोऽध्यायः १८० ॥

एकसौइक्यासीका अध्याय।

पराशर ऋषिका सब राक्षसों को भस्म करने के लिये यज्ञ करना और पुलस्त्य आदि ऋषियों का वहां आकर उस यज्ञको बंद कराना ॥

गंधर्व बोला हे अर्जुन! वशिष्ठजी के उक्त रीति से समझाने पर पराशर ऋषिने अपने मनको लोकों के नाश करने की इच्छा से रोकलिया और अपने पिता शक्तिका मरण याद करके राक्षसोंका मारने वाला यज्ञ करना प्रारंभ किया और बालक बूढ़े सब राक्षसोंको जलाने लगा वशिष्ठजी ने उसको उस यज्ञके करने से इस कारण से निषेध नहीं किया कि न जाने वह माने कि न माने उस यज्ञकी तीन अग्नियोंके बीच में पराशर ऋषि बैठे हुये ऐसे मालूम होते थे जैसे चौथी अग्नि भी मानो वहां जलरही है उस यज्ञसे आकाश ऐसा प्रकाशमान होगया जैसे बादलों के हटजाने से सूर्य प्रकाशित होजाताहै १। ६ उस समय वशिष्ठ आदि ऋषियों ने पराशरके तेजको देखकर उसको दूसरे सूर्यके समान समझा इसके अनन्तर राक्षसों के वंशकी रक्षा और उस यज्ञको समाप्त करने की इच्छा से पराशरके पास अत्रि, पुलस्त्य, क्रतु और महाक्रतु आदि ऋषि आये और पराशरसे बोले कि हे पुत्र! क्या तेरा यह यज्ञ निर्विघ्न है तू नहीं जानता है कि मैं अदोष राक्षसों को मार रहाहूं इसका पाप कौन भोगेगा तुझे हमारी प्रजाका नाश करना उचित नहीं है तपस्वी ब्राह्मणों का अंतःकरण को वशमें करनाही बड़ा धर्म है इससे तुझको ऐसा न करना चाहिये तू श्रेष्ठ ऋषि होकर अधर्म करता है क्या तू अपने धर्मज्ञ पिता को उल्लंघन किया चाहताहै तुझे हमारी प्रजाका नाश करना उचित नहीं है शक्तिको किसी और राक्षसने नहीं मारा वह राजा शक्तिकेही शापसे राक्षस हुआ था इससे शक्ति अपनेही दोष से स्वर्ग को गयाहै ७। १५ और शक्ति बड़ा महात्मा था उसे किसी राक्षसकी क्या सामर्थ्य थी जो खाजाता उसने तो अपनी मृत्यु अपनेही से देखकर ऐसा किया था विश्वामित्र भी उसमें केवल निमित्तमात्र हैं और राजा कल्माषपाद तो मरकर स्वर्गही को चलागया और शक्तिके सब छोटेभाई भी स्वर्ग में देवताओं के साथ आनन्द कररहे हैं इससे अब तू अपने इस यज्ञ को बंद करदे वशिष्ठजी इस सब पूर्वोक्त वृत्तांतको जानतेहैं १६। २० गंधर्व बोला हे अर्जुन! पुलस्त्यजी और वशिष्ठजी के उक्तप्रकार से कहने पर पराशर ने अपना यज्ञ बंद करदिया और जो अग्नि सब राक्षसों को भस्म करने के निमित्त

स्थापन कीगई थी उसको हिमालय के पार्श्वके वनोंमें फिकवा दी वह अग्नि अबतक उस वनमें पत्थर वृक्ष और राक्षसोंको भक्षण करती हुई पर्व पर्व पर दिखाई दिया करती है २१।२३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकैकाशीतितमोऽध्यायः १८१॥

एकसौबयासी का अध्याय।

गंधर्वका अर्जुन से राजा कल्माषपाद का अपनी स्त्रीको संतान के लिये वशिष्ठजी के पास भेजने का कारण कहना॥

उक्त कथाको सुनकर अर्जुन ने गंधर्व से पूछा कि हे मित्र! राजा कल्माषपादने अपनी स्त्रीको ब्रह्मज्ञानी मुनि वशिष्ठजी के साथ क्यों युक्त किया और वशिष्ठजीभी उस अगम्या स्त्री के पास क्योंकर गये वशिष्ठजी ने अधर्मी और अनउपकारियों के भी साथमें उपकार किया यह सुनकर गंधर्व बोला कि हम राजाको शक्तिके शाप देनेकी कथा तो कहही चुके हैं शाप होने पर राजा कल्माषपाद व्याकुल होकर अपनी रानी सहित नगर से निकल गया और एक निर्जन वन में जहां नाना प्रकार के वृक्ष लता और पुष्प लगे हुये थे और अनेक २ प्रकार के मृग और जीव विहार किया करतेथे पहुँचा एक दिन भूँख और प्यासके कारण से वह अपने भोजन को कुछ ढूंढ़ रहाथा कि उसी अवसरमें उसने एक ब्राह्मण और ब्राह्मणी को विषय करते हुये उस वनमें देखा वे दोनों उसको देखकर भागे परन्तु राजाने दौड़कर ब्राह्मण को बलसे पकड़ लिया उसको पकड़ा हुआ देखकर उस ब्राह्मणी ने कहा कि हे राजन्! यद्यपि तू शापके वश होरहा है तो भी तू सूर्यवंशी धर्मात्मा सावधान और गुरुओं की सेवा करनेवाला है तुंझसे राजा को अधर्म करना उचित नहीं है यह मेरा पति है और मैं ऋतुस्नान से निवृत्त होकर इसके पास संतान की इच्छा से आईहूं तू इसे छोड़दे राजाने कुछ न सुना और उस ब्राह्मण को मारकर भक्षण करगया यह देखकर उस ब्राह्मणी की आंखोंसे आंसू गिरे और वह गिरतेही जलती हुई अग्नि होगये और उस ब्राह्मणीने क्रोध करके राजाको शाप दिया कि तूने मेरे प्यारे पति को मेरी विना कामना सिद्ध हुये मारकर खालिया है इससे तूभी जब अपनी स्त्री के पास जायगा तब मरजायगा और जिस वशिष्ठ ऋषिके तैंने पुत्र मारकर खाये हैं उसी से जब तेरी स्त्री मैथुन करावेगी तब तेरे पुत्र होंगे और हे नीच राजा! उसीसे तेरा वंश चलेगा अन्यथा न होगा यह

कह वह ब्राह्मणी उस जलती हुई अग्निमें बैठकर भस्म होगई १ । २२ वशिष्ठ जीने इस सब हालको अपनी दिव्यदृष्टि से जान लियाथा और राजाने अपनी स्त्री के पास ऋतुस्नानके पीछे जानेपर स्त्रीके स्मरण दिवानेपर उस शापको याद करके और दुःखी होकर अपनी स्त्रीको वशिष्ठजीके पास संतान उत्पन्न होनेके निमित्त भेजाथा २३ । २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकद्व्यशीतितमोऽध्यायः १८२ ॥

एकसौतिरासी का अध्याय ।

पांडवों का गंधर्व से विदा होकर द्रौपदीके स्वयंवर को जाना और गंधर्वके उपदेशसे राहमें धौम्य ऋषिको अपना पुरोहित करना ॥

उक्त कथा को सुनकर अर्जुनने गंधर्वसे कहा कि तुम सर्वज्ञहो कोई योग्य ब्राह्मण हमको बतावो जिसे हम अपना पुरोहित करें यह सुनकर गंधर्व बोला कि उत्कोचक तीर्थपर धौम्यनाम देवलका छोटा भाई तप कररहाहै जो तुम अपना पुरोहित किया चाहतेहो तो उसीको अपना पुरोहित करो वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे अर्जुनने उस गंधर्व को विधिपूर्वक आग्नेय अस्त्र देदिया और उससे कहा कि उन घोड़ोंको अभी तुम अपने पासही रहनेदो जब हमें काम पड़ेगा तब लेलेंगे इस प्रकारसे वे दोनों एक दूसरे से आदरपूर्वक बिदा होकर वहांसे अपनी राहपर चलदिये पांडवों ने उत्कोचक तीर्थपर पहुँचकर धौम्यसे अपना पुरोहित होने के निमित्त कहा धौम्यऋषि उनका फल फूलादि देकर आदर सत्कार कर उनकी पुरोहिताई अंगीकार करके उनके साथ आगे आगे हो लिये उनको आगे चलते देखकर पांडवों को स्वयंवर में द्रौपदी मिलनेका विश्वास होगया और अपने को सनाथ समझा और धौम्यऋषिने भी उनको अपना यजमान करके समझा कि पाण्डवों को राज्य प्राप्तही हुआ वहां से सबों ने एकही साथ द्रौपदीके स्वयंवरमें जानेका विचार किया १ । १२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकत्र्यशीतितमोऽध्यायः १८३ ॥

एकसौचौरासी का अध्याय ।

पांडवोंको राहमें बहुतसे ब्राह्मण मिलना और उनका पांडवोंसे द्रौपदीका स्वयंवर देखनेको साथ चलनेको कहना और पांडवोंका साथ चलना अंगीकार करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पांडव मातासहित वहांसे थोड़ी ही दूरपर पहुँचे थे कि उनको बहुतसे ब्राह्मण राहमें इकट्ठे मिले उन ब्राह्मणों

ने पूछा कि आपका आना कहां से हुआहै और अब आप कहांको जायंगे युधिष्ठिरने उत्तर दिया कि हम पांचो सगे भाई हैं माता सहित एकचक्रापुरी नगरसे आरहेहैं यह सुनकर वे ब्राह्मण बोले कि अब तुम सब राजा द्रुपद की राजधानीको चलो हमसबभी वहींको जातेहैं वहां बड़ा स्वयंवरका उत्सव होने वालाहै यह स्वयंवर उस द्रौपदीकाहै जो द्रोणाचार्य के शत्रु धृष्टद्युम्न जो अग्नि से खड्ग कवच धनुष और बाण लिये हुये उत्पन्न हुआथा और अग्निके समान तेजस्वी है उसकी बहिनहै उसकी सुन्दरता हम कहांतक कहें वह दर्शनयोग्य अदोष अंग और सुकुमारी है और उसके अंगमें एक कोससे नीले कमलोंकी सी गन्ध आती है उस स्वयंवरमें अनेक२ देशोंके यज्ञ करनेवाले बड़ी दक्षिणा बांटनेवाले वेदपाठी महात्मा पवित्रव्रती तरुण दर्शनीय महारथी और अस्त्र-वेत्ता राजपुत्र आवेंगे और ब्राह्मणोंको नानाप्रकारके धन, गौ और भक्ष्य, भोज्य देंगे हम सब उन सब पदार्थों को लेकर और स्वयंवर के आनन्दको देखकर फिर जहांकी इच्छा होगी तहांको जायँगे १ । १५ इन सबके सिवाय उस स्वयं-वरमें नट वैतालिक अर्थात् मंगलपाठ करनेवाले नर्तक सूत मागध अर्थात् वंशावली कहनेवाले और बड़े २ मल्ल जुड़ेंगे इससे तुम सब भी हमारे साथ चलो उस आनन्दको देखकर और दान लेकर फिर हमारेही साथ लौटआना और तुम सबके देवताओंकेसे स्वरूपहैं कदाचित् द्रौपदी दैवयोगसे तुम हीं को वरे यह तुम्हारा छोटा भाई सबसे श्रीमान्‌है कदाचित् तुम्हारी आज्ञासे उस बड़ी लक्ष्मी को यही जीते तो कुछ आश्चर्य नहीं है यह सुनकर युधिष्ठिर बोला कि बहुत श्रेष्ठ महाराज हम सब आपलोगों के साथ उस कन्या का स्वयंवर देखने को चलतेहैं १६ । २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकचतुरशीतितमोऽध्यायः १८४ ॥

एकसौपचासी का अध्याय ।

पांडवोंका द्रुपदके नगरमें पहुँचकर स्वयंवरमें जाना और ब्राह्मणोंके बीचमें बैठजाना और वहां देश २ के राजाओंका आना और धृष्टद्युम्नका सब राजाओंको प्रणाम करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! वे पांडव वहां से ब्राह्मणके साथ हो लिये और दक्षिण पांचालदेशकी ओर जो द्रुपदसे रक्षित था चले थोड़ी दूर चलने पर उन्होंने व्यासजी महाराज को उन ब्राह्मणों के बीचमें देखा उनको देखकर सब पांडवों ने उनकी विधिवत् पूजा की और उनसे सत्कार

पाकर उनकी आज्ञा के अनुसार वहां से धीरे २ वन उपवन और तालाब आदि की शोभा देखते हुये द्रुपदके नगरमें पहुँचे और वहां सेनाके रहने के स्थानोंको देखतेहुये नगरके भीतर जाकर एक कुम्हारके घरमें डेरा किया १।६ वहां पर पांडवें ब्राह्मणवृत्तिसे भिक्षा मांगकर रहनेलगे और उनके आनेका हाल किसी ने नहीं जाना ७ राजा द्रुपदकी यह इच्छाथी कि मैं द्रौपदीको अर्जुन को दूं परन्तु उसको न जानने के कारणसे उसे ढूंढ़नेको यह यत्न किया कि एक धनुष ऐसा कठोर बनवाया कि वह कदापि न बनही सक्ता था और अन्तरिक्ष में एक भ्रामक यंत्र रखवाकर उसमें एक छिद्र करादिया और लक्ष्य अर्थात् निशाना उस छिद्रमें होकर रक्खा और यह विचार किया कि सिवाय अर्जुन के दूसरा मनुष्य इस काम को न करसकेगा इसके पीछे राजा द्रुपदने सबसे कह सुनाया कि इस धनुषको चढ़ाकर जो कोई इस यन्त्र के छिद्रमें होकर लक्ष्यभेदन करेगा उसको यह द्रौपदी वरेगी इस बातको सुनकर बड़े २ महात्मा देश देश के राजा ब्राह्मण और कर्ण और दुर्योधन सहित कौरव वहां स्वयंवर में आये और द्रुपदसे सब पूजित होकर ऊंचे २ मंचोंपर बैठ गये ८। १५ सब पुरवासी भी वहां उमंगके साथ चले आये वह स्वयंवर का स्थान नगर के ईशानकोण में बनाया गया था उसके चारों ओर परकोटा और खाई बनवा-दीगई थी द्वारपर सुंदर बन्दनवार बँधीहुई थी और चित्र विचित्र चंदोये तनवा दिये थे अनेक प्रकारके वहां बाजे बजरहे थे चारोंओर चन्दनके जल से छिड़-काव होरहा था और अगरु की सुगन्ध महकरही थी सब जगह फूलोंकी माला बँध रही थीं और चारों ओर बड़े २ कैलासपहाड़के शिखरकी तुल्य ऊंचे २ महल बन रहे थे उन महलों में मणि जड़ रही थीं और सुनहले जाल कढ़ रहे थे उनपर चढ़नेको सुन्दर २ सीढ़ियां बनीहुई थीं और आसन आदि अनेक प्रकार के बैठने की चीजें रखवादी थीं और सुंदर उजले २ वस्त्र वहांपर रक्खे हुये थे और अगरु आदि की सुगंध से सब स्थान ऐसे महक रहे थे कि उनकी सुगंधि एक योजनतक जाती थी और उन महलों में हिमालय पहाड़ की तुल्य ऊंचे २ स्थानों में बहुत से दरवाजे बनरहे थे और उनमें सोने बैठने के सब सामान अनेक २ धातुओं से जटित रखवा दिये थे वहां सब राजा लोग आकर एक दूसरे से ईर्षा करतेहुये अनेक प्रकार के मंचोंपर बैठगये और पुरवासी भी द्रौपदी के दर्शनों की कांक्षा करते हुये उस स्वयंवर में यथायोग्य

स्थानोंपर बैठगये और पांडव भी वहां की उस सब शोभाको देखतेहुये ब्राह्मणों में आकर बैठगये उस सभामें १६ दिनतक नटआदि के अनेक प्रकार के तमाशे होतेरहे उपरान्त सब राजाओं के जुड़नेपर द्रौपदी को स्नान कराकर सुन्दर आभूषण और वस्त्रों से शृंगार करके उसके हाथों में सुवर्ण की माला देकर उस स्वयंवर में लाये और विधिपूर्वक कुशकंडिका सहित होम करके और ब्राह्मणों से स्वस्त्ययन सुनकर धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी को विधिपूर्वक साथमें लेलिया और सब बाजों को बन्द कराकर बादल की गरज के समान चिल्लाकर कहा कि तुम सब राजालोगों ने यहां कृपा की है देखो यह धनुष और बाण रक्खे हुये हैं और यह अंतरिक्ष में यंत्र है जो कोई इस यंत्र के छिद्रमें होकर इस धनुष को चढ़ाकर इन बाणों से लक्ष्य भेदन करेगा उसको निस्संदेह यह द्रौपदी विवाहेगी यह कहकर धृष्टद्युम्न ने द्रौपदी को सब राजाओं के गोत्र और नाम बताकर उससे कहा १६ । ३७ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकपञ्चाशीतितमोऽध्यायः १८५ ॥

एकसौछियासी का अध्याय।

धृष्टद्युम्नका द्रौपदी से सब राजाओं के नाम कहकर यह कहना कि जो इस लक्ष्य अर्थात् निशाने को मारे उसीको तू वरियो ॥

धृष्टद्युम्न बोले हे द्रौपदी ! देख दुर्योधन, दुर्विषह, दुर्मुख, दुःप्रधर्षण, विविंशति, विकर्ण, सह, दुश्शासन, युयुत्सु, वायुवेग, भीमवेग, उग्रायुध, बलाकी, करकाय, विरोचन, कुंडक, चित्रसेन, सुवर्चा, कनकध्वज, नंदक, बाहुशाली, तुहुण्ड, विकट और २ धृतराष्ट्रके पुत्र और कर्ण, राजा कंधारके पुत्र शकुनी, वृषक और बृहद्बल, अश्वत्थामा और भोज जो शस्त्रधारियों में श्रेष्ठहै, राजा बृहंत, मणिमान, दंडधार, सहदेव, जयत्सेन, मेघसंधि, शंख, राजा विराट् अपने उत्तर आदि पुत्रों सहित, वार्द्धक्षेम, सुशर्मा, सेनाबिंदु, सुनाम, सुवर्चस, सुकेतु, सुचित्र, सुकुमार, वृक, सत्यधृति, सूर्यध्वज, रोचमान, नील, चित्रायुध, अंशुमान, चेकितान, श्रेणिमान, समुद्रसेनका पुत्र चंद्रसेन, दोनों पुत्रों सहित राजा जलसंध, विदंड, दंड, पौण्ड्रक, वासुदेव, भगदत्त, कलिंग, ताम्रलिप्त, पत्तन, शल्य, रुक्मांगद, रुक्मरथ, सोमदत्त और उसका महारथीपुत्र, भूरि, भूरिश्रवा, शल, राजा कांबोज, दृढ़धन्वा, पौरव, बृहद्बल, सुषेण, राजा शिवि, कारूष का राजा पटच्चरनिहंता और बलदेव, वासुदेव, प्रद्युम्न, सांब, चारुदेष्ण,

गद, अक्रूर, सात्यकि, उद्धव, कृतवर्मा, पृथु, विपृथु, विदूरथ, कंकशंकु, गवेषण, आशावह, अनिरुद्ध, समीक, सारिमेजय, वीरवातपति, झिल्ली, पिंडारक, उशीनर, विक्रांत, ये सब वृष्णिवंशी राजा, भगीरथ, बृहत्क्षत्र, जयद्रथ, बृहद्रथ, वाह्लिक, श्रुतायु, उलूक, कैतव, चित्रांगद, शुभांगद, वत्सराज कोशला का राजा, शिशुपाल, जरासंध और २ बहुत से पराक्रमी राजालोग तुझे वरने के लिये आये हैं इनमें से जो इस लक्ष्यको भेदे अर्थात् इस निशाने को मारदे उसीको तू वरियो १ । २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकषडशीतितमोऽध्यायः १८६ ॥

एकसौसत्तासीका अध्याय।

सब राजाओंका क्रमपूर्वक उठकर लक्ष्यभेदनेको जाना और किसीसे धनुष न चढ़नेपर अर्जुनका लक्ष्य भेदने को उठना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! धृष्टद्युम्न के उक्त प्रण को सुनकर संपूर्ण राजपुत्र जो जवान और अस्त्रविद्या में निपुण थे और अपने बल रूप कुल धन और यौवनपर इस प्रकार से मतवाले होरहे थे जैसे वन में हाथी होता है एक दूसरे से ईर्षा करते हुये और द्रौपदी के स्वरूप को देखकर कामासक्त होने के कारण से उसको जीतना चाहते हुये उठ खड़े हुये उस समय जो राजा आपस में मित्र थे वे भी द्रौपदी के कारण से आपस में द्रोह करनेलगे राजाओंके उठने पर आकाश में ग्यारह रुद्र, बारहों सूर्य, आठ वसु, दोनों अश्विनीकुमार, सब साध्य ४९ मरुत, सब यम, कुबेर, दैत्यसुपर्ण, महाउरग, देवऋषि, गुह्यक, चारण, विश्वावसु, गंधर्व, नारद, पर्वत आदि सब देवताओं के गण विमानों में बैठ २ कर अकस्मात् आगये और स्वयंवर देखने लगे उस समय बलदेवजी और श्रीकृष्ण आदि वृष्णि और अंधकवंश के मुख्य २ लोग श्रीकृष्णजी के मतके अनुसार बैठे २ देखा किये उठे नहीं श्रीकृष्णजी ने पाण्डवों को पहिंचानकर धीरे से बलदेवजी को दिखा दिया परन्तु और किसी राजा ने उनको नहीं पहिंचाना १ । ११ द्रौपदी के स्वरूप को देखकर सब पांडवभी कामदेवके बाणों से अभिहत होगये और सब राजा कामासक्त होकर सबके हृदयमें एक द्रौपदी बसगई उस समय चारों ओर आनन्द फैलगया दुन्दुभी बजनेलगी देवता प्रसन्न हो होकर आकाशसे फूलोंकी वर्षा करने लगे और अपने विमानों को एक स्थानसे दूसरे स्थानपर लेजानेलगे और वेणु

वीणा और ढोल बजानेलगे उस समय दुर्योधन, शल्य, द्रोणाचार्य, निक्राथ, सुनीथ, वक्र, राजा कलिंग, राजा वंग, पांड्य, पौण्ड्र, विदेह, यमनोंका राजा आदि सब राजा क्रम २ से एक २ धनुषके पास जाकर चढ़ानेलगे परंतु किसीसे वह धनुष नहीं चढ़ा सबके सब मनसे हार २ कर लौटआये श्रम के कारण से किसी का हार टूटकर गिरपड़ा किसी की पगड़ी गिरगई और किसी का बाजूबंद खुलगया परंतु लक्ष्य भेदना तो दूर था किसीसे धनुषभी नहीं चढ़ा यह देखकर वे सब राजा हाहाकार करनेलगे और द्रौपदी पाने की सबकी आशा टूटगई उन सबको निवृत्त हुआ देखकर कर्ण धनुषके पास गया और धनुषको शीघ्र चढ़ालिया यह देखकर पांडव कहने लगे कि यह अवश्य लक्ष्य भेदेगा उस समय द्रौपदी ने चिल्लाकर कहा कि मैं सूतके साथ अपना विवाह नहीं करूंगी यह सुनकर कर्णने धनुष रखदिया और क्रोधमे हँसता हुआ सूर्यको देखकर चलाआया १२। २३ इसके पीछे राजा शिशुपाल जो बड़ा पराक्रमी और धीर वीर था धनुष के पास गया परंतु उसे उठाते में ही पृथ्वीपर गिरपड़ा उसके पीछे राजा जरासंध और शल्य क्रमसे लक्ष्य भेदने को उठे परंतु धनुष चढ़ाते में दोनों घोंटुओंके बलसे गिरपड़े इस प्रकार से जब सब राजा हारगये तब अर्जुन लक्ष्य भेदने को उस धनुषके पास उठकर आया २४। २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकसप्ताशीतितमोऽध्यायः १८७॥

एकसौअट्ठासीका अध्याय।

अर्जुनका लक्ष्य भेदनेको उठना देखकर सब ब्राह्मणोंका संकल्प विकल्प करना अर्जुनका लक्ष्य भेदना और द्रौपदी सहित स्वयंवर से निकलकर डेरे को चलना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जिस समय अर्जुन ब्राह्मणों की मंडली में से उठकर लक्ष्य भेदने को चला उस समय उसको वे सब ब्राह्मण देखकर कोई मलिनचित्त कोई प्रसन्न और कोई २ प्रवीणतासे आपस में कहने लगे कि जो काम शल्य और कर्ण आदि धनुर्वेद के परमवेत्ता क्षत्रियों से नहीं होसका वह अस्त्र न जाननेवाले दुर्बल और बालकमात्र ब्राह्मण से होना क्योंकर संभव है हमको ऐसा दीखता है कि यह अपनी चपलता से धनुष चढ़ाने जाता है यह काम इससे न होगा और ब्राह्मणों की हँसी होगी इससे इसको रोकना उचित है इसका जाना अच्छा नहीं है कोई ब्राह्मण उस समय बोला कि न हमारा हास्य होगा न क्षत्रियों से वैर न जाने यह ब्राह्मण-

वेष धरे हुये कौन है दूसरे ने कहा कि यह ब्राह्मण जवान और श्रीमान् है देखो इसकी बाहें हाथी की सूँड़के सदृशहैं जांघ कंधा और भुजा बड़ी पुष्ट है और धैर्य हिमाचल पहाड़कासा मालूम होताहै चाल इसकी सिंहके समान और पराक्रम मतवाले हाथीकासा है इससे यह काम होना असंभव नहीं है यह अपने उत्साह से लक्ष्य भेदने को जाताहै निश्चय यह लक्ष्य भेदेगा मनुष्य देवता और असुर आदिमें कोई ऐसा काम नहीं है जो ब्राह्मणों से साध्य न हो यद्यपि ब्राह्मण जल, वायु, फल खाने और दृढ़ व्रतों के करने से निर्बल होते हैं परंतु उनका तेज बड़ा बलवान् होता है देखो परशुरामजी ने क्षत्रियों का २१ बेर नाश किया और अगस्त्यजी संपूर्ण समुद्रको पीगये इससे निस्संदेह यह ब्राह्मण धनुषको चढ़ाकर लक्ष्य भेदन करेगा यह सुनकर और सब ब्राह्मण बोले कि ऐसाहीहो १।१५ वे ब्राह्मण तो यह बातें करही रहे थे कि अर्जुन उस धनुषके पास पहुँचा और उसे देखकर शिवजी और श्रीकृष्णको मनमें प्रणाम करके उस धनुष की प्रदक्षिणा करके उठालिया और उस इन्द्रकासा प्रभाव रखने वाले ने उसे एक पलमात्र में चढ़ाकर पांच बाणों से लक्ष्य भेदन करके लक्ष्यको यंत्रसे नीचे गिरा दिया अर्जुनने इस काम को जो रुक्म, सुनीथ, वक्र, कर्ण, दुर्योधन, शल्य और शाल्व आदि राजाओंसे बड़े यत्नसे भी नहीं हुआथा बड़ी सुगमतासे करडाला लक्ष्यके पृथ्वीपर गिरतेही आकाशमें बड़ा शब्द हुआ और उस सभाके राजा लोगोंने भी बड़ा रौरा मचाया अर्जुनपर आकाशसे फूलोंकी वर्षा हुई और सब ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर अपने अपने मृगचर्मों को विजय ध्वजा के तुल्य उठा लिया बहुत से मनुष्य प्रसन्न हो होकर अपने अंग बजाने लगे सूत और मागध लोग बड़े ऊंचे स्वरसे स्तुति पढ़नेलगे सब हारे हुये राजा लोग हाहाकार करनेलगे और द्रुपद बहुत प्रसन्न होकर अर्जुनकी सहायताके लिये सेनासहित उपस्थित होगया उस गुलगपाड़ेको सुनकर युधिष्ठिर नकुल और सहदेवको साथ लेकर डेरेकी ओर चल दिये उस समय द्रौपदीने अर्जुन को सुपेद फूलोंकी सुंदर जयमाल पहिना दी और अर्जुन द्रौपदी को लेकर ब्राह्मणों सहित वहांसे बाहर निकलकर डेरेकी ओर चला १६।२८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकअष्टाशीतितमोऽध्यायः १८८॥

एकसौनवासी का अध्याय।

सब राजाओंका द्रुपद के मारनेकी सलाह करना द्रुपदका ब्राह्मणों की शरण में जाना और अर्जुन और भीमका उन राजाओं से युद्ध करने को उपस्थित होना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वे सब राजालोग ब्राह्मणको कन्या दी हुई जानकर द्रुपदपर महा क्रोधित हुये और आपस में कहनेलगे देखो कि इस द्रुपदने हममेंसे किसीको अपने समान नहीं समझा जो हम सबको तृणवत् समझकर कन्या ब्राह्मणको ऐसे देदी जैसे कोई वृक्षको लगाकर फल लगने के समय उसको काटडाले उसी प्रकारसे इस द्रुपदने हम सबको बुलाकर हमारा अपमान कियाहै इससे यह राजा सम्मान करनेके योग्य नहींहै हम सब मिल कर इसको पुत्रसहित मारडालें इसने हम सबको बुलाकर हमारी कुछ भी कान न की क्या हममें से कोई द्रौपदीके योग्य नहीं है क्षत्रियोंके स्वयंवरमें ब्राह्मणों को कन्या वरनेका अधिकार नहीं है और जो यह कन्या हममेंसे किसीको वरना न चाहै तो इस को भी मारकर अग्नि में डाल चलो १। ८ यद्यपि इस ब्राह्मण ने हमारा बड़ा भारी अपराध और अपमान किया है परन्तु यह तो मारने के योग्य नहीं है क्योंकि हम सबके पास राज्य देह धन पुत्र पौत्र जो कुछ है सब ब्राह्मणोंही के लिये है परन्तु इस द्रुपदको अवश्य मारना उचितहै जिसमें फिर कोई राजा स्वयंवर करके ऐसा अपमान न करै ६। ११ यह कहकर सब राजा लोग अपने २ हथियार ले लेकर द्रुपदके मारनेको दौड़े द्रुपद उस समय भयभीत होकर भागकर ब्राह्मणों की शरण में पहुँचा उसको देखकर अर्जुन और भीमसेन उन सब राजाओं से युद्ध करनेको खड़े होगये और वे राजाभी उन दोनों के मारने को उनके सम्मुख आये १२। १५ उस समय महाबली और भयानक कर्म करनेवाले भीमसेन अपने दोनों हाथोंसे एक बड़े वृक्षको उखाड़ हाथी के सदृश उसके पत्ते नोचकर यमराज के दण्डकी समान हाथ में लेकर अर्जुन के पास खड़ा होगया अर्जुन भाई के उस काम को देखकर विस्मित हुआ और निर्भय होकर धनुष हाथमें लिये हुये खड़ा रहा १६। १८ उस समय श्रीकृष्णजी अर्जुन और भीमसेनको इस प्रकारसे देखकर बलदेवजी से कहने लगे कि देखो यह जो ताड़के वृक्ष की बराबर बड़े धनुष को हाथ में लिये हुये खींच रहा है निस्संदेह अर्जुन है और जिसने यह वृक्ष राजाओंके मारनेको उखाड़ लिया है वह भीमसेन है सिवाय उसके और की सामर्थ्य ऐसी नहीं है

और जो यह उजली लंबी नाकवाला जिसकी आंखें बड़ी २ शरीर लम्बा और सिंह कीसी चाल है वह युधिष्ठिर है और वह दोनों कुमार जिनकी सूरत एकसी और कार्त्तिकेयके समान सुन्दरहैं नकुल और सहदेव हैं मेरा यह अनुमान ठीक है मैंने कुंतीको पांचों पुत्रों सहित जलनेसे बचने का हाल सुना था यह सुनकर बलदेवजी बोले कि आज हमारा यह दुःख दूर हुआ हमारी फूफी पांचों पुत्रों सहित बचगई १६। २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकनवाऽशीतितमोऽध्यायः १८९॥

एकसौनब्बे का अध्याय।

पाण्डवोंका सब राजाओंको युद्धमें हराकर द्रौपदी सहित अपने स्थानपर आना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन के युद्ध करनेको खड़े होने पर सब ब्राह्मण अपने कमण्डलु और मृगचर्मों को हिलाते हुये बोले कि डरो मत हम इनसे युद्ध करेंगे यह सुनकर अर्जुन हँसकर बोला कि आप सब दूर खड़े होकर देखा कीजिये मैं इन सब क्रोध भरे राजाओंको अपने बाणोंसे मार कर इसप्रकार से अभी रोके देताहूं जैसे मंत्रके बलसे सर्प रुक जाते हैं यह कह कर अर्जुन पहाड़की तुल्य भीमसेनके साथ अचल खड़ा रहा इसके पीछे वह सब राजा क्रोध करके सहसा उन दोनों के ऊपर शस्त्र लिये हुये दौड़े और यह कहकर कि ये ब्राह्मण वध करने के योग्य हैं उनके पास आकर कर्ण अर्जुन से और शल्य भीमसेन से युद्ध करने लगे और और सब राजा मृदुताको लिये हुये उन ब्राह्मणों के सम्मुख जाकर लड़ने लगे १।६ अर्जुनने कर्णको सम्मुख आते देखकर बड़े तीक्ष्ण बाणों से उसे भेद डाला यह देखकर कर्ण मोहितसा होकर यत्न के साथ अर्जुन के सम्मुख गया और वे दोनों परस्पर क्रोध कर २ के बड़ी लाघवताके साथ लड़ने लगे और एक दूसरे को पुकार पुकारकर कहने लगे कि देख मेरी भुजा का बल देख अर्जुन के युद्धको देखकर कर्णने उस को जाना कि इसकी बराबर योद्धा नहीं है और ऐसा समझकर वह भी अच्छे प्रकार से युद्ध करने लगा अर्जुन उसकी प्रयोग सहित बाणवृष्टिको अपने बाणों से वारण करके गर्जने लगा उसकी गर्जनाको देखकर सब मनुष्य सेनावाले उसकी बड़ाई करने लगे और कर्ण भी उसको बड़ा भट जानकर बोला कि हे विप्र! मैं तुम्हारे इस युद्ध से बहुत प्रसन्न हुआ आप साक्षात् धनुर्वेद अथवा परशुराम या इन्द्र या विष्णु कौन हैं जो इस ब्राह्मण वेषमें अपने आपको

छिपायेहुयेहैं मेरे क्रोध करनेपर युद्धमें मेरे सम्मुख सिवाय इन्द्र और अर्जुनके और कोई नहीं ठहरसक्ता है यह सुनकर अर्जुन बोला कि हम इनमें से कोई नहीं हैं हम तो ब्राह्मणहैं गुरु से हमने ब्रह्म और पौरन्दर आदि अस्त्र पाये हैं इससे हम योद्धाओं में श्रेष्ठ और शस्त्रधारियों में उत्तम हैं तुमको जीतने के लिये युद्ध करना चाहते हैं तुम ठहरकर युद्ध करो वैशम्पायनजी बोले कि कर्ण यह सुनकर ब्राह्मण के तेज को अजेय जानकर हटगया और फिर युद्ध नहीं किया १०।२२ और उधर शल्य और भीमसेन का मल्लयुद्ध दो मत्त हाथियों की तरह होने लगा वे दोनों एक दूसरे को मारते पुकारते और अनेक प्रकारके दाँव पेच करते हुये लड़ने लगे कभी वह खेंच लेजाता कभी वह हटा देता कभी वह मुष्टिक मारता कभी वह लात मारता इस प्रकार से थोड़ी देर उन दोनों में युद्ध होता रहा उपरान्त भीमसेन ने शल्यको उठाकर देमारा और वह लज्जित होकर चला गया ब्राह्मण यह देखकर हँसने लगे इसके पीछे शल्य को भीमसेन से गिरा हुआ और कर्ण को अर्जुन से शङ्कित देखकर सब राजा भयभीत होगये और कहने लगे कि ये ब्राह्मण बहुत श्रेष्ठ हैं इनकी जन्मभूमि और रहने का स्थान पूछना चाहिये क्योंकि कर्ण से सिवाय परशुराम द्रोणाचार्य और अर्जुन के और कौन लड़सक्ता है २३।२२ और बलवान् राजा शल्य से भी सिवाय बलदेवजी और भीमसेन और दुर्योधन के दूसरे की सामर्थ्य लड़ने की नहीं है इससे अब इन ब्राह्मणों से युद्ध मत करो ब्राह्मण की रक्षा करना अपराध करने परभी उचित है और जो लड़नाही होगा तो फिर किसी समय लड़ेंगे पाण्डव उन सब राजाओं की बातोंको सुनकर चुपके खड़े रहे और श्रीकृष्णजी ने उन के युद्धकर्म को देखकर उनको निश्चय पाण्डव अनुमानकर सब राजाओं को यह कहकर युद्धसे निवृत्त कराया कि उन्हों ने द्रौपदी धर्म से जीती है राजा लोग कृष्णचन्द्र की इस बातको सुनकर युद्ध छोड़कर अपने अपने डेरों को चले गये और वहां जितने मनुष्य आये थे वहभी यह कहते हुये घरों को लौटगये कि द्रौपदी आज स्वयंवर में ब्राह्मणोंने बरी है और वे दोनों वीर पाण्डव अर्थात् अर्जुन और भीमसेन ब्राह्मणों से घिरे हुये द्रौपदी को साथ लिये हुये मनुष्यों की बाधा से निर्भय होकर इस प्रकार से चले जैसे पूनों के दिन बादलों के हट जाने पर सूर्य और चन्द्रमा चलते हुये दीख पड़ते हैं और वहां कुन्ती पाण्डवों को देरके गये हुये समझकर और भिक्षा का समय

भी व्यतीत होना जानकर पुत्रस्नेह से नाना प्रकार की चिन्ता करने लगी कभी कहती थी कहीं दुर्योधन तो उनको नहीं जानगया उसने उनको मरवा डाला हो और कभी २ यह कह कहकर शोच करती थी कि कहीं राक्षसों ने तो वैरके कारणसे नहीं घेर लिया आज व्यासजीकी भी बात झूंठी हुई कुन्ती इस प्रकारसे चिन्ता करही रहीथी कि इतने में भीम और अर्जुन द्रौपदीको लिये हुये ब्राह्मणों सहित सायंकाल के समय जब कि आकाश बादलों से ढका हुआ था अपने डेरों पर पहुँचे ३२। ४६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकनवतितमोऽध्यायः १९० ॥

एकसौइक्यानबे का अध्याय।

कुन्तीका पाण्डवों के कहने से भिक्षा जानकर पांचों भाइयों को मिलकर भोजन करने की आज्ञा देना और श्रीकृष्ण और बलदेवजी का उस भार्गवशाला में आकर पाण्डवों से मिलना॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! भीमसेन और अर्जुन उस भार्गवशालामें जहां कुन्ती बैठीहुई शोच कररही थी गये और बाहर से मातासे कहा कि आज हम यह परम भिक्षा लाये हैं कुन्ती उनकी बातको सुनकर उनको विना देखे भीतर से बोली कि तुम सब भाई मिलकर खावो परन्तु जब बाहर निकली और भीमसेन और अर्जुनको द्रौपदी सहित खड़ेहुये देखा तब तो बड़ा शोच करने लगी और यह शोचा कि मैंने विना विचारे कह दिया कि तुम सब भाई मिलकर खाओ द्रौपदी का हाथ पकड़कर युधिष्ठिर के पास गई और कहने लगी कि हे पुत्र! तू सब धर्म अच्छी प्रकारसे जानता है तेरे भाइयों ने मुझसे यह आनकर कहा कि हम भिक्षा लाये हैं सो मैंने भी विना देखे उन को यह आज्ञा देदी कि सब भाई मिलकर खाओ अब ऐसी बात बताओ जिसमें मेरा वचन झूंठा न होवे और इस पांचाल राजाकी कन्या को अधर्म न हो यह सुनकर युधिष्ठिर कुछ देर विचारकर कुन्ती को धैर्य देकर अर्जुन से कहने लगा कि तैंने द्रौपदी को स्वयंवर में जीता है इससे इसका विवाह तेरे ही साथ शोभा देताहै अब अग्नि प्रज्वलित करके विधिपूर्वक इसका पाणिग्रहण करो १।७ यह सुनकर अर्जुन बोला कि आप मुझको अधर्मका भागी न कीजिये आपका यह कहना धर्म के अनुसार नहीं है पहले आपका विवाह होना चाहिये और उसके पीछे हम सबका क्रमपूर्वक होना उचित है हम चारों भाई

और यह द्रौपदी आपकेही आधीन हैं आप जैसा उचित समझें वैसा कीजिये राजा पांचाल का जिसमें हित होवे और अयश वा अधर्म न होवे वही करना उचित है वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! युधिष्ठिर आदि सब भाई अर्जुन के भक्ति और स्नेहयुक्त वचनों को सुनकर द्रौपदी की ओर देखने लगे उसके असदृश उत्तम स्वरूपको देखकर सबके चित्त मन्मथसे मथित होगये और उन सबके चित्तमें द्रौपदी की मूर्ति बस गई इसके पीछे युधिष्ठिर सब भाइयों का अभिप्राय जानकर और व्यासजी के वचनों को स्मरण करके आपसके विरुद्ध के भयसे बोला कि यह द्रौपदी हम सबकी स्त्री होगी यह बात सुनकर सब भाइयों ने प्रसन्न होकर अपने मन में उस बात को धर लिया उसी समय कृष्ण और बलदेव दोनों उस भार्गवशाला में गये और युधिष्ठिर को अपने सब छोटे तेजस्वी भाइयों सहित बैठे हुये देखकर उनके समीप चले गये और उन्होंने युधिष्ठिर और अपनी फूफी कुन्ती के पैर छूकर कहा कि मैं कृष्णहूं उसके पीछे बलदेवजी ने भी युधिष्ठिर को प्रणाम करके कुन्ती के चरण छुये युधिष्ठिर और कुन्ती ने उन दोनोंकी क्षेम कुशल पूछकर पूछा कि हम गुप्तवास करनेवालों को तुमने क्योंकर जाना यह सुनकर श्रीकृष्णजी ने हँसकर कहा कि अग्नि भी कहीं छिपाये से छिपती है सिवाय पाण्डवों के दूसरे मनुष्य का यह काम न था जो तुमने कियाहै तुम सब अपने भाग्यसे उस अग्निसे बच गये और दुर्योधन ने जो पापकर्म विचारा था सो नहीं हुआ अब हम यहांसे जाते हैं क्योंकि हमारे यहां बैठने से तुमको सब राजा जान जायँगे तुम्हारा कल्याण होवे यह कहकर वे दोनों श्रीकृष्ण और बलदेवजी पाण्डवों से बिदा होकर अपने डेरों को चले आये ८। २५ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकैकनवतितमोऽध्यायः १९१ ॥

एकसौबानवे का अध्याय।

धृष्टद्युम्न का छिपकर भार्गवशाला में आना और पाण्डवों की शूरताकी बातें सुनकर प्रसन्न होकर राजा द्रुपद के पास जाना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पांडवों के चले आनेपर धृष्टद्युम्न उनके पीछे २ चला गया और अपने मनुष्यों को चारों ओर ठहराकर आप उस भार्गवशाला के निकट छिप रहा जब सायंकाल हुआ तब भीमसेन आदि चारों छोटे भाई भिक्षा मांगकर लाये और युधिष्ठिर के आगे रखदी कुन्ती उस

को लेकर द्रौपदी से बोली कि तू इसमें से जो कुछ बलिकर्म करके भिक्षा देना चाहै सो किसी ब्राह्मण अथवा भूंखे को देदे जो शेष अन्न बचे उसके दो भाग करले एक भाग इस गोरे पुष्ट बलवान् भीमसेन को जो सदैव से बहुत खाताहै देदे और एकभाग में से ६ भाग करके एक एक सबको बांटदे और एक आप लेले यह सुनकर द्रौपदीने बड़ी प्रसन्नता से वैसाही किया और वहां सब परिवारने बैठकर आनन्दपूर्वक भोजन किये इसके पीछे सहदेव कुशा लेआया और उनको बिछाकर सोने के लिये स्थान बनाया और कुशाओंपर मृगचर्म बिछाकर युधिष्ठिर को बीच में करके सब पाण्डव लेट गये उनके शिरहाने की ओर कुन्ती और पैरोंकी ओर द्रौपदी भी सोगई यद्यपि द्रौपदी कुशपर सोई और सब पाण्डवों के पैर उसके लगते रहे परन्तु उसने मनसे भी दुःख न माना और न उन वीर पाण्डवों का अपमान किया १।१० पाण्डव लेटजाने के पीछे युद्ध में व्यूह रचना रथोंका हांकना अस्त्र शस्त्रों के चलाने और गदा तलवार और परश्वधों से युद्ध करनेकी चित्र विचित्र कथायें आपस में कहने लगे धृष्टद्युम्न और उसके सब मनुष्य उन कथाओं को सुनते रहे जब वे पाण्डव कथा कहते २ सोगये तब वह वहांसे रात्रि में राजा द्रुपदके पास उनकी सब बातों को कहने के लिये आया उसको देखकर राजा द्रुपद जो पाण्डवों का कुछ हाल नहीं जानता था बोला कि यह कौन मनुष्यहै जिसने द्रौपदीको जीताहै कहीं कोई शूद्र अथवा वैश्यके पाले तो द्रौपदी नहीं पड़ी कोई श्रेष्ठ ब्राह्मण या क्षत्री होतो अच्छाहै और जो कोई अन्य जाति है तो मेरा अपमान इस प्रकार से होगा जैसे कोई कीचकी भरी हुई लात शिरपर रखदे तू सच बता प्रसन्न क्यों है कहीं अर्जुन से मिलकर तो नहीं आया है क्या राजा पाण्डुके पुत्र अभी जीतेहैं और यह लक्ष्य भेदनेवाला उन्हीं मेंसे तो कोई नहीं है ११।१८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकद्विनवतितमोऽध्यायः १९२॥

एकसौतिरानवे का अध्याय।

धृष्टद्युम्नका राजा द्रुपदसे पाण्डवोंका हाल कहना और राजा द्रुपदका पाण्डवों के पास जाति और कुल पूछनेको अपने पुरोहित को भेजना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! धृष्टद्युम्न राजा द्रुपदकी बात को सुनकर बोला कि वह बलवान् पुरुष जिसका स्वरूप देवताओं कासा आंखें बड़ी २ और लाल लालथीं और काला मृगचर्म लिये हुयेथा जिसने लक्ष्य भेद

कर पृथ्वीपर गिरा दिया था स्वयंवर से द्रौपदी को लेकर ब्राह्मणों सहित इस प्रकारसे चला जाताथा जैसे इन्द्र सब देवता और ऋषियों के साथ जाताहै जब सब राजा क्रोध करके उसके मारने को गये तब उसके पास एक और मनुष्य बड़ा तेजस्वी एक बड़े वृक्षको उखाड़कर उसको अपने हाथमें इस प्रकार से लेकर जैसे यमराज कालदण्ड को लेवें उसके पास खड़ा होगया उन दोनोंने सब राजाओं को शंकित कर दिया और सबके देखते कृष्णा अर्थात् द्रौपदीको लेकर दोनों सूर्य और चन्द्रमाके समान भार्गवशाला में पहुँचे वहां उन दोनों की मा और तीन पुरुष अग्नि के समान तेजस्वी बैठे थे उन्होंने उनको दण्डवत् की और द्रौपदी से भी दण्डवत् करने को आज्ञा दी फिर वहां बैठकर द्रौपदी को अपनी माताको निवेदन करके चार जने भिक्षा को चले गये जब वे भिक्षा लेकर आये तब कृष्णा ने उस भिक्षा में से बलिकर्म करके कुछ ब्राह्मण को दी और शेषको उन सब शूरवीर और उनकी माको परोसकर आप भी खाया भोजन करने के पीछे उन्होंने कुश और मृगचर्म पृथ्वीपर बिछाये और उसपर सबके सब लेट गये कृष्णा उनके पैरोंकी ओर सो रही लेटनेपर वे आपस में अनेक प्रकार की युद्ध और अस्त्र शस्त्र चलाने की बातें कहते रहे में उन सब बातों को सुनता रहा उन बातोंसे तो निश्चयही प्रतीत होताहै कि वे क्षत्री हैं शूद्र और ब्राह्मण वैश्य ऐसी बातें कभी नहीं कहते हैं और धनुष चढ़ाने और लक्ष्य भेदने से भी यही प्रतीत होताहै कि वे क्षत्री हैं मेरी समझ में तो वे निश्चय गुप्त स्वरूप धारण किये हुये पाण्डवही हैं क्योंकि हमने यह भी सुनाथा कि पाण्डव अग्नि से बचकर निकल गये १। १३ यह सुनकर राजा द्रुपद प्रसन्न होगया और पुरोहित को बुलाकर बोला कि तुम भार्गवशाला में जाकर युक्ति से यह बात पूछकर आवो कि द्रौपदीका जीतने वाला पाण्डव है या और कोई मनुष्य है यह सुनकर पुरोहित वहां गया और पाण्डवों की प्रशंसा करके बोला कि राजा द्रुपद इस लक्ष्य भेदनेवाले वीरको देखकर ऐसा प्रसन्न हुआ है कि फूला नहीं समाता है यह द्रौपदी के योग्य वर है और राजा द्रुपद वरदाता है सो वह राजा आपकी जात और कुलको जानना चाहता है आप कृपा करके उसको बताइये और हम सब समेत राजा द्रुपद को प्रसन्न कीजिये राजा पाण्डु राजा द्रुपद का आत्मा के समान प्यारा मित्र था और तभी से राजा द्रुपद की यह इच्छाथी कि मैं इस अपनी कन्या का अपने परम

मित्र राजा पाण्डु के अर्जुननामी पुत्रके साथ विधिपूर्वक विवाह करदूं सो जो यह काम अब मेरी इच्छाही के अनुकूल हुआ हो तो यह मेरे सुकृतका फल और कुरुवंशके पुण्यका प्रभाव समझना चाहिये पुरोहित को यह कहते हुये सुनकर युधिष्ठिर ने भीमसेन से कहा कि ये राजा द्रुपद के पुरोहित हैं इससे हमारे मान्य हैं इनकी हमको विशेष पूजा करनी उचितहै यह सुनकर भीमसेन ने उस पुरोहितको आदरपूर्वक बैठाया और अर्घ पाद्य आदि देकर उसकी पूजा की उपरान्त युधिष्ठिर ने कहा १४। २२ कि राजा द्रुपद ने अपने धर्मसे द्रौपदी को देना उस मनुष्य को स्वयंवर में कहा था जो धनुष चढ़ाकर लक्ष्य भेदे उसमें कुछ जाति कुल और वंशका विचार नहीं किया था यह वीर राजा की उस प्रतिज्ञा को पूरा करके द्रौपदी को जीत लाया और उसके पीछे सब राजाओं से भी युद्ध करके उसने इसे जीत लिया ऐसी अवस्था में राजा को यह संताप करना किसी प्रकार से उचित नहीं है २३। २५ और द्रुपद की जो कामना है वहभी सिद्ध होगी हम यह कहे देते हैं कि यह कन्या हमारे योग्यहै सिवाय इसके यहभी विचार करो कि मंदबल और हीनजाति और विना अस्त्र जाननेवाले से वह लक्ष्य काहे को भेदा जाता उससे तो धनुष का चढ़ाना भी कठिन था इस बात को समझकर राजा द्रुपद को संताप करना उचित नहीं है युधिष्ठिर यह बात कहही चुकाथा कि इतने में राजा द्रुपद के पास से दूसरा आदमी पाण्डवों को भोजन करने के लिये बुलानेको वहां आया २६। २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकत्रिनवतितमोऽध्यायः १६३॥

एकसौचौरानबे का अध्याय।

राजा द्रुपद का पाण्डवों को रसोई के लिये बुलाना और परीक्षा के लिये सब प्रकार की वस्तु वहां रखवाना पाण्डवोंका वहां जाकर भोजन करना और राजा द्रुपदके शस्त्रोंको देखना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस दूत ने आकर पांडवों से कहा कि महाराज राजा द्रुपद ने आपके लिये ये सुन्दर रथ भेजे हैं और यह कहला भेजाहै कि बरातियों के लिये रसोई तैयार है हमारे स्थान पर शीघ्र आकर रसोई पावें और विधिके अनुसार कृष्णा का पाणिग्रहण करें यह सुनकर युधिष्ठिर ने पुरोहित को वहां से बिदा कर दिया और एक रथ में आप पांचों भाई और दूसरे में कुन्ती और द्रौपदी बैठकर राजा द्रुपद के स्थान को चल दिये

पुरोहित के पहुँचनेपर राजा द्रुपद ने उसकी बातको सुनकर पांडवों की परीक्षा के लिये अपने स्थान में अनेक २ प्रकार के फूल बनाई हुई माला, कवच, ढाल, आसन, रस्सी, बीज, गाय, खेती करने की सम्पूर्ण चीजें, पत्थर फोड़ने के सम्पूर्ण शस्त्र और क्रीड़ा की चीजें, सुन्दर २ कवच, बड़े २ खड्ग, सुन्दर २ घोड़ों सहित युद्ध करने के रथ, उत्तम २ धनुष, चित्र, बाण, बर्छी, लाठी, तोमर, भुशुण्डी, फरसा, शय्या, आसन, अनेक प्रकार के वस्त्र और लड़ाई की सब सामग्री रखवादीं जब पाण्डव वहां पहुँचे तब कुन्ती को स्त्रियां रनिवास में बड़े आदरपूर्वक लिवा लेगईं और पांडवों को राजा द्रुपद और सब मन्त्री लिवा लाये उनकी सिंहकीसी गति, सर्पराज के फनकी तुल्य लम्बी २ भुजा और मृगचर्म के वस्त्रों को देख २ कर सब प्रसन्न हुये पांडव भीतर जाकर शंकारहित बड़े उत्तम २ आसनों पर बैठ गये और उन आसनों को यह जानकर कि यह बड़े आदमियों के योग्यहैं यत्किंचित् भी विस्मय नहीं किया ११। १२ इसके पीछे वहां के दास दासियों ने अनेक २ प्रकार के राजाओं के योग्य व्यञ्जन बनाकर चांदी और सोने के बर्तनों में परोस २ कर उनके सामने लगादिये पांडवोंने स्वादपूर्वक अच्छे प्रकार से भोजन किये और भोजन करके सब चीजों को उल्लंघन करके उस स्थान में घुस गये जहां राजा द्रुपदने शस्त्र रखवादिये थे यह देखकर राजा द्रुपद अपने पुत्र और मन्त्रियों सहित बहुत प्रसन्न हुआ और कुन्ती और युधिष्ठिर के पास जाकर पूंछनेलगा १३। १५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकचतुर्नवतितमोऽध्यायः १९४॥

एकसौपंचानवे का अध्याय।

पांडवोंका राजा द्रुपदसे यह कहना कि हम पांडव हैं राजा द्रुपदका प्रसन्न होकर उनको राज्य मिलने के लिये यत्न करनेकी प्रतिज्ञा करना और युधिष्ठिर का राजा द्रुपदसे द्रौपदीका विवाह पांचों पांडवों के साथ करने को कहना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा द्रुपद युधिष्ठिर को निकट बुलाकर ब्राह्मणसम्बन्धी व्यवहार से उसके साथ बर्ताव करके पूछने लगा कि मैं यह बात किसप्रकार से जानूं कि आप ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य या शूद्र कौन हैं या आप कोई देवताहैं जो ब्राह्मण का वेष बनाकर द्रौपदी के लिये यहां आये हैं मुझको बड़ा संदेह होरहा है सिवाय आपके और कोई मेरे इस सन्देह को दूर नहीं करसक्ता है इससे आप सौगन्दपूर्वक सत्य २ कहिये राजाओंके निकट

सत्यही शोभा देताहै आपके सत्य कहनेपर मैं प्रसन्न हूंगा और आपको जान कर यथोचित विधि से कृष्णा का विवाह कर दूंगा १। ७ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हे राजा द्रुपद! तुम व्यग्रचित्त मत हो तुम्हारा मनोरथ सिद्ध हो गया हम क्षत्री हैं और राजा पांडुके पुत्र हैं कुन्ती हमारी माताहै मैं सबसे बड़ा हूं और मेरा नाम युधिष्ठिरहै और ये दोनों जिन्होंने द्रौपदीको जीताहै भीमसेन और अर्जुन नाम मेरे छोटे भाई हैं और द्रौपदी के पास जहां कुन्ती बैठी है वहां इन दोनों से छोटे भाई नकुल और सहदेव बैठे हैं आपसे मैंने यह सच २ कहा है आप अपने चित्तके दुःख को अब दूर कीजिये आप हमारे बड़े और रक्षक हैं और आपकी बेटी अच्छे कुल में प्राप्त हुई है ८। १२ वैशम्पायनजी बोले हे जनमेजय! राजा द्रुपद युधिष्ठिर की बात को सुन प्रेम में आगये और गद्गदवाणी होने के कारण से कुछ उत्तर न देसके थोड़ी देर में जब प्रेमका प्रवाह कुछ रुका तब पूछने लगे कि तुम नगर से क्यों निकल गये थे यह सुन कर युधिष्ठिर ने सब पूर्व वृत्तान्त कह सुनाया इसपर राजा द्रुपदने धृतराष्ट्र की बहुत निन्दा की और युधिष्ठिर को धैर्य देकर बोले कि हम तुम्हारा राज्य मिलने का यत्न करेंगे १३। १७ इसके पीछे युधिष्ठिर आदि सब भाई अपनी माता और द्रौपदी सहित राजा द्रुपद के बताये हुये घरमें चले गये और वहां सुखपूर्वक रहने लगे राजाने उनके खाने पीने आदि का सब प्रबन्ध कर दिया इसके पीछे राजा द्रुपदने एक दिन युधिष्ठिरसे कहा कि अब कोई अच्छा दिन देखकर अर्जुन का विवाह द्रौपदी के साथ होजाना चाहिये यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि मेरा भी विवाह नहीं हुआ है पहले मेरे साथ विवाह होना चाहिये यह सुनकर राजा द्रुपद बोला कि तुमहीं अपने साथ विवाह करलो या और जिस किसी के साथ उचित जानो विवाह कर दो युधिष्ठिर बोले कि मैं और भीमसेन दोनों क्वारे हैं यद्यपि द्रौपदीको अर्जुन ने जीता है परन्तु हमारा सबका नियम यह है कि जो कोई रत्न वस्तु लाते हैं उसको हम सब भाई मिलकर भोगते हैं उस नियम के विपरीत हम नहीं कर सक्के इससे यह द्रौपदी हम सब की पटरानी होनी चाहिये इसका पाणिग्रहण हम सब क्रमपूर्वक विधि के अनुसार अग्नि साक्षी करके करेंगे १८। २६ यह सुनकर द्रुपद बोला कि हमने एक राजा की बहुतसी पटरानी होना तो देखा है परन्तु एक स्त्री के बहुत से पति होना कहीं नहीं सुनाहै यह लोक और धर्मविरुद्ध बात है तुम तो ज्ञानी

और बड़े धर्मात्मा हो तुम ऐसी बात क्योंकर कहते हो इस समय तुम्हारी बुद्धि कहां है युधिष्ठिर बोले कि धर्मकी गति बड़ी सूक्ष्म है हम उसको नहीं जानते हैं हम तो पहले पुरखाओंके मार्गपर चलते हैं हम कभी झूंठ नहीं बोलते और न हमारी बुद्धि अधर्म में है हमारी माताकी आज्ञा इसीप्रकार से है हमने यह बात धर्महीके अनुसार कही है आप इसमें शंका और विचार न कीजिये यह सुन कर द्रुपद बोला कि अच्छा आज तुम और कुन्ती और मेरा पुत्र धृष्टद्युम्न तीनों इस बात का निश्चय करो कि यह काम करने योग्य है या नहीं प्रातःकाल फिर जैसी सलाह होगी वैसा करेंगे वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! जिस समय वे तीनों विचार करने बैठे उसी समय दैवइच्छासे वहां व्यासजी महाराज आन पहुँचे २७ । ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकपंचनवतितमोऽध्यायः १९५ ॥

एकसौछानवे का अध्याय।

व्यासजीका पांडवों के पास आना राजा द्रुपदका व्यासजीसे यह पूंछना कि द्रौपदीका विवाह पांडवोंसे होना धर्म है या अधर्म व्यासजीका उन सबसे पूंछना कि तुम लोगों की समझ में क्या आताहै ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! व्यासजी को देखकर सब पांडव और राजा द्रुपद आदिने खड़े होकर दंडवत् कर सुंदर आसनपर बड़े आदरपूर्वक बैठाला और व्यासजी की आज्ञा पाकर आप सब भी बड़े मोलवाले आसनों पर बैठ गये इसके पीछे राजा द्रुपद एक क्षण तो और २ बातें करता रहा उपरान्त उसने व्यासजीसे पूंछा कि महाराज द्रौपदी बहुत मनुष्यों की स्त्री क्योंकर हो सक्ती है आप ठीक २ ऐसी बात कहिये जिसमें अधर्म न होवे यह सुनकर व्यास जी बोले कि हे राजा ! यह धर्म बड़ा गूढ़ लोक और वेद के विरुद्ध है पहले तुम सब अपना २ मत कहो यह सुनकर पहले द्रुपदने कहा कि मैं तो इस कर्म को लोक और धर्मके विपरीत जानता हूं कहीं ऐसा नहीं हुआ है कि एक स्त्री बहुतसे मनुष्यों की पत्नी हुई हो और न किसी महात्माने ऐसा पहले किया है यह सर्वथा अधर्म है और विद्वानों को अधर्म कभी न करना चाहिये १ । ८ इससे मेरी इच्छा इस कर्मके करने की यत्किंचित् भी नहीं है उसके पीछे धृष्टद्युम्न ने कहा कि महाराज जो बड़ा भाई अच्छे चलनका होता है वह छोटे भाई की स्त्री को कभी कुदृष्टि से नहीं देखताहै और धर्मकी गति तो बड़ी सूक्ष्म है हम

उसको नहीं जानते हैं और न धर्मके अनुसार कोई बात निश्चय कहसक्ते हैं यह बात किसी प्रकार से मेरे मन में नहीं आतीहै कि द्रौपदी का विवाह पांचों पांडवों से होवै ६। १२ यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि मैंने झूंठ नहीं कहा है और न मेरी बुद्धि किसी प्रकारसे अधर्ममें है मेरी समझमें तो हम पांचोंके साथ विवाह होना धर्मके विपरीत नहीं है हमने पुराणों मेंभी सुनाहै जटिला नाम गौतम कुल की ऐसी धर्मात्मा स्त्रीके साथ सात ऋषियोंका विवाह हुआ था और वार्क्षी नाम एक ऋषिकी पुत्रीसे प्रचेता नाम दश भाइयों से विवाह हुआ था इसके सिवाय शास्त्रकी रीतिसे सब गुरुओंके वचन धर्मरूपहैं और गुरुओं में माता परमगुरु होतीहै सो हमसे हमारी माताने आज्ञा दी कि भिक्षा की तरह सब भाई इसको भोगो इस कारण से मैं पांचोंके साथ विवाह होनेका परमधर्म समझताहूं १३। १७ यह सुनकर कुंती बोली कि निस्संदेह मैंने आज्ञा दीथी युधिष्ठिर ने सच कहा है मैं अधर्म और मिथ्या बोलने से बहुत डरतीहूं यह सुन कर व्यासजी बोले कि हे कुंती! तू धर्मसे मुक्त होगी यह धर्म सनातनहै मैंइस धर्मको सब के सम्मुख नहीं कहूंगा राजा द्रुपदसे एकान्तमें बताऊंगा युधिष्ठिर सच कहताहै में इस धर्मके रचेजाने का कारण और सनातन होने का हाल एकान्त में कहूंगा वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! व्यासजी यह कह कर राजा द्रुपद का हाथ पकड़कर महल के भीतर लेगये पांचों पांडव कुन्ती और धृष्टद्युम्न भी वहां चलेगये और व्यासजी उन सबको एक स्त्री का बहुत पुरुषों के साथ विवाह होने का धर्म सुनाने लगे १८। २३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकषट्नवतितमोऽध्यायः १९६॥

एकसौसत्तानबे का अध्याय।

व्यासजीका राजा द्रुपद से पांडवोंके पूर्वजन्म की कथा कहकर राजा द्रुपदको दिव्यदृष्टि देकर पांडवों के पूर्वरूपको दिखाना और उसे द्रौपदीका विवाह पांचों पांडवों के साथ करने का उपदेश करना॥

व्यासजी बोले हे राजा द्रुपद! एक समय देवताओं ने नैमिषारण्य में सत्र यज्ञ कियाथा उस यज्ञ में यमराज को यज्ञके पशुओं के मारने के कामपर नियत किया था सो यमराज के बहुत दिनों तक दीक्षित रहने के कारण से किसी संसारी जीवकी मृत्यु नहीं हुई और इस कारण से सब संसारके मनुष्य आदि बहुत बढ़ गये उनकी बढ़ोतरीसे चन्द्रमा इन्द्र वरुण कुबेर साध्य रुद्र वसु

अश्विनीकुमार आदि सब देवता भयभीत होकर ब्रह्माजी के पास गये और कहने लगे कि महाराज हमको मनुष्यों की बढ़ोतरी से बड़ा भय होता है ब्रह्माजी बोले कि तुम क्यों भय करतेहो तुमतो अमरहो तुम्हें मनुष्यों का क्या भय है यह सुनकर देवता बोले कि महाराज अब मनुष्यभी न मरने से अमर होनेकी तुल्य होगये हैं इससे देवता और मनुष्यों में कुछ भेद नहीं रहा यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि आज कल यमराज देवताओंके यज्ञमें दीक्षित होने के कारण से मनुष्यों को नहीं मारताहै सत्रयज्ञ के समाप्त होने पर वह मनुष्यों का नाश करैगा और तुम्हारे पराक्रम से युक्त होने पर मनुष्यों का पराक्रम कुछ न रहैगा यह सुनकर सब देवता प्रसन्न होकर वहां गये जहां और देवता यज्ञ कर रहे थे और वहां जाकर बैठ गये उस समय वे देवता गंगाजी में कमल बहते हुये आते देखकर बड़े विस्मित हुये और कारण जानने के लिये इन्द्र उस जगह गया जहांपर से गंगाजी निकली हैं वहां इन्द्र क्या देखताहै कि एक स्त्री गंगाजी में स्नान कररही है और रोती है जो आंसू उसका गंगाके जल में गिरता है वही सुनहरा कमल होजाता है यह देखकर इन्द्रको बड़ा आश्चर्य हुआ और उसने उस स्त्री से पूछा कि तू कौन है और किस कारण से रोती है सच कह यह सुनकर वह स्त्री बोली कि मैं आगे २ चलती हूं तू मेरे पीछे २ चला आ आगे चलके तुझे मेरे रोनेका कारण मालूम होजायगा यह सुनकर इन्द्र उस स्त्री के पीछे २ चलागया और थोड़ी दूर जाकर देखता क्या है कि उस पहाड़पर एक दर्शनीय पुरुष सिंहासन पर बैठा हुआ एक स्त्रीके साथ पांसों से क्रीड़ा कररहा है उसको देखकर इन्द्र बोला कि मैं देवताओं का राजाहूं और तीनोंलोक मेरे वश में हैं इन्द्रकी इस अभिमानयुक्त बातको सुनकर उस देवता ने मुसकराकर इन्द्रकी ओर देखा इन्द्र उसके देखतेही जड़की तुल्य खड़ा का खड़ा रहगया इसके पीछे जब वह क्रीड़ा करचुका तब उस रोती हुई स्त्रीसे बोला कि इसको हमारे पास ला जिससे इसमें फिर कुछ अहंकार न रहै उस स्त्री ने वैसाही किया और इन्द्र उस देवता के छूतेही पृथ्वीपर गिरपड़ा यह देखकर वह देवता इन्द्रसे बोला कि फिर ऐसा मत करियो तू बड़ा बलवान् है इससे इस पहाड़ को हटाकर अब इसके विवर में होकर भीतर चलाजा वहां चार और पुरुष तेरी समान हैं यह सुनकर इन्द्र पहाड़को हटाकर भीतर चला गया और वहां चार अपने तुल्य तेजस्वी पुरुषोंको देखकर यह विचारकर डरने लगा कि

कहीं मेरी भी यही गति न हो १। २० इसके पीछे उस गिरीश देवताने इन्द्रसे क्रोध करके कहा कि तुम भी इसी गुफा में रहो तुमने मेरा अपमान किया है यह सुनकर इन्द्र डरके मारे इस प्रकार से कांपने लगा जैसे हवासे पीपल का पत्ता हिलता है और दोनों हाथ जोड़कर बोला कि महाराज आप संपूर्ण भुवन के द्रष्टाहैं यह सुनकर वह देव हँसकर बोला कि तेरासा स्वभाव रखने वाले प्रसाद पाने के योग्य नहीं हैं इन चारों ने भी पहले ऐसाही किया था इस से तू भी इस गुफा में रह २१। २४ और तुम सब पृथ्वी पर जन्म लेकर बहुत से मनुष्यों का नाश करके फिर कर्मानुसार इन्द्रलोकमें आवोगे यह सुनकर पहला इन्द्र बोला कि महाराज हम पृथ्वीपर जाकर जन्म लेंगे और दिव्य अस्त्रों से मनुष्योंका नाश करके फिर इन्द्रलोकको चले आवेंगे परन्तु धर्म वायु इन्द्र और अश्विनीकुमार देवता हमारे जनक होवें यह सुनकर पांचवां इन्द्र बोला कि मुझको स्वर्गमें कुछ कामहै इससे मेरा वीर्य पृथ्वी पर उत्पन्न होगा इसके पीछे उस देवने विश्वभुक् १ भूतधाम २ शिव ३ शांति ४ और तेजस्वी ५ इन पांचों इन्द्रों को जिनमें से पहले चारों बहुत दिनों से उस गुफामें बन्दथे यथेष्ट वरदान दिया और उस रोती हुई स्त्रीसे कहा कि तू भी पृथ्वीपर जन्म लेकर इन पांचोंकी स्त्री होगी इसके उपरांत वह देव श्रीनारायण के पास जो अज अनन्त अप्रमेय अव्यक्त और विश्वरूप हैं गये और उनसे सब हाल कहा नारायण ने भी उसको अंगीकार किया और अपने शरीर से दो रोम एक काला और दूसरा श्वेत उखाड़कर देदिये वह दोनों रोम यदुकुल में रोहिणी और देवकीनाम दोनों वसुदेवजीकी स्त्रियोंके गर्भ में आकर बसे और पृथ्वीपर जन्म लिया श्वेत रोमसे बलदेवजी और कालेसे कृष्णचन्द्र उत्पन्न हुये और उन पांचों इन्द्रों ने कुन्तीके जन्म लिया और ये पांचों पांडव कहलाये उनमें से पांचवें इन्द्रके वीर्य से अर्जुन उत्पन्न हुआ है और वह स्त्री द्रौपदी हुई है नहीं तो स्त्री का अग्निकुण्ड से उत्पन्न होना क्या आवश्यक था देखो उसकी गंध चार कोसतक जाती है इस कारण से यह द्रौपदी इन पांचों पांडवों की पहिले से स्त्री है मैं तुमको दिव्यदृष्टि देताहूं उससे तुम इन पांचों पांडवोंके पहिले रूप को देखलो वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! व्यासजीने उक्त कथा कहकर राजा द्रुपद को अपने तपके बलसे दिव्यदृष्टि दी और उसके प्रभाव से वह पांडवों के पूर्वरूपको देखनेलगा कि वे पांचों इन्द्र उस देवके सहित

विराजमान हैं स्वरूप जिनके दिव्य वर्ण अग्नि और सूर्य के समान सुनहरा मुकुट और माला धारण किये हुये हैं और तेज उनका सूर्य वसु और रुद्र के तुल्य है और उनके समीप वह अत्यन्त सुन्दरी स्त्री जिसका प्रकाश चन्द्रमा और सूर्य के समान है बैठी हुई है राजा यह देखकर विस्मित हुआ और व्यास जी के चरणों को छूकर अति प्रसन्न होकर बोला कि महाराज यह बात आप की कुछ आश्चर्य की नहीं है आप ऐसेही हैं यह सुनकर व्यासजी बोले कि उस स्त्रीका हाल इस प्रकारसे है कि एक ऋषिके एक कन्या थी उसका विवाह तो होगया था परन्तु पतिका उसने कुछ सुख नहीं देखा था थोड़ीही उमरमें विधवा होगई थी उसने महादेवजीका तप किया महादेवजीने उससे प्रसन्न होकर कहा कि वरदान मांग तब उसने कहा कि महाराज मैं सब गुणोंके युक्त पति चाहतीहूं महादेवजी बोले कि अच्छा तेरे पांच पति होंगे यह सुनकर वह बोली कि महाराज मैं तो एकही पति चाहती हूं तब महादेवजीने कहा कि तैंने मुझ से पांच बार कहा कि पति दो २ इससे मैंने तुझको पांच पति होनेका वरदान दिया है अब मेरा वाक्य अन्यथा नहीं हो सकता दूसरे जन्म में तुझे सब गुणयुक्त पांच पति मिलेंगे इससे हे द्रुपद! यह कन्या तुम्हारे बड़ा तप करके देवस्वरूपिणी उत्पन्न हुई है इसके पांच पतिका होना पहले से ब्रह्माजी ने निर्मित किया है इस बातको समझकर तुम अपने मनके संदेहको छोड़कर इसका विवाह पांचों पांडवों से करदो २५। ५२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकसप्तनवतितमोऽध्यायः १९७॥

एकसौअट्ठानवे का अध्याय।

राजा द्रुपदका पांचों पांडवों से द्रौपदीका विवाह करना और बहुतसा दान दहेज देना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! राजा द्रुपद व्यासजी के उक्त वचनों को सुनकर बोला कि महाराज आपके वचनों को सुनने के पहलेही हमने विचार तो पांचों के साथ विवाह करने का कर ही लिया था अब सब संशय दूर होगया दैवका रचा हुआ अमिट है कृष्णा ने तो एकही पति के लिये तप किया था परन्तु भावी के अनुसार उसके मुंह से पांच बार महादेवजी के सामने यह निकला कि मुझको पति मिले सो महादेवजी का निर्मित वाक्य कौन मेट सकता है यह कन्या इन पांचों की पहिलेही से स्त्री है इसमें

मेरा क्या दोष है अब इसका विवाह इन पांचों के साथ होजाना चाहिये यह सुनकर व्यासजी बोले कि आज का दिन बहुत श्रेष्ठ है चन्द्रमा आज बली है आजही विवाह होजाना अच्छा है यह सुनकर द्रुपद ने सम्पूर्ण सामग्री मँगवाकर द्रौपदी को सुन्दर २ वस्त्र और आभूषण पहराये और पांडवों को सुन्दर वस्त्र कुंडल और अन्य आभूषण पहराकर द्रौपदी का पाणिग्रहण करने के लिये अभिषेक किया उस समय उस विवाहके आनन्दको देखने के लिये सब मन्त्री और मुख्य २ पुरवासी वहां इकट्ठे होगये और राजा का स्थान उस समय उन मनुष्यों और बहुत से रत्न और मणियों के रक्खे जाने के कारण से ऐसा प्रकाशित दीखने लगा जैसा आकाश तारागणों के उदय होने से मालूम होता है १। ६ इसके पीछे धौम्य ऋषिने वेदी बनाकर उस पर विधि के अनुसार अग्नि प्रज्वलित करके वेद के मंत्रों से हवन किया और युधिष्ठिर को द्रौपदी का पाणिग्रहण कराके उन दोनों से अग्नि की प्रदक्षिणा कराई इसीप्रकारसे क्रमके अनुसार एक २ दिनमें एक २ पांडवका विवाह द्रौपदी से किया गया विवाह होजाने पर नारदजी ने वहां आनकर कहा कि द्रौपदी पांच दिन तक कन्याही रही इसके पीछे राजा द्रुपद ने प्रत्येक पांडव को सौ सौ रथ जिनमें चार २ घोड़े और सुनहरी लगामें लगी थीं सौ सौ बड़े २ हाथी जिनपर अम्बारी रक्खी हुईथीं सौ सौ दासी जो सब गहने और वस्त्र पहिने हुईथीं और बड़े मोलके सुन्दर वस्त्र और बहुत प्रकारके द्रव्य दहेज में दिये पांडव उस लक्ष्मी की तुल्य स्त्री और बहुतसे धनको पाकर आनन्दपूर्वक उस द्रुपदके नगर में विहार करने लगे १०। १७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकअष्टनवतितमोऽध्यायः १९८॥

एकसौनिन्नानवे का अध्याय।

कुन्तीका द्रौपदीको आशीर्वाद देना और श्रीकृष्णजीका पांडवोंके पास बहुतसे हाथी घोड़े और धन आदि भेजना॥

वैशम्पायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! पांडवोंसे संबंध होनेपर राजा द्रुपद देवताओंसे भी निर्भय होकर रहने लगा और द्रुपदकी दीहुई दासियां कुन्ती के पास गईं और अपना २ नाम बता २ कर उसके पैरों पड़ने लगीं इस के पीछे द्रौपदीने जाकर कुन्तीको दण्डवत् की और चरण छूकर हाथ जोड़कर उसके सन्मुख खड़ी होगई कुन्ती उस पुत्रवधूको देखकर आशीर्वाद देने लगी

कि जैसे इन्द्राणीकी इन्द्रसे स्वाहाकी अग्निसे रोहिणीकी चन्द्रमा से दमयंती की नलसे भद्राकी कुबेर से अरुन्धती की वशिष्ठसे और लक्ष्मी की नारायण से प्रीति है उसी प्रकारसे तेरी प्रीति अपने पतियों से होवे तेरे संतानहो परमेश्वर तेरी आयु बड़ी करे तू अच्छे २ सुख पावे और पतिव्रता धर्मसे रहै तेरी उमर वृद्ध बालक गुरु और अतिथि का पूजन करते व्यतीत होवे इस कुरुजांगल देशमें तेरा अभिषेक राजाके साथ होवे और अपने पतियों से जीती हुई पृथ्वी के संपूर्ण रत्नोंसे युक्त होकर सब सुखोंको भोगे और पतियों के साथ अश्वमेधादि यज्ञ करके सो वर्ष तक सुख पावे वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब पांडवोंका विवाह उक्त प्रकारसे होचुका तब श्रीकृष्णजीने उनके पास वैडूर्यमणि से जटित सोने के आभरण, नाना प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र, कम्बल, मृगचर्म, शयनासन, सवारियां, वैडूर्यजटित सैकड़ों बर्तन, स्वरूपवान् और चतुर २ दासियां, शिक्षित बहुतसे हाथी, उत्तम २ घोड़े जो रेशमी वस्त्रोंसे अलंकृतथे और बहुतसे सुवर्णपात्र भेज दिये और युधिष्ठिर ने उन सबको बड़ी प्रीतिपूर्वक ग्रहण किया १ । १६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि शताधिकनवनवतितमोऽध्यायः १९९ ॥

दोसौ का अध्याय।

दुर्योधन आदि सब राजाओंको यह मालूम होना कि द्रौपदी का विवाह पांडवोंसे हुआहै यह जानकर सब राजाओंका लौट जाना और दुर्योधनको बड़ी चिंता होनी ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पांडवों के विवाह होने पर सब राजाओं को जो उस स्वयंवर में आयेथे विश्वासी दूतों से मालूम हुआ कि द्रौपदीका विवाह पांडवोंसे हुआहै जिस मनुष्यने धनुष चढ़ाकर लक्ष्य भेदाथा वह अर्जुन था और जिसने शल्यको उठाकर देमारा और एक बड़ा वृक्ष उखाड़कर सब मनुष्योंको भयभीत कर दियाथा वह भीमसेन था राजा लोग इस बातको सुनकर और यह जानकर कि पांडव स्वयंवर में ब्राह्मणोंका वेष धरके आयेथे यह कह कहकर आश्चर्य करने लगे कि हमने तो सुनाथा कि पांडव कुंती सहित अग्निमें जल गये और पांडवोंका दूसरा जन्म होना मानकर पुरोचनकी कीहुई कृत्यको निष्फल समझकर धृतराष्ट्र और भीष्मजीकी निंदा करने लगे और वहांसे अपने २ घरको चले गये १ । ७ राजा दुर्योधन अर्जुनका विवाह द्रौपदीके साथ होना देखकर बड़ा दुःखी हुआ और लज्जासहित अपने

भाइयों और कर्ण दुश्शासन कृपाचार्य अश्वत्थामा और शकुनी सहित घरको लौट चला राहमें दुश्शासन ने कहा कि किसीने यह जाना नहीं कि वह अर्जुन है सबोंको यही ज्ञात हुआ कि कोई ब्राह्मणहै नहीं तो वह द्रौपदीको कभी नहीं पासक्ताथा पुरुषका यत्न निरर्थकहै प्रारब्धही मुख्यहै इसप्रकार से सब कौरव म्लानचित्त पुरोचनकी निन्दा करते और पुरुषके पौरुषको पांडवोंके बचजाने के कारण से धिक्कार देते हुये अपने नगर में पहुँचे और पांडवों को जीता हुआ राजा द्रुपद और उसके धृष्टद्युम्नादिक शूरवीर पुत्रोंकी सहायता युक्त जानकर अपने मनोरथको असिद्ध समझकर बड़े दुःखी और भयभीत हुये ८। १४ विदुर जी उस पांडवोंके विवाहका हाल सुनकर बहुत प्रसन्न हुये और राजा धृतराष्ट्र के पास जाकर कहने लगे कि प्रारब्धसे कौरवकुलकी वृद्धि हुई यह सुनकर धृतराष्ट्र यह समझे कि दुर्योधनने द्रौपदीको जीताहै यह समझकर वह कहने लगा कि यह भाग्यसे ऐसा हुआहै अब तुम द्रौपदी सहित दुर्योधन को हमारे पास लाओ और बड़े मोल के वस्त्र मँगवाओ हम द्रौपदी को देंगे १५। १६ यह सुनकर विदुरजी बोले कि द्रौपदीका विवाह पांडवोंसे हुआहै और पांडव द्रुपदके यहां द्रुपद आदिसे पूजित रहतेहैं और उनका मेल और राजाओं से जो द्रुपदके सम्बन्धी हैं होगया है २०। २१ यह सुनकर धृतराष्ट्र बोले कि पांडव जैसे पांडुके पुत्रहैं वैसेही मेरे भीहैं मैं उनको दूसरा नहीं जानताहूं पांडवों के कुशली और मित्रवत् होनेका यह कारणहै कि उनके संबंधी भी शूरवीर और बहुतसे हैं ऐसा कौनसा राजा होगा जो द्रुपद ऐसे राजासे संबन्ध करके अपने ऐश्वर्य को न चाहे यह सुनकर विदुरजी बोले कि तुम्हारी ऐसीही बुद्धि सौवर्ष तक रहै उसी समय विदुरजीके चलेजाने पर दुर्योधन और कर्ण धृतराष्ट्र के पास आये और कहने लगे कि हम आपके दोषको विदुरजीके सामने नहीं कहसकेथे आपकी क्या इच्छा है जो आप शत्रुकी वृद्धिको अपनी वृद्धि मानते हैं और उनकी स्तुति करते हैं जो काम करनेका है उसको तो आप करते नहींहैं यह समय शत्रुके बलके नाश करनेका है और ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे शत्रु हमको भाई सेना और पुत्रों सहित आकर न मारने पावें २२।२०॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशततमोऽध्यायः २००॥

दोसौएक का अध्याय।

राजा धृतराष्ट्रका दुर्योधन और कर्णसे पांडवोंके निग्रहका मंत्र पूंछना और दुर्योधनका अपनी मति के अनुसार उपाय बताना॥

दुर्योधन और कर्ण की बात को सुनकर धृतराष्ट्र बोले कि मेरी भी यही इच्छा है जो तुम कहते हो परन्तु मैं इस कारण से पांडवोंकी बड़ाई कर देता हूं कि विदुर मेरे अंतःकरण के अभिप्रायको किसी प्रकारसे न जानने पावें अब तुम दोनों अपनी सलाह बताओ कि क्या करना उचित है यह सुनकर दुर्योधन बोला कि या तो कोई उपाय ब्राह्मणोंसे ऐसा कराया जावे जिससे पांडवों में आपस में फूट होजावे या राजा द्रुपद को पुत्र और मंत्रियों सहित धनका लोभ देकर ऐसी बात रची जावे जिससे राजा द्रुपद पांडवों को त्याग करदे अथवा यह नहीं तो उनसे यहां आने और रहने में बहुत से अवगुण कह २ कर उनके चित्त को ऐसा यहां से उचाट दे कि वे वहीं रहें यहां आने को कभी मन न करें और जो इन बातों में से कोई न हो सके तो ऐसा उपाय रचा जावे जिससे पांडव द्रौपदी को त्याग दें या द्रौपदी पांडवों से आपस में भेद करादे और जो यह भी न हो तो किसी उपायसे भीमसेन मरवा डाला जावे वही उन सबों में बड़ा बलवान् है युधिष्ठिरादिक उसी के आश्रय रहते हैं और उसी के बल भरोसे पर हमको कुछ नहीं समझते हैं उसके मरने पर उनमें से फिर कोई राज्य पाने का यत्न नहीं करैगा यद्यपि अर्जुन बड़ा शूरवीर है परन्तु भीमसेन के पृष्ठरक्षक रहनेपर ही वह अजेय है विना भीमसेन के वह कर्ण का चतुर्थांशभी नहीं है इससे भीमसेनके मरनेपर पांडव बहुत दुर्बल होजायँगे और हमको सबल जानकर फिर राज्य पाने का यत्न नहीं करेंगे अथवा यह कीजिये कि कर्ण को भेजकर उनको यहां बुला लीजिये और उनके आने और आज्ञा में रहनेपर कोई यत्न उनके निग्रहका किया जावे और जो यह भी समझमें नहीं आवे तो बहुत स्वरूपवती स्त्रियां पांडवों के पास भेजकर उनके चित्तोंको चलायमान करके ऐसा कीजिये जिससे द्रौपदी उनमें प्रीति न करै इन सब बातोंमें से जौनसी आपको हितकारी समझ पड़े उसका यत्न शीघ्र करना चाहिये क्योंकि जबतक उनकी प्रीति राजा द्रुपद से गाढ़ी नहीं होगी तभी तक हम उनको मार सकेंगे विशेष प्रीति होजाने पर कोई उपाय नहीं चलेगा बुरी या भली जैसी कुछ मेरी समझ थी उसके अनुसार मैंने कहा

अब आगे कर्ण से पूंछना चाहिये कि तेरी क्या सलाह है १। २० ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकप्रथमोऽध्यायः २०१ ॥

दोसौदो का अध्याय।

कर्ण का पांडवों के निग्रह के लिये युद्धकी सलाह देना ॥

कर्ण बोला हे दुर्योधन! तेरी सलाह हमारी मतिसे ठीक नहीं है पांडव अब उपाय से नहीं मारे जासक्के तू तो उनके मारनेका उपाय कर चुका है परन्तु तेरा कोई उपाय नहीं चला जब वे पांडव बालक और सहायरहित थे और तेरे पास रहते थे तब तो तू उनका कुछ करही न सका अब वे परदेशमें रहते हैं और उनके पक्षपर भी बहुतसे राजा हैं उनका तू उपायसे कुछ नहीं कर सक्ताहै उनका प्रारब्ध ऐसा है कि उनको तू दुःख नहीं पहुँचा सक्ता और उनमें परस्पर फूट होना भी असंभव है क्योंकि उन पाँचोंकी एकही स्त्री है और द्रौपदी भी उनसे कभी विपरीत नहीं होगी क्योंकि बहुत पति होना स्त्रियों की परम इच्छा रहती है सो उसको बहुत पति मिले हैं और पति भी सब स्वरूपवान् गुणवान् और शूरवीर हैं वह उनको काहे को छोड़ेगी और राजा द्रुपद आर्यव्रत है धनका लोभी नहीं है वह पांडवों को कभी नहीं छोड़ैगा और द्रुपद के पुत्रभी उसी प्रकारके हैं और पांडवों से बड़ी प्रीति रखते हैं इससे इन उपायोंमें से कोई उपाय चलना संभव नहीं है १। १० इससे जो मैं कहता हूं सो करो अभी तक हमारा पक्ष सब प्रकारसे बड़ा है हम उनको जीत सक्के हैं और वे हमसे सब तरह से न्यून हैं इससे जब तक पांडव अपनी जड़ न जमाने पावें और उनकी सहायताके लिये द्रुपद अपनी सेना वाहन इष्टमित्र और कुटुम्बियोंको न जोड़ने पावे और कृष्णजी बड़ी भारी यादवों की सेना लेकर उनकी सहायताको न आने पावें तबतक हम यहां से चढ़कर चल दें और हाथों हाथ द्रुपद को जीतकर पांडवों को मार लें श्रीकृष्णजी पाण्डवों के लिये राज्य धन और नाना प्रकार के भोग भी त्याग सक्के हैं अर्थात् पाण्डवों के लिये कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसको वह अदेय जानते हों ११। १६ देखो भरतजी ने पराक्रम से पृथ्वी को जीता और इन्द्रने पराक्रमही से तीनों लोक पाये हैं पराक्रमही शूरवीरोंका धर्म है और क्षत्रियों के लिये श्रेष्ठ पदार्थ है इससे यहां से चलकर द्रुपद को जीतकर पराक्रमही से पाण्डवों को पकड़कर यहां लेआवें साम दाम और भेद से उन का निग्रह होना किसी प्रकारसे सम्भव नहीं है पाण्डवोंको पराक्रम से पकड़ने

पर तुम अकंटक होकर राज्य करना इसके सिवाय मेरी समझमें दूसरा उपाय नहीं देख पड़ताहै वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! यह सुनकर धृतराष्ट्रने कर्णकी बड़ाई की और कहा कि तू बड़ा शूरवीर और अस्त्रवेत्ता है क्यों न ऐसे कहै अच्छा अब तुम दोनों भीष्मजी विदुरजी और द्रोणाचार्यसे मन्त्रकरके ऐसी बात विचारो जिससे हमारे सुखका उदय हो यह कहकर धृतराष्ट्रने उन तीनोंको बुलवाया और सब वृत्तान्त कहकर अपनी २ सलाह देनेको आज्ञादी १७।२५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकद्वितीयोऽध्यायः २०२॥

दोसौतीनका अध्याय।

धृतराष्ट्र का भीष्मजी से मन्त्र पूंछना और भीष्मजीका आधा राज्य पांडवों को बांटदेने का उपदेश करना॥

भीष्मजी बोले कि हमको पांडवोंके साथ विग्रह करना अच्छा नहीं जान पड़ताहै हमारे लिये तो धृतराष्ट्र और पांडु दोनों एकहीसे हैं हमको गांधारी और कुन्ती दोनों के पुत्रोंकी रक्षा करना बराबर उचित है और पांडव भी धृतराष्ट्र दुर्योधन और २ कौरव कुल के मनुष्यों के एकसेही हैं इससे मेरी समझ में तो उनसे मिलाप करके उनको आधा राज्य बांट देना उचित है क्योंकि यह राज्य उनके भी बाप दादोंका है जैसे तुम राज्यको अपना करके देखते हो इसी प्रकार से पांडव भी अपनाही मानते हैं और जो यह राज्य उनके बाप दादों का नहीं है तो तुम्हारा कहां से आया तुमने तो अधर्म से राज्य लिया है और उनके तो बापको राज्य मिलाथा इससे उनको आधा राज्य बांटदो इसीमें सब का हितहै और जो ऐसा न करोगे तो हम सबोंका कल्याण न होगा और तुम्हारी बड़ी अपकीर्ति होगी कीर्ति बड़ा पदार्थ है अपकीर्ति के साथ जीना निष्फल है इससे वह बात करो जिसमें कीर्ति रहै कीर्तिवान् मनुष्य का नाम संसारमें सदैव बना रहता है अपने कुलको और बाप दादे को देखकर अपने योग्य काम करना चाहिये यह प्रारब्धकी बात है कि पांडव कुन्ती सहित जीते हैं और पापी पुरोचन मारागया जबसे पांडवोंका लाक्षागृह में जलना मैंने सुनाहै तबसे मेरी दृष्टि किसी के सन्मुख नहीं होतीहै पुरोचनको कोई इतना दोष नहीं देताहै जितना सब संसारी मनुष्य तुमको बुरा कहतेहैं इससे उनका जीता हुआ होना तुम्हारी अपकीर्ति का नाश करनेवाला है तुमको उनके दर्शन करना उचित है उनके जीतेजी उनके बाप दादेके अंशको इन्द्रभी नहीं लेसक्ता है

क्योंकि वे सब धर्मात्माहैं और एकचित्त हैं और मरने से बचने पर राज्य पाने के योग्य हैं इससे जो तुमको धर्मसे मेरा प्रिय और सबका हित करना है तो उनको आधा राज्य बांटदो १। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकतृतीयोऽध्यायः २०३॥

दोसौचारका अध्याय।

द्रोणाचार्य का राजा धृतराष्ट्रको भीष्मजीके कहने के अनुसार पांडवोंको आधा राज्य देने और उनको बुलाने का मंत्र देना॥

भीष्मजीके उक्त मन्त्र कहने पर द्रोणाचार्य बोले हमको भी आपने मन्त्र देनेके लिये बुलायाहै मन्त्री को सदैव ऐसी सलाह देना चाहिये जिससे धर्म अर्थ और यश तीनों बने रहें इससे हमारी भी यही सलाहहै जैसी कि भीष्म जीने कही है पांडवोंको आधा राज्य बांटदो यही सनातन धर्म है अब जल्दी से किसी मधुर बोलनेवाले मनुष्यको राजा द्रुपदके पास भेजिये और वह यहां से बहुत से रत्न और दूल्हा दुलहिन कुन्ती और राजा द्रुपद के पुत्रों के लिये सुनहरी काम के सुन्दर २ वस्त्र लेजाकर सबको यथायोग्य तुम्हारी ओरसे देवै और द्रुपद के साथ सम्बन्ध होने की योग्यता को जताकर यह कहे कि धृतराष्ट्र ने बड़ी प्रसन्नता से यह कहा है कि हमारे कुलकी वृद्धि हुई और फिर राजा द्रुपद से पांडवों को बुलाने का हाल कहैं ऐसा करने से पांडव द्रुपद और धृष्टद्युम्न से तुम्हारी और दुर्योधन दोनोंकी प्रीति को कहेंगे और द्रुपद भी उनको यहां आनेकी आज्ञा देदेंगे और जब वे यहां आवें तब उनके लेनेके लिये दुश्शासन और विकर्ण सेनासहित जावें यहां आने पर पांडव तुमसे पूजित होने पर मन्त्रियों की सलाह मान कर अपने पिताकी राह पर चलेंगे हम और भीष्मजी दोनों इस बातके करने की सलाह तुमको और तुम्हारे पुत्रोंको देतेहैं १। १२ यह सुनकर कर्ण बोला कि ये दोनों निरन्तर तुमसे अर्थमान रहकर तुम्हारे अहितका मन्त्र देते हैं जो मनुष्य मन में दुष्टता रखके ऊपरसे सुहृदके समान बोले उसका वचन कल्याणकारक क्यों-कर होसक्ताहै संकटमें मित्र कुछ किसीका कल्याण या नाश नहीं करसक्ता है दुःख और सुख तो सब प्रारब्धके अनुसार होते हैं मनुष्य चाहे वृद्ध बालक ज्ञानी अथवा अज्ञानी सहागता सहित अथवा रहित कैसाही हो जहां रहताहै अपने कर्म के अनुसार भोग भोगता है हमने सुना है कि अम्बुबीच

नाम एक गृह नगरमें मगधदेशका राजाथा वह राजा नेत्र आदि सब इन्द्रियों से रहित होनेके कारणसे सब कामों में मन्त्रियों के आधीन रहताथा उसका एक मंत्री कर्णिनाम उसके राज्यका मालिक वनके रहताथा और अपने को बलवान् मान कर राजा का निरादर किया करताथा कुछ कालमें उस मन्त्रीने उस राजाके स्त्री धन रत्न और ऐश्वर्य आदि सब भोगों को आप लेलिया और उसके राज्यको भी छीनना चाहा परन्तु वह मन्त्री यत्न कर २ के हार गया और विना प्रारब्धके दीन और अंधे होनेपर भी उसके राज्यको न लेसका क्योंकि उस राजाका राज्य दैवके बलसे था वह उपाय से क्योंकर जासक्ता था इसी प्रकार से आपका भी यह राज्य जो दैवइच्छासे आपको मिलाहै तो आपही के पास रहैगा और जो दैवने इसके विपरीत रचाहै तो यत्न करने से भी न रहैगा परन्तु इस बातके कहने से आपको अपने मन्त्रियों की साधुता असाधुता दुष्टता और अदुष्टता जान लेनी चाहिये १३। २५ यह सुनकर द्रोणाचार्य बोले कि अरे दुष्ट! मैं तेरे दोषयुक्त भावको पहिचानताहूं तू पांडवोंसे वैरभाव रखने के कारणसे ऐसे दोषयुक्त वचन कहताहै मैंने तो कुलका बढ़ाने वाला परम हितकारी मन्त्र कहाहै तू उसको दोषयुक्त मानता है तो तू ही बता कि हितकारी मंत्र क्याहै जो मेरे कहने के विपरीत किया जायगा तो थोड़े ही दिनोंमें सब कौरवों का नाश होजायगा २६। २८॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकचतुर्थोऽध्यायः २०४॥

दोसौपांच का अध्याय।

विदुरजी का अनेक कारण दिखाकर धृतराष्ट्रको पांडवों से समता करने और भीष्मजी का वचन मानने का उपदेश करना॥

इसके पीछे विदुरजी बोले कि हे राजा! तुमको वह बात करनी चाहिये जिसमें बांधवोंका हित होवे तुम अब और किसीकी कुछ बात न सुनो जो भीष्म जी और द्रोणाचार्य ने कहा है वही आपके लिये परमहित है उससे अन्यथा आपको करना उचित नहीं है कर्ण उनके हितकारी मंत्र को श्रेष्ठ नहीं समझताहै मेरी समझमें तो इन दोनों पुरुषोत्तमों से बढ़कर इस संसार में बुद्धिमान् और आपका हितकारी कोई नहीं है ये दोनों अवस्था बुद्धि और शास्त्र में बड़ेहैं और तुमको और पांडवों को एकसा समझतेहैं और इस में भी सन्देह नहीं है कि ये दोनों बड़े धर्मात्मा राजा रामचंद्र और राजा गय की समान

सत्यवादी हैं तुमने इनका कोई अपकार नहीं किया है जो ये तुमको खोटी सलाह देंगे और न आजतक इन्होंने कोई बात ऐसी कही है जिससे तुम्हारा कल्याण न हुआहो इससे वे दोनों सत्यवादी और पराक्रमी होनेपर क्योंकर तेरे कल्याण की बात न कहें दोनों धर्मज्ञ और इस लोक में श्रेष्ठ हैं और दोनों पक्षपात रहित तेरे हितका करनेवाला मंत्र देते हैं मेरी समझ में तो आपका यही कल्याण है कि आप सब पांडवों को अपने दुर्योधनादिक पुत्रोंके समान समझें ये दोनों मंत्री पांडवों का अहित विचारने में आप का कल्याण नहीं देखते हैं और जो तुम्हारे हृदय में अपने पुत्रों की ओर से विशेष प्रीतिहै उस को जानकर उसके प्रकट करने में तुम्हारा भला न देख कर प्रकट करके नहीं कहते हैं इससे जो इन दोनों पुरुषोत्तमों ने जो मंत्र आपको दिया है और जो जो भाव जताये हैं उसके अन्यथा होने में कल्याण नहीं है १। १५ पांडव श्रीमान् और सव्यसाची हैं अर्जुनको इन्द्रभी संग्राम में नहीं जीतसक्ता है और दश सहस्र हाथी का बल रखनेवाले भीमसेन को देवता भी नहीं जीत सक्के हैं और ऐसा कौन है जो उस धर्मात्मा क्षमावान् सत्यवादी और पराक्रमी युधिष्ठिर को और बड़े शूरवीर नकुल और सहदेव को रणमें जीत सके भला जिनके मन्त्री श्रीकृष्णचन्द्र हैं और पक्षपर बलदेवजी सात्यकी और उनका श्वशुर राजा द्रुपद और धृष्टद्युम्नादिक साले हैं उनको किसी का जीत लेना क्या बड़ी बात है इससे आप उनको जीतना असम्भव और उनके राज्य मिलनेकी योग्यताको विचारकर जैसा उचित समझिये वैसा कीजिये पुरोचनकी कृत्यसे आपका बड़ा अयश होरहा है अब आप पाण्डवों को जीता हुआ जान कर उस अयशको मिटा दीजिये उनका जीता हुआ होना हमपर बड़ा अनुग्रह और हमारे कुलकी वृद्धिका कारण है इसके सिवाय द्रुपद भी बड़ा राजा है औरहम से उससे पहले से वैर चला आता है अब उसके साथ सम्बन्ध होने से हमारा पक्ष बड़ा होजायगा इसके सिवाय दशार्ह देशके क्षत्री बड़े बलवान्हैं वह सब उसी ओर रहेंगे जिधर कृष्ण होंगे और जहां कृष्ण होंगे वहां जयभी अवश्य होगी १६। २६ ऐसा कौनसा दैवसुप्त मनुष्य होगा जो मिलाप से सधते हुये कामको विग्रह करके करना चाहैगा तुम्हारे देश और पुरवासी सब मनुष्य पाण्डवोंको जीताहुआ सुनकर उनके दर्शनोंके अभिलाषी हैं आपको उनका प्रिय करना उचित है और दुर्योधन कर्ण और शकुनी तीनों अधर्मी हैं उनकी

बातको मानना आपको योग्य नहीं है हमने तो आपसे पहलेभी कहा था कि दुर्योधनके कारण से सब प्रजाका नाश होगा २७। ३०॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकपञ्चमोऽध्यायः २०५॥

दोसौछः का अध्याय।

धृतराष्ट्रकी आज्ञा से विदुरजीका पाण्डवोंको लेनेके लिये राजा द्रुपदके पास जाना॥

विदुरजी की उक्त बातों को सुनकर राजा धृतराष्ट्र बोले कि भीष्मजी और द्रोणाचार्यजीने मेरे परमकल्याणी वचन कहे हैं और हे विदुर! तूभी सत्य कहताहै धर्म के अनुसार जैसे मेरे पुत्र ये हैं वैसेही पाण्डवभी हैं इसमें कुछ संदेह नहीं है और यह राज्यभी जैसा मेरे पुत्रोंकाहै वैसाही पाण्डवोंका है इससे हे विदुर! अब तुम जाकर आदरपूर्वक पाण्डवों को माता और द्रौपदी सहित यहां लिवालाओ पाण्डव और कुन्ती प्रारब्ध से जीते हैं और प्रारब्धही से उन शूरवीरोंने द्रुपदकी कन्याको पाया है यहभी प्रारब्धसेही है कि पुरोचन मारा गया और हमारे कुलकी वृद्धि हुई और मेरा परम दुःख दूर हुआ १। ६ वैशम्पायन जी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे विदुरजी धृतराष्ट्र की आज्ञासे पांडव द्रौपदी और राजा द्रुपदके लिये अनेक प्रकारके धन और रत्न लेकर पांडवों के पास गये और राजा द्रुपद और विदुरजी दोनों न्यायके अनुसार मिलकर आपसमें कुशल क्षेम पूछकर बैठ गये ७। १० और पांडवों और श्रीकृष्णजीसे जो उस समय पाण्डवोंके पास आयेथे बड़ी प्रीतिपूर्वक मिलकर उनसे आदर किये जानेपर वह सब रत्न और धन जो पाण्डवोंके लिये लायेथे देदिये और द्रौपदी कुंती और द्रुपदके पुत्रोंको भी कौरवोंकी ओरसे लाये हुये वस्त्रादिक देकर पाण्डव और कृष्णचन्द्रके सामने द्रुपदसे विनीत होकर बोले कि राजा धृतराष्ट्रने तुम्हारी पुत्रों और मंत्रियों सहित कुशल पूछी है और तुमसे सम्बन्ध होने के कारणसे उनको बड़ा हर्ष हुआ है और भीष्मजी तथा आपके परम मित्र द्रोणाचार्य और २ कौरवोंने भी आपकी कुशल पूछी है और आपके साथ सम्बन्ध होने से सबको बड़ी प्रसन्नता हुई है ११। २० उन सबोंको संपूर्ण राज्य मिलने का ऐसा हर्ष नहीं है जैसा आपके साथ सम्बन्ध होने से हुआ है अब आप पाण्डवोंको मेरे साथ भेज दीजिये वह सब उनके दर्शनों की बाट देख रहे हैं पाण्डवभी बहुत दिनोंसे प्रदेशमें रहनेके कारण से अपने नगरको देखना चाहते होंगे और सब कौरवकुल के मनुष्य और स्त्रियां द्रौपदीको देखने की

अभिलाषायुक्तहैं इस से अब आप पांडवों को स्त्रीसहित बिदा करदीजिये आप की आज्ञा होने पर मैं बहुत जल्दी चलनेवाले दूतोंको पांडवों के कुन्ती सहित आनेका सँदेशा लेकर हस्तिनापुरको भेजूंगा २१ । २६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि षडधिकद्विशततमोऽध्यायः २०६ ॥

दोसौसात का अध्याय।

पांडवों का हस्तिनापुर में आना धृतराष्ट्रका उनको आधा राज्य बांट देना और पांडवों का धृतराष्ट्रकी आज्ञासे खांडवप्रस्थमें इन्द्रप्रस्थ नाम नगर बसाकर रहना ॥

यह सुनकर राजा द्रुपद बोले कि हे विदुरजी ! तुम बड़े ज्ञानीहो तुमने सब बातें यथार्थ कही हैं मुझको भी इस संबन्धके होने से बड़ा हर्ष हुआहै परन्तु मैं इनके जानेके लिये अपने मुखसे कुछ नहीं कह सक्ताहूं जो पांडव कृष्ण और पांडवोंके परमहितैषी बलदेवजी इन सबकी इच्छा होवे तो मुझे उनके जानेमें किसी प्रकार की शंका नहीं है यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि हम सब आपके ही आधीनहैं आप जैसी आज्ञा दीजियेगा वैसाही हम करेंगे १ । ५ यह सुन कर कृष्णचन्द्र बोले कि हमको इनके जाने में कुछ बुराई नहीं जान पड़ती है आगे राजा द्रुपद की जैसी इच्छाहो यह सुनकर राजा द्रुपद बोले कि हमारी भी इच्छा कृष्णचन्द्र के अनुसारहै पांडव जैसे हमारे संबन्धी हैं उसी प्रकार से कृष्णचन्द्रके हैं और कृष्णचन्द्र जितना पांडवोंका हित चाहतेहैं उतना पांडव उनको नहीं चाहतेहैं वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे राजा द्रुपद से आज्ञा पाकर पांडव श्रीकृष्ण और कुन्ती सहित विदुरजी के साथ हस्तिनापुरको वहांसे चल दिये राजा धृतराष्ट्रने उनके आनेका संदेशा पाकर विकर्ण चित्रसेन द्रोणाचार्य कृपाचार्य और अन्य २ कौरवों को पांडवोंके लाने के लिये भेजा और पांडवों ने उन सबके साथ २ धीरे २ नगर में प्रवेश किया सब नगरवासी उनके दर्शनोंकी इच्छासे जुड़ आये और उनके प्रसन्न करने को नाना प्रकारके श्रेष्ठ वचन सुनाने लगे कोई कहने लगा देखो अब वही पुरुषोत्तम फिर आताहै जो हमारा धर्मके अनुसार पुत्रों के तुल्य पालन करता था दूसरा बोला हमारे लिये तो इनका आना ऐसाहै मानों राजा पांडु वनसे लौट आया तीसरा कहने लगा कि इससे अधिक और हमारा क्या प्रिय होगा कि पांडव फिर लौटकर हमारे नगरमें आये चौथा बोला भाई ! जो कुछ हमने दान तप और होम कियाहै उसके फलसे पांडव सौ वर्षतक हमारे नगरमें रहें ६।२०

इसके पीछे पांडवोंने महलोंके समीप पहुँचकर धृतराष्ट्र भीष्मजी और अन्य २ कुरुकुल के वृद्ध मनुष्यों को दण्डवत् की और धृतराष्ट्रकी आज्ञा से घर के भीतर गये थोड़े दिन विश्राम करनेपर राजा धृतराष्ट्र और भीष्मजी ने उनको बुलाया और धृतराष्ट्रने उनसे कहा कि अब तुम खांडवप्रस्थ में जाकर अर्जुन से रक्षित होकर इस प्रकार से दुःखरहित होकर वास करो जैसे इन्द्रसे रक्षित होने से देवता निर्द्वन्द्व होकर रहतेहैं हम चाहतेहैं कि फिर आपस में विग्रह न होवे वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! पांडव यह सुनकर राजाको प्रणाम करके श्रीकृष्णजी सहित आधा राज्य पाकर खांडवप्रस्थको चलदिये और वहां पहुँचकर नगर बसानेकी इच्छासे उस पृथ्वीकी शांति व्यासजीसे कराई उपरांत पृथ्वीको नापकर नगर बसाया उस नगरके चारों ओर समुद्रके समान गहरी खाई खुदवादी और प्राकार अर्थात् कोट बड़ा ऊंचा और शोभायमान बनवा दिया और उसके बीचमें राजभवन ऐसे सुन्दर बनवाये कि वह नगर नागों की भोगवतीपुरी के समान दीखनेलगा नगरके द्वार मंदराचल पहाड़के तुल्य ऊंचे और छिद्ररहित बनवाये और उन द्वारोंपर संपूर्ण शस्त्र अस्त्र रखवाकर उनकी रक्षाके लिये द्वारपालक बैठा दिये और बड़ी ऊँची २ अटारियां बनवाकर बड़ी तीक्ष्ण बरछियाँ रखवादीं और तीक्ष्ण अंकुश शतघ्नी यंत्रजाल और लोहेके बड़े २ चक्रों से शोभित कर दिया कोटके भीतर बड़े सुन्दर २ रहनेके लिये श्वेत २ घर बनवादिये और बड़ी २ सड़कें निकलवाकर नगरका विभाग अच्छे प्रकारसे कर दिया उस नगरका नाम इन्द्रप्रस्थ रक्खा और पाण्डवोंके बसनेपर वह स्वर्गकी समान शोभायमान होगया रत्नोंसे जटित होनेके कारणसे वह नगर ऐसा दीखता था जैसे आकाश में बादलोंका समूह बिजली सहित मालूम होताहै उस नगर में युधिष्ठिर के रहनेका गृह कुबेर के घरकी समान बनाथा और उसी में बड़े २ वेदपाठी ब्राह्मण और सब भाषाओंके जाननेवाले मनुष्य जा बसे और व्यापारी लोग देश देशसे आकर वहां बसनेलगे शिल्पविद्याके जाननेवाले मनुष्यों नेभी वहां आकर वास किया नगरके बाहर सुन्दर२ बाग लगवा दिये उन बागों में आम, नींब, अशोक, चंपक, पुन्नाग, नागपुष्प, लकुच, पनश, शाल, ताड़, तमाल, बकुल, केतक आदि नाना प्रकारके सुन्दर पुष्प और फलवाले वृक्ष लगवा दिये उन वृक्षों पर मोर कोकिला आदि अनेक २ मीठी बोली बोलने वाले पक्षी वास करने लगे उन बागोंमें सुन्दर लताओंके गृह बनवा दिये और

ठहरने के लिये ऐसे २ घर बनवाये कि उनकी दीवारों में मनुष्य का मुख दर्पण की तरह से दिखाई देताथा इनके सिवाय चित्रगृह और नृपलीला यात्राके लिये पर्वत भी जहां तहां बनवा दिये सुन्दर २ बावड़ी और सरोवर जिनमें कमल फूलेहुयेथे और उनके किनारे पर हंस और चकवा चकवी वास करते थे नगर के चारों ओर बनवा दिये इन सब के सिवाय वह नगर अनेक क्रीड़ाओं के स्थानोंसे युक्त करदिया पांडव वहां धृतराष्ट्र और भीष्मजी की आज्ञासे बसने लगे वह नगर पांडवोंसे बड़ा सुशोभित होगया और बलदेवजी और कृष्णचन्द्र उनको उस नगर में बसाकर वहां से पाण्डवोंकी अनुमतिसे द्वारका को चले गये २१ । ५१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकसप्तमोऽध्यायः २०७ ॥

दोसौआठ का अध्याय।

पांडवों के पास नारदजीका आना और उनसे एक स्त्री होनेके कारण से आपस में विरुद्ध न होने के लिये उपाय करने को कहना ॥

इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय बोले कि महाराज हमारे अगले पुरखे बड़े प्रतापीथे अब आप यह कहिये कि पांडवोंने आधा राज्य मिलने पर क्या किया और द्रौपदीने उनके साथ कैसा वर्ताव किया और पांचों के वही अकेली स्त्री होने पर उनमें आपस में विरुद्ध क्यों नहीं हुआ मैं इस सब कथाको विस्तार सहित सुना चाहताहूं यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले कि राज्य मिलने पर राजा युधिष्ठिर धर्म से पृथ्वी का पालन करने लगे और सब पांडव शत्रुओं को जीतकर सत्यवादी और धर्मपरायण होकर परस्पर प्रीति के साथ बड़े आनन्द-पूर्वक रहने लगे एक दिन वह सब आनन्दपूर्वक बड़े मोलके राजसम्बन्धी आसनोंपर बैठे हुये थे कि उस समय वहां दैवइच्छा से नारदजी आये उनको देखकर युधिष्ठिर उठ खड़ा हुआ और अपने आसन पर बैठाकर बड़ी भक्ति से उनकी पूजा की और अपना राज्य उनको निवेदन किया तब नारदजीने प्रसन्न होकर युधिष्ठिरको आशीर्वाद दिया और सब भाइयों को बैठने की आज्ञा दी उनकी आज्ञा पाकर सब भाई बैठ गये और द्रौपदी से नारदजी के आनेका हाल कहला भेजा द्रौपदी उनके आनेका हाल सुनकर पवित्रतासे वहां गई और नारदजीके चरणोंको अपने दोनों हाथों से छूकर उनके सम्मुख खड़ी होगई नारदजी ने उसे अनेक आशीर्वाद दिये और कहा कि जाओ

उसके चलेजाने पर नारदजी ने उन पांडवों से अकेले में कहा कि देखो यह द्रौपदी तुम पांचों भाइयों की स्त्री है इससे तुमको ऐसा यत्न करना चाहिये जिससे तुममें आपस में विरुद्ध न होवे पूर्वकाल में सुंद और उपसुंद नाम दो राक्षस भाई थे और ऐसे बलवान् थे कि कोई उनको नहीं मार सक्ता था और उन दोनों में ऐसी प्रीति थी कि एकही घर में दोनों रहते एक साथ खाते एक शय्या पर सोते और एकही आसन पर बैठते थे परन्तु तिलोत्तमा अप्सरा के कारण से आपस में कटकर मरगये इससे तुम भी ऐसा यत्न करो कि तुममें आपसमें भेद न होवे और नित्य बढ़ती हुई प्रीतिमें विक्षेप न पड़े १ । २० यह सुनकर युधिष्ठिर बोले कि महाराज सुंद उपसुंद किसके पुत्रथे उनमें आपस में भेद क्योंकर हुआ और एकने दूसरे को क्योंकर मारा और वह तिलोत्तमा नाम अप्सरा किसकी थी जिसके कारण से उन दोनोंने आपस में लड़कर एक दूसरे को मार डाला में इस वृत्तान्त को पूरा २ सुना चाहताहूं २१ । २३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकाष्टमोऽध्यायः २०८ ॥

दोसौनौ का अध्याय ।

सुन्द और उपसुन्द दोनों दैत्यों के तपस्या करने और ब्रह्माजी से वरदान पानेकी कथा ॥

नारदजी बोले हे युधिष्ठिर ! मैं इस पुराने इतिहासको विस्तारपूर्वक कहताहूं तू भाइयों सहित सुन पहिले समय में हिरण्यकश्यप दैत्य के वंश में निकुंभ नाम एक दैत्य बड़ा बली और तेजस्वी था उसके सुंद और उपसुंद नाम दो बड़े पराक्रमी क्रूर और दारुण पुत्र उत्पन्न हुये वे दोनों भाई परस्पर बड़ी प्रीति से एक सलाह एक सम्मत और सुख दुःखको एकसा भोग करके रहते थे दोनों में से कोई विना दूसरे के न भोजन करता था न कुछ कहता था और एक दूसरे के प्रियको करता था वे दोनों जो कुछ काम करते थे एकही साथ करते थे और उन दोनों कीसलाह भी एकही थी जिसको एक नाहीं करता उस बातको दूसरा कभी नहीं करता था उन दोनों ने तीनों लोकों को विजय करना विचारकर दीक्षा ली और दोनों विन्ध्याचल पहाड़ पर जाकर बड़ा तप करने लगे दोनोंने भूंखे प्यासे रहकर जटा रखाये और वल्कल वस्त्र पहिरे हुये केवल वायुके आधार पर एक पांव और अंगूठों के बल खड़े होकर ऊर्ध्वबाहु करके विना निद्रा के बहुत दिनों तक तप किया उनके तप से वह पहाड़ ऐसा तप्त होगया कि उसमें से धुआं निकलने लगा उसको देखकर बड़ा आश्चर्य

हुआ देवता उनके तपको देखकर बड़े भयभीत हुये और तप भंग करने की इच्छासे उन्होंने अनेक रत्नों सहित स्त्रियां उनके लुभाने को उनके पास भेजीं परन्तु उन दोनोंने अपना व्रत भंग नहीं किया इसके पीछे देवताओं ने यह माया की कि उन दोनोंके सम्मुख उनकी बहिन माता और स्त्रियोंको बड़े २ राक्षसोंने शूल हाथमें लेकर उनके सामने मारकर गिरा दिया और वे स्त्रियां आर्त बोली से पुकारीं कि हमारी रक्षा करो परन्तु उन दोनों ने इसपर भी अपने व्रतको न छोड़ा और न किसी प्रकार का क्षोभ किया यह देखकर वे मायारूपी स्त्रियां और राक्षस अन्तर्धान होगये इसके पीछे ब्रह्माजीने आकर उन दोनों से कहा कि वर मांगो ब्रह्माजी को देखकर वे दोनों अपने हाथ जोड़कर उन के सम्मुख खड़े होगये और बोले कि महाराज जो आप हमपर प्रसन्न हैं तो हम को यह वरदान दीजिये कि हम मायावेत्ता, अस्त्रवेत्ता, बली और कामरूप जो इच्छा में आवै सो स्वरूप धारण करलें और हम दोनों अमर होजायँ यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि सिवाय अमर होने के तुम्हारी और सब कामना पूरी होगी तुमने जब तपस्या कीथी तब अमर होनेका संकल्प नहीं कियाथा यह वर तुमने विपरीत मांगाहै हां तुमने तीनों लोकोंकी विजय और प्रभुता होनेके निमित्त तप कियाहै सो ये सब तुमको मिलेगी परन्तु अमर नहीं होसक्ते हो और जो चाहो तो अमर होने के समान अपनी मृत्युका कोई विधान मांगलो यह सुनकर वह दोनों बोले हमको तीनों लोकमें सिवाय हमारे एक दूसरेके और कोई न मारसके यह सुनकर ब्रह्माजी बोले अच्छा हमने तुमको यह वरदान दिया जब तुम दोनों एक दूसरेको मारोगे तभी मरोगे और कोई तुम दोनोंको तीनोंलोकमें न मार सकेगा १।२५ यह कहकर ब्रह्माजी तो उन दोनोंको तपसे निवृत्त करके अपने लोकको चले गये और वे दोनों वर पाकर तीनों लोक से अभय होकर अपने घर को आये उनको देखकर उनके सब सुहृद् बहुत प्रसन्न हुये और उन दोनों ने अपनी जटा कटाकर सुन्दर २ मुकुट और अच्छे २ वस्त्र पहिर लिये इसके पीछे सब दैत्योंने उनके वर पानेकी प्रसन्नतासे बड़ा उत्सव किया घर २ में यही शब्द सुनने में आता था भक्षण भोजन दान और विहार करो, गावो और पीवो और सब नगर में अनेक २ प्रकार के बाजे बजे इस प्रकार से क्रीड़ा करते हुये उन दैत्योंका एक वर्ष एक दिनके समान बीतने लगा २६।३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकनवमोऽध्यायः २०९॥

दोसौदश का अध्याय।

सुन्द उपसुन्द दोनों दैत्यों के तीनों लोक विजय करने की कथा॥

नारदजी बोले हे पांडवो! उस उत्सव के बीतने पर दोनों दैत्यों ने तीनों लोकों के विजय करने की सलाह की और अपने मंत्री सुहृद् और वृद्ध दैत्यों से अनुज्ञात होकर प्रास्थानिक कर्म करके मघा नक्षत्रमें रात्रिके समय युद्धके लिये यात्रा की उनके साथ बहुतसी सेना गदा, पट्टिश, शूल, मुद्गर आदि अनेक शस्त्र लिये और कवच पहिने हुये हो ली और दोनों मंगलरूप स्तुतियों को सुनते हुये सेना सहित बड़े आनंदके साथ वहांसे चलदिये उसके पीछे वे दोनों बलवान् आकाश में उछलकर देवताओं के लोकमें पहुँचे उनके आने और वरदान पानेका हाल सुनकर सब देवता स्वर्ग छोड़कर ब्रह्मलोकको चले गये इस प्रकारसे पहिले उन दोनों ने इंद्रलोकको जीता और उपरांत यक्ष, राक्षस और आकाशमें चलनेवाले देवयोनियों समेत पातालवासी नागों को और समुद्रमें बसनेवाली सब म्लेच्छ जातियों को विजय किया इसके पीछे उन दोनों ने संपूर्ण पृथ्वी को विजय किया और अपनी सेनाके दैत्यों को बुलाकर बोले कि पृथ्वी में राजऋषि और ब्रह्मऋषि लोग यज्ञ और हव्य कव्य आदि कर्म कर २ के देवताओं के तेज बल और लक्ष्मी को बढ़ाते हैं तुम सब उनके यज्ञोंको विध्वंस कर करके सबको मारडालो यह आज्ञा देकर वे दोनों क्रूर दैत्य पूर्व दिशामें समुद्रके किनारे पर चले गये और जो कोई ब्राह्मण उनको यज्ञ करते या कराते मिला उसको उन्होंने मार डाला और उनके दैत्यों ने ऋषियों की अग्निहोत्र को उठा २ कर जल में डाल दिया तब ऋषियों समेत महात्मा ब्राह्मणों ने उनको शाप दिये परंतु वरदानके कारणसे उनके शाप निष्फल होगये जब उन तपसिद्ध शमपरायण और महात्मा ब्राह्मणों ने देखा कि हमारे शापसे कुछ असर नहीं होताहै तब वे भयभीत होकर अपने २ नियमों को छोड़ २ कर इस प्रकारसे भागने लगे जैसे गरुड़ को देखकर सर्प भागते हैं उस समय दैत्योंकी उपाधिसे मुनियोंके सब आश्रम स्रुवे और कलश आदि टूट गये और संपूर्ण जगत कालहतके समान होगया जब ऋषिलोग उन दोनों दैत्योंके भयसे अंतर्धान होगये तब उन राक्षसों ने वन और पहाड़ों में मतवाले हाथी और सिंह व्याघ्र आदि अनेक प्रकारके रूप धर २ के ऋषियों को मार मारकर यमलोकमें पहुँचा दिया १।२१ उस समय पृथ्वीपर

संपूर्ण यज्ञ, वेदपाठ, व्यापार, हाटोंका लगना, देवकार्य, विवाह, खेती, गोरक्षा, पितृकार्य और वषट्कार बंद होगये और पृथ्वी उग्र दर्शन होगई उन दोनों दैत्योंके ऐसे कर्मोंको देखकर सूर्य चंद्रमा ग्रह नक्षत्र और ताराओं को बड़ा दुःख हुआ इस प्रकारसे वे दोनों दैत्य सब दिशाओं को जीतकर शत्रुरहित होकर कुरुक्षेत्र में रहने लगे २२। २६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकदशमोऽध्यायः २१०॥

दोसौग्यारह का अध्याय।

सब देवता और महर्षियों का ब्रह्माजी के पास जाकर सुन्द और उपसुन्द का वृत्तान्त कहना और ब्रह्माजी की आज्ञा से विश्वकर्मा का विश्व को मथकर तिलोत्तमा को उत्पन्न करना॥

नारदजी बोले हे पाण्डवो! उन दोनों दैत्यों के कारण से सब महर्षि सिद्ध और देव ऋषियों को बड़ा दुःख हुआ और वे सब जितेन्द्रिय जितात्मा और जितक्रोध ऋषि लोग सब जगत् पर कृपा करके ब्रह्माजी के पास गये और उन ब्रह्माजी को ब्रह्मऋषियों से वन्दित देखकर वे सब बैखानस बालखिल्य मरीचि आदि अयोनिज, ज्ञानी, तेजस्वी और तपस्वी ऋषि लोग उन के सन्मुख चले गये और प्रणाम करके उन्हों ने सुन्द उपसुन्द का सब वृत्तान्त कह सुनाया और रक्षा के लिये प्रार्थना की ब्रह्माजी ने उस वृत्तान्त को सुनकर एक मुहूर्त भर विचार किया उपरान्त विश्वकर्मा को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम एक अत्यन्त स्वरूपवान् स्त्री उत्पन्न करो यह सुनकर विश्वकर्मा ने सब शोभायमान रत्न पदार्थों को मथकर ब्रह्माजी को नमस्कार करके एक स्त्री उत्पन्न की वह स्त्री ऐसी दर्शनीय और स्वरूपवान् थी कि विश्व में उसके स्वरूप के समान कोई स्त्री न थी और नखसे लेकर चोटी तक सब अंग ऐसे शोभायमान और प्रभायुक्त थे कि दृष्टि उन अङ्गों में घुस कर फिर निकलने को असमर्थ होजाती थी उस स्त्री को देखकर सब के चित्त चलायमान होगये ब्रह्माजी ने उसका नाम तिलोत्तमा रक्खा क्योंकि उस के सब अङ्ग अति शोभायमान विश्व के पदार्थों के शोभित २ अङ्गों में से तिलतिल के अनुमान से शोभा ले लेकर बनाये गये थे वह स्त्री उत्पन्न होने पर हाथ जोड़ कर ब्रह्माजी के सन्मुख खड़ी होगई और बोली कि महाराज मुझको क्या आज्ञा है १। १८ यह सुनकर ब्रह्माजी बोले कि तू जाकर अपने रूप से सुन्द उपसुन्द

दैत्यों के मनको मोह और ऐसा यत्नकर जिससे उन दोनों में आपस में विरोध उत्पन्न हो यह सुनकर उस स्त्री ने ब्रह्माजी को नमस्कार किया और सब देवताओं की प्रदक्षिणा करने लगी उस समय विष्णु भगवान् पूर्वाभिमुख महादेवजी दक्षिणाभिमुख और संपूर्ण देवता उत्तराभिमुख बैठे हुये थे जब तिलोत्तमा उन सबकी प्रदक्षिणा करने लगी तब सब देवता और महर्षि तो अपना २ मुख मोड़ कर जिधर २ तिलोत्तमा जाती थी देखने लगे परन्तु शिवजी विष्णु भगवान् और इन्द्र ने धीरज करके अपने मुखों को उसकी ओर नहीं मोड़ा परन्तु उसके दर्शनों के लिये शिवजी के जिस २ दिशा में तिलोत्तमा जाती थी उसी उसी दिशा में एक एक मुख होता जाता था और इन्द्रके सब अंग में सहस्र आंखें होगईं तब से इन्द्र सहस्राक्ष और शिवजी चतुर्मुख होगये सिवाय ब्रह्माजी के और ऐसा वहां कोई न था जिसकी दृष्टि उस स्त्री पर न पड़ी हो सब देवताओं ने यह देखकर निश्चय किया कि हमारा काम इस स्त्री के द्वारा अवश्य होजायगा प्रदक्षिणा करके तिलोत्तमा चली गई और ब्रह्माजी ने सब देवता और महर्षियों को उसके चलेजाने पर वहां से बिदा कर दिया २०।३२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकैकादशोऽध्यायः २११॥

दोसौबारह का अध्याय।

ब्रह्माजी की आज्ञा पाकर तिलोत्तमा स्त्री का जाना और उसको देखकर सुन्द उपसुन्द का कामासक्त होकर आपस में कटकर मरजाना और पाण्डवों का द्रौपदी के पास रहने का नियम करना॥

नारदजी बोले हे पाण्डवो! वे दोनों सुन्द और उपसुन्द दैत्य पृथ्वी आकाश और पाताल तीनों लोकों को जीतकर देव गन्धर्व यक्ष नाग और मनुष्यों के सब रत्नों को लेकर निर्भय और बिना शत्रुके होकर बड़े आनन्द से देवताओं के तुल्य विहार करने लगे और सुन्दर स्त्री भोजन और आनन्ददायक पान आदि अनेक भोगों को नित्यप्रति भोगकर बड़ी प्रसन्नता से रहने लगे और अपनी इच्छाके अनुसार वन, महल, पर्वत, उद्यान आदि में जहां चाहते विहार करने लगे एक समय वे दोनों भाई मद्यपान करके स्त्रियों सहित विन्ध्याचल पहाड़ के ऊपर गये और एक अत्यन्त रमणीक स्थान पर सघन वृक्षों की लताओं में जहां नाना प्रकार के फूल फूल रहे थे सुन्दर आसन बिछा बिछाकर स्त्रियों सहित बैठ गये वे स्त्रियां उनके सन्मुख खड़ी हो कर उनकी स्तुति के गीत गाने लगीं उस

समय तिलोत्तमा ने लाल वस्त्र ओढ़कर त्रिलोकी के मोहनेवाला शृङ्गार किया और समय पाकर नदी के किनारे से धीरे धीरे फूल बीनती हुई उस ओर को चली जिस ओर वह दोनों भाई मद्यसे मतवाले होकर उन स्त्रियों का गाना और नाचना देखरहे थे उसको देखकर वे दोनों दैत्य काम से व्याकुल होगये और अपने २ आसन छोड़ २ कर उस तिलोत्तमा के पास भागकर गये सुन्द ने उसको अपने दाहिने और उपसुन्द ने बायें हाथसे पकड़ लिया और दोनों मद्यपान धन ऐश्वर्य और कामदेवके मदसे मत्त होने के कारण कहनेलगे कि यह मेरी स्त्री है उस समय सुंदने कहा कि तेरी यह बड़ी है और मेरी भार्या है यह सुनकर उपसुंद ने कहा कि नहीं तेरी यह बहू है और भार्या मेरी है इस प्रकार से आपस में झगड़ा करते २ वह दोनों क्रोध के आवेश में आगये और परस्पर प्रीति को छोड़कर अपने २ हाथों में गदा लेकर युद्ध करने लगे और एक दूसरे के प्रहार से मरकर रुधिर भरे हुये सूर्य की समान चिलकते हुये पृथ्वी पर गिरपड़े वे स्त्रियां यह देखकर भागगईं और सब दैत्य भयभीत और दुःखित होकर पाताल लोक चले गये १ । २० यह देखकर ब्रह्माजी प्रसन्न हुये और सब देवता और महर्षियों के साथ वहां आकर तिलोत्तमा की बड़ाई की और उसको वरदान दिया कि जिन जिन लोकोंतक सूर्यका प्रकाश जाता है उन उन सब लोकों में जहां तेरी इच्छा होगी तू जा सकेगी और तेरे शरीर में ऐसा तेज रहैगा कि तुझको कोई अच्छी प्रकार से न देख सकैगा ब्रह्माजी इस प्रकार से तिलोत्तमा को वरदान दे इन्द्रको तीनों लोक के राज्यपर स्थापित करके अपने लोकको चले गये २१ । २४ हे पांडवो ! देखो वे दोनों भाई आपस में परम प्रीति होने परभी स्त्री के कारण से आपस में कटकर मरगये इसी कारण से मैं तुमको भी कहताहूं कि तुम भी आपस में परम स्नेह रखतेहो कहीं एक स्त्री होने के कारण से तुममें आपस में विरुद्ध न होवै इससे जो तुम मेरा प्रिय किया चाहतेहो तो ऐसा उपाय करो जिसमें तुम्हारा स्नेह ज्यों का त्यों बना रहै वैशम्पायनजी बोले हे राजा जन्मेजय ! यह सुनकर पांडवोंने नारदजीके सन्मुख एक २ वर्ष द्रौपदी के पास बारी बारी से रहनेका नियम किया और यह प्रतिज्ञा की कि हममें से जो कोई एक दूसरे को द्रौपदी के पास बैठा हुआ देखे वह ब्रह्मचारी रहकर बारह वर्षतक वनवास करै इस नियम को सुनकर नारदजी प्रसन्न होकर अपनी इच्छा के अनुसार चलेगये और पांडव उसी नियम से रहने लगे इस कारण से हे राजा जन-

मेजय ! पांडवों में एक स्त्री होनेपर भी कभी विरुद्ध नहीं हुआ २५ । ३१ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकद्वादशोऽध्यायः २१२ ॥

दोसौतेरहका अध्याय।

एक ब्राह्मण के काम करने को अर्जुन का अस्त्र लेनेको महल के भीतर चला जाना और ब्राह्मणका काम करके अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार वनवास को चला जाना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! पांडव अपने अस्त्रों के प्रताप से सब राजाओं को जीतकर वहां नियमपूर्वक बसने लगे और वह द्रौपदी उन पांचोंके वशमें रहती आई पांडव द्रौपदी से और द्रौपदी अपने पांचों पतियों से बड़ा स्नेह रखतीथी और पांडवों के धर्मसे राज्य करनेपर कौरव लोग निर्दोष होगये और उनकी बड़ी वृद्धि हुई एक समय ऐसा हुआ कि एक ब्राह्मण की कुछ गाय चोर चुराकर ले चले वह ब्राह्मण क्रोधमें भरा हुआ खाण्डवप्रस्थ में दौड़ा हुआ आया और बड़े ऊंचे स्वर से पांडवों से पुकार २ कर कहने लगा कि दौड़ो महाराज मेरी गौवें नीच मनुष्य चुराकर लिये जाते हैं आपके राज्य में ऐसा क्योंकर होवे कि कौवे शांत स्वभाव ब्राह्मणों की हविको बिगाड़ें और सिंहके चलेजाने पर उसके शून्यस्थान में शृगाल राज्य करें जो राजा षष्ठांश भागका लेनेवाला प्रजाकी रक्षा नहीं करता है वह सब लोक के पापका भागी होता है इससे इस मेरे रोने पुकारने और अपने धर्मको समझकर मेरी रक्षा कीजिये १ । १० वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! अर्जुन उस ब्राह्मण के रोने पुकारने को सुनकर बोला कि तुम किसी प्रकारका भय मत करो और वहांसे अपने शस्त्र लेने को गया परन्तु जहां उसके शस्त्र रक्खे हुये थे उस स्थान पर युधिष्ठिर को द्रौपदी सहित बैठा हुआ जानकर वहां न जासका और उस ब्राह्मणके रोने पुकारने को समझकर विचार करनेलगा कि जो अपने द्वारपर रोते हुये आये हुये ब्राह्मणकी रक्षा नहीं करताहूं तो बड़ी नास्तिकता होगी और जो भीतर शस्त्र लेने जाताहूं तो प्रतिज्ञा भंग होने से बड़ा अधर्म होगा और राजा युधिष्ठिरका अपमान होगा अब क्या करना चाहिये महल में भीतर चले जाने पर मुझको बारह वर्षतक वनवास करना पड़ेगा और ब्राह्मण की रक्षा न करने से क्षात्रधर्म को कलंक लगेगा और अधर्म होगा सो धर्म सदैव करना चाहिये वनवास धर्म के आगे तुच्छ है इससे जो धर्मके करने से वनमें मेरे प्राण भी जाते रहें तो कुछ संदेह नहीं है यह विचारकर अर्जुन महल

के भीतर चला गया और युधिष्ठिर से संदेशा कहलाकर अपने अस्त्र लेआया और उस ब्राह्मण से बोला कि अब शीघ्रता करो जिसमें चोर दूर न निकल जावें मैं तुम्हारा धन दिवाकर लौटूंगा यह कहकर अर्जुन कवच और अस्त्र धारण करके रथमें बैठकर उन चोरों के पीछे २ चलागया और उनको मारकर उस ब्राह्मण को उसकी गाय दिलाकर उसे प्रसन्न करके अपने घरको लौट आया ११। २४ घरमें आनेपर अर्जुन सब कुलके वृद्ध मनुष्यों को प्रणामकर राजा युधिष्ठिर के चरण छूकर बोला कि महाराज मुझको वनवास करने की आज्ञा दीजिये मैंने अपनी प्रतिज्ञा के प्रतिकूल आपके द्रौपदी के साथ बैठे हुये दर्शन किये और नियम को उल्लंघन करके मन्दिर के भीतर चलागया युधिष्ठिर यह अप्रिय बात सहसा सुनकर बड़ादुःखी हुआ और अर्जुन से कहने लगा कि भाई तुमने जो ब्राह्मण का काम करने को हमारे द्रौपदी के पास होने के समय मन्दिर में प्रवेश किया है मैं उस बात से अप्रसन्न नहींहूं जो बड़े के पास छोटा ऐसे समय में चलाजाय तो कुछ दोष नहीं है हां जो बड़ा छोटे के पास चला जावे तौ अलबत्ता अधर्म है इससे हे अर्जुन! मेरा कहना मान और वनको मत जा तैंने अधर्म नहीं किया है यह सुनकर अर्जुन बोला कि महाराज मैंने आपही से सुना है कि धर्मको बहाना करके कभी नहीं छोड़ना चाहिये इससे सत्य धर्मको नहीं छोड़ूंगा वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार से कहकर और उससे वनमें बारह वर्षतक वास करने की आज्ञा लेकर वनको चल दिया २५। ३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकत्रयोदशोऽध्यायः २१३॥

दोसौचौदह का अध्याय।

अर्जुन का ब्राह्मणों सहित हरद्वार में वास करना और वहां उलूपी नाम नाग कन्या से संगम होना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन के वनवास को चलनेपर उसके साथ बहुत से वेदपाठी ब्रह्मज्ञानी यती ब्रह्मचारी भगवद्भक्त सूत पौराणिक कथक ऊर्ध्वरेता और सुन्दर आख्यानों के कहनेवाले ब्राह्मण भी हो लिये और अर्जुन उन सबके साथ रमणीक वन, सरोवर, नदियां, देश और तीर्थों को देखता हुआ हरद्वार में गंगातट पर पहुँचा और वहां अपना आश्रम किया और एक बड़ा भारी कौतुक किया उसको हे जनमेजय! हम तुमसे कहते हैं वे

ब्राह्मण लोग वहां गंगातट पर अग्निहोत्र करने लगे और वह उन ब्राह्मणों में रहने लगा उन ब्राह्मणों के उन अग्निहोत्र आदि क्रियाओं के करने से वह स्थान अत्यन्त सुशोभित होगया एक दिन यह कौतुक हुआ कि अर्जुन गंगाजी में स्नान करने को गया और स्नान तर्पण करके अग्निहोत्र करने को बाहर निकलने को था कि नागराज की उलूपीनाम कन्या उसके सुन्दर स्वरूप पर कामासक्तहो उसको हरकर अपने घरमें लेगई अर्जुन उस घर में बलती हुई अग्नि देखकर अग्निहोत्र करके अग्नि देवता को प्रसन्न कर उस कर्मके पूरा होने पर हँसकर उस नागराज की कन्या से पूंछने लगा कि यह कौन देश है और तू किसकी पुत्रीहै और यह सहसा काम तैंने क्यों किया है यह सुनकर उलूपी बोली कि मैं ऐरावत नागके कुलमें कौरव्यनाम नागराजकी पुत्रीहूं तुझे गंगा स्नान करते देखकर तेरे स्वरूप पर कामदेव से पीड़ित होकर तुझे यहां ले आईहूं अब मेरा मन सिवाय तेरे दूसरे को नहीं चाहता है तूभी मुझे अंगीकार करके प्रसन्नकर १ । १६ यह सुनकर अर्जुन बोला कि मैंने धर्मराज की आज्ञा से बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत लिया है इससे मैं अपने वशमें नहीं हूं और इधर तेरा भी अभीष्ट किया चाहताहूं आजतक मैंने कभी न झूंठ कहा है न अपनी प्रतिज्ञाको मिथ्या कियाहै इससे ऐसी बात विचार जिसमें तेरी भी कामना पूरीहो और मेरा धर्म न जाय यह सुनकर उलूपी बोली कि हां मैं जानतीहूं कि तुम सब भाइयों ने द्रौपदी के पास रहने का नियम और प्रतिज्ञा की थी और उसके भंग होने के कारण से तुमने बड़े भाई की आज्ञा से बारह वर्ष तक वनवास करने और ब्रह्मचर्य रहनेका व्रत लियाहै परन्तु मेरी कामना को पूरा करने में तुम्हारा धर्म नहीं जायगा क्योंकि दुःखीकी भी रक्षा करना तुमको उचितहै और जो मेरे अभीष्ट के करने में तुम्हारा यत्किंचित धर्म का लोपभी होवे तो मेरी प्राणरक्षा के फलसे वह धर्म ज्योंका त्यों बना रहेगा मैंने तुम्हारी भक्ति की है तुमको भी मुझे चाहना उचित है और जो तुम मेरी मनोकामना को पूरी न करोगे तो मुझे जीती हुई न देखोगे इससे इस प्राणदान करने के उत्तम धर्मको करो मैं तुम्हारी शरण में आई हूं तुम दुःखी और अनाथोंकी सदैव से रक्षा करते चले आये हो इससे मुझ दीन दुःखी रोती हुई और अपने से प्रीति करनेवाली पर कृपा करो और मेरी इच्छाको पूरा करो २०।२१ वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! अर्जुन उलूपी की उक्त बात को सुन

कर उसीके अभीष्ट को पूरा करना अपना धर्म समझकर रात्रिभर उस नागराज के घरमें उलूपी के पास रहा और प्रातःकाल होने पर वहीं हरद्वारमें अपने स्थान को चला आया और वह कन्या उसको पहुँचाकर अपने घर को चली गई और यह वरदान दे गई कि सब जलचर जीव आजसे तेरे वश में होकर रहेंगे ३२। ३५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकचतुर्दशोऽध्यायः २१४॥

दोसौपन्द्रह का अध्याय।

अर्जुनका अनेक तीर्थ और देशोंकी यात्रा करना और मणिपूर नगर में पहुँचकर वहांके राजाकी कन्या से विवाह करना और उसके पुत्र होने पर वहां से चला आना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुनने वहां आकर सब वृत्तांत ब्राह्मणों को सुनाकर उन सबके साथ वहां से हिमालय पर्वत के पार्श्वको चल दिया और अगस्त्यवट और वशिष्ठगिरिपर होता हुआ भृगुतुंग तीर्थ में पहुँचा और वहां स्नान करके ब्राह्मणों को सहस्रों गऊ और स्थान पुण्य करके हिरण्यबिंदुनाम तीर्थ में पहुँचा और वहां स्नान करके सब ब्राह्मणों सहित पुण्य स्थानों को देखता हुआ पूर्व दिशा को देखने की इच्छा से पहाड़ परसे उतर कर यात्रा की और नैमिषारण्य में उत्पलिनी नाम नदी को देखता हुआ नंदा, अपरनन्दा, कौशिकी, महानदी, गया और गंगा आदि अनेक पुण्य नदी तीर्थ और आश्रमोंमें होता और सब जगह दान पुण्य करता हुआ अंग बंग और कलिंग नाम देशोंके तीर्थों में पहुँचा और बहुत कुछ वहां भी दान पुण्य किया इसके पीछे कलिंग देशकी सीवां पर पहुँचने पर सब ब्राह्मण लोग अर्जुन से बिदा होकर लौट आये और अर्जुन थोड़े आदमियों को अपने साथ लेकर समुद्रके किनारे पहुँचा और वहां से रमणीक स्थानों और घरों को देखता महेंद्र पर्वत पर तपस्वियों के दर्शन करता हुआ मणिपूर नगर में पहुँचा वहां के सब तीर्थ और पुण्य स्थानों को देखकर वहां के चित्रवाहन नाम राजा के पास गया उस राजा के चित्रांगदा नाम एक बड़ी स्वरूपवान् कन्या थी दैवयोग से अर्जुन उस कन्या को नगर में विचरते हुये देखकर उसके स्वरूपको निहार कर उस पर कामासक्त होगया और राजा के पास जाकर बोला कि मैं क्षत्री हूं अपनी कन्या को मुझे दीजिये यह सुनकर राजा पूंछने लगा कि तू किस का पुत्रहै और तेरा नाम क्या है अर्जुन बोला कि मैं पांडव हूं और कुंतीका पुत्रहूं यह

सुनकर वह राजा बोला कि हमारे कुलमें प्रभंजननाम एक राजा था उसने संतान न होने के कारणसे महादेवजी की तपस्या की महादेवजी ने प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि तेरे एक संतान होगी तबसे हमारे कुल में जो राजा होता है उसके एकही संतान होती है सो हमारे पुरुखाओं के तो सबके पुत्र हुये और मेरे अकेली यह कन्या हुई है परन्तु मैं इस कन्याही को पुत्रके समान मानताहूं और इस कन्याको अपने वंश के चलाने की इच्छा से इस प्रतिज्ञापूर्वक तुम्हें देसक्ताहूं कि इसके जो पुत्र होवे वह हमारे कुलका बढ़ाने वाला होवे यह सुनकर अर्जुन लड़के को देना अंगीकारकर वहां तीन वर्ष बसकर उस कन्या के पुत्र उत्पन्न होने पर वहां से राजाकी आज्ञा लेकर और अपनी स्त्री को छाती से लगाकर अन्य देशोंमें घूमनेको चल दिया १।२७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकपंचदशोऽध्यायः २१५ ॥

दोसौसोलह का अध्याय।

अर्जुनका दक्षिण दिशा के तीर्थों को देखने जाना और सौभद्रनाम तीर्थ पर स्नान करते में एक ग्राह करके अर्जुन का पैर पकड़ना और उस ग्राहका अर्जुन के छूने पर स्त्री होजाना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन मणिपूरसे चलकर दक्षिण दिशा में समुद्रके तटपर गया और वहांके पुण्यतीर्थ जहां बड़े २ तपस्वी रहते थे देखने लगा वहांके तपस्वियों ने उससे कहा कि यहां पांच तीर्थों पर जाना निषेध है वहां तुम मत जाना वह तीर्थ यह हैं अगस्त्य १ सौभद्र २ पौलोम ३ कारंधम ४ और भरद्वाज तीर्थ ५ अर्जुन यह सुनकर और उन तीर्थों को शून्य देखकर उन तपस्वियों से हाथ जोड़कर पूंछने लगा कि महाराज! इन तीर्थों पर जाना क्यों निषेध है यह सुनकर तपस्वी बोले कि इन पांचों तीर्थों में पांच बड़े २ मगर रहते हैं जो कोई मनुष्य उनमें स्नान करने जाता है वह उसको खींचकर लेजाते हैं इससे उन तीर्थों पर जाना वर्जितहै यह सुनकर अर्जुन मना किये जाने पर भी उन तीर्थों के देखने को चलागया और सौभद्रनाम तीर्थपर पहुँचा सहसा उसमें स्नान करने लगा उस समय उस तीर्थ में रहने वाले ग्राहने आकर अर्जुनका पैर पकड़ लिया अर्जुन उसे कुछ न समझ बल से जलके बाहर खींचलाया वह ग्राह जलके बाहर आकर अर्जुनके छूतेही दिव्य स्त्री होगया अर्जुन उसको देखकर अचरज में आगया और प्रसन्न हो

कर उससे पूंछने लगा कि तू कौन है कहां से आई है और यह पाप कर्म क्यों करती है १। १५ यह सुनकर वह स्त्री बोली कि मैं देवारण्य में विहार करने वाली बर्गानाम अप्सराहूं और कुबेरकी अत्यन्त प्यारीहूं मेरी चार सखी इच्छानुसार चलने वाली और हैं उनमें से एकका नाम सौरभेयी है दूसरी समीची नाम तीसरीका नाम बुद्बुदा है और चौथीको लता कहते हैं एक समय हम पांचों कुबेरके घरको जातीथीं राहमें हम सबने एक वन में एक शंसितव्रत वेदपाठी को तपस्या करते देखा उस ब्राह्मण के तेजसे वह वन सूर्यकी समान प्रकाशित होरहा था हम पांचों उसकी तपरूप उत्तमता को देखकर उसकी तपस्या भंग करने को आकाशसे पृथ्वीपर उतर आई और गाती नाचती और अनेक भाव दिखाती उस ब्राह्मण के सन्मुख गईं परन्तु उसका चित्त चलायमान नहीं हुआ और वह अपनी तपस्या करता रहा उपरांत उसने हम पांचों के आचरण को देखकर क्रोध करके शाप दिया कि तुम पांचों ग्राह होकर सौ वर्ष तक जलमें वास करो १६। २३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकषोडशोऽध्यायः २१६॥

दोसौसत्रहका अध्याय।

अर्जुनका पांच अप्सराओं को शापसे छुटाना और मणिपूर होकर गोकर्ण की यात्रा करना॥

वह स्त्री बोली कि उस ब्राह्मण से शाप दिये जाने पर हम पांचों महादुःखी हुईं और उस ब्राह्मण की शरणागत जाकर कहने लगीं कि महाराज! हम पांचों ने यह अयोग्य बात अपनी अवस्था और कामसे दर्पित होने के कारण से की थी आप उसको क्षमा कीजिये स्त्रियों को धर्मात्मालोग अवध्य कहते हैं इससे आपको हमें मारना उचित नहीं है ब्राह्मण को बुद्धिमान् मनुष्य सब प्राणियों का मित्र कहते हैं और अच्छे लोग शरण आयेकी रक्षा करते हैं इससे आप कृपा करके हमारे अपराध को क्षमा कीजिये यह सुनकर वह सूर्य के समान तेजस्वी ब्राह्मण प्रसन्न हुआ और कहने लगा कि शत और शतसहस्र दोनों अनन्त संख्यावाची हैं परन्तु तुम्हारे लिये वह शतवर्ष सौही वर्ष होंगे मैंने कभी आजतक हँसी में भी झूठ नहीं कहा है इससे तुम पांचों को सौ वर्षतक ग्राहरूप धरकर जल में वास करना पड़ैगा उपरान्त जब कोई पुरुषोत्तम जिसके पैरको तुम पकड़ोगी तुमको पानी से खींचकर बाहरले आवैगा तब तुम अपने स्वरूप को फिर पाओगी और वे तीर्थ तुम्हारे मोक्ष होने

पर नारीतीर्थ नामों से विख्यात होंगे और जो कोई उनमें स्नान करेगा वह पवित्र हो जायगा यह सुनकर हम पांचों उस ब्राह्मण को दण्डवत् और परिक्रमा करके बड़ी दुःखी होकर वहांसे चलदीं और चिन्ता करने लगीं कि हम उस मनुष्यको थोड़े काल में कहां पावें जो हमको इस शापसे छुटावे १। १३ इसी अवसर में हमने नारद मुनिको देखा उनको हमने दण्डवत् की और लज्जित होकर उनके समीप खड़ी होगई नारदजी हमको देखकर पूछने लगे कि तुमको क्या दुःख है हमने सब वृत्तांत कह सुनाया उसको सुनकर उन्होंने कहा कि दक्षिण के अनूपदेश में पाँच तीर्थ बड़े सुन्दर और रमणीक हैं तुम पाँचों जाकर उनमें ग्राहरूप धरकर बसो थोड़े दिनों में राजा पाण्डुका अर्जुन नामी पुत्र तुमको इस शापसे छुटावैगा यह सुनकर हम पाँचों यहां चली आई और ग्राहरूप धरकर पाँचों तीर्थों में वास करने लगीं सो नारदजी के कहने के अनुसार मैं तो तुम्हारी कृपासे शापसे मुक्त होगई परन्तु मेरी चारों सखियां रह गई हैं उनपर भी कृपाकरके उनको शापसे छुटादो वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! अर्जुन उस अप्सरा की बातको सुनकर उन चारों तीर्थों में क्रमसे गया और उन चारोंको भी शापसे मुक्त कर दिया तब वे पाँचों अपना २ दिव्य स्वरूप धारण करके अर्जुन से आज्ञा पाकर चलीगई और अर्जुन उन पाँचों तीर्थों को निर्विघ्न करके चित्राङ्गदा के देखने को फिर मणिपूर नाम नगर को लौट आया और अपने बभ्रुवाहन नामी पुत्रको जो चित्राङ्गदा के उत्पन्न हुआ था देखकर वहां से गोकर्ण की ओर यात्रा करगया १४। २४॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकसप्तदशोऽध्यायः २१७॥

दोसौअठारह का अध्याय।

अर्जुन का गोकर्ण होकर पश्चिम समुद्र पर जाना वहां श्रीकृष्णजी से मिलाप होना और रात्रिको वहां बसकर श्रीकृष्णजी सहित द्वारकापुरीको जाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! अर्जुन गोकर्ण पहुँचकर वहां से पश्चिम समुद्र के तटपर गया और वहां के पुण्य तीर्थों और स्थानों की यात्रा करता हुआ प्रभास नाम तीर्थों में पहुँचा उसके वहां आनेका हाल सुनकर श्रीकृष्णजी वहां गये और दोनों नर नारायण बड़ी प्रीति से परस्पर मिलकर आपस में कुशलक्षेम पूंछकरै उस वनमें एक स्थान पर बैठगये उस समय श्रीकृष्णचन्द्र ने अर्जुनसे तीर्थ यात्रा करने का कारण पूंछा अर्जुन ने सब

वृत्तान्त कह सुनाया और वे दोनों वहांसे ठहरनेके लिये रैवत पहाड़ पर चले गये वहां नौकरोंने श्रीकृष्णजीकी आज्ञासे पहिले से वास करनेको स्थान बना रक्खा था श्रीकृष्णजी अर्जुन सहित उस स्थान पर ठहरे और अर्जुन श्रीकृष्ण जी के साथ भोजन करके वहां पर बैठकर नाच और नटोंकी कृत्य देखने लगा इसके पीछे अर्जुन उन सब नाचनेवालों को प्रसन्न करके और उनको जाने की आज्ञा देकर सुन्दर शय्या पर लेटगया और श्रीकृष्णजीसे वन नदी और पर्वतों की कथा कहता हुआ सोगया और जागने पर आवश्यक कृत्यसे निबट कर सुनहरी रथपर चढ़कर द्वारकाको चला उसके आनेका हाल जानकर सब द्वारकावासी उसे देखनेको मार्ग में आकर ठहरगये और उसकी पूजाके लिये द्वारकापुरी को बहुत अच्छी तरहसे सजाया और भोजअन्धक और वृष्णिवंश की सहस्रों स्त्रियां झरोखों पर खड़ी हो होकर अर्जुन को देखने लगीं इसके पीछे अर्जुन द्वारका में पहुँचकर सब वृष्णि अन्धक और भोजवंशी वृद्ध तरुण और बालकोंसे यथायोग्य मिलकर श्रीकृष्णजी के भवनमें गया जो बड़ा रम्य और सब प्रकार के रत्न और भोजन के पदार्थों से सजा हुआ था और वहां श्रीकृष्ण जी के साथ रहने लगा १। २१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकाष्टदशोऽध्यायः २१८॥

दोसौउन्नीस का अध्याय।

द्वारकापुरीवासी क्षत्रियोंका रैवत पहाड़ पर बड़ा उत्सव करना और वहां कृष्णकी बहिन सुभद्राको देखकर अर्जुन का कामासक्त होना और श्रीकृष्णजीका अर्जुनको सुभद्रा के हर लेजाने की सलाह देना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अर्जुन के वहां बहुत दिन बसने पर वहां के सब वृष्णि और अन्धकवंशी क्षत्रियों ने रैवत पहाड़ पर बड़ा उत्सव किया उस उत्सव में उन क्षत्रियों ने ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये उस पहाड़ के चारों ओरका देश उन क्षत्रियों के डेरों से अत्यन्त सुशोभित हो गया बजन्त्री वहां बजाने गन्धर्व गाने और नाचनेवाले नाच करने लगे और सब वृष्णिवंशी कुमार स्वर्णजटित रथों में चढ़ २ कर उस उत्सवको देखने गये पुरवासी अपनी स्त्रियों सहित झुण्ड के झुण्ड मिलकर कोई पैदल और कोई सवार हो होकर वहां जानेलगे इसके पीछे बलदेवजी रेवती के साथ उस स्थानको गये और बड़ा प्रतापी राजा उग्रसेन भी सहस्र स्त्रियों को साथ लिये

हुये पहुँचा उसके पीछे पीछे गन्धर्व लोग भी गाते बजाते गये और शाम्ब और प्रद्युम्न जो युद्ध में बड़े दुर्मद थे वहां पहुँचकर देवताओं के सदृश विहार करने लगे और अक्रूर, सारण, गद, बभ्रु, विदूरथ, निशठ, चारुदेष्ण, पृथु, विपृथु, सत्यकि, सात्यकी, भङ्गकार, महारव, हार्दिक, उद्धव और अन्य अन्य लोग अपनी अपनी स्त्रियों को साथ लिये हुये और गानेवालों का गाना सुनते हुये उस उत्सव में पहुँचे इन सबके वहां जुड़ने पर वह स्थान अत्यन्त शोभायमान होगया इन सबके जाने के पीछे अर्जुन और श्रीकृष्णजी भी साथ वहां गये और इधर उधर विचर कर वहांकी शोभा देखने लगे उस समय उन दोनों ने वसुदेवजी की सुभद्रानाम पुत्री को सखियों के बीचमें विचरते हुये देखा उसके अत्यन्त सुन्दर स्वरूप की छवि को देखकर अर्जुन कामासक्त होगया यह देखकर श्रीकृष्णजी बोले कि तूतो वनवासी है तेरा मन कामदेव से ऐसा मथित क्यों होता है यह सुभद्रा नाम मेरी बहिन और सारण की सहोदरी और वसुदेवजी मेरे पिता की प्यारी पुत्री है जो तू इसे चाहता है तो मैं पिता से तुझे देने के लिये कहूं यह सुनकर अर्जुन बोला कि हे वासुदेवजी! यह आप की बहिन और वसुदेवजी की पुत्री होकर ऐसा कौन मनुष्य है जिसके मन को न मोहे जो इसका विवाह मेरे साथ होवे तो मेरा बड़ा कल्याणहो हे महाराज अब आप इसके मिलनेका उपाय बताइये जो वह उपाय मनुष्य के करनेका होगा तो अवश्य करूंगा यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि क्षत्रियों का स्वयंवर परम विवाह है परन्तु उसमें यह शंका रहती है बिन जाने कन्या किसको प्रिय माने और जो बलवान् क्षत्रिय होते हैं वे बलसे कन्याको हरकर भी लेजाते हैं वह भी क्षत्रियों के लिये श्रेष्ठ धर्म है इससे हमारी समझ में तो यह आता है कि स्वयंवर करने में न जाने यह मेरी बहिन किसको वरै तुम इसको बलसे हरकर लेजावो यह सुनकर अर्जुन ने श्रीकृष्णजी से सुभद्राको हरकर लेजानेका निश्चय पूरा पूरा करके दूतोंको इन्द्रप्रस्थ में राजा युधिष्ठिर से आज्ञा लेने के लिये भेजा युधिष्ठिर ने सुनकर उसी समय सुभद्रा को हरने की आज्ञा देदी १। २५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकैकोनविंशोऽध्यायः २१९॥

दोसौबीस का अध्याय।

अर्जुन के सुभद्राको हरने और बलदेवजी और वृष्णिवंशी क्षत्रियों के क्रोध करनेकी कथा॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! युधिष्ठिर से आज्ञा पाने और श्रीकृष्णजी के दृढ़ सम्मत देने पर अर्जुन सुभद्राको रैवत पहाड़ पर गई हुई जानकर सुनहरे रथमें जिसमें शैब्य और सुग्रीवनाम के घोड़े जुत रहे थे और घंटों और जालों से सुशोभित होरहा था कवच धारण करके और खड्ग आदि सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्र उस रथ में रखकर उस अग्निकी तुल्य प्रकाशमान और मेघ की समान शब्द करनेवाले रथमें सवार हुआ और अहेर खेलने के बहाने से चलदिया उस समय सुभद्रा रैवत पहाड़ की परिक्रमा और देवताओंका पूजन कर ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन सुनके द्वारकाको आरहीथी अर्जुन उसे देखतेही कामदेवके बाणों से पीड़ित होगया और अपने रथको उसके पास ले जाकर बलसे उसे उठाकर अपने रथ में बैठालिया और रथ हांककर इन्द्रप्रस्थकी ओर चलदिया यह देखकर सुभद्राके साथके मनुष्य दौड़ते और पुकारते हुये द्वारकापुरीको आये और धर्मसभामें आकर सभापालकसे सब हाल कह सुनाया १।१० यह सुनकर सभापालकने बड़े शब्द करनेवाली सन्नाह की अर्थात् जिसके सुनने से सब सेना युद्ध को तैयार होजावे बजवाई उस शब्दके सुनतेही सब वृष्णि अंधक और भोजवंशी क्षत्रियलोग जो महारथी और सुवर्ण की सी प्रभा रखनेवाले थे और मणि मूंगा आदि पहिने हुये अग्निके समान तेजस्वी देख पड़तेथे अपना २ खाना पीना छोड़कर उस सभामें चले आये और सैकड़ों सिंहासनों पर आकर बैठगये उस समय सभापालक ने उन देवताओं के समान बैठेहुये क्षत्रियों से अर्जुनका सब चरित्र कहा उसको सुनकर वे वीर अहंकारसे उस बातको न सहसके और क्रोधसे लाल २ नेत्र करके पुकार पुकारकर परस्पर कहने लगे कि कवच धनुष और तोमर आदि सब अस्त्र शस्त्र लेआवो और रथोंको जोतो उनके रथोंमें घोड़े जोतने ध्वजा लगाने और अस्त्र शस्त्र लानेकी खड़बड़ाहट से बड़ा शब्द हुआ उसको सुनकर बलदेवजी नीलाम्बर पहिरे हुये वहां चले आये और उन सब से कहने लगे कि कृष्ण तो चुपका बैठा है इसके मनकी वृत्तिको जाने विना तुम्हारा क्रोध करना और गर्जना निरर्थक है इससे पहिले इससे तो पूंछो कि इसकी क्या इच्छाहै पीछे जो चाहो सो करना यह सुनकर वे सब अच्छा कहकर चुपके होरहे और बलदेवजीके कहने

के अनुसार फिर सभा में चलेगये उस समय बलदेवजी ने श्रीकृष्णचन्द्रसे कहा कि यह सब देखकर तुम चुपके क्यों बैठे हो हम सबने तुम्हारे कारणसे अर्जुन का बड़ा आदर सत्कार किया था परन्तु वह कुलकलंकी इस योग्य नहीं था भला ऐसा कौन होगा जो जिस बर्तनमें खाय उसी में छेद करे और दूसरे के उपकारको भूलकर ऐश्वर्यकी इच्छासे विना विचारे ऐसा काम कर बैठे इस अर्जुनने मेरा और तुम्हारा दोनोंका अनादर करके अपनी मृत्युरूप सुभद्राको हराहै उसने मेरे शिरपर पैर रक्खा है सो में भी उसके पैरको इस प्रकार से सहूंगा जैसे सर्प के शिरपर पैर रखनेवाले मनुष्यके साथ सर्प बर्ताव करता है में इस अर्जुनका अनउपकार नहीं सहसक्ता हूं इससे में अकेलाही इस पृथ्वी को कौरवों से रहित करूंगा यह सुनकर सब वृष्णि और अन्धकवंशके क्षत्रिय लोग गरजने लगे और बलदेवजी के साथ हो लिये ११ । ३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकविंशोऽध्यायः २२० ॥

दोसौइक्कीस का अध्याय।

श्रीकृष्णजी का धर्मयुक्त बातें कहकर यदुवंशियोंका क्रोध निवृत्त करना और अर्जुनका विवाह सुभद्रा से होना व श्रीकृष्णजी का दायज लेकर इन्द्रप्रस्थको आना और सुभद्राके अभिमन्यु पुत्र और द्रौपदीके पांचपुत्रों का उत्पन्न होना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! जब बलदेवजी और सब वृष्णिवंशी अपने २ पराक्रमके अनुसार अपनी २ बात कहचुके तब श्रीकृष्णजी बोले कि अर्जुन ने हमारे कुलका कुछ अपमान नहीं कियाहै उसने यह कर्म हमारे कुलका सन्मान करके किंयाहै क्योंकि वह न यादवोंको धनका लोभी जानताहै जो धन देकर सम्बन्ध करता और न स्वयंवरमें जीतना अच्छा समझताहै और गायकी तरह कन्यादान मांगना भी वीर क्षत्रियों को शोभा नहीं देताहै और न कन्याको मोल लेना अच्छा है इससे उसने इन सब बातों में दोष समझकर धर्मपूर्वक सुभद्राको हरा है अर्जुन सुभद्राके योग्य वर है क्योंकि वह भरतजी और शांतनुके वंशमें उत्पन्न हुआहै भला ऐसा कौन होगा जो अर्जुनके साथ अपना सम्बन्ध न करना चाहे और हमारी समझमें सिवाय महादेवजी के और कोई ऐसा नहींहै जो अर्जुनको युद्धमें जीत सके क्योंकि वैसेही तो हमारे घोड़े शीघ्र चलनेवाले हैं और वैसाही वह शीघ्र अस्त्र चलानेवाला योधा है इससे तुम सब शीघ्र जाकर मधुर वचन कहकर उसको लौटालाओ और जो वह तुम

सबको जीतकर सुभद्राको लेकर अपने नगर को चलागया तो तुम्हारी सम्पूर्ण कीर्ति थोड़ेही दिनोंमें नष्ट होजायगी यह सुनकर उन सबों ने वैसाही किया और अर्जुन के लौटआनेपर उसका विवाह सुभद्रा के साथ कर दिया गया इसके पीछे अर्जुन वहां वृष्णिवंशियों से पूजित होकर एक वर्षतक रहा उपरान्त इच्छाके अनुसार विहार करके पुष्करको चलागया वहां रहकर बारह वर्ष में जो शेषकाल रह गयाथा व्यतीत किया उपरान्त वहांसे सुभद्रासहित इन्द्रप्रस्थको आया और राजा युधिष्ठिर से यथायोग्य मिलकर ब्राह्मणों का पूजन करके द्रौपदी के पास गया उसको देखकर द्रौपदी नम्रता से बोली कि वहीं जावो जहां वह यादवकी पुत्री है संसारकी यही रीति है कि पहिला बँधा हुआ बंधन नये बंधनके बांधनेपर ढीला होजाता है यह कहकर वह विलाप करने लगी यह देखकर अर्जुन ने मधुरवाणी कह २ कर द्रौपदी के क्रोध को शांत किया और जल्दी से बाहर आकर सुभद्राका स्वरूप जो लाल रंग के रेशमी वस्त्र पहिरे हुईथी गोपियोंका सा बनाकर उसे घर के भीतर भेजदिया उसने भीतर जाकर कुन्तीको दण्डवत् की कुन्ती ने बड़े प्यारसे उसके मस्तकको चूमा और उसे आशीर्वाद दिया इसके पीछे वह चन्द्रमुखी सुभद्रा द्रौपदी के पास गई और उसको वंदना करके बोली कि मैं तेरी दासी हूं यह सुनकर द्रौपदी प्रसन्न होकर उससे मिली और बोली कि तेरा पति निःसपत्न होवे यह सुनकर सुभद्रा भी प्रसन्न होकर बोली कि ऐसाही होय उन दोनों की बातोंको सुनकर सब पांडव और कुन्ती बहुत प्रसन्न हुये १। २४ इसके पीछे श्रीकृष्णजी अर्जुन को इन्द्रप्रस्थमें पहुँचा हुआ जानकर बलदेवजी और वृष्णि अन्धकवंशी महारथी योधा और भाई पुत्र पौत्रों सहित बड़ी सेना लेकर इन्द्रप्रस्थ को आये उनके साथ वृष्णिवंशियोंका सेनापति अक्रूर,तेजस्वी उद्धव,सात्यकी, कृतवर्मा, प्रद्युम्न, शाम्ब, निशठ, शंकु, चारुदेष्ण, झिल्ली, विपृथु, सारण, गद और २ वृष्णि और अन्धकवंशी क्षत्रीलोग दायज ले लेकर आये उनका आना सुनकर युधिष्ठिरने नकुल और सहदेवको उनको आदर सहित लिवालानेके लिये भेजा वे दोनों आगे चलेगये और सम्पूर्ण वृष्णिवंशियों को सेना सहित आदरपूर्वक खांडवप्रस्थ में लिवालाये और वे सब लोग कृष्णचन्द्र और बलदेव जीके साथ उस नगर में जहां सब मार्ग जलसे छिड़केहुये और पुष्प चन्दन और अगर आदि अनेक चीजों से सुगन्धित और व्यापारियों से शोभायमान

होरहेथे पहुँचकर बहुत प्रसन्न हुये और सहस्रों ब्राह्मणों और पुरवासियों से पूजित होकर बड़े सुन्दर बनेहुये राजभवनों में गये युधिष्ठिर उनके वहां आने पर बलदेवजीसे यथायोग्य मिले और श्रीकृष्णजी के मस्तक को चूमकर हाथ पसारकर मिले इसके पीछे श्रीकृष्णजी भीमसेन से यथायोग्य मिले और युधिष्ठिर सब वृष्णि और अंधकवंशी यादवों से सत्कारपूर्वक वृद्ध बालक और बराबरवालों से यथायोग्य दण्डवत् नमस्कार और आशीर्वाद कह कहकर मिले २५। ४१ इसके पीछे श्रीकृष्णजी ने राजा युधिष्ठिर को अर्जुनके विवाह में कन्यापक्ष के जातिवालों के दियेहुये धनको दिया उसमें एकसहस्र सुनहरी रथ जिनमें चार चार घोड़े थे और एक २ हांकने को सारथी था दशसहस्र मथुरादेशकी गाय एक सहस्र सुवर्ण से भूषित घोड़े, एकसहस्र खच्चर जिसमें पांचसौ सुपेद और पांचसौ काले थे, एकसहस्र स्त्रियां जो स्नान पान और उत्सवआदि सब सेवाके कर्मों में बड़ी चतुर बालरहित सुवर्ण के गहने पहिनेहुये और बड़ी सुन्दरथीं एकलाख बाह्लिकदेशमें उत्पन्न हुये घोड़े दश मनुष्योंका बोझभर कृत और अकृत दोनों प्रकारका सुवर्ण और तीन ओरसे मद चूतेहुये हाथी जो युद्ध में कभी न भागें घंटा सुनहरी माला और हाथीवान सहित दिये थे युधिष्ठिरने बलदेवजी और श्रीकृष्णजीके लाये हुये उस धनरूपी समुद्र को जिसमें कम्बल और वस्त्र समुद्रके फेन थे और बड़े २ हाथी मानों उस समुद्रके बड़े २ ग्राहथे लेकर अपने सागररूपी कोशमें रखवादिया और उन सबका बहुत आदर सत्कार किया वे लोग कौरवों के साथ मिलकर गाने बजाने और नाना प्रकारके इच्छानुसार विहार करने लगे और थोड़े दिनोंतक वहां इसीप्रकार से रहकर कुरुओं से पूजित होकर युधिष्ठिर के दियेहुये रत्नों को लेकर बलदेवजी सहित द्वारकाको चलेगये और श्रीकृष्णजी वहीं अर्जुन के साथ रहगये और अर्जुन के साथ यमुनाआदिपर घूम घूमकर अहेर खेलनेलगे थोड़े दिनों में सुभद्राके एक पुत्र उत्पन्न हुआ वह उत्पन्न होने के समय अर्थात् चारों ओर से मन्यु अर्थात् क्रुद्धथा इस कारण से अर्जुन ने उसका नाम अभिमन्यु रक्खा उसकी बाहें बड़ी २ छाती चौड़ी और नेत्र बड़े सुन्दरथे और वह सुभद्रा के इसप्रकारसे उत्पन्न हुआ जैसे यज्ञमें मथनेपर शमीगर्भ से अग्नि उत्पन्न होता है युधिष्ठिर ने उसके उत्पन्न होनेपर दशसहस्र गोदान किये बालकपनही से श्रीकृष्ण और सब चाचा ताऊ आदि उसपर इसप्रकार से प्यार करते थे जैसे

सम्पूर्ण प्रजा चन्द्रमा को चाहती है ४२। ६८ श्रीकृष्णजीने उसके चूड़ा आदि शुभ कर्म आप अपने हाथ से किये और वह थोड़ेही दिनोंमें इसप्रकार से बढ़ गया जैसे शुक्लपक्षकी द्वितीयासे चन्द्रमा दिन २ बढ़ता है इसके पीछे उसने चारप्रकारकी धनुर्विद्या अर्थात् मन्त्रमुक्त जिसका प्रयोग किये जानेपर संहार न हो १ पाणिमुक्त अर्थात् बाण आदि से युद्ध करना २ मुक्तामुक्त अर्थात् प्रयोग और संहार जिसमें दोनों हों ३ और अमुक्त अर्थात् मन्त्रकी साधना से ४ और दशविधि अर्थात् आदान बाणको लेना १ संधना बाण चढ़ाना २ मोक्ष बाण चलाना ३ विनिवर्त्तन चलाये हुये बाणको लौटा लेना ४ स्थान संधानके समय त्रिज्याके बीचको जानना ५ मुष्टि तीन या चार अँगुलियों से पकड़ना ६ प्रयोग अँगुलियों के बीचमें बाण लगाना ७ प्रायश्चित्त हथेली आदिको शत्रुके मारे हुये अथवा अपने बाणसे बचाना ८ मंडल घूम २ कर रथ पर से बाण मारना ९ और रहस्य एकही बार में अनेक लक्ष्यों को भेदना १० और ब्रह्मास्त्र आदि दिव्य अस्त्र और खड्ग आदि मानुष अस्त्र अर्जुन से सीखे और युद्धकी सब क्रिया और रहस्यों को सीखकर सर्वज्ञता में अर्जुन के समान होगया अर्जुन उसको देखकर तृप्त होगया और उसको इसप्रकार से देखनेलगा जैसे इन्द्र उसको देखता था अभिमन्यु थोड़ेही काल में सब गुणयुक्त दुर्दर्श सिंहदर्पी मतवाले हाथी के समान पराक्रमी मेघके समान गर्जने वाला चन्द्रमाकासा मुख और पराक्रम रूप आकृति में श्रीकृष्णजी के समान होगया इसके पीछे द्रौपदी के भी पांचों पतियों से पांच पुत्र उत्पन्न हुये उनमें से युधिष्ठिर के पुत्रका नाम प्रतिविन्ध्य भीमसेन का सुतसोम अर्जुन का श्रुतकर्मा नकुलका शतानीक और सहदेवका श्रुतसेन था ब्राह्मणों ने युधिष्ठिर से कहा तुम्हारा यह पुत्र शत्रुओं के मारने में विन्ध्याचल के समान है इससे इसका नाम प्रतिविन्ध्य रक्खो और भीमसेनके पुत्रका नाम सुतसोम इसकारण से हुआ कि वह बड़ा धनुर्धारी और सहस्र सूर्य और चन्द्रके तेजके समान तेजस्वीथा और अर्जुन ने बहुत दिनों पीछे लौटकर सुना कि पुत्र हुआ है इससे उसके पुत्रका नाम श्रुतकर्मा रक्खागया और शतानीक राजऋषिके समान होने के कारण से नकुल के पुत्रका नाम शतानीक हुआ और कृत्तिकानक्षत्रमें जन्म होनेसे सहदेवके पुत्रका नाम श्रुतसेन किया गया द्रौपदी के ये पांचों पुत्र एक २ वर्ष के अंतर से हुये और धौम्यऋषि ने उनके चूड़ाकर्म आदि सब

संस्कार कराये और जब वे बड़े होगये तब अर्जुन ने उन सबको वेद पढ़ाकर संपूर्ण बाणविद्या और दिव्य तथा मानुप अस्त्र सिखाये उन देवकुमारोंकी सी प्रभावाले पुत्रों को देखकर पांडव अत्यन्त प्रसन्न हुये ६६। ८७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकैकविंशोऽध्यायः २२१॥

दोसौबाईसका अध्याय।

पांडवों का सब राजाओं को जीतकर धर्म से राज्य करना अर्जुन और श्रीकृष्णजीका जलक्रीड़ा करने को जाना और उनके पास एक तेजस्वी ब्राह्मण का आना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इसके पीछे पांडवों ने धृतराष्ट्र और भीष्मजीकी आज्ञा से और २ राजाओं को युद्धमें जीता और उस पुण्य-लक्षण पुण्यकर्मयुक्त युधिष्ठिरके आश्रय रहकर सब लोग बहुत प्रसन्न हुये युधिष्ठिरने धर्म अर्थ और काम तीनों को इसप्रकारसे सेवन किया जैसे कोई अपने भाई बन्धुकी सेवा करता है वे तीनों देहधारियों के तुल्य युधिष्ठिर को ब्रह्मका प्राप्त करनेवाला यज्ञों में वेदका प्रयोग करनेवाला और शुभ लोकोंका रक्षक समझकर और उसे मोक्षरूप जानकर उसकी सेवा करने लगे युधिष्ठिर की लक्ष्मी अचल और बुद्धि ब्रह्मपरायण होगई और उसके कारण से सब राजा धर्म करने लगे और इसप्रकारसे सुशोभित होगये जैसे वेदों से बड़ा यज्ञ बढ़जाता है और राजा युधिष्ठिरके पास धौम्य आदि ब्राह्मण इस प्रकार से रहनेलगे जैसे प्रजा-पतिके समीप देवता रहते हैं और प्रजा लोगों के नेत्र और चित्त इस प्रकार से राजा में लग गये जैसे पूर्ण चन्द्रमा को बड़ी प्रीति से हरकोई देखता है प्रजा की युधिष्ठिरसे यह प्रीति केवल पालन होने के कारण से न थी किंतु उसकी प्रीतिका यह कारण था कि युधिष्ठिरने उनकी सब मनोकामनाओं को पूरा कियाथा १। १० उसने कभी अपने मुख से अयोग्य असत्य असह्य और अप्रिय वचन नहीं कहे और सम्पूर्ण लोकका हितकारी होकर सुखपूर्वक विहार करनेलगा और सब पांडव अपने तेजसे सब राजाओं को तपाते हुये रहने लगे इसी प्रकारसे जब बहुत दिन व्यतीत होगये तब एक दिन अर्जुन ने श्रीकृष्णचन्द्र से कहा कि आजकल गर्मी की ऋतु है मेरी इच्छा यह है कि हम और आप दोनों सुहृज्जनों को साथ लेकर यमुनातट पर चलकर विहार करें यह सुनकर श्रीकृष्णजी बोले कि मेरी भी यही इच्छा है वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वे दोनों इस प्रकार से एक दूसरे से कहकर युधिष्ठिर

की आज्ञापूर्वक सुहृज्जनों को साथ लेकर यमुनातट को चले गये और वहां नानाप्रकार के डेरों में जो वृक्षों के बीच में इन्द्रपुरी की शोभा के समान सुशोभित लगे हुये थे जा उतरे और उनके भोजन के लिये बहुत सुन्दर २ भक्ष्य भोज्य और पेय पदार्थ बनाकर पहुँचा दिये गये इसके पीछे सब मनुष्य यथायोग्य जलक्रीड़ा करनेलगे और उनके साथ सुन्दर नेत्र और पयोधरवाली स्त्रियां भी क्रीड़ा करनेलगीं कोई स्त्री जलमें कोई वनमें कोई भवनों में और कोई श्रीकृष्ण और अर्जुनके साथ खड़ी होकर विहार करनेलगीं ११ । २२ उस समय द्रौपदी और सुभद्रा ने उन सब स्त्रियों को वस्त्र दिये और वे स्त्रियां लेकर प्रसन्नतासे कोई नाचने कोई किलकार मारने कोई हँसने और कोई २ मद्य पीने लगीं बहुत सी स्त्रियां एक दूसरी का मार्ग बन्द करके आपस में मारने पीटने लगीं और बहुत सी एकांत में बैठकर गुप्त मन्त्र विचारने लगीं और वह वन वेणु वीणा और मृदंगों के बजने से बड़ा रमणीक होगया इसके पीछे अर्जुन और श्रीकृष्णजी एक रमणीक स्थानपर जाकर बड़े मनुष्यों के बैठने के आसनों पर जा बैठे आपस में भूतकालकी अनेक कथा कहने लगे उस समय उन दोनों अश्विनीकुमारों की तरह बैठे हुये कृष्ण और अर्जुनके पास एक ब्राह्मण आया वह लम्बाई चौड़ाई में एकसा तरुण सूर्यके समान तेजस्वी चीर वस्त्र और जटाधारी था अंग उसका तपाये हुये सुवर्णके समान और ज्वालाके तुल्य नीली पीली प्रभायुक्तथा उसको देखकर अर्जुन और श्रीकृष्ण जी खड़े होगये २३ । ३३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकद्वाविंशतमोऽध्यायः २२२ ॥

दोसौतेईस का अध्याय।

अग्निदेवका ब्राह्मण स्वरूप धरकर अर्जुन और श्रीकृष्णसे खांडववन भस्म करनेमें अपनी रक्षा चाहनी और राजा श्वेतक के यज्ञसे अग्नि के अजीर्ण होने की कथा ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह ब्राह्मण अर्जुन और श्रीकृष्ण जीके पास आकर कहनेलगा कि मैं बहुत भोजन करनेवाला ब्राह्मण हूं सदा अप्रमाण भोजन करता हूं तुम दोनों से एक वार की तृप्ति होनेके प्रमाणवाली भोजनकी भिक्षा मांगताहूं यह सुनकर अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र बोले कि आप के लिये कौन अन्न बनवाया जावै जिससे आप तृप्तहों यह सुनकर वह ब्राह्मण बोला कि मैं अग्नि हूं अन्न भोजन नहीं करताहूं आपको मेरे योग्य भोजन

देना उचितहै मेरा भोजन यहहै कि मैं इस खांडववन को जीवजन्तुसहित भस्म करना चाहताहूं इसमें तक्षकनाग अपने परिवारसहित रहता है वह इन्द्रका मित्र है इस कारण से जब कभी मैं इसको जलाने आताहूं तभी इन्द्र मेघ वर्षाकर अग्नि ठण्ढी करदेते हैं इसकारण से मैं आजतक इसको भस्म नहीं कर सका हूं तुम दोनों बड़े वीर और सम्पूर्ण अस्त्रवेत्ता हो इसमे मैं तुमसे यह चाहता हूं कि तुम दोनों मेघसे मेरी रक्षा करो और जीव जन्तुओं को वन के बाहर न भागने दो १ । ११ इतनी कथा सुनकर राजा जनमेजय ने वैशम्पायनजी से पूछा कि महाराज अग्निदेव उस खाण्डव वन को जिसमें अनेक जीवजन्तु रहते थे क्यों जलाना चाहते थे मुझे इसमें कुछ बड़ा कारण जान पड़ता है आप उस सब कारण को विस्तारपूर्वक कहिये यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले कि कारण इसका यह सुनने में आया है कि पहले समय में श्वेतक नाम एक बड़ा बलवान् और इन्द्र की उपमा रखनेवाला राजाथा यज्ञ करने और दान देने में उस राजाकी बराबर आजतक कोई राजा नहीं हुआ उसकी बुद्धि नित्यप्रति यज्ञ करने और दान देने में ही रही एक समय उसने ज्योतिष्टोमादि सोमयज्ञोंको करना प्रारम्भ किया जब यज्ञ करते २ बहुत दिन होगये तब यज्ञ के धूमसे ऋत्विजलोग व्याकुल होगये और राजा को यज्ञ कराना बन्द करके चले गये राजा ने उनसे बहुत प्रार्थना की परन्तु वह धूमसे ऐसे व्याकुल होगये थे कि किसी प्रकार से नहीं लौटे इसपर उस राजा ने उन्हीं ऋत्विजों के द्वारा और ऋत्विजों को बुलाकर वह यज्ञ समाप्त किया १२।२१ इसके पीछे उस राजा ने फिर सौ वर्षतक यज्ञ करने की इच्छा की परन्तु उसको यज्ञ कराने के लिये कोई ब्राह्मण नहीं मिला राजाने अपने सुहृदों सहित ब्राह्मणों को यज्ञ कराने के निमित्त बड़े २ यत्नों से बुलाया और नम्रता से विनयपूर्वक बहुत कुछ दान देने को कहा परन्तु किसी ब्राह्मण ने उसको यज्ञ कराने की हांमी नहीं भरी तब उस राजाने क्रोध करके सब आश्रमवासी ब्राह्मणों से कहा कि जो मैं पतित और ब्राह्मणों की सेवा न करता होउँ तो आप सबको मुझे त्याग करना उचित है आपको मेरे यज्ञ करने की श्रद्धाको नष्ट करना और मेरा त्याग करना उचित नहीं है इससे आप सबों की प्रार्थना करताहूं कि आप सब मेरे ऊपर कृपा कीजिये आपकी कृपा से मैं अपना काम किया चाहता हूं और जो आप मुझमे दोष मानकर मेरा त्याग कीजियेगा तो मैं और ऋत्विजों को बुलाकर अपना

यज्ञ करूंगा यह कहकर राजा चुप होरहा और वे ब्राह्मण लोग यज्ञ कराने की अपनी सामर्थ्य न देखकर क्रोधित होकर राजा से बोले कि तेरे काम तो नित्यही लगे रहते हैं हम तुझे काम कराते २ थक गये हैं तू हमारे श्रम को न जानकर शीघ्रता कररहा है इससे तू हमको त्याग दे और शिवजीके पास जा वे तुझको यज्ञ करावेंगे यह सुनकर वह राजा क्रोधित होकर वहां से कैलास पर्वत पर चलागया और महादेवजी की तपस्या करने लगा बहुत दिनों तक तो व्रतसे रहा किया कभी बारहवें अथवा सोलहवें दिन मूल फल का आहार कर लेताथा उपरान्त छःमहीने तक ऊंचे को बांह करके आंखें खोले हुये जड़वृक्ष के तुल्य अचल खड़ारहा उसके उग्र तप को देखकर महादेवजी ने प्रसन्न होकर उसको अपने दर्शन दिये और बोले कि राजा मैं तेरी तपस्या से प्रसन्नहूं अब जो तेरी इच्छाहो सो वर मुझसे मांगले यह सुनकर राजा ने महादेवजी को दण्डवत् की और बोला कि २२। ४० महाराज जो आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मुझको यज्ञ कराइये यह सुनकर महादेवजी मुसकराकर बोले कि यज्ञ कराना हमारा काम नहीं है परन्तु तैंने हमारी बड़ी तपस्या की है इससे हम तुझको समयपर यज्ञ करावेंगे तू पहले बारह वर्षतक ब्रह्मचर्य रहकर घीकी अखण्डधारा से अग्नि म होम कर इसके पीछे तेरी मनोकामना पूरी होगी यह सुनकर राजा ने वैसाही किया और बारह वर्ष बीतनेपर फिर महादेवजीके पास गया महादेव जी उसे देखतेही बोले कि वेदविधिसे यज्ञ कराना ब्राह्मणोंहीका कामहै हमारा काम नहीं है इससे हम यज्ञ नहीं करासक्ते परन्तु हमारे अंश से दुर्वासा नाम ऋषि पृथ्वीपर उत्पन्न हुयेहैं वे हमारी आज्ञा से तुझको यज्ञ करावेंगे अब तू जाकर सामग्री इकट्ठी कर यह सुनकर राजा अपने नगर को आया और सामग्री इकट्ठी करके फिर शिवजीके पास जाकर बोला कि महाराज मेरी सब सामग्री इकट्ठी है अब मैं चाहताहूं कि कलके दिन में यज्ञ करने को दीक्षित किया जाऊं ४१। ५२ यह सुनकर महादेवजीने दुर्वासा को बुलाया और कहा कि मेरी आज्ञा से तुम इस राजाको यज्ञ करावो दुर्वासाने यह सुनकर बहुत अच्छा कहकर राजा के साथ जाकर वेदविधि से उस यज्ञ को कराया राजा ने उस यज्ञमें बड़ी दक्षिणा बांटी और यज्ञ पूरा होने पर दुर्वासाजी और सदस्य लोग अपने २ घरको चलेगये और राजा भी अपने नगर को आया उस समय से अग्निदेवको अजीर्ण होगया और वह अपने तईं तेजहीन देखकर बड़ी ग्लानि

से ब्रह्माजीके पास गये और उनसे कहा कि महाराज मैं निर्बल और तेजहीन हो गयाहूं ऐसी कृपा कीजिये जिसमें मेरा तेज फिर ज्योंका त्यों होजावे यह सुन कर ब्रह्माजी हँसकर बोले कि तुमने बसोर्द्धारा पात्र से अखण्ड धार घृत को बारह वर्षतक पिया है इससे तुमको यह अजीर्ण होगया है तुम म्लानचित्त न हो तुम्हारा तेज फिर ज्योंका त्यों होजायगा अब तुम जाकर खांडववन को भस्म करो जिसमें सब प्रकार के जीवजन्तु रहते हैं उन जीवों की मेदा से तृप्त होने पर तुम्हारी ग्लानि जाती रहेगी इस वनको तुमने पहिले भी देवताओं की आज्ञा से देवताओंके शत्रुओंके रहनेके कारण भस्म कियाथा यह सुनकर अग्निदेव बड़ी शीघ्रतासे दौड़कर खांडववन में चलेगये और क्रोधित हो वायु से प्रेरित कर अकस्मात् उस वनको प्रज्वलित करदिया यह देखकर वनवासी जीव अग्नि बुझाने का यत्न करने लगे सैकड़ों हाथियों ने अपनी सूंड़ों में पानी भर २ के अग्नि पर डाला और २ जीवोंने किसी ने धूल डालकर किसी ने पानी छिड़ककर और किसी २ ने और २ यत्न करके उस अग्निको शीघ्र बुझा दिया इस प्रकार से अग्निदेव ने सात बार क्रोध करके उस वन को प्रज्व-लित किया परन्तु हर बार उसकी ज्वाला वनचारी जीवों ने उक्त रीति से बुझा बुझादी ५३ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशतात्रिकत्रयोविंशोऽध्यायः २२३ ॥

दोसौचौबीसका अध्याय।

अग्निदेवका ग्लानि मानकर ब्रह्माजीके पास जाना और ब्रह्माजीका अर्जुन और श्रीकृष्णके पास जाने को कहना अग्निदेवका उनके पास जाना और उन दोनोंका अग्निकी रक्षा करनी अंगीकार करना ॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! अग्निदेव यह देखकर निराश होगये और ग्लानि मानकर ब्रह्माजीके पास गये और उनसे सब वृत्तांत कह सुनाया ब्रह्माजी उनकी बातको सुनकर एक मुहूर्तभर विचार करके बोले कि हमने तुम्हारे लिये एक बात विचारीहै उसके करने से तुम अभी इन्द्रके देखते २ खांडववन को भस्म करसक्ते हो आजकल नर नारायण देवताओंने देव-ताओंका कार्य करनेको पृथ्वीपर जन्म लिया है और वे दोनों संसार में अर्जुन और कृष्ण नामसे प्रसिद्ध हैं तुम उन दोनों से खांडववनके समीप जाकर मिलो और उनसे रक्षाके लिये कहो उनकी सहायता से तुम खांडववन को

भस्म कर सकोगे और वे सब जीव और देवताओं से तुम्हारी रक्षा करेंगे यह सुनकर अग्नि शीघ्रतासे अर्जुन और श्रीकृष्णजी के पास आये और उनसे जो कुछ वार्तालाप हुआ सो हम पहले वर्णन करचुके हैं अर्जुन अग्निदेव की बातको सुनकर बोला कि हमारे पास बहुत से उत्तम और दिव्य अस्त्र हैं उनसे मैं एक इन्द्र क्या बहुतसे इन्द्रोंसे युद्ध करसक्ताहूं परंतु मेरे पास मेरे बल के सदृश धनुष नहीं है जो मेरे वेगको युद्ध में रोकसके और न कोई ऐसा रथ है जिसपर मैं इतने बाण रखलूं कि सन्धान करते २ चुक न जावें इससे सूर्य के तुल्य तेजस्वी रथ और श्वेत दिव्य घोड़े चाहताहूं और श्रीकृष्णजीके पास भी कोई ऐसा हथियार नहीं है जिससे वे नाग और पिशाचों को मारें इससे आप कोई उपाय बताइये जिससे मैं इन्द्रको वर्षा करने से रोकसकूं हम यथाशक्ति अपना पौरुष करेंगे परंतु आप अपने कार्यकी सिद्धिके लिये जो कुछ दे सकें सो दीजिये १।१७॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकचतुर्विंशोऽध्यायः २२४॥

दोसौपच्चीस का अध्याय।

अग्निदेवका अर्जुनको अपनी रक्षाके लिये गांडीवधनुष दो अक्षय तरकस और एक दिव्य रथ देना और श्रीकृष्णजी को एक चक्र देना और उन दोनों से रक्षित होकर खांडववनको भस्म करना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अग्निदेव ने उन दोनों की बात को सुनकर अदिति के पुत्र जल के ईश्वर वरुण देवताका स्मरण किया स्मरण करतेही वे वहां आन पहुँचे अग्निदेवने उनको बड़े आदर से लिया और उनसे कहा कि राजा सोमका दिया हुआ जो धनुष और दो तरकस आप के पास हैं उनको हमें दीजिये और उस रथको भी दीजिये जिसकी ध्वजा में वानर का चिह्न है उस गाण्डीवधनुष से अर्जुन और चक्र से श्रीकृष्णजी बड़े भारी कार्य को करेंगे इससे आप इन सब को शीघ्र ले जाइये यह सुनकर वरुण देवता ने तथास्तु कहकर गाण्डीवनाम धनुष जो बड़ा अद्भुत यश बढ़ाने वाला, सब शस्त्रोंसे अभेद्य, सब शस्त्रों को काटनेवाला, शत्रुकी बड़ी भारी सेनाका मारनेवाला, सौ शस्त्रों के समान चिकना अव्रण और देवता गन्धर्वों से पूजित था और दोनों तरकस जिनके बाण कभी कमती नहीं होते थे और एक रथ जिसमें गंधर्वदेशके उत्पन्न हुये श्वेत मन वायुके समान जल्दी चलने

वाले घोड़े जुते हुये और कपिके चिह्नकी ध्वजा लगी हुई थी और सब अंग रत्न-
जटित और शोभायमान थे लाकर अर्जुन को देदिया यह रथ विश्वकर्माजी ने
अपने तपके प्रभाव से उत्पन्न किया था और इसी रथ पर बैठकर चन्द्रमाने
दैत्यों को युद्धमें पराजय किया था प्रभा इस रथकी सूर्यके समान थी और
इसमें जो वानर के चिह्न की ध्वजा लगीहुई थी उसकी लाठी सुनहरी और
शोभायमान थी और उस पर नाना प्रकार के जीव रहते थे कि जिस समय
वे बोलते थे शत्रुकी सेना के मनुष्यों का उनकी बोली को सुनतेही ज्ञान नष्ट
होजाता था अर्जुन कवच और खड्ग आदि अस्त्रों को धारण करके हाथ में
गोधांगुलिक अर्थात् चर्मके दस्ताने पहिनकर उस सुशोभित रथ पर प्रदक्षिणा
करके और देवताओं को नमस्कार करके श्रीकृष्णजी सहित बैठगया अर्जुन
उस धनुष और अक्षय तरकसों को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ और अग्निदेव की
रक्षा करने को समर्थ होकर बलसे उस धनुष की ज्या को टंकारने लगा उसके
शब्द को जिस किसी ने उस समय सुना वह भयभीत होगया इसके पीछे
अग्निदेव ने श्रीकृष्णजी को वज्रनाभ नाम चक्र दिया और कहा कि इस चक्र
से तुम युद्ध में देवता गन्धर्व राक्षस नाग और दैत्य जो कोई तुमसे युद्ध करेगा
उसको जीत लोगे और शत्रु पर वारम्वार छोड़ने पर यह चक्र शत्रुओं को
मारकर फिर तुम्हारे हाथ में आ जायगा श्रीकृष्णजी उस चक्र को पाकर समर्थ
होगये और वरुणने कौमोदकी नाम दैत्यों के नाश करनेवाली गदा दी इसके
पीछे उन दिव्य अस्त्रों को पाकर श्रीकृष्ण और अर्जुन अग्निदेव से बोले कि
अब हम सब देवता और असुरों के साथ भी लड़सक्ते हैं १ । २९ अर्जुनने कहा
तीनों लोक में ऐसा कोई नहीं है जो चक्रपाणि श्रीकृष्ण के सन्मुख युद्ध में आ-
कर जीता बचे और मैं भी इस गांडीवधनुष और अक्षय तरकसों को पाकर
सब लोकों को विजय कर सक्ता हूं अब आप इस वनको चारों ओर से घेरकर
भस्म कीजिये हम आपकी रक्षा करने को समर्थ हैं यह सुनकर अग्निदेवने
अपना प्रज्वलित स्वरूप बनाकर उस वनको जलाना प्रारंभ किया और चारों
ओर से ज्वालाओं के उठने से उस वनके सब जीव भयभीत होगये और उस
वनकी ऐसी शोभा होगई जैसे सुमेरु पर्वत पर सूर्य की आभा पड़ने से दम-
दमाने लगता है ३० । ३६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकपंचविंशोऽध्यायः २२५ ॥

दोसौछब्बीस का अध्याय ।

अग्नि का अर्जुन और श्रीकृष्ण से रक्षित होकर खांडव वन को जलाना और इन्द्र का उस पर जल वर्षाना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनों उस वन के एक एक ओर खड़े होकर अग्निकी रक्षा करने लगे जो कोई जीव जंतु उस वन में से निकल के बाहर जाता था वे दोनों बड़ी शीघ्रता से उसे मारकर उसी में डाल देते थे उन दोनों के रथका जल्दी हांकने में बीच नहीं जान पड़ता था जहां किसी जीव को निकलता देखते वहीं क्षणमात्र में पहुँचजाते और चक्र की समान शीघ्र घूमकर जीवों को मार २ कर वनके भीतर से बाहर नहीं जाने देते यह देखकर उस वनके रहनेवाले प्राणी दुःखी हो होकर ऊपर को उछलते और वहीं गिरकर मरजाते बहुत से जीव अधजले और बहुत से ऐसे जिनके कोई कोई अंग जल गये हैं भय से भागने को मन करते और फिर पुत्र पिता माता के स्नेह से बाहर न जासके और भस्म होजाते बहुत से अपने दांतों को चबा २ कर ऊपर को उछलते और इधर उधर दौड़ते और फिर वहीं अग्नि में जलजाते बहुत से वाराह और मत्स्य आदि जीव जलके स्थानों पर आश्रय लेते और वहां भी अग्नि की ज्वाला से न बचते बहुत से जीव अग्नि में जलते हुये अग्निस्वरूपही दीखते और बहुत से वनमें से उछल २ कर आकाशमार्ग से भागना चाहते परंतु अर्जुन उनको मारकर गिरादेता और वह भस्म हो जाते उन जीवों ने ऐसा रोरा मचाया जैसे पहिले समुद्र के मथने में हुआ था उस वनकी ज्वाला से सब देवता तप्त होगये और वे सब ऋषियों को साथ लेकर इन्द्रके पास जाकर कहने लगे कि क्या प्रलयकाल आन पहुँचा है जो अग्नि सब मनुष्यों को भस्म किये डालती है इन्द्र यह सुनकर और खांडव वनको आप भी जलता हुआ देखकर सब देवताओं को साथ लेकर अग्नि बुझाने को चले और खांडव वनके ऊपर आकर मेघों को आज्ञा दी कि मूशलाधार जल वर्षकर इस अग्नि को बुझा दो यह सुनकर मेघ उसी प्रकार से वर्षने लगे परंतु अग्निके तेजसे वह धारा वन में न पहुँचसकी ऊपरही ऊपर शुष्क होगई यह देखकर इन्द्रने क्रोध करके और मोटी धारा छोड़ने की मेघों को आज्ञा दी और वह वन मेघ धुआं और अग्निकी ज्वालाओं से समाकुल होगया १।२२॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकषड्विंशोऽध्यायः २२६ ॥

दोसौसत्ताईस का अध्याय।

अर्जुनका बाणों से इन्द्रकी वर्षाको रोंकना और असुर किन्नर राक्षस और इन्द्रादिक देवताओं से युद्ध करना ॥

वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उस समय अर्जुनने चारों ओर से बाण मारकर उस वनको ऐसा ढक दिया कि न उसमें इन्द्रका वर्षाया हुआ जल जासका न कोई जीवजन्तु आकाश मार्ग के बंद होजाने से बाहर निकल सका उस समय उस वनमें तक्षक न था वह कुरुक्षेत्र को गया हुआ था परन्तु उसका पुत्र अश्वसेन नामी वहीं था उसने निकलने के लिये अनेक यत्न किये परन्तु अर्जुन के बाणों से आकाश मार्ग रुका हुआ होने से वह निकल न सका तब उसकी माताने उसको आधा लील लिया और उसके प्राण बचाने के लिये उस वनमें से बड़े वेग के साथ आकाश मार्गको चली अर्जुन ने उसे देखकर बाण मार उसके शिरको काट डाला और उसके मुख में से अश्वसेन निकल कर भागने लगा इन्द्र ने उसे देखलिया और उसे बचाने की इच्छा से ज्योंही अर्जुन उसे मारने को बाण छोड़ने को हुआ त्योंही इन्द्र ने वात की वर्षा करके अर्जुन को मोहित कर दिया और वह तक्षक का बेटा निकल कर चला गया अर्जुन उस माया और सर्प के छल को देखकर क्रोधित हुआ और जो जो जीव आकाश में उस समय उड़ गये थे सबको मारकर दो दो तीन तीन टुकड़े करके गेर देता भया १।१० और अग्निदेव अर्जुन और श्रीकृष्ण ने उस सर्प को शाप दिया कि तू निराश्रय और असंतान होगा इसके पीछे उस छलको याद करके अर्जुन अत्यन्त क्रोधयुक्त होगया और बड़े तीक्ष्ण बाणों से आकाश को छाकर इन्द्रसे युद्ध करनेलगा उस समय इन्द्रने अर्जुन को क्रोधित देखकर अपने तीव्र अस्त्र उसपर चलाये और बिजली सहित बड़े २ मेघों को उत्पन्न करके आकाश को ढककर अन्धकार कर दिया और जल मूशलाधार वर्षने लगा तब अर्जुन ने वायव्य अस्त्रको मंत्रित करके छोड़ दिया उस से सब बादल तितिर बितिर होकर उड़गये बिजलीकी चमक नष्ट होगई और एक क्षण भर में आकाश निर्मल होगया यह देखकर अग्निदेव निर्भय होगये और प्रसन्न होकर सब जीवोंके अंगसे निकली हुई वसाको पीकर बड़े तेजसे वनको प्रज्वलित करने लगे इसके पीछे गरुड़ नाम पक्षी जो बड़ा अहंकार रखते थे उस वनको कृष्ण और अर्जुनसे रक्षित देखकर अपने वज्र सदृश नख चोंच और पंखों

से उन दोनोंके मारने को बन से आकाशको उछलकर एक साथ उन दोनों के ऊपर आकाश से टूटे और बड़े बड़े विषधर सर्पभी इसीप्रकार से उन दोनों को मारने और काटने के लिये झुण्ड के झुण्ड वहां आन पहुँचे परन्तु अर्जुन ने क्रोध करके उन सब को काटडाला इसके पीछे असुर किन्नर और राक्षस बड़े क्रोधसे गर्जते और हाथों में अयःकरण अर्थात् गोलियों से भराहुआ गोला और चक्राश्म अर्थात् एक यन्त्र जिसको घुमाने से पत्थर दूर तक फेंकसकते हैं और भुशुण्डी अर्थात् चमड़ेकी डोरियों सहित एक पत्थर आदि फेंकने का यन्त्र और २ अनेक प्रकारके अस्त्र शस्त्र लिये हुये अर्जुन और श्रीकृष्ण के मारने को वहां आये और अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा करने लगे उस समय अर्जुनने बड़े तीक्ष्ण बाणों से उनके शिर काट डाले और श्रीकृष्णजी ने चक्र से दैत्यों का नाश किया यह देखकर और दैत्य उनके सम्मुख नहीं गये इसके उपरान्त इन्द्र क्रोध करके श्वेत हाथी ऐरावतपर चढ़कर वज्र हाथमें लियेहुये अर्जुन से युद्ध करने को आया और देवताओं को आज्ञा दी कि इन दोनोंको मारो यह सुनकर यम-राजने कालदण्ड कुबेरने गदा वरुणने पाश स्वामिकार्त्तिक ने शक्ति अश्विनी-कुमारोंने दिव्य औषधी धाताने धनुष जयने मुशल त्वष्टाने पर्वत अंशुने शक्ति मृत्युने परश्वध अर्यमाने परिघ मित्रदेवता ने चक्र पूषा ने धनुष सविताने खड्ग और एकादश रुद्र अष्ट वसु ४९ मरुत विश्वेदेवा साध्यगण और २ सब देवता अपने २ आयुधों को लेकर अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र से युद्ध करने को आये वे दोनों वीर उन सबको इन्द्र सहित क्रोधित और युद्धके लिये सन्नद्ध खड़ेहुये देखकर भयभीत नहीं हुये और उन सब देवताओं को वज्र सदृश बाणों से मारने लगे ११।४१ और उनको युद्ध से विमुख कर दिया तब देवता भाग कर भयके मारे इन्द्र के पास भागगये इस बातको आकाशसे मुनिलोग देख कर बड़ा आश्चर्य करनेलगे और इन्द्र उन दोनों के पराक्रमको देखकर प्रसन्न हुआ और उन दोनों से युद्ध करनेलगा और अर्जुन के बलकी परीक्षा करने को उसने पत्थर वर्षाये अर्जुनने अपने तीक्ष्ण बाणों से उन पत्थरों को टुकड़े टुकड़े कर दिया इसपर इन्द्रने और विशेष पत्थर वर्षाये और अर्जुन ने उनको भी टुकड़े २ करके इन्द्रको प्रसन्न किया इसके पीछे इन्द्रने अर्जुन को मारने की इच्छासे मन्दराचल के एक बड़े शिखरको वृक्षों सहित उखाड़ कर फेंका अर्जुन ने उस शिखरको तीव्रबाणों से काटकर टुकड़े २ करडाला उस शिखर

की इस प्रकारसे पृथ्वीपर गिरने से ऐसी शोभा हुई जैसे सूर्य चन्द्रमा आदि ग्रहों के चारों ओरसे आकाश फटजावे उस समय उस शिखरके पत्थरों के जहां तहां गिरने से उस खांडववनवासी सहस्रों जीव मरगये ४२। ५१॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकसप्तविंशोऽध्यायः २२७॥

दोसौअट्ठाईस का अध्याय।

अर्जुनका इन्द्रादिक देवता दैत्य राक्षस किन्नर गन्धर्व और सब वनवासी जीवों को युद्धमें जीतकर अग्निकी रक्षा करना और अग्निका उस वनको १५ दिन तक भस्म करना और उसमें ६ जीवों का जीता बचना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! उस पहाड़ के शिखरके टुकड़े २ होकर गिरने से उस वनके रहनेवाले दानव, राक्षस, नाग, व्याघ्र, रीछ, पक्षी, शार्दूल, सिंह, केसरी आदि जीवजन्तु भयभीत होकर भागनेलगे और बाहर निकलनेपर उन दोनों श्रीकृष्णचन्द्र और अर्जुन को आयुध लिये मारनेको खड़े हुये देखकर बड़ी उद्विग्नता और भयसे चिल्लानेलगे और अग्नि के जलानेके शब्द और इन सब जीवोंके भैरवनाद से उस समय आकाश इसप्रकार से शब्दित होने लगा जैसे प्रलयकाल के मेघ गर्जते हैं उस समय केशवजी ने उन दैत्य आदिके नाश करने को अपना चक्र फेंका उससे वे सब जीव जो बाहर को भागचले थे क्षणभर में कट कट कर अग्नि में गिरपड़े और दैत्यलोग उस चक्र से विदीर्ण होकर ऐसे दीखनेलगे जैसे सन्ध्या समय में बादल दीखने लगते हैं श्रीकृष्ण जी अपना उग्रस्वरूप करके काल के समान पिशाच राक्षस और पशुओं को मारतेहुये विचरने लगे उन दानवों में से कोई भी कृष्ण और अर्जुन का सामना न करसका और देवता भी उन दोनों से हार मानकर विमुख होगये इन्द्र उन सबको विमुख देखकर कृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा करने लगे और देवता दैत्य आदि सबके युद्ध से निवृत्त होने पर इन्द्र को सम्बोधन करती हुई आकाशवाणी हुई कि हे इन्द्र! तेरा मित्र तक्षक इस वन में नहीं है वह कुरुक्षेत्र गया हुआ है तुम उसकी ओर से चिन्ता मत करो ये दोनों पुरुष कृष्ण और अर्जुन नामसे विख्यात नर नारायण स्वर्गवासी हैं उनके बलको तुमभी जानतेहो उनको युद्धमें कोई नहीं जीतसक्ता है ये दोनों दुराधर्ष और ऋषियों में परमउत्तम हैं इनको युद्धमें जीतनेवाला त्रिलोकी में कोई नहीं है और ये देवता असुर यक्ष राक्षस गन्धर्व नर किन्नर और पन्नग आदि सबके पूज-

नीयहैं इससे हे इन्द्र! अबतुम यहांसे देवताओं सहित चलेजावो और इस खांडव वनका जलना दैव इच्छासे समझो १ । २१ यह आकाशवाणी सुनकर इन्द्र क्रोध छोड़कर स्वर्गको चलदिया उसको जातेहुये देखकर सब देवता भी उसके पीछे२हो लिये उनको जातेहुये देखकर अर्जुन और श्रीकृष्णचन्द्र सिंहनाद करने लगे और शंकारहित होकर उस वनको अच्छे प्रकारसे भस्म करनेलगे अर्जुन के बाणों के मारे कोई जीव उस वनके बाहर न जासका सबको इसप्रकार से वनमें मार मारकर डालदिया जैसे वायु बादलों को उड़ाकर नाश करदेतीहै और उस वनके बड़े बड़े पराक्रमी जीवभी अर्जुन से लड़ना तो कहां उसकी ओर देख भी न सके अर्जुन सौ सौ पक्षियों को एक २ बाण से निर्जीव कर करके गिरा देता था जब उस वनवासी हाथी व्याघ्र और पक्षी आदि ने रुकावट के स्थानों में भी अपना कल्याण न देखा तब वे बड़ी करुणा और आर्त वाणी से रोने और पुकारनेलगे विद्याधरों के गणों में से भी कोई अर्जुन का सामना न करसका और जो कोई दैत्य आदि आयाभी तो श्रीकृष्णजी ने तुरन्त उसे मारकर गिरा दिया और वह अग्निमें पड़कर भस्म होगया २२ । ३५ उस समय अग्निदेव ने मांस लोहू और वसा पी पीकर अपनी ज्वाला को आकाशतक पहुँचादिया और अपने जाज्वल्य नेत्र जीभ मुख और केशवाले स्वरूपको प्रत्यक्ष करके आनन्दपूर्वक उस कृष्ण और अर्जुन के दिये हुये स्वधा भोजन को खाकर तृप्तता प्राप्त की इसके पीछे श्रीकृष्णजी ने तक्षक के घरसे निकलते और मेघ के समान गर्जते हुये भागते मय नाम दानव को देखा अग्निदेव उस दैत्यको जलाने की इच्छासे वायुरूपी रथपर बैठकर उसके पीछे दौड़े और श्रीकृष्णजी ने अपना चक्र उसे मारने को उठाया यह देखकर वह दानव उन दोनों की ओर से फिरकर अर्जुनकी ओर दौड़ा और कहनेलगा हे भरतवंशी! मेरी रक्षा कर अर्जुन उसकी आर्तवाणी सुनकर बोला चला आ डरै मत अब तुझको किसी का भय नहीं है इस प्रकार से अर्जुन के अभय करनेपर उस दैत्यको न कृष्णने मारा और न अग्निने जलाया और वह दैत्य बचगया इतनी कथा सुनाकर वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! इस प्रकारसे कृष्ण और अर्जुनसे रक्षित होनेपर अग्निदेव ने उस वनको १५ दिनतक भस्म किया और अश्वसेन, मय और ४ शार्ङ्गिक नाम पक्षी इन छः के सिवाय और कोई नहीं बचा ३६ । ४६ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकाष्टविंशोऽध्यायः २२८ ॥

दोसौउन्तीस का अध्याय।

वैशम्पायनका राजा जनमेजय से चारों शार्ङ्गिक पक्षियों के जलने से बचनेका कारण कहना॥

उक्त कथाको श्रवणकर राजा जनमेजय ने वैशम्पायनजी से पूछा कि महाराज! आपने अश्वसेन और मय दानव के बचनेका कारण तो कथाके प्रसंग में वर्णन किया है परन्तु यह नहीं कहा कि वे चारों शार्ङ्गिक पक्षी इस प्रकार से वनके जलनेपर क्योंकर न जले इनके भस्म न होनेका कारण भी सुनाइये यह सुनकर वैशम्पायनजी बोले कि उन चारों शार्ङ्गिक पक्षियों के बचने का कारण यह है कि मंदपाल नाम एक बड़ा तपस्वी और वेदशास्त्र का जाननेवाला महर्षि था उस जितेन्द्रियने ऊर्ध्वरेता ऋषियों के मार्ग पर चलकर बड़ी तपस्या की और कालके आनेपर देह छोड़कर पितृलोकमें पहुँचा परन्तु पितृलोकका फल नहीं मिला यह देखकर उस ऋषिने धर्मराज के पास बैठेहुये देवताओंसे पूछा कि मैंने क्या ऐसा किया है जिससे मेरे लोक नष्ट होगये हैं आपलोग उस बातको बताइये मैं फिर पृथ्वी पर जाकर वही कर्म करूंगा जिसके करने से मुझको अच्छे लोक मिलें १।१० यह सुनकर देवता बोले कि संसार में मनुष्य पर कई ऋण रहते हैं उन ऋणों से मनुष्य ब्रह्मचर्य संतान यज्ञ तप और शास्त्रावलोकनके द्वारा निवृत्त होता है सो निस्संदेह तुम तपस्वी हो और तुमने यज्ञ भी बड़े २ किये हैं परंतु तुम्हारे संतान नहीं है इससे तुमको पितृलोकों का भोग नहीं मिला है संतान उत्पन्न करो संतानके उत्पन्न होने पर तुमको सब तपस्या का फल पूरा २ मिलेगा क्योंकि वेद में कहा है कि पुत्र पिता को पुन्नाम नरक से तारता है इससे तुम ऐसा यत्न करो जिससे तुम्हारे संतान उत्पन्न हो यह सुनकर मन्दपाल चिंता करने लगा कि बहुतसी संतान क्योंकर उत्पन्न होवें और बहुत संतान वाले पक्षियों के पास जाकर जरितानाम शार्ङ्गिक से अपना विवाह किया उससे उस ऋषिके चार पुत्र ब्रह्मवादी उत्पन्न हुये वह ऋषि उन पुत्रों के उत्पन्न होने पर जरिताको छोड़कर दूसरी लपितानाम स्त्री के पास चला गया जरिता उसके चले जाने पर बड़ी चिंतित हुई परंतु उसने उन अंडज ऋषि पुत्रों को खांडव वन से नहीं छोड़ा और उनका पालन करती रही इसके पीछे लपिता के साथ घूमते हुये मन्दपालने अग्निको खांडव वन जलाने को आते हुये देखा वह उसके संकल्प को जानकर अपने छोटे २ बच्चों पर दयाभाव करके अग्निके पास गया और उसकी स्तुति करने लगा हे अग्निदेव! तुम सबके

मुख और हव्यवाहहो और सब प्राणियों के भीतर गुप्त वास करतेहो पंडितलोग तुमको ब्रह्म दिव्य भौम औदर्य पंचभूतात्मक चंद्र सूर्य और यजमानरूप कहते हैं और तुमहीं यज्ञनिर्वाहक हो तुमनेही इस संपूर्ण विश्व को उत्पन्न किया है विना तुम्हारे यह जगत् जल्दी नाश होजाय तुमको नमस्कार करनेवाले वेदपाठी अपनी स्त्री और पुत्रों सहित सनातन गति को पाते हैं तुम्हीं पालनकर्ता और तुम्हीं संहार करनेवाले हो बिजली सहित आकाश के बादल तुम्हींहो और जो ज्वाला बादलों से निकलकर संसारी प्राणियों को जलाती है वह भी तुम्हीं हो तुम जगत् के सब चर और अचर प्राणियों के उत्पन्न करने वाले हो और वेद भी तुम्हाराही वाक्य है तुमने ही इस संसार में जल उत्पन्न किया है तुम सब जगत् में व्यापक हो और हव्य कव्य अर्थात् देवता और पितरों का भोजन तुम्हीं पहुँचाते हो सूर्य, धाता, बृहस्पति, अश्विनीकुमार, चन्द्रमा और वायु तुम्हीं हो वैशंपायनजी बोले हे राजा जनमेजय! अग्निदेव मन्दपालकी उक्त स्तुति सुनकर प्रसन्न हुये और उससे बोले कि जो तुमको इच्छाहो सो वर मांगो यह सुनकर मन्दपाल हाथ जोड़कर अग्निदेव के सम्मुख खड़ा होगया और बोला कि महाराज! खांडव वनको जलाने में मेरे पुत्रों को छोड़ दीजियेगा यह सुनकर अग्निदेव उससे अच्छा कहकर खांडव वन में चलेगये और चारों ओर से उसे भस्म करनेलगे ११। ३३॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकोनत्रिंशतितमोऽध्यायः २२९॥

दोसौतीसका अध्याय।

जरिता का अपने पुत्रों को अग्नि से बचाने का उपाय न देखकर विलाप करना और पुत्रों का उसको समझाना॥

वैशम्पायनजी बोले कि हे राजा जनमेजय! उस वन में आग लगने के पीछे उन शार्ङ्गिकों की रक्षा के लिये कोई उपाय न होने के कारण से उनकी जरिता नाम माता बड़े दुःख से विलाप करने लगी और कहने लगी कि यह अग्नि सब वनको भस्म करती हुई इधर को आ रही है मुझे इन पक्षहीन बालकों को देख २ कर बड़ा दुःख होरहा है न ये चलही सकते हैं न उड़ सकते हैं और अग्नि आही पहुँची है मुझे यह सामर्थ्य नहीं है कि मैं इनको लेकर आप उड़जाऊं और इनको छोड़कर जाने में मेरा हृदय कांपता है हाय मैं क्या करूं यह भी तो मुझसे नहीं होसकता कि एकको लेजाऊं और एकको न लेजाऊं हे पुत्रो!

तुम्हारी क्या सलाह है तुम भी तो कहो मुझे तो कोई उपाय तुम्हारे बचाने का नहीं सूझता है इससे मैं तुम सबको अपने पंखों से ढककर यहीं बैठजाऊंगी और तुम्हारे साथ जलकर मरजाऊंगी तुम्हारा निर्दयी पिता यह कहकर तुमको त्यागकर चला गया था कि मेरा बड़ा पुत्र जरितारि कुलका पालन करनेवाला और उससे छोटा सारिसृक सन्तान उत्पन्न करनेवाला और उससे छोटा स्तम्ब-मित्र तपस्वी और सबसे छोटा द्रोणनामी ब्रह्मज्ञानी होगा हाय मैं अब क्या करूं तुममें से किसको लेजाऊं किसको न लेजाऊं बड़ी विपत्ति है वैशंपायन जी बोले हे राजा जनमेजय ! वे शार्ङ्गिक पक्षी अपनी माता की बात सुनकर बोले कि हे माता ! तू स्नेह छोड़कर वहां चली जा जहां अग्नि न हो क्योंकि तू बनी रहेगी तो तेरे और पुत्र होजायँगे और तेरे हमारे दोनों के यहां जलजाने से सब कुल नष्ट होजायगा इससे इन दोनों बातों को विचारकर जो तुझे अच्छी दीखे उसे कर यह सुनकर जरिता बोली कि पृथ्वी पर सामने यह चूहेका बिल दिखाई देता है तुम उस बिल में घुसजावो वहां तुम अग्नि से बच जावोगे मैं उस बिलके मुखको धूलिसे ढकदूंगी और अग्नि बुझजाने के पीछे फिर धूलिको हटाकर तुम्हें निकाल लूंगी यह सुनकर शार्ङ्गिक बोले कि हमारे अभी पर नहीं आये हैं हमारा शरीर केवल मांसका पिण्डा है इससे जो हम बिल में घुसजायँगे तो चूहा हमको खाजायगा हमको कोई ऐसा उपाय नहीं दीखता है जिससे हम अग्नि से बचें अथवा बिलमें घुसने से हमें चूहा न खाय और हमारी मा जीती रहे और पिता की संतान बनी रहे इससे चूहे के खाने से तो अग्निही में जलना श्रेष्ठ है १ । २१ क्योंकि चूहे के खानेसे मरना निंदित मरण और अग्नि द्वारा शरीर छोड़ना उत्तम है २२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकत्रिंशोऽध्यायः २३० ॥

दोसौइकतीस का अध्याय ।

पुत्रोंके समझाने पर जरिताका उनको छोड़कर अग्नि के भयसे कहीं अन्तको चला जाना ॥

जरिता पुत्रोंकी उक्त बात सुनकर बोली कि इस बिलके चूहेको श्येनपक्षी पैरों से पकड़ कर लेगया है इससे इस बिलमें तुमको किसी प्रकार का भय नहीं है यह सुनकर पुत्र बोले कि हमने तो श्येनको चूहेको लेजाते देखा नहीं है और जो ऐसा हुआभी हो तो इस बिलमें और चूहे होंगे वह हमको कभी नहीं छोड़ेंगे यह बात तो संभवभीहै कि जो वायु फिरजावे तो अग्नि हमतक न

पहुँचे परन्तु चूहेसे बचना किसी प्रकार से नहीं दिखाई देताहै इससे हे माता! निश्चय मृत्यु होने के स्थान से संदिग्ध मृत्यु होने के स्थान में रहना अच्छाहै तू चलीजा और जहां इच्छाहो विचर तेरे और पुत्र होजायँगे यह सुनकर जरिता बोली कि बिलपर से चूहेको लेजाते हुये श्येनको मैंने अपनी आंखों से देखाहै मैं उस श्येन पक्षीके पीछे दौड़ती हुई और यह आशीर्वाद देती हुई कि तुमने हमारे शत्रुको माराहै तुम स्वर्ग में शत्रुहीन होकर आनन्दपूर्वक वास करो चलीगई और उस श्येन को चूहा खातेहुये देखकर चली आई यह सुनकर पुत्र बोले कि माता! हमने किसी प्रकार से यह बात नहीं देखी है और विना देखे या जाने हम बिलमें नहीं जासकते जरिताने कहा कि तुम मेरे कहने से बिल में वास करो मैंने तो अपनी आंखसे चूहे का लेजाना और खा लेना देखाहै यह सुनकर पुत्र बोले कि इस मिथ्या उपचारसे हमारा भय दूर नहीं हो सक्ता हमारी बुद्धिमें इस बिल के भीतर रहना नहीं आताहै तू हमको नहीं जानती है कि हम कौनहैं न तू हमारी कोई है न हम तेरे कोई हैं यह माता पिता पुत्र आदि के सम्बन्ध केवल भ्रांतिरूप हैं तू तरुण और स्वरूपवान् है इससे तू यहां से चलीजा और पिता के पास जानेपर तेरे और पुत्र होजायँगे और हम अग्निमें जलकर शुभलोक पावेंगे और जो कदाचित् अग्नि दूसरी ओर को फिरजावै और हम बचजायँ तो तू फिर हमारे पास चली आइयो वैशंपायन जी बोले हे राजा जनमेजय! वह शार्ङ्गिका पुत्रोंकी उक्त बात सुनकर वहांसे उड़कर चलीगई और अग्नि वनको भस्म करती हुई उस स्थानके निकटही आपहुँची जहां वह मन्दपालके पुत्रथे उसको देखकर उन चारों में से जरितारि नाम शार्ङ्गिक जो सबसे बड़ा था कहने लगा १। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकैकत्रिंशतितमोऽध्यायः २३१॥

दोसौबत्तीस का अध्याय।

मंदपालके चारों शार्ङ्गिक पुत्रों का अग्निकी स्तुति करना और अग्निदेव का प्रसन्न होकर उनको न जलाना और उनको वरदान देना॥

जरितारि बोला कि जो मनुष्य आनेवाले कष्ट को देखकर जगता रहता है उसे कष्ट नहीं होता और जो कष्ट के आने के समय को नहीं जानता है वह अत्यन्त कष्ट पाताहै और समीप पहुँची हुई मृत्यु को नहीं देखता उसका भी कल्याण नहीं होता है परन्तु सत्संग ऐसा है कि उससे यह सब उपाधि दूर

होजाती हैं यह सुनकर सारिसृक बोला कि तुम धीर और मेधावी हो निश्चय यह समय हमारे प्राणों को कष्ट देनेवाला आया है संसार में ज्ञानी और शूर वीर सब नहीं होते हैं कोई जैसिज्ञाही होताहै इसके पीछे स्तम्बमित्र बोला कि बड़ा भाई पिता के तुल्य होताहै बड़ाही छोटोंको कष्ट से छुटाता है और जिस बातको बड़ाही नहीं जानता उसको छोटा क्योंकर जान सक्ता है यह सुनकर द्रोण बोला कि सुवर्ण रूप वीर्य और सात जिह्वा रखनेवाली अग्नि वन को जलाती हुई चली आती है वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! वह मन्दपाल के चारों पुत्र इस प्रकारसे एक दूसरे से कहकर सावधान होकर अग्नि की स्तुति करने लगे उनमें पहिले जरितारि बोला कि हे अग्निदेव! तुम वायु के आत्मारूप हो पृथ्वी भी तुम्हाराही रूपहै और जल तुम्हारा वीर्य है जिससे सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है और आपकी ज्वाला इस प्रकारसे चारों ओरको फैलती जाती है जैसे सूर्य की किरणें चारों दिशाओं में व्याप्त होजाती हैं इसके पीछे सारिसृक बोला कि हे अग्निदेव! हमारी माता यहां नहीं है पिताको हम जानते नहीं हमारे पक्ष नहीं जमे हैं इससे हम बालकोंपर आप कृपा करें सिवाय आपके हमारा रक्षक कोई नहीं है आप अपने शिव और सप्त ज्वालायुक्त स्वरूप से हमारी रक्षा कीजिये हम आपकी शरण हैं आपही तप्तस्वरूपहैं और सूर्यकी किरणों में भी आपहीका तेजहै हे महाराज! हम बालक ऋषियों पर कृपा कीजिये और हमारे स्थान से दूरही रहिये इसके उपरान्त स्तंबमित्र ने कहा हे अग्निदेव! तुम सब जगत् में व्यापकहो संसार में जो कुछ वस्तु है सब तुमहींहो तुमहीं प्राणियों के आधारहो विश्वके पालन करनेवाले भी तुमहींहो हव्यवाहन और परम हविआदि स्वरूप तुम्हारे ही हैं तुमहीं इस संसारको उत्पन्न करके संहार करतेहो और यह संसार नाश होनेपर तुमहीं में लय होजाताहै इसके पीछे द्रोणने कहा कि हे अग्निदेव! तुम सब प्राणियों के उदर में बसकर खाये हुये अन्नको पचा देते हो और अपने सूर्यरूप से सब पृथ्वीका रस किरणों के द्वारा पीकर समयपर वृष्टि करके सब संसार का पालन करते हो और सब वनस्पतियों के अंकुरोंको हरा करके समुद्र नदी और तालों को जलसे भरदेतेहो हम सब बालक पालने योग्य और पक्षी रूप हैं हमारी मंगलमूर्ति होकर आप रक्षा कीजिये और हमको इस प्रकार से छोड़ दीजिये जैसे मनुष्य जिस राहमें नदी पड़ती है उस राहको छोड़कर दूसरी

राहसे चलाजाता है हे अग्निदेव ! तुम पिंगाक्ष लोहितग्रीव कृष्णवर्त्मा और हुताशननामों से प्रसिद्धहो वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! अग्निदेव द्रोणकी इस प्रकार से स्तुति सुनकर प्रसन्न होकर बोले कि तुम निश्चय ऋषि हो तुमने ब्रह्मका वर्णन किया है इससे तुम अभय रहो तुम किसी बातका भय मत करो तुम्हारे पिता मंदपाल ने तुमको छोड़ने के लिये पहिलेही से मुझ से वर मांग लियाथा अब मैं तुम्हारी स्तुति सुनकर बहुत प्रसन्न हूं जो तुमको इच्छा हो सो मुझसे वरदान मांगो यह सुनकर द्रोण बोला कि महाराज ! ये मार्जारक हमको आ आकर नित्य सताते हैं आप इनको परिवार सहित भस्म कर दीजिये यह सुनकर अग्निदेव द्रोणसे तथास्तु कह कर वन को जलाने लगे १।२५॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकद्वात्रिंशतितमोऽध्यायः २३२॥

दोसौतेंतीस का अध्याय।

अग्नि के बढ़नेपर मन्दपालको पुत्रोंका शोच करना और लपिताको छोड़कर पुत्रों को देखने जाना॥

वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! इसके पीछे अग्निके बहुत बढ़नेपर मंदपाल यद्यपि अग्निसे अपने पुत्रोंको छोड़ने के लिये कहचुका था उनकी ओरसे बड़ी चिंता करनेलगा और लपितानाम अपनी दूसरी स्त्री से कहने लगा कि मेरे पुत्र न जाने कैसे होंगे मैं जानताहूं कि मेरे पुत्र बालक हैं वे इस वायु सहित बढ़ी हुई अग्नि से अपनी रक्षा न करसकेंगे और उनकी माता उन पुत्रों को रक्षारहित देख २ कर रक्षाके लिये ऊपर नीचे इधर उधर उड़ती फिरती होगी और अपनी सामर्थ्य उनकी रक्षा करने को न देखकर न जाने कैसे दुःख में होगी हाय मेरे पुत्र जरितारि सारिसृक स्तंबमित्र और द्रोण न जाने कैसे होंगे और उस तपस्विनीका क्या हाल होगा लपिता मन्दपालके इस विलापको सुनकर बोली कि जो तुम अपने पुत्रों को शोच करते हो वह तुम्हारे पुत्र ऋषि और तेजस्वी हैं उनको अग्निका भय नहीं है और अग्निने भी मेरे सामने तुमको उन्हें न जलनेका वरदान दिया है इससे तुम पुत्रों की ओरसे तो स्वस्थहो परन्तु तुम मेरी सौतिके पास जाने को दुःख कर रहे हो तुम्हारी प्रीति मुझमें ऐसी नहीं है जैसी उसमें है १।११ स्नेहपात्र और सपुत्र स्त्री को छोड़ना न्याय नहीं है इससे तुम जरिता के पास चलेजावो जिसके कारण से

तुमको इतना दुःख होरहाहै में भी इस वनमें खोटे पतिकी स्त्री के समान फिरा करूंगी यह सुनकर मंदपाल बोला कि हम ऐसा काम कुछ काम के वश में होकर नहीं करते हैं हमको केवल अपने पुत्रोंका शोच है क्योंकि अब अग्नि अत्यन्त बढ़ गईहै जो मनुष्य प्रत्यक्ष सन्तानको छोड़कर होनेवालीका यत्न करताहै वह मूर्ख है इससे हम अपने पुत्रोंको देखने जाते हैं यह वनको भस्म करनेवाली अग्नि मेरे हृदय में सन्तापको उत्पन्न कररही है तेरी इच्छामें आवे सो तू कर वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय ! उस स्थान से अग्निके हटजाने पर जरिता फिर अपने पुत्रोंके पास चली आई और अपने उन पुत्रों को अग्नि से बचेहुये और रोतेहुये देखकर बड़े प्यारसे आंसू छोड़ २ कर एक २ को लालन करनेलगी इसी अवसरमें मंदपाल भी वहां जापहुँचा उसके पुत्रोंने उसे देखकर दण्डवत् नहीं की मंदपाल अपनी स्त्री जरिता और प्रत्येक पुत्र को प्यार करनेलगा परंतु उनमें से कोई उससे न बोला तब मंदपाल आप ही बोला कि कहो इनमें से तेरा बड़ा पुत्र कौनसा है उससे छोटा कौन है और मँझला और कनिष्ठ कौन २ हैं इस परभी जब जरिता न बोली तब मंदपालने कहा कि तू क्यों नहीं बोलती है मैंभी जबसे तुझे छोड़कर गयाहूं प्रसन्न नहीं रहाहूं १२ । २३ यह सुनकर जरिता बोली कि तुमको छोटे बड़े और मँझले पुत्रों से क्या कामहै उसी तरुण और सुंदर अपनी स्त्री लपिताके पास जाओ जहां मुझे सब प्रकारसे हीनको पुत्रों सहित छोड़कर चले गये थे यह सुनकर मंदपाल बोले कि स्त्रियोंके परलोककी नाश करनेवाली दोही बात हैं एक व्यभिचार से पतिसे वैर करना और दूसरे सौति के होने से पतिका अनादर करना सब लोकों में विख्यात अरुन्धतीने भी वशिष्ठजी पर शंका करके सब ऋषियों में बैठेहुये उनका निरादर कियाथा इसी प्रकार से तूभी ऐसे कहती है मैं यहां केवल पुत्रों को देखने के निमित्त आयाहूं लपिताभी चलते समय तेरीही तरह कहनेलगी थी पुरुषको स्त्रीका कभी विश्वास न करना चाहिये जो स्त्री पुत्रवती होती है वहभी पतिका काम मनसे नहीं करती है वैशम्पायन जी बोले हे राजा जनमेजय ! वह मुनिपुत्र मंदपालकी बात सुनकर पिता की सेवा करनेलगे और मंदपाल भी उनपर प्यार करनेलगा २४ । ३२ ॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकत्रयस्त्रिंशत्तमोऽध्यायः २३३ ॥

दोसौचौंतीस का अध्याय।

मन्दपालका अपनी स्त्री और पुत्रों सहित किसी और स्थानको चलाजाना व इन्द्रका श्रीकृष्ण और अर्जुनको वरदान देना और उन दोनोंका अग्नि से बिदा होकर मयदानव सहित नदीपर चलेआना ॥

इसके पीछे मन्दपालने अपने पुत्रों से कहा कि हमने तुम्हारे न जलाने के लिये अग्नि से पहिलेही प्रार्थना की थी और अग्निदेवने भी हमारी उस प्रार्थना को अंगीकार कर लिया था इस हेतुसे और तुम्हारी माताकी धर्मज्ञता और तुम्हारे पराक्रम को जानकर हम पहिले से यहां नहीं आये थे तुमको मेरी ओरसे सन्ताप करना उचित नहीं है क्योंकि अग्नि भी ऋषियों को जानता है और यह भी जानताहै कि तुम ब्रह्मज्ञानी हो वैशम्पायनजी बोले हे राजा जनमेजय! मन्दपाल अपने पुत्रोंको इस प्रकारसे आश्वासन करके पुत्र और स्त्री सहित उस स्थान को छोड़कर दूसरी जगह चला गया इसके पीछे अग्नि सब जीवोंकी वसा और मेदाको पी और वनको जलाकर तृप्त हुआ और अर्जुन को अपना दर्शन दिया और उसी समय इन्द्र मरुद्गणोंको साथ लेकर अर्जुन और श्रीकृष्णजीके पास आया और कहने लगा कि तुम दोनों ने यह ऐसा दुष्कर काम किया है कि देवता भी उसे नहीं कर सक्तेहैं मैं तुम दोनोंसे प्रसन्नहूं तुम्हारी दोनोंकी जो इच्छा हो सो वर मांगो यह सुनकर अर्जुन बोला कि मैं आपसे संपूर्ण अस्त्र मांगता हूं यह सुनकर इन्द्र बोला कि मैं उस समय को जानताहूं जो आगे आनेवाला है तुम तपस्या करोगे और महादेवजी को युद्ध से प्रसन्न करोगे उस समय में तुमको आग्नेय और वायव्य आदि सब स्वर्ग के अस्त्र दूंगा इसके पीछे श्रीकृष्णचन्द्रने कहा कि मेरी अर्जुन की ऐसेही प्रीति सदा बनी रहे यह सुनकर इन्द्रने कहा तथास्तु ऐसा ही होगा इस प्रकार से इन्द्र उन दोनोंको वरदान देकर स्वर्गको चला गया और अग्निदेव उस वनको सब जीवों सहित सोलह दिनमें भस्म करके रोगमुक्त हो श्रीकृष्ण और अर्जुन से बोले कि हम जीवों के मांसको जलाकर उनकी मेदा और रुधिरको पीकर बहुत अच्छीतरह से तृप्त होगये हैं अब तुम दोनों जाओ और तुम्हारी इच्छा हो तहां बिचरो यह सुनकर वे दोनों मयदानव सहित अग्नि की प्रदक्षिणा करके वहां से नदी के किनारे को चले आये १। १६॥

इति श्रीभाषामहाभारते आदिपर्वणि द्विशताधिकचतुस्त्रिंशोऽध्यायः २३४॥

दो० विक्रमाब्द उनईस सै इकतालीस सुजान। भादौं कृष्णा अष्टमी तीसर भृसुत मान॥

सो० पाय निदेश उदार श्रीयुत नवलकिशोरको। आदिपर्व सुखसार कुञ्जलाल भाषा करी॥

आदिपर्व समाप्तम्॥

विक्रयार्थ पुस्तकों का सूचीपत्र

नाम किताब	क़ीमत
महाभारत भाषा कामिल	२५)
सभापर्वकुञ्जविहारीलालकृत	।।।)
वनपर्वकुञ्जविहारीलालकृत	३।)
विराटपर्वकुञ्जविहारीलालकृत	।।।)
उद्योगपर्व पं० महेशदत्तकृत	२।)
भीष्मपर्व पं० कालीचरणकृत	१।।।)
द्रोणपर्व पं० कालीचरणकृत	२।।।)
कर्णपर्व पं० कालीचरणकृत	१।।)
शल्य व गदापर्व पं०कालीचरणकृत	१।)
सौप्तिकपर्व, स्त्रीपर्व पं० कालीचरणकृत	।।=)
अनुशासनपर्व पं० कालीचरणकृत	२।)
शान्तिपर्व मय राजधर्म, आपद्धर्म, मोक्षधर्म पं० कालीचरणकृत	४।)
अश्वमेधपर्व पं० कालीचरणकृत	१।)
आश्रमवासिक, मुशल, महाप्रस्थान, स्वर्गारोहणपं०कालीचरणकृत	।।।)
महाभारतकाशीनरेश दोहा, चौपाई आदि छन्दों में १८ पर्व मय हरिवंशपर्व चार जिल्दों में	१२)
महाभारत सबलसिंह चौहान	२।।)
ग्रन्थ गुरुनानकशाह मुजल्लद कपड़ा वलायती	६।।)

नाम किताब	क़ीमत
योगवाशिष्ठ मुजल्लद	८)
उपनिषद् सटीक पं० यमुनाशंकर	
ईशावास्योपनिषद्	≡)
केनोपनिषद्	≡)।।
कठवल्लीउपनिषद्	।=)
प्रश्नोपनिषद्	।=)
मुंडकउपनिषद्	।=)
मांडूक्योपनिषद्	१)
तैत्तिरीयोपनिषद्	।।)
ऐतरेयोपनिषद्	।)
छान्दोग्योपनिषद् कामिल	१।।)
उपनिषत्सार	=)।।
उपनिषद् सटीक बाबू जालिमसिंह	
ईशावास्योपनिषद्	≡)
केनोपनिषद्	≡)।।
कठवल्लीउपनिषद्	।।=)
प्रश्नोपनिषद्	।।)
मुंडकउपनिषद्	।।)
मांडूक्योपनिषद्	≡)
तैत्तिरीयोपनिषद्	।।≡)
ऐतरेयोपनिषद्	।)।।
छान्दोग्योपनिषद्	३।)
बृहदारण्यकोपनिषद्	३)

मिलने का पताः—

मुंशी विष्णुनारायण भार्गव,

मालिक नवलकिशोर प्रेस—लखनऊ.